Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

3.4 VHP.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy.

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्राचीन व आधुनिक

भारतीय शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास

लेखक:—
प्यारेलाल रावत, एम० ए०

भारत पब्लिकेशन्स. आगरा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रकाशक :
नरेन्द्र कुमार माहेश्वरी
भारत पब्लिकेशन्स,
बेलनगंज, आगरा ।

सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित

द्वितीय संस्करण : १९५९

मूल्य : ५.८८ न० पै०

मुद्रक:—
राम नारायण गुप्त
रामा प्रिंटिंग प्रेस
रावतपाड़ा, आगरा ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

डि. १३५८
२५८४

देश के राष्ट्र निर्माताओं को

समर्पित

जो दीन व निराश्रित होते हुए भी
राष्ट्र-सन्तानों को शिक्षित करने की मूक-सेवा में रत हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

निवेदन

[द्वितीय संस्करण]

प्रस्तुत संस्करण पूर्णतया संशोधित है। इस संस्करण में देश में होने वाली समस्त आधुनिकतम शिक्षा घटनाओं का समावेश कर दिया गया है। यह संस्करण पिछले संस्करण से परिवर्तित भी है—क्योंकि इस पुस्तक को छापने का उद्देश्य, "भारतीय शिक्षा का इतिहास" नामक पुस्तक का, संक्षिप्त संस्करण ही लाना था। पुस्तक में प्रश्नों को विषय सामिग्री से हटाकर अन्त में (विषय व पुस्तक से सम्बन्धित प्रश्न) छापा गया है। विद्यार्थियों को प्रश्नों का हल सरलता से ज्ञात हो सके, इसी हेतु प्रत्येक प्रश्न के साथ पुस्तक से सम्बन्धित पृष्ठों की संख्या भी दे दी गई है।

—प्रकाशक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	प्राचीन शिक्षा	
१—	वैदिक कालीन शिक्षा	१–९
२—	उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा [१००० ई० से २०० ई० पू०]	१०–२७
३—	ब्राह्मणीय शिक्षा का सिंहावलोकन	२८–३६
४—	बौद्ध शिक्षा-प्रणाली	३७–४५
५—	प्राचीन कालीन प्रमुख शिक्षा केन्द्र	४६–५३
	मध्यकालीन शिक्षा	
६—	इस्लामी शिक्षा	५४–७५
	आधुनिक शिक्षा	
७—	प्रारम्भिक योरुपीय शिक्षा प्रयत्न [१८१३ ई० तक]	७६–८९
८—	संघर्ष का प्रारम्भ [१८१३–३३ ई०]	९०–१०४
९—	संघर्ष की समाप्ति और शिक्षा का आँग्लीयकरण [१८३५–१८५३ ई०]	१०५–१२३
१०—	वुड का शिक्षा घोषणा-पत्र [१८५४ ई०]	१२४–१२९
११—	शिक्षा की प्रगति [१८५४–८२ ई०]	१३०–१३६
१२—	भारतीय शिक्षा कमीशन तथा उसके उपरान्त शिक्षा प्रगति [१८८२–१९०४]	१३७–१५७
१३—	स्वदेशी आन्दोलन और शिक्षा प्रगति [१९०५–१९२०]	१५८–१७०
१४—	द्वैध शासन के बाद शिक्षा-प्रगति [१९२१–३७ ई०]	१७१–१९०
१५—	प्रान्तीय स्वायत्त शासन से वर्तमान तक [१९३७–१९५८ ई०]	१९१–२४७
१६—	भारतीय शिक्षा में नियोजन	२४८–२७०
१७—	उत्तर प्रदेश में शिक्षा-प्रगति [१९३७–५८ ई०]	२७१–२९५
१८—	भारत में सामाजिक शिक्षा	२९६–३०६
१९—	टैक्नीकल तथा व्यावसायिक शिक्षा	३०७–३२०
२०—	भारतीय शिक्षा की कुछ समस्यायें	३२१–३५९

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१

वैदिक कालीन शिक्षा

जीवन-दर्शन :

प्राचीन भारत का निर्माण राजनैतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक क्षेत्र में न होकर धर्म-क्षेत्र में हुआ था। जीवन के प्रायः सभी अंगों में धर्म का प्राधान्य था। धर्म का प्राधान्य होने से जीवन में एक अलौकिक विचार-धारा का समावेश हुआ। प्राचीन हिन्दुओं की राजनीति हिंसा, द्वेष तथा स्वार्थ पर अवलम्बित न होकर प्रेम, सदाचार और परमार्थ पर आधारित थी। व्यक्ति का विकास ही समाज का विकास समझा जाता था। आर्थिक क्षेत्र में भी जीवन की कोमल व पवित्र धार्मिक-भावनायें क्रियाओं का निर्देशन करती थीं; यहाँ तक कि सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक-संगठन मानव की मूल-भूत उदात्त भावनाओं तथा दिव्य सिद्धान्तों पर आधारित था। जीवन का एक उद्देश्य था, एक आदर्श था और उस आदर्श की प्राप्ति संसार की सभी भौतिक विभूतियों से उच्चतर समझी जाती थी। प्राचीन भारत की शिक्षा का विकास भी इसी आधार पर हुआ। भारत में शिक्षा तथा ज्ञान की खोज केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही नहीं हुई, अपितु वह 'धर्म' के मार्ग पर चल कर मोक्ष प्राप्त करने का एक क्रमिक प्रयास था। भारतीय ऋषियों ने एक अदृश्य जगत और आध्यात्मिक सत्ता के गीत गाये और अपने सम्पूर्ण जीवन को भी उसी के अनुरूप ढाला। इस भौतिक जगत को वे कभी गम्भीरता पूर्वक न ले सके और उनकी सभी प्रवृत्तियाँ वाह्य-विकास की ओर न होकर आन्तरिक जगत के सृजन और विकास में लग गईं। यद्यपि मृत्यु उनके भय का कारण तो नहीं थी तथापि मृत्यु तथा संसार में आवागमन से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने एक चिरन्तन और स्थायी जीवन की कल्पना की। जगत उन्हें मिथ्या लगा और जीवन का एक मात्र सत्य प्रतीत हुआ इस जीवात्मा का परमात्मा में विलीनीकरण। इस प्रकार मूलतः प्राचीन भारतीय जीवन-दर्शन की परम्परा आध्यात्मिक होगई और जीवन के विभिन्न कार्यों में इसी विचार-धारा का प्राधान्य होगया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्राचीन शिक्षा-दर्शन :

जीवन-दर्शन की आध्यात्मिक पृष्ठ-भूमि का प्रभाव तत्कालीन शिक्षा-दर्शन पर भी पड़ा। प्राचीन शिक्षा-शास्त्रियों ने शिक्षा का उद्देश्य 'चित्त-वृत्ति निरोध' माना। सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का संगठन जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करने के लिये किया गया। ऋषि-आश्रमों तथा गुरु-गृहों पर विद्यार्थी-गण समाज के विप्लवों से दूर प्रकृति की रमणीक गोद में जीवन की उच्च आध्यात्मिक समस्याओं का श्रवण, मनन और चिन्तन करता था।

किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि आध्यात्म-प्रधान शिक्षा में लोकोपयोगी-शिक्षा का कोई स्थान नहीं था। वास्तव में प्राचीन भारतीय शिक्षा की यह विशेषता थी कि वह आध्यात्मिक होते हुए भी लौकिक तथा तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल थी। उसमें जीवन-दर्शन तथा आध्यात्मिक विवेचन का प्राधान्य होते हुए भी, अन्य लोकोपयोगी विषयों का समावेश था।

गुरु-गृह में रहते हुए विद्यार्थी समाज के सम्पर्क में आता था। गुरु के लिये ईंधन व पानी लाना तथा अन्य गृह-कार्य करना उसका कर्त्तव्य समझा जाता था। इस प्रकार न केवल वह गृहस्थ होने का शिक्षण ही पाता था, अपितु श्रम का गौरव-पाठ तथा सेवा का पदार्थ-पाठ पढ़ता था। गुरु की गायों को चराना तथा अन्य प्रकार से गुरु की सेवा करने से एक आध्यात्मिक लाभ भी विद्यार्थियों को होता था। विनय अथवा अनुशासन की समस्या, जिसने वर्तमान शिक्षा-क्षेत्र में एक चुनौती सी दे रखी है, स्वतः ही हल हो जाती थी और साथ ही विद्यार्थी एक जीवनोपयोगी उद्यम जैसे पशु-पालन, कृषि तथा डेरी फार्म इत्यादि में शिक्षण भी पा लेता था। छान्दोग्य उपनिषद् में महासन्त सत्यकाम की कथा आती है जो विद्यार्थी-जीवन में गुरु की गायों का पालन करते थे और जिनके निरीक्षण में गायों की संख्या ४०० से १००० तक हो गई थी। इसी प्रकार वृहदारण्यक में भी हमें ऋषि याज्ञवल्क्य की गाथा मिलती है, जिन्हें राजा जनक ने १००० गायों का दान दिया था जो कि उनके महान् ज्ञान का पारितोषक था। इससे प्रमाणित होता है कि शिक्षा केवल सैद्धान्तिक ही नहीं थी, अपितु जीवन की वास्तविकताओं से इसका सम्बन्ध था। ऋग्वेद में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि एक ऋषि स्वयं कवि थे, उनके पिता भिषग् अर्थात् चिकित्सक और उनकी माँ उपल-प्रक्षिणी अर्थात् आटा पीसने वाली थी। इस प्रकार उच्चतम शिक्षा में भी शारीरिक श्रम का महत्व था। जीवन की गूढ़तम समस्याओं को हमारे ऋषियों ने जीवन के साधारण कार्य-क्षेत्रों में सुलझा दिया था। जिस पद्धति को वर्तमान काल में 'क्रिया से ज्ञान प्राप्त करना' कहते हैं, वह भारतीय ऋषियों तथा विद्यार्थियों का एक शिक्षा-सूत्र था। जीवन की

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रयोगशाला शिक्षा-परीक्षणों के लिये थी जिनमें सफलता प्राप्त करके प्राचीन शिक्षा-शास्त्रियों ने एक परम्परा का निर्माण किया।

अपने जीवन-यापन के लिये शिष्य भिक्षान्न लाते थे। इसका उद्देश्य विद्यार्थी को परामुखापेक्षी बनाना नहीं था और न यह समाजहित के प्रतिकूल ही समझा जाता था। वास्तव में भिक्षा-प्रथा प्राचीन काल में एक सम्मानित कार्य समझी जाती थी। शतपथ ब्राह्मण में इसके शिक्षा-महत्त्व को स्वीकार किया गया है। यह प्रथा विद्यार्थी में त्याग तथा मानवीय गुणों का विकास करती थी। उसके अहंकार तथा उच्छृङ्खलता का विनाश करके उसे व्यावहारिक जगत के सम्मुख ला खड़ा करती थी। समाज के सम्पर्क में आने से उसे वास्तविक जीवन का भी ज्ञान होता था। यह विद्यार्थी के लिये स्वावलम्ब तथा समाज के प्रति उसके कर्त्तव्य और कृतज्ञता का पदार्थ-पाठ था।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति का विकास एक सुगठित योजना के द्वारा हुआ था। उसकी जड़ें समाज के अन्तराल में थीं और उसका विकास स्वाभाविक था। उसका कुछ उद्देश्य था और कुछ सन्देश था। भारत के जंगलों और काननों के मध्य में स्थित, प्रकृति की रमणीक शोभा से घिरे हुए विद्याकेन्द्र सभ्यता और संस्कृति के अगाध स्रोत थे जहाँ से मानवता का विकास हुआ। राजनीति तथा आर्थिक सिद्धान्त-क्षेत्र में भारत ने चाहे अधिक उन्नति न की हो, क्योंकि उसका उद्देश्य सांसारिक पदार्थ सम्पन्नता की ओर इतना नहीं रहा, किन्तु शिक्षा-क्षेत्र में भारतीय देन अद्वितीय है। जब संसार की अन्य जातियाँ सभ्यता की बोली में केवल बड़बड़ाना ही सीख रहीं थीं, भारत ने उच्च तत्त्व-ज्ञान की मीमांसा की। उसने अपने ज्ञान से विश्व को आलोकित किया और मानव-सभ्यता के एक मानदण्ड की स्थापना की। भारत के प्राचीन शिक्षकों ने शिक्षा के एक विशिष्ट रूप का विकास किया, जिसके द्वारा लौकिक व पारलौकिक विभूतियों में समन्वय की स्थापना हुई, और इस प्रकार मानवीय-जीवन पूर्णता की ओर अग्रसर हुआ।

वेद कालीन शिक्षा :

वेदकालीन शिक्षा का विस्तृत वर्णन करने के पूर्व वेदों का परिचय आवश्यक है, क्योंकि तत्कालीन शिक्षा का आधार इन वेदों पर ही आश्रित है।

ऋग्वेद : हिन्दू धर्म की सर्व प्रथम रचना है। इसके पूर्व हमें भारतीय शिक्षा और सभ्यता का कोई क्रमिक इतिहास नहीं मिलता। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बिना एक उच्च सभ्यता की पृष्ठ-भूमि के लिये ऋग्वेद जैसी कृति का सहसा सृजन कर देना सम्भव नहीं था। अवश्य ही ऋग्वेद की सभ्यता तक पहुँचने में भारत को क्रमिक विकास की अनेक सीढ़ियों को पार करना पड़ा होगा। ऋग्वेद वह महान् ज्ञान भंडार है जिसमें

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

तत्कालीन ज्ञान और विचारधारा बीज रूप में निहित है। वह जीवन की भौतिक विभूतियों को तुच्छ समझते हुए एक महान् और दिव्य आनन्द की प्राप्ति के लिये जीवन की प्रवृत्तियों को अन्तर्मुखी करने का आदेश देता है।

ऋग्वेद १०१७ मन्त्रों का समूह है जिसे संहिता कहते हैं। ये मंत्र क्रमशः एक दीर्घ-काल में इकट्ठे किये गये थे। इनमें कुछ मंत्र शुद्ध साहित्य, कुछ धर्म और संस्कार और कुछ यज्ञ-संगीत तथा यज्ञ विधि इत्यादि से सम्बन्ध रखते हैं। इन मंत्रों के द्वारा इन्द्र, वरुण, अग्नि, मारुत, उषा, सूर्य और परजन्य इत्यादि की आराधना की गई है। जन्म, विवाह, दान, यज्ञ और मृत्यु इत्यादि जीवन के संस्कारों पर भी श्लोक हैं। अन्त में सृष्टि और दर्शन के ऊपर भी मंत्र है जिनमें विराट् पुरुष के द्वारा सृष्टि-सृजन का उल्लेख है। इस प्रकार इस संहिता में जीवन के सांस्कृतिक विकास तथा उसके विभिन्न रूपों का विशद चित्रण किया गया है।

अन्य वेद—ऋग्वेद के उपरान्त क्रमशः सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ। पुरोहितवाद का प्रचार अधिक बढ़ गया था और धीरे-धीरे उच्च शिक्षा का सम्बन्ध पुरोहितवाद तथा धर्म के क्रियात्मक रूप (कर्मकांड) से हो गया। पूजा तथा यज्ञ के वाह्य-उपकरणों का इतना प्रचार होगया कि पुरोहितों को इन क्रियाओं का नियमित प्रशिक्षण लेकर उनमें विशेषता प्राप्त करनी पड़ती थी। प्रारम्भ में पुरोहितों में कोई वर्गभेद नहीं था तथा प्रत्येक पुरोहित यज्ञ सम्बन्धी प्रत्येक कार्य को करने योग्य समझा जाता था। कालान्तर में कर्मकांड और बलिदान-विधि के अधिक जटिल हो जाने पर यह अनिवार्य होगया कि उनमें कुछ श्रम-विभाग किया जाय; क्योंकि एक पुरोहित के लिये यह कार्य असम्भव समझा गया कि वह यज्ञ की विधियों में विशेषज्ञ हो जाय। अन्त में पुरोहितों में तीन प्रमुख विभाग हो गये। इनका नीचे उल्लेख किया गया है। ये पुरोहित क्रमशः एक-एक वेद के प्रतिनिधि थे और इन लोगों की शिक्षण-संस्थायें भी भिन्न-भिन्न थीं।

(१) होतृ : जो यज्ञ के समय मंत्रों का गान करता था। ये मंत्र किसी देवता जैसे इन्द्र, अग्नि या वायु इत्यादि की प्रशंसा में गाये जाते थे।

(२) उद्गातृ : यज्ञ विधि का दूसरा भाग सोमयज्ञ से सम्बन्ध रखता था। सोम एक प्रकार का रस होता था जिसे एक लता को कुचल कर निकाला जाता था। यह रस मादक होता था। अतः इसकी मादकता को आर्यों ने एक दिव्य शक्ति समझ कर देवता की भाँति उसकी पूजा करना प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि उनके मतानुसार यह उन्हें अमरत्व प्रदान करता था। इस प्रकार एक नई संस्कार-विधि का प्रादुर्भाव हुआ जिसके

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अनुसार मंत्र गाये जाने लगे। जो पुरोहित इन मंत्रों का गान करते थे उन्हें 'उद्गातृ' कहा जाता था।

(३) अध्वर्यु : ये यज्ञ की क्रिया-विधि तथा वास्तविक कार्य-प्रणाली में विशेषता प्राप्त करते थे।

इनके अतिरिक्त 'ब्राह्मण' नामक एक चौथा वर्ग भी था जो सम्पूर्ण पूजा-कार्य का निरीक्षण और निर्देशन करता था। यह वर्ग तीनों वेदों में शिक्षा प्राप्त करता था। प्रत्येक संदेहात्मक वात पर इन्हीं की अनुमति अन्तिम मानी जाती थी।

सामवेद : सोम संस्कार के लिये उद्गातृ को गान की सभी ध्वनियों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। सोम यज्ञ पर गाई जाने वाली क्रियाओं का संग्रह सामवेद के नाम से हुआ। इसके अधिकतर छंद ऋग्वेद से लिये गये हैं। इस सम्पूर्ण वेद का उद्देश्य संगीत का ज्ञान कराना है। यह संगीत के एक पाठ्य-ग्रन्थ के समान है, जिसमें संगीत के पूर्ण पाठ दिये हुए हैं।

यजुर्वेद : यद्यपि यज्ञ के समय मंत्र गाने का कार्य प्रधानतः होतृ को करना होता था, तथापि अध्वर्यु, जो कि यज्ञ की क्रिया-विधि से सम्बन्धित था, कुछ मंत्र, प्रार्थनायें अथवा आह्वाहन-मंत्र उच्चारण करता था। इन पुरोहितों की शिक्षा के लिए भी एक सकुल (स्कूल) विकसित होने लगा। इनका विशेष वेद यजुर्वेद हुआ।

यजुर्वेद गद्य मंत्रों का संग्रह है, जिनमें से अधिकतर ऋग्वेद से लिये हुए क्षेपक हैं। यजुर्वेद में वही मंत्र, प्रार्थनायें तथा विधियाँ हैं जिनका कि पुरोहित-उच्चारण करते थे। इसमें बहुत से यज्ञों का विधान भी दिया गया है, जैसे पिण्ड यज्ञ, पितृज्ञ, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, राज-सूय, अश्वमेध और अग्नि-चयन इत्यादि देश की भौतिक उन्नति के लिये भी यजुर्वेद में मंत्र हैं, जैसे—'ब्रह्म वर्चसि जायताम् अस्मिन राष्ट्रे' इत्यादि।

अथर्व वेद : प्रारम्भ में तीन वेदों का ही प्रचलन था। कुछ समय उपरान्त एक चतुर्थ वेद भी स्वीकार किया गया जिसका नाम अथर्व वेद था। इसमें वहुत कुछ मौलिकता है। पूर्व वेदों की भाँति इसके अधिकतर मंत्र ऋग्वेद से नहीं लिये गये हैं। अथर्व वेद चिकित्सा-शास्त्र का भारत में सर्वप्रथम ग्रन्थ है। इसमें बहुत सी जड़ी-बूटियों का भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग निवारण के लिये उल्लेख है। ज्वर, पाण्डु, सन्निपात, शोथ, क्लैव्य, क्षय, सर्पदंश, विषकोढ़, तथा रक्त-विकार इत्यादि भयंकर रोगों की चिकित्सा जड़ी-बूटियों द्वारा किये जाने का विषय अथर्व वेद में मिलता है। इसमें ज्योतिष विद्या का भी उल्लेख है। गृहस्थ जीवन के जन्म, विवाह तथा मृत्यु इत्यादि के संस्कारों का भी इसमें कथन है। अथर्व वेद को वहुत से विद्वान तांत्रिक ग्रन्थ मानते हैं,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

क्योंकि इसमें उन मंत्रों का समावेश है जिनके द्वारा पुरोहित लोग रोग, शत्रु, हिंसक पशु तथा प्राकृतिक उत्पातों के विरुद्ध उनके विनाश के लिये आह्वाहन करते थे। कुछ मंत्रों के द्वारा भौतिक सम्पन्नता तथा सांसारिक विभूतियों के लिये भी प्रार्थना करते थे। कुछ ऐसे गान भी हैं जो राजाओं तथा राजपरिषदों एवं आर्थिक, राजनैतिक तथा दार्शनिक अवस्थाओं का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार अथर्व वेद पूर्णत: भौतिक ग्रन्थ है। सांसारिक ज्ञान-विज्ञानों का इसमें विशद वर्णन है।

ऋग्वेद में शिक्षा :

ऋग्वेद में मन्त्रों के प्रारम्भ का युग प्रधानत: रचना युग था, जिसके उपरान्त आलोचना तथा संग्रह का युग आया। प्रथम युग में ऋषियों का प्रादुर्भाव हुआ जो सत्य-दृष्टा थे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अपने तप और योग बल से ये ऋषि भूत, भविष्यत् और वर्तमान को देख सकते थे। इनके उपरान्त दूसरे युग में श्रुतर्षि उत्पन्न हुए। ऋषि लोग अपने मन्त्रों का दान इन श्रुतर्षियों को उपदेश द्वारा देते थे। 'तपस' आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने का प्रमुख साधन था। ऋषि और मुनि वनों में तपस्या करके परमानन्द तथा अलौकिक ज्ञान प्राप्त करते थे। ऋषियों के तप तथा योग द्वारा महत् ज्ञान के प्राप्त कर लेने तथा उनके छन्दों और मन्त्रों के रूप में संकलित होने के उपरान्त ऐसे साधनों का विकास हुआ जिनके द्वारा यह ज्ञान रक्षित किया जा सके अथवा आगे की सन्तति को हस्तांतरित किया जा सके। अत: प्रत्येक ऋषि अपने पुत्र अथवा शिष्य को यह ज्ञान प्रदान करता था जिसे उसने स्वयं प्राप्त किया था। इस प्रकार यह ज्ञान उस परिवार की वंशगत-निधि समझा जाता था। वैदिक कालीन परिवार-स्कूलों का इसी प्रकार सूत्रपात हुआ। शिक्षक अपने ज्ञान को विद्यार्थियों से कंठाग्र कराता था। अपनी व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करता था। सायण ने तीन प्रकार के विद्यार्थियों का उल्लेख किया है—महाप्रज्ञ, मध्यमप्रज्ञ और अल्पप्रज्ञ। यह वर्गीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार के विद्यार्थियों की मानसिक शक्ति के अनुसार था। ये विद्यार्थी गायन के रूप में वेद के छन्दों को रटते थे। इनके एक साथ वेद मन्त्रों के गायन से वायु-मण्डल गूँज उठता था।

मन्त्र गान एक ललित कला के रूप में विकसित हो गया था। इसमें शब्दों, पदों तथा अक्षरों के शुद्ध उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। छन्द की रचना पदों से तथा पदों की अक्षरों द्वारा होती थी। वैदिक ज्ञान शिक्षक द्वारा एक निश्चित व नियमित उच्चारण के साथ शिष्य को प्रदान किया जाता था जिसे शिष्य सुनकर कंठाग्र करता था। गुरू के अधरों से प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही शुद्ध वैदिक समझा जाता था। इससे

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रतीत होता है कि वर्णमाला और लेखन कला का अभी तक विकास नहीं हुआ था और शिक्षण-पद्धति मौखिक थी।

वैदिक मन्त्रों में एक दैविक शक्ति का आरोपण माना जाता था। ऐसा विश्वास था कि यदि वेद मन्त्रों का ठीक-ठीक तथा शुद्ध रूप में उच्चारण किया जाय तो उनका आध्यात्मिक व दैविक प्रभाव प्रकट होता है। जो मन्त्र अशुद्ध उच्चारण किया जाता था उसका प्रभाव नष्ट हो जाता था, और ऐसा विश्वास था कि वह अशुद्ध उच्चारण करने वाले का विनाश कर देगा। किन्तु एक मात्र उच्चारण ही प्रधान नहीं था। बिना समझे हुए वेद मन्त्रों की तोता रटन्त व्यर्थ समझी जाती थी। जो वेद के अध्ययन के उपरान्त भी उसका अर्थ नहीं समझता था वह उस गधे के समान माना जाता था जिस पर चन्दन के गट्ठे लदे हुए हैं किन्तु जो केवल वोझ ही अनुभव कर रहा है और उसकी सुगन्धि से लाभान्वित नहीं होता।

संक्षेप में ऋग्वेद कालीन शिक्षा की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं :—

१—गुरु-गृह ही विद्यालय था। उपनयन के उपरान्त विद्यार्थी जीवन-पर्यन्त वहीं रहता था। शिक्षक पिता के रूप में उसका संरक्षक होता था और उसके खानपान की स्वयं व्यवस्था करता था।

२—गुरु-गृह में विद्यार्थी का प्रवेश केवल उसके नैतिक बल और सदाचार के आधार पर ही हो सकता था। सदाचार के दृष्टिकोण से जो विद्यार्थी निम्न-स्तर का समझा जाता उसके लिये गुरु-आश्रम में रहना वर्जित था।

३—ब्रह्मचर्य का जीवन अनिवार्य था। यद्यपि विवाहित युवक भी विद्याध्ययन कर सकता था, तथापि उसको आश्रम में रहने का निषेध था। ब्रह्मचर्य से इन्द्रिय निग्रह, सात्त्विकता तथा ब्रह्म में स्थित रहने का अभिप्राय समझा जाता था।

४—गुरु-सेवा करना विद्यार्थी का परम कर्त्तव्य माना जाता था। आश्रम में रहते हुए विद्यार्थी हर समय गुरु-सेवा के लिए तत्पर रहता था। प्राय: उनके ग्रह-कार्य का भार विद्यार्थी पर ही रहता था। वह मन, वाणी और कर्म से गुरु-भक्त होता था तथा गुरू को पिता या ईश्वर समझ कर उसकी उपासना करता था।

५—ऐसे विद्यार्थी जो गुरु-सेवा करने में असमर्थ थे अथवा किसी अन्य प्रकार से सदाचार के प्रतिकूल अपना आचरण प्रदर्शित करते थे, उनके लिये विद्याध्ययन निषिद्ध था तथा उन्हें विद्यालयों से निकाल दिया जाता था।

यह बात उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद के समय में वर्ण-व्यवस्था का प्रारम्भ हो चुका था। किन्तु इसके नियम अधिक जटिल नहीं थे। महत्-ज्ञान वर्ण तक ही सीमित

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

नहीं था अपितु वह व्यक्ति की तपस्या और योग शक्ति पर निर्भर था। अम्बरीष, त्रस-दस्यु, सिन्धुद्वीप, मान्धाता तथा सिवि इत्यादि राजा जो कि क्षत्रिय थे अपनी तपस्या के बल से ही ऋषि हुए। साथ ही स्त्रियों को भी यज्ञ में भाग लेने की स्वतन्त्रता थी। स्त्री सन्तों को 'ऋषिका' और 'ब्रह्मवादिनी' कहकर पुकारा जाता था। रोमसा, लोपमुद्रा, घोषा, अपाला, कद्रु, कामायनी, श्रद्धा, सावित्री, उर्वषी, सारंगा, देवयानी तथा गोपायना इत्यादि स्त्री-ऋषिकाओं के नाम चारों वेदों में मिलते हैं। ऋग्वेद में अनार्यों को भी शिक्षा देने की व्यवस्था है। उन्हें कृष्णगर्भ, अनास, पिशाच, असुर तथा दस्यु इत्यादि नामों से पुकारा गया है। किन्तु शीघ्र ही ये आर्य जाति में मिल गये और आर्यों ने इन्हें 'शूद्र' की संज्ञा दे दी तथा इनकी शिक्षा-व्यवस्था भी स्थिर कर दी।

भौतिक शिक्षा : यद्यपि ऋग्वेद कालीन शिक्षा प्रधानतः धार्मिक व दार्शनिक थी और केवल उन्हीं लोगों के लिए थी जो 'चिरन्तन-सत्य' और 'महत् ज्ञान' के प्राप्त करने के योग्य होते थे, तथापि साधारण जनता के लिए सांसारिक व लाभदायक शिक्षा की व्यवस्था भी थी। आर्थिक लाभों के लिए लोग भिन्न-भिन्न प्रकार की कलाओं में शिक्षा पाते थे। चरागाहों, पशु-पालन व कृषि-विज्ञान ने भी अच्छी उन्नति की। हस्त-कला की शिक्षा भी दी जाती थी। वस्तु-विनिमय, ऋण, साहूकारी तथा ब्याज इत्यादि का भी प्रचलन था। समुद्री व्यापार भी होता था। प्रस्तर-निर्मित नगर (पुर) का भी ऋग्वेद में उल्लेख है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ऋग्वेद काल में शिक्षा का सांसारिक, सामाजिक व व्यावहारिक रूप भी था।

अन्य वेदों में शिक्षा :

प्राचीन काल में भारत में विद्यार्थी-जीवन एक नियमित, सुचालित तथा स्थिर आधार पर टिका हुआ था जिसमें समय तथा राज्य के परिवर्तन से कोई परिवर्तन नहीं होता था। 'विद्यार्थी' शब्द के लिये अधिक उपयुक्त शब्द 'ब्रह्मचारी' था। अथर्व वेद में ब्रह्मचारी के लिए पूर्ण व्यवस्था मिलती है। उपनयन-संस्कार के सम्पादन पर ही विद्यार्थी-जीवन का सूत्रपात होता है। इस समय विद्यार्थी अपने आचार्य के पास तीन दिन तक निवास करता है और तीन दिन के उपरान्त एक नवीन जीवन धारण करके 'द्विज' के रूप में प्रकट होता है। उसका यह द्वितीय जीवन आध्यात्मिक-जीवन है जिसका जन्मदाता उसका गुरु है। उपनयन के वाद ही वह 'ब्रह्मचारी' कहलाता था, तथा उसके जीवन का रूप वदल जाता था। वेश-भूषा तथा आचरण के दृष्टिकोण से वह अन्य सामाजिक व्यक्तियों से भिन्न होता था। कुश-मेखला, मृगछाला, हाथ में ईंधन (समिधा) लेकर वह दोनों समय अग्नि को अर्पित करता था। आन्तरिक अनुशासन के लिए श्रम, तपस और दीक्षा इत्यादि नियम थे जो उसके जीवन में कुछ स्थायी गुणों का विकास

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

करते थे। उसे शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के अनुशासन का पालन करना पड़ता था। शारीरिक अनुशासन के लिए एक नियमित व सात्विक जीवन बिताना होता था, जिसमें कुशा, मृग-छाला और दीर्घ वाल इत्यादि वाह्य-उपकरण धारण करके विद्यार्थी भिक्षा के द्वारा अपना जीवन पालन करता था। इन्द्रिय-निग्रह, तपस्या, गुरु-सेवा, तथा त्याग के द्वारा वह आध्यात्मिक अनुशासन प्राप्त करता था और 'आचार्य कुलवासी' हो जाता था।

प्राचीन काल में ब्रह्मचर्य का पालन स्त्रियाँ भी करती थीं। वे अपने विद्यार्थी-जीवन में ब्रह्मचर्य से रहकर युवकों को विवाह में जीतती थीं और तत्पश्चात् गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करके राष्ट्र-निर्माण का कार्य करती थीं, जैसा कि 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्' से प्रतीत होता है।

विद्यार्थी-काल में छुट्टियों की भी व्यवस्था थी। पर्व के अवसर पर, वर्षा-काल में आकाश मेघाच्छन्न होने पर तथा आँधी के समय शिक्षण-कार्य वन्द रहता था।

उपसंहार :

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक कालीन शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक तथा लौकिक दोनों ही था। व्यक्ति के विकास के लिये पूर्ण अवसर दिया जाता था। शिक्षक विद्यार्थियों की व्यक्तिगत देखभाल करते थे। अतः विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता था। जीवन के तीन ऋण—ऋषि-ऋण, देव-ऋण तथा पितृ-ऋण को क्रमशः ब्रह्मचर्य, यज्ञ तथा सन्तानोत्पत्ति के द्वारा चुकाये जाने की व्यवस्था का उल्लेख यजुर्वेद में मिलता है। ब्रह्मचर्यावस्था में गुरु-गृह पर रहकर गुरु की सेवा करते हुए विद्यार्थी अपने शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिये प्रयत्नशील रहते थे। वैदिक युग की शिक्षा-पद्धति चरित्र-निर्माण करने, व्यक्तित्व के विकास, ज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं में प्रगति करने तथा सामाजिक समृद्धि व सम्पन्नता प्राप्त करने में पूर्णतः सफल रही। यद्यपि इस युग की साहित्यिक व वैज्ञानिक प्रगति इतनी सौष्ठवपूर्ण और परिपक्व नहीं थी जैसी कि बाद में जाकर उपनिषद् युग में हो गई, तथापि ज्ञान-क्षेत्र में बढ़ने की अभिलाषा इस युग में पाई जाती है। उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि केवल वेद-मन्त्रों के गा लेने से ही उनके उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जायगी, अपितु उनका समझना और उनके गूढ़ार्थों की सराहना व व्याख्या करने की क्षमता प्राप्त करना भी आवश्यक है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२

उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा

(१००० ई० पू० से २०० ई० पू०)

शिक्षा का उद्देश्य :

ब्राह्मण, अरण्यक और उपनिषद् वे प्रमुख साधन हैं जिनसे हमें उत्तर-वैदिक काल की सभ्यता व शिक्षा का हाल ज्ञात होता है। इस समय शिक्षा केवल शिक्षा के लिए नहीं, अपितु शिक्षा जीवन के लिए थी। शिक्षा का उद्देश्य पूर्णब्रह्म को प्राप्त करना था। यज्ञ तथा अन्य धार्मिक क्रियाओं का उद्देश्य भी पूर्णब्रह्म की प्राप्ति था, किन्तु धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन पर भी अधिक जोर दिया गया। यह अध्ययन 'स्वाध्याय' कहलाता था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि स्वाध्याय के द्वारा ही मनुष्य ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर ब्रह्म में लीन हो सकता है। इसके लिए प्राय: जन-कोलाहल शून्य किसी प्राकृतिक रमणीक स्थान में बैठकर एकाग्र मन होकर ब्रह्मचारी लोग अध्ययन करते थे। यद्यपि स्वाध्याय या आत्म-अध्ययन का विशेष प्रचलन था, तथापि विद्यार्थी के लिए शिक्षक की आवश्यकता भी प्रतीत होती थी। गुरु विद्यार्थी को अन्तर्चक्षु प्रदान करता तथा आध्यात्मिक जीवन देता था। इसके अतिरिक्त अनियमित शिक्षक भी थे जो बिना दीक्षा संस्कार सम्पादित किये हुए ज्ञान प्रदान करते थे।

वस्तुत: उपनयन संस्कार के उपरान्त ही बालक ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करता था और प्राय: २५ वर्ष (अविवाहित रहने) की अवस्था तक 'ब्रह्मचारी' कहलाता था। उपनयन विद्यार्थी का द्वितीय जन्म माना जाता था। यहाँ से गुरु के द्वारा दीक्षित होने पर उसका आध्यात्मिक-जीवन आरम्भ होता था। वंश, व्यक्तिगत योग्यता तथा सेवा-भाव इत्यादि गुणों को देख कर ही गुरु बालकों को दीक्षित करते थे। यह विद्यार्थी-जीवन प्राय: १२ वर्ष तक माना जाता था। विद्यारम्भ भी प्राय: १२ वर्ष तक की अवस्था से ही होता था। कुछ लोग आजीवन विद्यार्थी रहते थे।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विद्यार्थी के कर्त्तव्य :

प्रथमत: विद्यार्थी 'आचार्य कुल वासिन' होता था। दूसरे, उसे अपने पालन-पोषण तथा गुरु के लिए भिक्षान्न माँगकर लाना होता था। इस प्रथा का पालन निर्धन, धनवान, राजकुमार तथा कृषक सभी विद्यार्थियों को करना पड़ता था। इससे उसके अन्दर विनय का प्रादुर्भाव होता था और वह समाज के द्वारा किये गये उपकार तथा उसके प्रति किये जाने वाले अपने कर्त्तव्य का एक पदार्थ-पाठ पड़ता था। ब्रह्मचारी का तीसरा कर्त्तव्य माना जाता था गुरु-गृह की पवित्र अग्नि को सदा प्रज्वलित रखना। इस पवित्र ज्योति का आध्यात्मिक अर्थ था मस्तिष्क और आत्मा को प्रकाशित करना। गुरु की गाय इत्यादि पशुओं को जंगल में ले जाकर चराना विद्यार्थी का चौथा कर्त्तव्य था।

इस तरह विद्यार्थी के समय का एक दीर्घ अंश गुरु-सेवा में ही व्यतीत होता था। ये सेवायें प्राय: निर्धन विद्यार्थी ही करते थे। धन-सम्पन्न वालक गुरुओं को दक्षिणा देते थे। इन वाह्य गुरु-सेवाओं के अतिरिक्त विद्यार्थी का प्रमुख कर्त्तव्य विद्याध्ययन था। प्रारम्भ में वेद-पाठन से अध्ययन प्रारम्भ किया जाता था, अर्थात् अक्षर, शब्द, उच्चारण, छन्द तथा प्रारम्भिक व्याकरण का ज्ञान पहले कराया जाता था। इसमें व्याकरण तथा शुद्ध उच्चारण का विशेष महत्व था, क्योंकि इनकी शुद्धता पर ही वेदों की भावी शुद्धता निर्भर थी।

इस प्रकार वाह्य-प्रतिवन्ध विद्यार्थी में एक आन्तरिक संस्कार उत्पन्न करते थे। इन्द्रियों, इच्छाओं, यशलिप्सा, निद्रा, क्रोध, गन्ध और शारीरिक सौन्दर्य इत्यादि पर उसे विजय प्राप्त करने की चेष्टा करनी होती थी। संक्षेप में 'सादा जीवन उच्च विचार' ही उसका आदर्श था।

विद्या-काल की समाप्ति पर गुरुजन विद्यार्थियों को दीक्षान्त भाषण देते थे जिसमें उनके भावी व्यावहारिक जीवन के कर्त्तव्यों का उन्हें स्मरण दिला कर संसार में भेजा जाता था। इस प्रथा को 'समावर्तन' संस्कार कहते हैं। इन कर्त्तव्यों में प्रधानत: सत्य बोलना, कर्त्तव्य-पालन, वेद अध्ययन, स्वास्थ्य-रक्षा, यज्ञ, माता-पिता तथा गुरु सेवा, दान तथा इसी प्रकार के उत्तम कर्म करने के लिए आदेश थे।

शिक्षक के कर्त्तव्य :

प्राचीन भारत की सम्पूर्ण सभ्यता का प्रकाश तत्कालीन शिक्षकों ही की आध्यात्मिक तथा नैतिक ज्योति-छाया थी। शिक्षक के अन्दर उच्चतम आध्यात्मिक व चरित्र सम्बन्धी गुणों का होना अनिवार्य था। गुरु ब्रह्मनिष्ठ तथा सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान का ज्ञाता होता था। अपने आन्तरिक प्रकाश से ही वह अपने शिष्यों की अन्तर्ज्योति

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

को जागृत करता था। प्राचीन काल में ऐसे ही व्यक्ति को गुरु पद के योग्य समझा जाता था जो कि स्वयं अपने विद्यार्थी जीवन में आदर्श विद्यार्थी रहा हो। जो व्यक्ति समाज व जाति का पथ-प्रदर्शन कर सकें अथवा जो पूर्ण विद्वान् हों, उन्हें ही शिक्षक पद मिलता था। योग्य शिष्य के पहुँचने पर उसे उच्चतम शिक्षा देना प्रत्येक गुरु का कर्त्तव्य था। गुरु जो कुछ जानता था, बिना भेद-भाव व छिपाव के सभी कुछ शिष्य को सिखाता था; यद्यपि ऐसे भी उदाहरण हैं कि कुछ गुप्त विद्याओं का दान विशेष शिष्य को ही दिया जाता था। साधारण शिष्य इसके योग्य नहीं समझा जाता था। किसी विशेष विषय में अपने आपको योग्य व समर्थ न पाने पर गुरु यह बात शिष्य पर प्रकट कर देना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझता था।

गुरु का जीवन एक आदर्श होता था; शिष्य उनका अनुकरण करते थे। 'अन्धकार से प्रकाश में लाना' गुरु का कर्त्तव्य था। गुरु ही विद्यार्थी का आध्यात्मिक व मानसिक पिता होता था। किसी विद्यार्थी के नैतिक पतन अथवा दोषों का पूर्ण-उत्तरदायित्व शिक्षक पर ही होता था। बीमार पड़ने पर प्रत्येक विद्यार्थी की सुश्रुषा तथा अन्य आवश्यकताओं के समय पर गुरु को उसी प्रकार अपने कर्त्तव्य का पालन करना होता था जैसे कि एक पिता अपने पुत्र के लिये करता है।

शिक्षा-प्रणाली :

वेद कालीन शिक्षा में शिष्य को ज्ञान सीधा प्रदान किया जाता था। इस प्रणाली में 'शिक्षक' प्रमुख था। किन्तु उत्तर वैदिक-काल की शिक्षा-प्रणाली में 'शिष्य' प्रमुख था। गुरु और शिष्य में प्रश्न और उत्तर होते थे। गुरु शिष्यों के समक्ष समस्यायें रखते थे अथवा शिष्य भी प्रश्न पूछ कर गुरुओं से उत्तर पाकर शंका समाधान या ज्ञानवर्धन करते थे। इस प्रकार समस्याओं के हल और प्रश्नों के उत्तर द्वारा विद्यार्थी को ज्ञान दिया जाता था। अधिकतर शिक्षा वाणी द्वारा ही दी जाती थी, यद्यपि लेखन कला का भी प्रचार बढ़ रहा था। प्रश्न-उत्तर, कथा, अन्योक्ति एवं सूक्ति इत्यादि प्रमुख शिक्षा-प्रणालियों का प्रयोग होता था। तर्क-शास्त्र का विकास उपनिषद् काल में खूब हुआ और आगे चलकर न्याय-शास्त्र के विकास में इससे पर्याप्त सहायता मिली।

गुरु व शिष्य के वाद-विवाद में शिष्य केवल निष्क्रिय श्रोता ही नहीं रहता था; अपितु उसे हर क्षण जागरूक व क्रियाशील रहना पड़ता था। उसे मनन और चिन्तन करके प्रश्नों के उत्तर सोचने पड़ते थे। इस प्रकार उसकी मानसिक व कल्पना शक्ति को श्रम और शिक्षण मिलता था। किसी गूढ़ विषय का सूत्रपात करके गुरु शिष्य को आगे

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ले जाकर छोड़ देता था। उसके आगे शिष्य स्वतः अपने स्वाध्याय, मनन और चिन्तन द्वारा अभीष्ट पर पहुँचता था। तैत्रीय उपनिषद् में वरुण के द्वारा अपने पुत्र भृगु के पढ़ाये जाने की कथा है जहाँ पर वरुण उसे चार बार संकेत के रूप में प्रारम्भिक सहायता देकर आगे बढ़ने के लिये छोड़ देता है। अन्त में पाँचवीं बार जाकर भृगु को स्वयं पूर्ण-ब्रह्म का आभास हो जाता है। इस प्रकार शिक्षा में प्रमुख भाग विद्यार्थी का ही होता था। शिक्षक केवल उसका पथ-प्रदर्शन करता था।

शिक्षा-संस्थाओं के रूप :

इन तीन प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का उस समय प्रचलन था :

(१) गुरु-गृह : गुरु-गृह (अथवा गुरुकुल) में विद्यार्थियों को रखने का मूल कारण यह था कि योग्य व चरित्रवान् गुरुओं के साक्षात् सम्पर्क में रह कर विद्यार्थी अपने चरित्र और जीवन को उसी के अनुरूप ढालने का सुअवसर पाता था। बालक के लिए शिक्षक प्रायः आदर्श होता है। यदि उसे अधिक से अधिक समय के लिए शिक्षक के निकटतम सम्पर्क में रखा जाता है तो उसमें क्रमशः उन सभी गुणों के समावेश की सम्भावना बढ़ जाती है जिनसे स्वयं शिक्षक का जीवन प्रेरित होता है। इन गुरु-गृहों पर विद्यार्थी को गुरु के प्रत्यक्ष सम्पर्क के साथ ही साथ पारिवारिक जीवन का भी अनुभव होता था, क्योंकि अधिकांश में ये शिक्षक गृहस्थ होते थे। यही कारण है कि गुरु-गृह पर ही शिक्षा प्राप्त करने की प्रथा साधारणतः उस समय प्रचलित थी। बालक प्रारम्भिक अवस्था में अपने माता-पिता को छोड़कर अपने आध्यात्मिक पिता के घर जाता था। यहाँ उपनयन-संस्कार के उपरान्त उसको ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश कर लिया जाता था। गुरु-गृह में गुरु की सेवा करते हुए वह लगभग १२ वर्ष तक विद्यालाभ करता था। तदुपरान्त वह पूर्ण विद्वान होकर वहाँ से विदा होता था।

(२) परिषद् : यहाँ उच्च शिक्षा के विद्यार्थी इकट्ठे होकर तर्क-वितर्क तथा भाषणों द्वारा अपनी ज्ञान-क्षुधा को मिटाते थे। जो विद्यार्थी अपना शिक्षण प्रारम्भिक अवस्था में ही नहीं समाप्त कर देते थे तथा सत्य और ज्ञान की खोज में लगे रहते थे, वे इन परिषदों के द्वारा ज्ञानार्जन करते थे। पारस्परिक वाद-विवाद के अतिरिक्त विद्यार्थी योग्य विद्वानों व महान् शिक्षकों को भी इन वार्ताओं में निमन्त्रित करते थे तथा स्वयं देश-भ्रमण भी करते थे। ब्राह्मण, अरण्यक तथा उपनिषदों में इस सम्बन्ध के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उपनिषदों की रचना तो प्रायः ऐसे ही तर्कों तथा वाद-विवादों के परिणाम स्वरूप हुई। इनमें उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के द्वारा सत्य तथा आत्मा के अनुसन्धान का वर्णन है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(३) सम्मेलन : स्थानीय परिषदों के अतिरिक्त कभी-कभी बड़े-बड़े राजा अपने यहाँ सम्पूर्ण देश के विद्वानों, ऋषियों तथा आध्यात्मिक व मानसिक नेताओं को आमंत्रित करते थे। योग्य या सर्वोत्तम विद्वानों, वक्ताओं, दार्शनिकों और ज्ञानियों को विशेष पुरष्कार भी दिये जाते थे।

उपर्युक्त प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं के अतिरिक्त राजाओं के दरबार भी शिक्षा-संस्थाओं का कार्य करते थे जहाँ समय-समय पर उद्‌भट विद्वानों के समूह देश-देशान्तरों से आकर रहस्यमय विषयों पर भाषण करते थे। कुछ शिक्षा-संस्थायें जंगलों में भी थीं जहाँ निर्जन स्थान में प्रकृति की रमणीय व नीरव गोद में ऋषिओं के आश्रम बने थे। विद्यार्थी इन आश्रमों में एकत्रित होकर वेद-पाठ करते थे। उत्तर-वैदिक काल के आरण्यक-ग्रन्थों का सूत्रपात यहीं से है जैसा कि 'आरण्यक' शब्द से प्रतीत होता है। ये वनों में गाये हुए ज्ञान संगीत हैं। किन्तु सभी विद्या-केन्द्र वनों में नहीं थे। तथापि उत्तर-वैदिक काल में हमें ऐसे गृहस्थ शिक्षकों को भी शिक्षण-कार्य करते हुए पाते हैं जो ग्रामों या नगरों में रहकर अपने घरों पर ही शिक्षा देते थे। यही स्थान गुरुकुलों के रूप में विकसित हो जाते थे, जिनका कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। आगे चलकर तो हम देखते हैं कि प्रमुख नगरों में ही शिक्षा-केन्द्रों की स्थापना हुई।

सूत्र-साहित्य का युग :

इस समय तक वेदों तथा उपनिषदों का बहुत विस्तार हो गया था। अतएव यह आवश्यक हो गया कि किसी ऐसें साधन का आविष्कार किया जाय जिससे उस वृहत् ज्ञान राशि को संक्षिप्त रूप दिया जा सके। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये सूत्रों की रचना हुई। इन सूत्रों के द्वारा महान् सिद्धान्तों और सत्यों को थोड़े शब्दों में संकेत रूप में कह दिया जाता था। बिना व्याख्या और विश्लेषण के सूत्रों को समझना कठिन था। प्राय: इनके अर्थ गूढ़ हुआ करते थे। सर्व प्रथम 'श्रौत सूत्र' की रचना हुई। इनमें ब्राह्मणों की धार्मिक क्रियाओं का उल्लेख है। दूसरे प्रकार के सूत्र 'गृह्य सूत्र' कहलाते हैं जिनमें गृहस्थ-जीवन जैसे जन्म, विवाह तथा मरण इत्यादि रीति-अनुरीतियों का वर्णन है। इन्हें 'स्मृति' भी कहते हैं। तीसरी शाखा का नाम 'धर्म-सूत्र' है जिसमें दिन-प्रति-दिन के सामाजिक-जीवन के नियमों का वर्णन है। सूत्र-साहित्य का अन्तिम रूप 'सुल्व सूत्र' है जो धार्मिक कर्मकाण्ड से सम्बन्धित है। सुल्व सूत्रों में वेदी बनाने के नियम, उनकी नाप और आकृति इत्यादि के विषय में बताया गया है। वस्तुत: भारत में ज्यामिति और भारतीय बीजगणित का बीजारोपण भी यहीं से होता है।

सूत्र-युग में अध्ययन के प्रमुख विषय वेदाङ्ग थे। वेदों के समझने के लिए शिक्षा,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प तथा ज्योतिष का पूर्व ज्ञान आवश्यक था। यही 'वेदाङ्ग' कहलाते थे। इस युग की विशेषता है विद्यार्थियों का भिन्न-भिन्न विज्ञानों में विशेष योग्यता प्राप्त करना। वास्तव में यह युग प्राचीन भारतीय शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण व रचनात्मक युग है। रेखागणित, बीजगणित, ज्योतिष, नक्षत्र-शास्त्र, शरीर-शास्त्र, व्याकरण तथा भाषा का विकास इस युग में पर्याप्त रूप से हुआ। यज्ञ के लिये उपयुक्त ऋतु तथा काल का निरीक्षण करने में ज्योतिष-शास्त्र का विकास तथा बलि के लिए पशुओं के शरीर को चीर कर विश्लेषण करने से शरीर-शास्त्र तथा शल्य-चिकित्सा का विकास हुआ। पाणिनि का विश्व-विख्यात व्याकरण इसी युग की रचना है। वस्तुत: पाणिनि से ही सूत्र-युग का सूत्रपात हुआ। कात्यायन व पातञ्जलि इसी युग के साहित्यकार हैं। पातञ्जलि का भाष्य प्राचीन भारत की एक अमर रचना है। इसके अतिरिक्त कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' जिसे सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के महामन्त्री चाणक्य या कौटिल्य की रचना माना जाता है और जो कि तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक और शिक्षा-सम्बन्धी नीतियों का उल्लेख करता है, इसी युग की देन है।

न्याय-शास्त्र व मीमांसा का विकास भी इसी युग में हुआ। जीवन को भली-भाँति सुचालित करने के लिए स्मृतियों की रचना हुई। मनुस्मृति आज भी असंख्य भारतवासियों के लिये अन्तिम शब्द प्रदान करती है। धर्म इस काल में भी साहित्य का गठन और सृजन कर रहा था, यद्यपि लोगों की विचार-धारा स्वच्छन्द हो चुकी थी। आध्यात्मिक जीवन के समानान्तर ही मानसिक जीवन चल रहा था। नृत्य-कला, अभिनय, संगीत, अर्थशास्त्र तथा अन्य सांसारिक विज्ञानों का भी विकास हो रहा था, जिनका अध्ययन प्रधानत: स्त्रियाँ और शूद्र करते थे। यह ज्ञान 'उपवेद' कहलाते थे। इन उपवेदों के द्वारा सभी ज्ञान-शाखाओं का सम्बन्ध वेदों से जोड़ दिया गया था।

सूत्र-युग में शिक्षा-पद्धति प्रधानत: वही थी जो कि उपनिषद् युग में प्रचलित थी। सूत्र-साहित्य किसी नवीन विचार-धारा को तो जन्म देता नहीं। इसमें तो पुरातन धर्म के सर्वमान्य सिद्धान्तों को छोटे-छोटे, ठोस व संक्षिप्त सूत्रों में पिरो दिया गया था। यही नया साहित्य विद्यार्थियों के अध्ययन का विषय बन गया। विद्यारम्भ के समय विद्यार्थियों से कुछ प्रचलित रीति-रिवाजों का पालन कराया जाता था, जैसे सावित्री पाठ इत्यादि। विद्यारम्भ के उपरान्त चूड़ाकर्म और फिर उपनयन-संस्कार का पालन होता था। उपनयन-संस्कार सम्पूर्ण आर्य-जाति के लिये अनिवार्य कर दिया गया। इससे शिक्षा-प्रसार में पर्याप्त सहायता मिली। उच्च विद्या के लिये नियमित विद्यालयों की स्थापना होने लगी। ब्रह्मचर्य का अनुशासन अभी अत्यन्त जटिल था। कालान्तर में बालिकाओं की विवाह की अवस्था घट जाने से स्त्री-शिक्षा को बहुत आघात लगा।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अधिकतर स्त्रियाँ अपने घरों पर ही शिक्षा प्राप्त करती थीं, उनके पिता या भ्राता उन्हें शिक्षा देते थे। व्यवसाय जातिगत और वंशगत होने लगे थे तथापि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी रुचि-अनुकूल पेशा ग्रहण करने के लिये प्रचलित थी। हस्त-कला, चिकित्सा, शिल्प-कला, वास्तुकला इत्यादि सांसारिक उपयोगी विद्याओं का प्रचार बढ़ गया था। इस प्रकार सम्पूर्ण शिक्षा-पद्धति का उद्देश्य चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास तथा प्राचीन संस्कृति की सुरक्षा करना था।

दर्शन-शास्त्र का चरम विकास सूत्रकालीन साहित्य की विशेषता है। दर्शन-सिद्धान्तों का अस्तित्व भारत में वेद कालीन युग से ही चला आ रहा था। उपनिषद्-काल इसका मध्याह्न था। किन्तु सूत्रकाल में यह ज्ञान अपनी उन्नति की पराकाष्ठा को पहुँच गया। इस युग में दर्शन की छः शाखायें विकसित हुईं : (१) कपिल का सांख्य, (२) पातञ्जलि का योग, (३) गौतम का न्याय, (४) कणाद का वैशेषिक, (५) जैमिन का कर्म या पूर्वमीमांसा और (६) बादरायण का उत्तरमीमांसा या वेदान्त। अधिकारी विद्यार्थियों को ही दर्शन-शास्त्र के अध्ययन की आज्ञा थी अन्यथा सर्वसाधारण तो सांसारिक विद्याओं का ही अध्ययन करते थे।

इस प्रकार दर्शन-शास्त्र का अध्ययन अपने स्वयं के अन्दर पूर्ण था। इसने अनुशासन या विनय और उच्च ज्ञान की समस्या को सुलझा दिया। भारतीय दर्शन मानवता के लिये इस देश की एक अनुपम देन है। यह वह व्यावहारिक व बोधगम्य विचार-धारा थी जिसने भारत की संस्कृति को युग-युगों के भयंकर परिवर्त्तनों में भी जीवित रखा।

महाकाव्यों का युग :

रामायण और महाभारत प्राचीन भारत के प्रमुख महाकाव्य हैं। ये काव्य प्रधानतः उस युग के सैनिकवाद की झलक हैं, तथापि इनमें ऐसे साक्ष्य हैं जिनके द्वारा हमें उस युग की शिक्षा का हाल भी विदित होता है। उदाहरण के लिये वर्ण और आश्रमों के उल्लेख, आदर्श विद्यार्थियों तथा मठों की परिभाषा, तत्कालीन विद्याकेन्द्रों का वर्णन तथा राजकुमारों और क्षत्रिय बालकों की सैनिक शिक्षा का वर्णन हमें इन महाकाव्यों में मिलता है।

ब्राह्मणों की शिक्षा के लिये धर्मसूत्र के अनुसार कुछ नियम थे। उन्हें कुछ विशेष योग्यताओं को प्राप्त करना तथा कुछ शर्तों का पालन करना होता था। उदाहरणतः आत्मा की स्वच्छता, चरित्र की पवित्रता, वैदिक अध्ययन, इन्द्रिय-निग्रह और विनय ब्राह्मण के लक्षण समझे जाते थे। गुरु सेवा, ब्रह्मचर्य व भिक्षा इत्यादि ब्राह्मण विद्यार्थी के कर्त्तव्य थे। विद्यार्थी गुरु चरणों में बैठकर अध्ययन करता था।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

गुरु से पूर्व आहार, विहार और शयन करने का अधिकार शिष्य को नहीं था। इस प्रकार २५ वर्ष की अवस्था तक गुरु-सेवा करते हुए वेदों का अध्ययन समाप्त कर विद्यार्थी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। विद्यार्थी अपनी शक्ति के अनुसार गुरु को शुल्क भी अर्पण करता था। इतना अवश्य है कि इस युग में जातियों का विभाग अत्यन्त जटिल हो चुका था। शूद्रों के वेद अध्ययन अथवा उच्च सैनिक शिक्षा के अधिकार छिन चुके थे। एकलव्य, एक शूद्र बालक को द्रोणाचार्य ने राजकुमारों के साथ सैनिक शिक्षा देने से मना कर दिया था। द्विज कहलाने वाली तीन जातियों के विद्याध्ययन, यज्ञ तथा दान ये तीनों कर्म एक समान थे; इसके अतिरिक्त चारों वर्णों के कुछ विशेष कर्त्तव्य भी थे। जैसे विद्यादान, भिक्षा तथा दान लेना ब्राह्मण का कर्त्तव्य, देश-रक्षा तथा सुव्यवस्था क्षत्रिय का कर्म, व्यापार व कृषि वैश्य का विशेष कर्म एवं सेवा शूद्र का प्रमुख कर्म माना गया था। इन चारों वर्णों की शिक्षा का पाठ्यक्रम भी अपने-अपने उद्यमों के अनुसार था। क्षत्रियों के लिये धनुर्वेद का अध्ययन अनिवार्य था। 'धनुर्वेद' से अभिप्राय सम्पूर्ण सैनिक विज्ञान व कला से समझा जाता था। राम, परशुराम, भीष्म, द्रोण, अर्जुन तथा कर्ण महाकाव्य-युग के कुछ प्रसिद्ध धनुर्धारी थे। साथ ही प्रयाग, काशी, अयोध्या इत्यादि महान् विद्या-केन्द्र थे। प्रयाग में युग का सर्वविख्यात आश्रम ऋषि भारद्वाज का था जो कि उत्तरी भारत में शिक्षा का एक वृहत केन्द्र था।

स्त्री शिक्षा :

उत्तर वैदिक काल में स्त्री-शिक्षा की वही परम्परा थी जो वैदिक काल में थी। प्राचीन भारत के समाज की यह विशेषता रही है कि यहाँ की नारी समाज का एक सभ्य, शिक्षित और सम्मानित अंग रही है। ऋग्वेद-काल में स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। वे पुरुषों के साथ यज्ञ करती थीं, यहाँ तक कि वह यज्ञ पूर्ण नहीं माना जाता था जो कि विना स्त्री (अर्द्धाङ्गिनी) के सम्पादित किया जाता था। ऋग्वेद की बहुत सी ऋचाओं की रचियता स्त्री कवियत्री मानी जाती हैं। विश्वतारा, घोषा, रोमसा, लोपमुद्रा, उर्वसी और अपाला इत्यादि ऋग्वेदकालीन बहुत विदुषी स्त्रियाँ हैं। उपनिषद्-युग में भी स्त्रियों को शिक्षा की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ गार्गी और मैत्रेयी दोनों ही परम विदुषी स्त्रियाँ थीं। उपनिषदों में ऐसी स्त्रियों का भी वर्णन है जो 'शिक्षिका' का कार्य करती थीं। स्त्रियों को 'ब्रह्मवादिनी' कहा जाता था।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सूत्र-युग में भी हम पाते हैं कि स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का निषेध नहीं था। वे वैदिक साहित्य का अध्ययन करती थीं। स्त्री शिक्षिकायें 'उपाध्याया' और 'आचार्या' भी कहलाती थीं। पिता की यह अभिलाषा रहती थी कि उसकी पुत्री पण्डिता हो। स्त्रियों को सैनिक शिक्षा दिये जाने का भी उदाहरण मिलता है, जैसा कि 'शक्तिकी' शब्द से प्रतीत होता है जिसका उल्लेख पातञ्जलि ने किया है। इसका अभिप्राय भाला धारण किये हुए स्त्री से है। महाकाव्य युग में भी हमें अत्यन्त विदुषी और चरित्रवान् स्त्रियों के उदाहरण मिलते हैं। उस समय तक पति की प्रधानता हो गई थी और स्त्री उसे भगवान् की तरह पूजने लगी थी। रामायण में सीता का ऐसा ही उदाहरण है। ये स्त्रियाँ वैदिक ज्ञान में भी मंत्रविद् होती थीं। कुन्ती के विषय में कहा जाता है कि वह अथर्ववेद की प्रकाण्ड पण्डिता थी।

शिक्षा की प्रणाली स्त्रियों के लिये भी प्राय: वही थी जो पुरुषों के लिये थी। उपनयन-संस्कार के विना वेद मन्त्र का उच्चारण निषेध था। अत: स्त्रियों का भी उपनयन होता था। स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य से रह कर विद्याध्ययन करती थीं। मनुस्मृति में स्त्रियों के लिये उपनयन की व्यवस्था है। स्त्रियों के लिये शिक्षा का विषय वेदपाठ था, किन्तु इसके वही मंत्र थे जो कि यज्ञ तथा अन्य संस्कारों के लिये उपयोगी थे। वेद के अतिरिक्त स्त्रियाँ मीमांसा का अध्ययन करके इसमें विशेषता प्राप्त करती थीं। उपनिषद् युग में तो मैत्रेयी और गार्गी जैसी विदुषी दार्शनिक स्त्रियों का प्रादुर्भाव हुआ जो कि राजा जनक के दरबार में ऋषियों से शास्त्रार्थ करती थीं। उत्तर रामचरित्र में अत्रेयी की कथा है जो वाल्मीकि तथा अगस्त्य मुनि के आश्रम में लव और कुश के साथ वेदान्त का अध्ययन करती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर-वैदिक काल में स्त्रियों का समाज में पर्याप्त सम्मान था। उन्हें व्यक्तित्व के विकास के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता थी। बालिकाओं के लिये उपनयन उतना ही अनिवार्य था जितना बालकों के लिये, अर्थात् स्त्री शिक्षा अनिवार्य थी। प्रधानत: अच्छे व सम्पन्न परिवारों की बालिकायें अनिवार्यत: वैदिक व साहित्यिक शिक्षा प्राप्त करती थीं। कालान्तर में पुरुष की प्रधानता होने पर स्त्रियों के सामाजिक स्तर पर प्रभाव पड़ने लगा। यह विश्वास जड़ पकड़ता जा रहा था कि स्त्रियाँ वैदिक शिक्षा के उपयुक्त नहीं हैं। वैदिक युग में बाल-विवाह की प्रथा नहीं थी, और कोई-कोई स्त्री तो आजन्म ब्रह्मचारिणी रह कर विद्याध्ययन करती थी। किन्तु उत्तर वैदिक काल के अन्तिम चरण में बाल-विवाह की प्रथा का प्रचलन हो गया था। स्त्रियों में उपनयन के वन्धन भी शिथिल होते जा रहे थे, अत: स्त्री शिक्षा का अनुपात भी कम होता जा रहा था। अब इस बात पर अधिक ध्यान दिया जा रहा था

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कि स्त्री को गृहलक्ष्मी होना चाहिये। गृहस्थ-कला में पटुता प्राप्त करना और अपने पति को सम्पन्न तथा सुखी बनाने के लिए प्रयत्न करना ही स्त्री-जन्म का उद्देश्य समझा जाने लगा। इस विचारधारा का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों का प्रभाव घटने लगा। यह उचित समझा गया कि स्त्रियों के लिए वेद-अध्ययन और वेदपाठ निषिद्ध कर दिया जाय, क्योंकि वे वेद-मंत्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकतीं। अत: वेद-मंत्रों को अशुद्ध होने से बचाने के लिए यह अनिवार्य समझा गया कि स्त्रियाँ वेद न पढ़ें। साथ ही यह विश्वास भी लोगों के हृदयों में संस्कार जमाये हुए था कि यदि वेद-मंत्रों का किसी के द्वारा अशुद्ध उच्चारण किया जायगा तो वह परिवार या व्यक्ति नष्ट हो जायगा अथवा कोई अन्य दुर्भाग्य उस पर टूट पड़ेगा। अब तक तो संस्कृत ही साधारण बोलचाल की भाषा थी जिसका कि वेदों तथा धर्म-ग्रन्थों में प्रयोग हुआ था, किन्तु इससे आगे दोनों भाषाओं में विभिन्नता आ गई। साधारण जनता की भाषा अपभ्रंश या 'प्राकृत' होती जाती थी। ऐसी अवस्था में शुद्ध उच्चारण की कठिनाई अवश्य ही उपस्थित हुई होगी। यही कारण था कि स्त्रियों का वेदपाठ निषिद्ध कर दिया गया। किन्तु इसे समाज की उदासीनता ही कहा जा सकता है, क्योंकि यदि स्त्रियाँ उसी प्रकार से शिक्षा प्राप्त करती आतीं जैसा कि वैदिक अथवा उत्तर-वैदिक काल के प्रारम्भ में था तो अवश्य ही वे शुद्ध उच्चारण में समर्थ हो सकती थीं, क्योंकि पुरुष और स्त्री की मानसिक योग्यता में समान सुअवसर मिलने पर कोई अन्तर नहीं आता। स्त्रियाँ अपनी प्रखर और कुशाग्र बुद्धि के लिए प्रारम्भ से ही विख्यात थीं। किन्तु इस भावना के विकसित हो जाने से कि स्त्रियाँ मानसिक योग्यताओं में पुरुषों की अपेक्षा हेय होती हैं, स्त्रियों की शिक्षा को बहुत आघात लगा और वे आगे आने वाली शताब्दियों के लिए भी अपने व्यक्तित्व के विकास से वंचित कर दी गईं।

वर्णानुसार शिक्षा-व्यवस्था :

प्रारम्भ से ही आर्यों ने यह अनुभव कर लिया था कि बिना कार्य का विभाजन किये हुए समाज उन्नति नहीं कर सकता। अत: उन्होंने सम्पूर्ण जाति को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित कर दिया। प्रत्येक वर्ण का कार्य निश्चित हो गया। यद्यपि प्रारम्भ में एक वर्ण में कर्मानुसार परिवर्तन भी हो सकता था, किन्तु आगे चलकर इनके कार्य नियत हो गये और वर्ण-व्यवस्था केवल रूढ़िवाद बन गई।

(१) ब्राह्मण—जो वेद पढ़ते-पढ़ाते, यज्ञ करते तथा कराते एवं विद्या का दान करते थे ब्राह्मण कहलाये। यद्यपि प्रारम्भ में तो ज्ञान ही ब्राह्मण होने का प्रतीक था और जन्म से ब्राह्मण नहीं होते थे, किन्तु ज्ञानी पुरोहितों द्वारा अपने पुत्रों को वैदिक शिक्षा देने की परम्परा चल पड़ी। इस प्रकार पिता के उपरान्त पुत्र के पुरोहित बनने

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

से धीरे-धीरे पुरोहितवाद एक जाति के रूप में परिवर्तित हो गया। यद्यपि ऐसे ज्ञानी क्षत्रिय भी हुए जिन्होंने ऋषि या ब्राह्मणों की पदवी पाई। विदेह जनक, राजा अजातशत्रु इत्यादि ऐसे ही उदाहरण हैं। ब्राह्मणों के वैदिक ज्ञान प्राप्त करने की परम्परा ने क्षत्रिय और वैश्यों की शिक्षा का उत्तरदायित्व भी उन्हीं पर डाल दिया। इस उत्तरदायित्व के कारण समाज में उन्हें एक उच्च स्थान प्राप्त हो गया।

शिक्षा देने का कार्य तो ब्राह्मणों ने अपने लिए ही सुरक्षित कर लिया था और और क्षत्रिय इत्यादि अन्य वर्णों के लिए उसे निषिद्ध कर दिया था। इस प्रकार समाज में उन्हीं का बौद्धिक एकाधिकार था, यहाँ तक कि क्षत्रिय राजकुमार के सिंहासनारूढ़ होने के उपरान्त भी उसे ब्राह्मणों का दास रहना पड़ता था और समय-समय पर ब्राह्मण उसकी शार्सनिक, धार्मिक, सामाजिक, आन्तरिक व व्यक्तिगत बातों में हस्तक्षेप करते देखे जाते थे। किन्तु साथ ही ऐसा भी देखने को मिलता है कि वैदिक शिक्षा के प्रारम्भिक दिनों में, जब तक कि वर्ण-व्यवस्था जटिल नहीं हुई थी, अब्राह्मण भी वैदिक विषय का शिक्षण देते थे। इसी प्रकार कुछ ब्राह्मणों द्वारा अवैदिक विषयों के शिक्षक बनने की प्रथा भी प्रचलित थी। अवैदिक विषयों में अधिकांश सैनिक शिक्षा, औद्योगिक व व्यापारिक शिक्षा, चिकित्सा व सर्पदंश चिकित्सा विशेष उल्लेखनीय हैं।

(२) क्षत्रिय—क्षत्रियों का प्रमुख कर्म तो देश की सुरक्षा, आन्तरिक व्यवस्था और शासन कार्य था। इस कार्य के योग्यतापूर्वक सम्पादित करने के लिए मानसिक शिक्षा की आवश्यकता तो थी ही, किन्तु इससे भी अधिक आवश्यकता थी सैनिक शिक्षा की। यही कारण था कि वैदिक शिक्षा के साथ ही साथ क्षत्रिय बालकों को अस्त्र-शस्त्र एवं युद्ध-कला की शिक्षा दी जाती थी।

सूत्र-युग में क्षत्रियों के कर्त्तव्य और अधिकारों का अच्छा विकास हुआ। फलतः क्षत्रिय शिक्षा भी विकसित हुई। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' की रचना भी इसी काल में हुई जिसमें क्षत्रियों की शिक्षा के विषय में बहुत विशद वर्णन है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में राजकुमारों की शिक्षा के लिए चार विज्ञानों का उल्लेख है (१) आन्वीक्षिकी, अर्थात् सांख्य, योग तथा लोकायत का ज्ञान, (२) तीन वेद, (३) वार्ता और (४) दण्डनीति। वार्ता में कृषि, पशु-पालन तथा व्यापार का ज्ञान कराया जाता था। उसी प्रकार दण्डनीति में शासन, कानून तथा राजनीति का ज्ञान सम्मिलित था। विशेष विद्याओं की शिक्षा के लिए विशेष समय भी नियुक्त थे, जैसे दोपहर से पूर्व सैनिक शिक्षा, हाथी व घोड़े की सवारी, रथ चलाना तथा हथियार चलाना, और दोपहर के उपरान्त इतिहास व पुराणों का अध्ययन व श्रवण करना। इतिहास में पुराण, आख्यायिका, इतिवृत्त, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र सम्मिलित थे। कहानियों के रूप में राजनैतिक शिक्षा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भी दी जाती थी जैसे कि पंचतंत्र और हितोपदेश की आख्यायिकाओं से प्रकट होता है अथवा आगे चलकर जातक कहानियों से स्पष्ट है।

इस प्रकार क्षत्रिय राजकुमार को व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता था जिसका उसके भावी जीवन के प्रमुख उद्यम से सम्बन्ध था। एक क्षत्रिय राजा के लिए अन्य तीनों वर्णों के ज्ञान, उद्यम तथा शिक्षा-पद्धति से भी भिन्न होना अनिवार्य था। राजकुमारों के अतिरिक्त साधारण क्षत्रिय-जनता के लिए भी उपनयन आवश्यक था। वेद तथा उपनिषदों का अध्ययन उसके लिए इतना आवश्यक नहीं था जितना कि एक ब्राह्मण बालक के लिए था। सैनिक-शिक्षा अवश्य क्षत्रिय जनता के लिए अनिवार्य थी। अधिकतर क्षत्रियों का उद्यम सैनिक-उद्यम ही था। राज-दरबारों में तथा सेनाओं में प्रविष्ट होकर ये लोग सुरक्षा तथा शासन कार्य में क्षत्रिय राजाओं की सहायता करते थे।

(३) वैश्य—वैश्यों का प्रमुख उद्यम कृषि तथा व्यापार था। अतः उन्हें कृषि, पशु-पालन और व्यापार की शिक्षा दी जाती थी। वैश्यों की शिक्षा भी ब्राह्मणों के नियन्त्रण के अन्तर्गत थी। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की भाँति वैश्यों का भी उपनयन संस्कार होता था और इसके उपरान्त विद्यारम्भ होता था। उन्हें भी वेदों का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करना होता था; किन्तु वेद अध्ययन उनके लिए गौण था। उन्हें तो अपने व्यवसाय के अनुरूप ही शिक्षण मिलना चाहिए था। अतः उनके लिए उसी की व्यवस्था थी। उसे हीरा-जवाहिरात का मूल्य, उनकी परख, सूत का ज्ञान, मसालों तथा सुगन्धियों का ज्ञान, खेत बोना, अच्छे बुरे खेतों का ज्ञान, खाद का ज्ञान, नाप-तौल के बाँटों का ज्ञान तथा भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में वस्तुओं में लाभ व हानि का ज्ञान अनिवार्य था। इस सम्बन्ध में उसे आर्थिक भूगोल एवं व्यापारिक भूगोल का भी अध्ययन करना था, तथा भिन्न-भिन्न देशों से व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रखने के लिए वहाँ की माँग व उत्पादित वस्तुओं की पूर्ति से परिचित होना पड़ता था। भिन्न-भिन्न भाषाओं का ज्ञान, मजदूरी देने के नियम तथा क्रय-विक्रय के नियम का ज्ञान एक वैश्य के लिए आवश्यक माना गया था। इस सम्पूर्ण ज्ञान के लिए गणित, साधारण भूगोल, आर्थिक तथा व्यापारिक भूगोल, कृषि-विज्ञान तथा व्यापार-पद्धति का अध्ययन आवश्यक था। अधिकतर बालक यह ज्ञान व्यावहारिक रूप में अपने पिताओं से प्राप्त करते थे। वैदिक अध्ययन के लिए उन्हें पूर्वस्थित नियमित ब्राह्मण स्कूलों में ही अध्ययन करना पड़ता था। कृषि और व्यापार प्रायः अनुभव और अभ्यास से सीखे जाते थे।

(४) शूद्र—शूद्रों के लिए किसी उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। उनका तो प्रमुख उद्यम सेवा करना ही था। तथापि उनकी शिक्षा बहुत कुछ वैश्यों से मिलती जुलती थी। कृषि, गोपालन, पशु चराना, डेरी व्यवसाय तथा भिन्न-भिन्न कला-कौशल

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

व हस्तकलायें इत्यादि शूद्र लोग भी सीखते थे। इस प्रकार देश के आर्थिक विकास में शूद्रों का प्रमुख हाथ था। 'देवजन-विद्या', जिसमें कि आचार्य शङ्कर के अनुसार नृत्य, सङ्गीत, वाद्य, सुगन्धि तथा वस्त्रों का रंगना इत्यादि सम्मिलित था, शूद्रों को पढ़ाई जाती थी। इसके अतिरिक्त कताई, बुनाई, तथा वस्त्रों की छपाई का कार्य भी शूद्र ही करते थे। इन कार्यों के सीखने के लिए नियमित व्यावसायिक विद्यालय नहीं थे। ये तो घरेलू रूप से वंश परम्पराओं द्वारा ही सीखी जाने वाली विद्यायें थीं। अस्त्र-शस्त्र बनाना, रथ बनाना, शिल्पकला, वास्तुकला तथा चित्रकला का कार्य भी अधिकतर वही वर्ग करता था जो शूद्र कहलाता था। इसके सिखाने वाले शिक्षकों का भी उल्लेख मिलता है। नारद स्वयं एक ऐसे ही शिक्षक थे। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य ब्राह्मण भी लौकिक विषयों की शिक्षा देते हुए पाये जाते हैं। मछुए, सपेरे तथा चिड़ीमार भी शूद्र कहलाते थे और वंश परम्परागत पद्धति से अपनी कला को अपने पूर्वजों से प्राप्त करते थे।

इस प्रकार अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए सभी वर्ग राष्ट्र का निर्माण कर रहे थे। समाज के सर्वाङ्गीण विकास के लिए आर्यों ने इस व्यवस्था को सर्वश्रेष्ठ माना था।

आयुर्वेद अथवा चिकित्सा शास्त्र :

प्राचीन भारतीय विद्याओं में चिकित्सा शास्त्र प्रमुख विद्या है। ऋग्वेद काल से ही इसका क्रमिक विकास प्रारम्भ हो गया था और सिकन्दर के आक्रमण के समय तक यह विद्या अपने चरम विकास पर पहुँच चुकी थी। जातक कथाओं में भी हमें चिकित्सा विज्ञान का उल्लेख मिलता है। तक्षशिला विश्वविद्यालय में बड़े-बड़े गम्भीर चीड़-फाड़ सम्बन्धी कार्य तक किये जाते थे। यह शिक्षा प्रायः व्यक्तिगत शिक्षकों द्वारा दी जाती थी। संस्कृत का ज्ञान विद्यार्थी के लिए अनिवार्य था, क्योंकि आयुर्वेद के सभी ग्रन्थ इसी भाषा में थे। आधुनिक काल में भी एक पूर्व-परीक्षा (प्री मैडीकल एक्जामिनेशन) होती है जिसके अनुसार चिकित्सा-विज्ञान के विद्यार्थी के अन्दर इस व्यवसाय सम्बन्धी योग्यताओं के अस्तित्व की परीक्षा करने की चेष्टा की जाती है। किन्तु जब हम अपनी प्राचीन प्रणाली को देखते हैं तो हमें केवल आश्चर्य होता है कि किस प्रकार उन लोगों का ज्ञान पूर्णता को प्राप्त हो गया था। उन्होंने भली-भाँति जान लिया था कि एक चिकित्सक को पूर्ण स्वस्थ, सुन्दर तथा चरित्रवान् होना चाहिए। पीड़ित मानवता की सेवा के लिए उसके अन्दर सच्चाई, निर्लोभता, निष्काम सेवा तथा विनय होनी चाहिए। अपने विज्ञान में अनुसंधान करने की क्षमता के लिए उसके अन्दर बुद्धि, अदम्य उत्साह, कल्पना, धैर्य तथा अध्यवसाय होना चाहिए। यही कारण था

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कि प्राचीन आयुर्वेद का इतना विकास हुआ। आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र का विद्यार्थी केवल अपनी बुद्धि की परीक्षा देता है और अपने अन्य साथी की अपेक्षा कुछ अंक अधिक पाने पर ही एक चिकित्सक बनने के योग्य समझ लिया जाता है। भला इसका जीवन से क्या सम्बन्ध? इसमें तो आत्मा का पूर्ण अभाव है और केवल शास्त्र-ज्ञान ही को प्रधानता दी गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज हम बहुत से चिकित्सकों को पीड़ित-मानवता की सेवा करते हुए नहीं अपितु उनका शोषण करते हुए पाते हैं।

आयुर्वेद-उपनयन में चारों वर्णों के बालकों को दीक्षित किया जा सकता था। इस प्रकार दीक्षित विद्यार्थी को कुछ मर्यादाओं के लिए वचन-बद्ध होना पड़ता था। उपनयन के उपरान्त विद्यारम्भ होती थी। शिक्षक के द्वारा पदों और श्लोकों का धीरे-धीरे अध्ययन करके विद्यार्थी सम्पूर्ण आयुर्वेद ग्रन्थों को समाप्त कर डालते थे। इन ग्रन्थों को उन्हें न केवल कंठाग्र ही करना पड़ता था अपितु उनका अर्थ भी समझना पड़ता था। केवल रटने वाले विद्यार्थी की सराहना नहीं की जाती थी।

आयुर्वेद का अध्ययन चिकित्सा-विज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं जैसे रोग-निदान, औषधि, शल्य (सर्जरी), विष, सर्पदंश, रक्त-परीक्षा तथा अस्थि इत्यादि में होता था। एक विभाग के विद्यार्थी परामर्श तथा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए अन्य विभाग के आचार्यों के पास जाते थे। एक चिकित्सक के लिए 'बहुश्रुता' होना आवश्यक था; अर्थात् जब तक उसे अनेक विज्ञानों का बोध नहीं होता था तब तक उसे सफलता मिलना असम्भव था। सम्पूर्ण विज्ञान को प्रधानतः 'शास्त्र' और 'प्रयोग' अर्थात् थ्योरी और प्रैक्टिस में विभाजित कर दिया गया था। दोनों का ज्ञान अनिवार्य था। केवल एक का ज्ञान रखने वाला तथा उसके द्वारा जनता में अपने अधूरे ज्ञान के द्वारा प्रैक्टिस करने वाला व्यक्ति राज्य की ओर से दण्डित किया जाता था। वैसे तो इसका अध्ययन विद्यार्थी व्यक्तिगत शिक्षकों के साथ करते थे, किन्तु कुछ ऐसे शिक्षा-केन्द्रों के भी उदाहरण हैं जहाँ आयुर्वेद तथा चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा दी जाती थीं और जिनसे बड़े-बड़े चिकित्सालय सम्बन्धित थे। पाटलिपुत्र में एक ऐसा चिकित्सालय था जहाँ विद्यार्थी व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते थे। तक्षशिला का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है

आयुर्वेद का शिक्षा-काल प्रायः दीर्घ था। अधिकतर विद्यार्थी आयुर्वेद का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते थे किन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ कुछ विद्यार्थी विशेष रोगों में विशेष योग्यता प्राप्त करके प्रधानतः उन्हीं के चिकित्सक बनते थे। शिक्षा-काल के उपरान्त परीक्षा होती थी। अयोग्य चिकित्सकों को राज्य की ओर से चिकित्सा करने का निषेध था। इसके लिए जिसके पास सम्राट् की ओर से आज्ञा-पत्र होता था वही व्यक्ति इस उद्यम को कर सकता था।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इस प्रकार प्राचीन भारत में चिकित्सा-शास्त्र की पर्याप्त उन्नति हुई। चिकित्सकों का ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। विदेशों तक में उनकी कीर्ति थी। ८वीं शताब्दी में तो अरब के खलीफा ने भारतीय चिकित्सकों को अपने यहाँ निमंत्रित किया था और वहाँ के राज्य-चिकित्सालय में शिक्षण कार्य के लिए रक्खा था। चरक, सुश्रुना तथा धन्वन्तरि अन्य महान् आयुर्वेदाचार्य थे जिनके विषय में यह ख्याति थी कि ऐसा कोई रोग नहीं था जिसकी चिकित्सा यह न कर सकते थे। संक्षेप में प्राचीन भारतीय चिकित्सा-शास्त्र एक विकसित उपयोगी विज्ञान था जिसके लिए भारत अभिमान कर सकता है।

मनुष्य-चिकित्सा के अतिरिक्त भारत में पशु-चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा का भी विकास हुआ। सालिहोत्र को इसका जन्मदाता माना जाता है। अश्व-सम्बन्धी रोगों तथा चिकित्सा में पाण्डव बन्धु नकुल और सहदेव भी दक्ष माने जाते थे। भारत प्राचीन काल से ही एक कृषि प्रधान देश रहा है और कृषि भी यहाँ छोटे स्तर पर पशुओं के द्वारा होती रही है; अतः पशुओं के रोगों और उनके निवारण का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य था। इतना ही नहीं सम्राटों के यहाँ अश्व व गज सेनायें रहती थीं। इन पशुओं के रोगों की चिकित्सा करने के लिए कुछ पशु-चिकित्सकों को शिक्षण देना भी आवश्यक हो गया। अतः इस विज्ञान का विकास हुआ। किन्तु इनकी शिक्षा देने के नियमित विद्यालयों का उल्लेख नहीं मिलता। बहुत सम्भव है कि परम्परागत ज्ञान को व्यावहारिक-शिक्षा द्वारा निपुण व्यक्तियों की शिष्यता में रहकर ही विद्यार्थी इसे सीखते होंगे।

सैनिक शिक्षा :

सैनिक-विज्ञान 'धनुर्वेद' के नाम से पुकारा जाता था। वसिष्ठ रचित धनुर्वेद-संहिता के अनुसार एक सैनिक विद्यार्थी द्वारा उपनयन-संस्कार सम्पादित किया जाता था जिसे एक अस्त्र दिया जाता था; उसी समय एक वेदमंत्र का उच्चारण किया जाता था। विशेषतः क्षत्रिय लोग ही इस विद्या में निपुण किये जाते थे यद्यपि ब्राह्मण और शूद्रों के द्वारा भी इसे सीखे जाने के उदाहरण हैं। आचार्य का कार्य तो प्रायः ब्राह्मण ही करते थे। किन्तु अब्राह्मण भी सैनिक-शास्त्र के शिक्षक थे। प्रारम्भिक वैदिक काल में युद्ध विज्ञान व कला की अच्छी उन्नति हुई, क्योंकि आर्यों को द्रविड़ों से युद्ध करना पड़ा था। उस समय युद्ध में प्रयोग होने वाले अस्त्र-शस्त्र प्रायः धनुष-बाण, तलवार, गदा, ढाल तथा भाला इत्यादि थे। रथ-युद्ध का बहुत प्रचार था। महाभारत काल में तो युद्ध कला के विकास की पराकाष्ठा ही हो गई। महाभारत में ऐसे अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन मिलता है जो कि आधुनिक काल के विश्व-विनाशकारी अणुबम इत्यादि से मिलते-जुलते हैं। राम-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

रावण युद्ध में भी अनेक विचित्र अस्त्रों के उपयोग का उल्लेख है। उपनिषदों में युद्ध-पोत का भी वर्णन मिलता है।

प्राचीन काल में सैनिक शिक्षा न केवल राज्य के द्वारा ही दी जाती थी, अपितु व्यक्तिगत रूप से भी दी जाती थी। प्रत्येक गाँव में इसके शिक्षण-शिविर होते थे जहाँ ग्रामीणों को आत्मरक्षा के लिए शिक्षित किया जाता था। इसके अतिरिक्त कुछ नियमित केन्द्र भी थे जहाँ सैनिक शिक्षा दी जाती थी। भारत की सीमा पर स्थित तक्षशिला एक ऐसा नगर था जहाँ भिन्न-भिन्न भागों से एकत्रित होकर विद्यार्थी सैनिक शिक्षा प्राप्त करते थे। सिकन्दर के आक्रमण के उपरान्त देश में सैनिक शिक्षा का एक नया रूप प्रारम्भ हुआ। कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से सुसंगठित सैनिक-शिक्षालय चलाने लगे। वह राजाओं को आवश्यकतानुसार युद्ध में सैनिक देते थे और भेंट में भूमि, धन तथा अश्व प्राप्त करते थे। राजा लोग अपने राजकुमारों को सुदूर-केन्द्रों में शिक्षा के लिए भेजते थे। वहाँ योग्य शिक्षकों द्वारा, जो भिन्न-भिन्न भागों से निमंत्रित किये जाते थे, सैनिक-शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार प्राचीन काल में सैनिक शिक्षा का आदर्श बहुत ऊँचा था। एक सुसंगठित उद्यम तथा देशरक्षा के एक शक्तिवान् साधन के रूप में प्राचीन-कालीन सैनिक-शिक्षा देश के लिये अत्यन्त हितकारी थी।

ललित कलायें व हस्त-कलायें :

नृत्य, संगीत, चित्रकला, शिल्पकला, वास्तुकला, लकड़ी का काम तथा लोहारी इत्यादि कुछ ऐसी कलायें थीं जिनके द्वारा देश की जनसंख्या का बड़ा भाग जीविका उत्पन्न करता था। प्राचीन भारत की ये कलायें आज भी विश्वविख्यात हैं। प्रारम्भिक वैदिक युग में हस्तकलाओं और कृषि का बड़ा सम्मान होता था। आर्यों का प्रमुख उद्यम कृषि ही था। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में ऐसे मन्त्र हैं जिनके द्वारा कृषि के सम्पन्न होने, उचित जलवृष्टि तथा अनुकूल ऋतुएं होने की प्रार्थना की गई है। कालान्तर में जातिवाद के जटिल हो जाने से ये कलायें हेय समझी जाने लगीं और इनकी शिक्षा केवल शूद्रों को ही दी गई। वैश्य और शूद्र जो इन कलाओं को सीखते तथा इनके द्वारा जीविकोपार्जन करते थे, निम्न वर्ण के माने जाने लगे। उच्च वर्ग के लोग इनके कार्यों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे और हाथ से कार्य करना भी हेय समझा जाने लगा। यहाँ तक कि उचित संरक्षण के अभाव में भारतीय ललित-कला तथा जनोपयोगी हस्त-कार्यों का पतन होने लगा।

इन कलाओं की शिक्षा प्रायः सुसंगठित व नियमित विद्यालयों द्वारा नहीं दी जाती थी। विद्यार्थी किसी ऐसे व्यक्ति के पास, जो कि इस उद्यम को करता चला आ रहा है, कुछ दिनों तक शिष्यता स्वीकार करता था और इस प्रकार व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

करके कुशलता प्राप्त करता था। अधिकांश में ये कलायें जातिगत हो गईं और इनकी शिक्षा पिता के द्वारा पुत्र को दी जाने लगी। गाँव-गाँव में शिल्पकार, चर्मकार, बढ़ई, लोहार व स्वर्णकार रहते थे जो कि समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। आज भी भारतीय गाँवों में वह सामाजिक संगठन जीवित है क्योंकि वर्तमान काल में भी ग्राम प्रायः कृषि पर उतने ही अवलम्बित हैं जितने प्राचीन काल में थे। बढ़ई, चमार, लोहार, कुम्हार व धोबी इत्यादि के उद्यम तो कृषि-कार्य के सहायक-उद्यम थे, अतः ये परम्परागत शताब्दियों से जीवित हैं, यद्यपि अब इनके अन्दर कला व निपुणता की इतनी उत्तमता नहीं रही जितनी प्राचीन भारत में थी।

ऋग्वेद काल में उद्यम जाति या वर्ण के ऊपर निर्भर नहीं थे। ऋग्वेद युग राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों जैसे आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक उन्नति के लिए विख्यात है, तथा सभ्य जीवन की कला, कारीगरी, कृषि, व्यवसाय तथा व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। वास्तव में इन कलाओं और व्यवसायों के विकास के फलस्वरूप ही वर्ण-व्यवस्था का श्रम-विभाजन के रूप में जन्म हुआ। यहाँ तक कि उच्च अवस्था पर पहुँचे हुए ऋषि भी यह नहीं चाहते थे कि अपने सम्पूर्ण परिवार को धार्मिक वृत्ति अपनाने को वाध्य करें। ऐसा उदाहरण भी मिलता है जहाँ एक व्यक्ति स्वयं कवि है, उसकी माँ एक कुशल गृहणी (उपल प्रक्षिणी) जो कि आटा पीसती है, तथा उसका पिता (भिषक्) अर्थात् लोगों के शारीरिक रोगों की चिकित्सा करता हुआ भ्रमण करता है। केवल अधिकारी व्यक्ति ही धर्म-शास्त्रों का अध्ययन करके समाज का पथ-प्रदर्शन किया करते थे।

उत्तर वैदिक काल में कलाओं और हस्त-कलाओं को चुनने का कार्य स्वतन्त्र था, यदि बालक के अभिभावक अपनी अनुमति दे दें। भारतीय शिक्षा का आधार उसकी दार्शनिक उच्चता है और प्रधानतः आर्थिक या भौतिक उन्नति को कभी भी अंतिम उद्देश्य नहीं माना गया, अपितु उसे अन्तिम उद्देश्य अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने का एक साधन माना गया है। अतएव उत्तर वैदिक काल में भी लोगों की अन्तरप्रवृत्ति आध्यात्मिक बनी रही। इसका प्रभाव तत्कालीन शिल्पकला तथा मूर्तिकला पर भी पड़ा। धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर कलाकारों ने उच्चकोटि की कला का प्रदर्शन किया और कला की वह अमर सृष्टि की जिसके लिए भारत प्राचीन काल से सभ्य संसार की ईर्ष्या का कारण बना रहा है। कलाकारों ने कला को भी अराधना के रूप में माना था।

इन कलाओं की शिक्षा का कार्य, जैसे कि कहा जा चुका है, अधिकतर कारीगरों के कार्यालयों में उन्हीं के संरक्षण में होता था। इसके अतिरिक्त सामूहिक रूप से भी 'श्रेणी' नामक संस्थाओं द्वारा कलायें सिखाई जाती थीं। भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लिए भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ थीं। स्मृतियों में कृषक-श्रेणी, ग्वाल-श्रेणी, व्यापारी श्रेणी, महाजन श्रेणी, कारीगर-श्रेणी, जिसमें वृहस्पति ने कलाकार अथवा चित्रकार-श्रेणी को भी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सम्मिलित कर दिया है, तथा नृत्यकार-श्रेणी का उल्लेख है। यही सब मिलकर कला और कारीगरी के विद्यालय थे और कुटीर-उद्योगों के रूप में कार्य करते थे। इन्हीं श्रेणियों में कारीगरी के विद्यार्थियों को प्रारम्भिक ज्ञान प्रदान किया जाता था। इसके अतिरिक्त प्राचीन भारतीय साहित्य में ६४ कलाओं का भी उल्लेख है।

पाली साहित्य के अनुसार ८० कलायें (सिप्प) मानी गई हैं। मौर्यकालीन कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में भी तत्कालीन कलाओं का प्रामाणिक उल्लेख है। चाणक्य ने वतलाया है कि उस समय भिन्न-भिन्न व्यवसायों के विभागों के अध्यक्ष होते थे। सभी कलाओं और हस्तकलाओं के लिए केन्द्रीय-नियन्त्रण की व्यवस्था थी। एक कोषाध्यक्ष होता था जो कि 'रत्न-परीक्षा' नामक कला से सम्बन्धित था। यह मोती, मूंगा, सीप, शंख, हीरा तथा जवाहिरात का कार्य करता था। इसके अतिरिक्त चन्दन की लकड़ी का व्यापार, चमड़े का व्यापार, ऊन का व्यापार तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के सूती और रेशमी वस्त्रों जैसे "दुकुल, क्षौम (मोटा कपड़ा), कौसेय (रेशम) तथा चीन पट्ट" इत्यादि का व्यापार भी होता था। धातु-व्यवसाय का नियन्त्रण खानों के अध्यक्ष 'आकराध्यक्ष' द्वारा होता था। यह व्यक्ति धातु जैसे ताँबा, पारद इत्यादि सुलभ धातु-शास्त्र का विशेषज्ञ होता था। इस अध्यक्ष की सहायता के लिए उपकरण सम्पन्न निपुण सहायक होते थे। इस युग में धातु तथा खान व्यवसाय की बहुत उन्नति हुई। इसके अतिरिक्त 'लोहाध्यक्ष' होता था जो ताँबा, सीसा, लोहा, टीन, पारद, पीतल, जस्ता तथा काँसा इत्यादि धातुओं का निरीक्षण करता था। यह आकराध्यक्ष के नीचे कार्य करता था। समुद्री खानों से मोती, मूँगा तथा मूल्यवान पत्थर और नमक निकालने का कार्य भी इस युग में होता था। नमक के लिये एक अलग विभाग राज्य के अन्तर्गत था। स्वर्ण तथा चाँदी के व्यवसाय के लिए भी राज्य की ओर से निरीक्षक होता था। इसके अतिरिक्त कृषि संचालक या नौकाध्यक्ष जल-यातायात के मार्गों का नियन्त्रण करता था, तथा राज्य की ओर से कर इत्यादि वसूल करने, जलयानों को किराये पर उठाने, मछली पकड़ने इत्यादि की व्यवस्था करता था। जुआ भी एक कला समझा जाता था जो कि सीधा राज्य के नियन्त्रण में था, जिसका निरीक्षण 'द्यूताध्यक्ष' करता था।

इस प्रकार कला कौशल की शिक्षा प्राचीन भारत में एक लाभदायक और उपयोगी व्यावसायिक शिक्षा थी। पिता के द्वारा पुत्र को व्यावहारिक व प्रत्यक्ष शिक्षा दिये जाने में शुष्क कृत्रिमता और कक्षा का आडम्बर नहीं था। अपने सम्पूर्ण उत्साह और स्नेह के साथ पिता जो कुछ उसे आता था अपने पुत्र को बिना छिपाये वतलाता था। इसके अतिरिक्त जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति कला-कौशल में भी लोग धार्मिक व आध्यात्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर कार्य करते थे। उस कार्य के साथ न केवल उनके आर्थिक स्वार्थ ही रहते थे, अपितु हृदय की अनुभूति भी रहती थी।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

३

ब्राह्मणीय शिक्षा का सिंहावलोकन

शिक्षा-सिद्धान्त :

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्राचीन संस्कृति की द्योतक है। भारत के वनों और काननों में जिस संस्कृति का सृजन हुआ, आज भी उसका प्रतिबिम्ब विश्व के समक्ष आलोक स्तम्भ की भाँति दीप्त हो रहा है। शिक्षा का उद्देश्य यहाँ सदा से 'आलोक का साधन' रहा है, जो कि हमें जीवन के पथ पर आगे ले जाता है। आध्यात्मिक मुक्ति और सांसारिक सम्पन्नता दोनों के लिये ही ब्राह्मणीय शिक्षा का विकास हुआ।

प्राचीन शिक्षा के सिद्धान्तों को संक्षेप में हम इस प्रकार दे सकते हैं—

(१) प्रथमत: शिक्षा बालक को पूर्ण जीवन के लिए तैयार करती थी। शिक्षा-प्रणाली केवल पुस्तकीय नहीं थी, अपितु वह भावी-जीवन के संघर्ष के लिए व्यावहारिक और प्रयोगात्मक ज्ञान प्रदान करती थी।

(२) दूसरे जो व्यक्ति शिक्षा के अधिकारी होते थे वे अपनी रुचि और योग्यतानुसार शिक्षित किये जाते थे। उपनयन संस्कार स्त्री-पुरुष सभी के लिए अनिवार्य था। अत: शिक्षा का रूप व्यापक था। ऋषियों के ऋण से मुक्त होने का एक मात्र साधन विद्या प्राप्त करना था। अतएव विद्या प्राप्त करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य था।

(३) इसके अतिरिक्त वाह्याभ्यांतर विनय का सिद्धान्त शिक्षा की योग्यता के लिए एक ब्रह्मचारी के अन्दर होना आवश्यक था। विद्यार्थी-काल में बालक को कठिन ब्रह्मचर्य से रहना पड़ता था। विद्यार्थी जीवन वास्तव में एक कठिन तपस्या काल था जिसमें विद्यार्थी के लिए सुख का पूर्ण निषेध था। वह एक कठोर जीवन बिताने के लिये बाध्य था। आधुनिक काल के विद्यार्थियों की भाँति वह विलास में निमग्न नहीं था। इस इन्द्रिय निग्रह और कठोर नैतिक-संयम से उसके व्यक्तित्व का विकास और भी अधिक होता था।

(४) प्राचीन शिक्षा-शास्त्री इस वात से भली-भाँति परिचित थे कि विद्यारम्भ उचित समय पर करा देना चाहिये। अत: पाँचवीं और आठवीं वर्ष में ही उपनयन करा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दिया जाता था। विद्यार्थी-जीवन के उपरान्त भी अध्ययन समाप्त नहीं होता था। जो कुछ भी विद्यार्थी-काल में कंठस्थ किया जाता उसको भावी-जीवन में भूल जाना पाप समझा जाता था। पुराने अध्ययन को दुहराने के लिए वर्षा में नियमित अध्ययन करने का आदेश था।

(५) ब्राह्मणीय शिक्षा में मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार शिक्षा देने की प्रवृत्ति हम पाते हैं। विद्यार्थी को शारीरिक दण्ड देना अपराध समझा जाता था। आपस्तम्ब, मनु, गौतम व विष्णु सभी आचार्यों ने शारीरिक दण्ड का विरोध किया है। हाँ, याज्ञवल्क्य, मनु और गौतम ने कुछ साधारण दण्ड का आदेश भी दिया है, किन्तु उन्होंने इसे अन्तिम उपाय बतलाया।

(६) बालक गुरुकुल में गुरू के सीधे सम्पर्क में रहता था। अत: गुरू को बालक की शक्तियों और मस्तिष्क के अध्ययन का पर्याप्त अवसर मिलता था। वह बालक के अन्दर उचित व अच्छी आदतों का बीजारोपण करता था। आधुनिक शिक्षा-शास्त्री भी आदत के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। बाल्यावस्था में निर्मित हुई आदतें जीवन-पर्यन्त मनुष्य के साथ रहती हैं। अतएव उषा-जागरण, शीघ्र-शयन, सादा जीवन और उच्च विचार इत्यादि अनुशासन में रखने के लिए अनिवार्य थे। विद्यार्थियों की दिनचर्या नियमित थी और वह एक आदत में परिवर्तित हो जाती थी। इससे उनके व्यक्तित्व के विकास में पर्याप्त सहायता मिलती थी। स्नान, यज्ञ, पूजन, भिक्षा, गुरू-सेवा, वेद-पाठ इत्यादि कार्य नियमित दिनचर्या में सम्मिलित थे और ये स्वभावत: होते चलते थे।

(७) ब्राह्मणीय शिक्षा-शास्त्री विद्यार्थी के निर्माण में पालन-पोषण और परि-स्थिति पर अधिक जोर देते थे। अथर्ववेद में यह बात स्पष्ट बताई गई है कि उचित पालन-पोषण, शिक्षा तथा अनुकूल परिस्थितियों के उपलब्ध कर देने से बालक को प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु आगे चलकर 'कर्म-सिद्धान्त' एवं 'पुनर्जन्म-सिद्धान्त' का विकास होने पर आचार्यों का मत बदल गया। वे पुरातन संस्कार में विश्वास करने लगे। अत: उनकी दृष्टि में संस्कार व स्वभाव का महत्त्व बढ़ गया और वे समझने लगे कि परिस्थितयाँ बालक का निर्माण नहीं करतीं, क्योंकि 'मलयेपि स्थितो वेणुर्वेणुरेव न चंदन:'।

शिक्षा-प्रद्धति :

ऋग्वेद काल में लेखन-कला का विकास नहीं हुआ था, अत: सम्पूर्ण कार्य मौखिक ही कराया जाता था। विद्यार्थियों को वेदमंत्र रटाये जाते थे। लेखनकला के विकसित होने के उपरान्त भी यही धारणा बनी रही कि वैदिक साहित्य को लेखबद्ध करना पाप है। मुद्रण-यंत्र तथा कागज की अनुपस्थिति में पुस्तकें केवल ताल-पत्र या

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भोज-पत्र पर हाथ द्वारा लिखी जाती थीं, अतः वे जनसाधारण के लिए अलभ्य थीं। कालान्तर में ताम्र पत्र का भी उपयोग होने लगा। ऐसी अवस्था में यह सम्भव नहीं था कि प्रत्येक विद्यार्थी को पुस्तकों द्वारा शिक्षा दी जाय। यही कारण था कि प्राचीन गुरु लोग विद्यार्थियों को वेद-मंत्र इत्यादि मौखिक-प्रणाली द्वारा कंठस्थ कराते थे और इसी प्रकार ज्ञान का एक विशाल भण्डार पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होता चला जाता था। नियमित व सुसंगठित स्कूलों के अभाव में वैदिककाल में शिक्षा व्यक्तिगत रूप से दी जाती थी। गुरु के आसपास एक दो विद्यार्थी बैठ जाते थे और पाठ-प्रारम्भ से पूर्व गुरु के चरणों का स्पर्श करके कार्य आरम्भ करते थे। फिर गुरु किसी मंत्र का उच्चारण करते थे, विद्यार्थी उनका अनुकरण करते थे। इस प्रकार पूरा पद कंठस्थ किया जाता था। विद्यार्थी उच्च स्वर में पाठ करते थे और उनके उच्चारण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसी प्रकार क्रमशः पंक्ति, पद और अध्याय समाप्त किये जाते थे। वेद मंत्रों को कंठस्थ कराने के अतिरिक्त विद्यार्थियों के प्रार्थना करने पर गुरु उनकी व्याख्या भी करते थे। विद्यार्थी के द्वारा अर्थ का समझना आवश्यक था। वेदों के अतिरिक्त सूत्रों का भी अध्ययन किया जाता था, जिनके पढ़ाते समय शिक्षक को विशद व्याख्या की आवश्यकता होती थी, क्योंकि सूत्र का अर्थ गूढ़ होता था। इसी प्रकार पाणिनि के व्याकरण, मनु का न्यायशास्त्र और स्मृति एवं ज्योतिष इत्यादि विद्याओं के सूत्रों को भी विद्यार्थी कंठस्थ करते थे। विद्यार्थियों को घर पर कार्य करने को भी दिया जाता था, जो कि केवल गुरु द्वारा बतलाये हुए मंत्रों अथवा पदों की पुनरावृत्ति या दुहराना अथवा उन पर मनन करना था। प्राचीन शिक्षा-शास्त्रियों ने कंठस्थ करने के कार्य को सरल बनाने के भी उपाय किये। यही कारण था कि उन्होंने सभी विषयों को पद्य में रचा।

इसके अतिरिक्त शास्त्रार्थ अर्थात् वाद-विवाद के द्वारा भी शिक्षा दी जाती थी। सामूहिक परिषदों का आयोजन होता था, जहाँ विद्वान् शिक्षक दर्शन के गूढ़ रहस्यों पर भाषण करते थे। हितोपदेश और पञ्चतन्त्र में आगे चल कर एक नवीन शिक्षण-पद्धति का आविष्कार हुआ, जिसके अनुसार अन्योक्ति और लोकोक्तियों द्वारा गूढ़ व महान् नैतिक सत्यों को विद्यार्थियों के लिए सुलभ और बोधगम्य बना दिया जाता था। व्यक्तिगत सम्पर्क की पद्धति भी बहुत लाभदायक प्रमाणित हुई। गुरु से शिष्य का सीधा आध्यात्मिक सम्पर्क होता था। वह नित्य-प्रति गुरु-चरणों में बैठकर विद्यालाभ करता था। परीक्षा प्रायः प्रतिदिन होती थी। इससे विद्यार्थी सजग रहता था। कुशल विद्यार्थी अपनी कुशाग्रता तथा श्रम के कारण आगे बढ़ने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र थे। अतः उनके व्यक्तिगत विकास में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। अन्त में ऐसे उदाहरण भी मिलते

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हैं जहाँ पिता के अनुपस्थित होने पर उसका योग्य पुत्र शिक्षण-कार्य करता था और अपने पिता की पद्धति का, जिसके अनुसार वह स्वयं शिक्षित हुआ था, अनुकरण करता था।

शिष्य-गुरु सम्बन्ध :

ब्राह्मणीय शिक्षा की एक विशेषता, उसके अन्तर्गत गुरु-शिष्य सम्बन्ध की उत्तमता है। आधुनिक काल में विद्यार्थी प्रवेश के लिए प्रवेश-पत्र भर कर अपरिचित शिक्षक के समक्ष जा बैठता है और उसका सम्बन्ध अधिकांश में रुपये-पैसे के माध्यम से जुड़ता है, जिसमें आन्तरिक विनय, प्रेम व श्रद्धा का बहुत कुछ अभाव रहता है। किन्तु प्राचीन काल में शिष्य गुरु के समक्ष हाथ में समिधा लेकर उपस्थित होता था। इसका अभिप्राय था कि वह गुरु की सेवा करने के लिए उद्यत है और जिस प्रकार समिधा यज्ञ में जल कर प्रकाश में परिवर्तित हो जाती है, उसी प्रकार विद्यार्थी भी गुरु के समक्ष उसमें मिलकर प्रकाश में परिवर्तित होने को सन्नद्ध है। गुरु भी विद्यार्थी को अपना पुत्र समझ कर जो कुछ वह जानता था बिना भेद के बता देता था। कुछ पिता अपने पुत्रों को स्वयं ही शिक्षा देते थे। श्वेतकेतु को उसके पिता द्वारा 'महान् ज्ञान' देने की कथा विख्यात है। अधिकतर विद्यार्थी अपने आपको गुरु सेवा में अर्पण कर देते थे। ऐसे उदाहरण भी हैं कि जो विद्यार्थी गुरु को अन्य भेंट देने में असमर्थ थे वे रात-दिन उन्हीं की सेवा में लगे रहते थे और अवकाश मिलने पर रात को विद्याध्ययन करते थे। यहाँ तक कि सम्पन्न घरानों के विद्यार्थी भी गाय चराना, ईंधन लाना, अग्नि जलाना, भिक्षा माँगना तथा अन्य गृहस्थी के कार्य करके गुरु सेवा करते थे। गुरु सेवा आध्यात्मिक उन्नति का एक शक्तिशाली साधन मानी जाती थी।

गुरुकुल-प्रथा ब्राह्मणीय शिक्षा की एक अनूठी देन है। उपनयन संस्कार से लेकर 'समावर्तन' अर्थात् दीक्षान्त तक विद्यार्थी गुरु-गृह पर रह कर विद्याध्ययन करता था। शिक्षक को अपने शिष्य की मनोवैज्ञानिक अवस्था तथा अन्य योग्यताओं को समझने का पर्याप्त अवसर मिलता था और फिर उसी के अनुसार वह शिक्षण कार्य संचालित करता था। शिष्य उषाकाल में गुरु-जागरण से पूर्व उठता था और रात को गुरु-शयन के पश्चात् सोता था। इस प्रकार हर समय शिक्षक और शिष्य का सीधा व्यक्तिगत सम्पर्क रहता था, जिसमें पारस्परिक परिचय के लिये पर्याप्त सुअवसर उपलब्ध होते थे। प्राय: १२ वर्ष तक गुरुकुल में रह कर विद्या समाप्त होने पर शिष्य अपने घर के लिये विदा होता था। विदा होते समय भी गुरु अपना दीक्षान्त उपदेश उसे देता था, यथा 'सत्य बोलो, कर्त्तव्य का पालन करो, वेद अध्ययन में प्रमाद मत करो' इत्यादि। किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि विद्या-समाप्ति के उपरान्त भी गुरु-शिष्य के सम्बन्ध उसी प्रकार रहते थे।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पाठ्य-क्रम :

उस समय शिक्षा का आधार धार्मिक था। प्रारम्भ ही से बालक को वेद-मन्त्र, यज्ञविधि तथा अन्य धार्मिक मन्त्र मौखिक रटाये जाते थे। ह्रस्व और दीर्घपदों का भेद, सन्धि, स्वर व व्यंजन तथा शुद्ध उच्चारण का ज्ञान प्रारम्भिक अवस्था में ही करा दिया जाता था। यह ज्ञान बालक को वैदिक-साहित्य के अध्ययन में सहायक होता था। यद्यपि ईसा से १५०० वर्ष पूर्व तक वैदिक साहित्य की ही धूम रही तथापि इतिहास, पुराण तथा वीर-गाथाओं का भी अस्तित्व था। इनका उल्लेख हमें अथर्ववेद में मिलता है। विद्यार्थियों को पिंगल के नियम रटने के लिए उत्साहित किया जाता था। इससे वेद-मन्त्रों के कंठस्थ करने में सहायता मिलती थी। आगे चलकर ब्राह्मण-साहित्य का सृजन हुआ। वैदिक साहित्य को संकलित करके संहिताओं का स्वरूप दे दिया गया। पुरोहितवाद एक उद्यम के रूप में प्रकट हुआ। यज्ञ-सम्बन्धी साहित्य की रचना इस युग में अधिक हुई। साथ ही यज्ञवेदी के बनाने में रेखागणित का विकास हुआ। यज्ञ के लिए उचित व शुभ समय देखना आवश्यक था; अतः इसका विकास ज्योतिष या खगोल-विज्ञान के रूप में हुआ। पिंगल-शास्त्र दिन पर दिन उन्नति करता ही जाता था। व्याकरण और शब्द-विज्ञान का बीजारोपण भी इस युग में हो गया था।

उत्तर वैदिक काल में पाठ्य-विषयों का बहुत विस्तार हुआ। धार्मिक-साहित्य का तो अध्ययन आवश्यक ही था; इसके अतिरिक्त व्याकरण, गणित, रेखागणित, ज्योतिष, काव्य, इतिहास, आख्यायिका, दर्शन, अर्थ-शास्त्र, राजनीति, कृषि-विज्ञान, वास्तुकला, शिल्पकला, चित्रकला, सैनिक-विज्ञान, पशु-विज्ञान, आयुर्वेद तथा शल्य-विज्ञान, न्याय-शास्त्र तथा गृह-कला की भी इस युग में अत्यन्त उन्नति हुई। ब्राह्मण, अरण्यक् व उपनिषद् इत्यादि शास्त्र इसी काल की देन हैं, जो कि प्राचीन भारत के दार्शनिक ज्ञान के भण्डार हैं, जिनसे भारत युग युगों से दार्शनिक प्रेरणा लेता चला आ रहा है। इस युग में वर्ण-व्यवस्था जटिल हो चली थी, अतः प्रत्येक वर्ण के लिए पाठ्य-विषय भी वर्णानुसार थे। धार्मिक तथा वैदिक अध्ययन के साथ ही साथ सांसारिक उपयोगी विद्यायें व कलायें भी वर्णानुसार पाठ्य-वस्तु में सम्मिलित कर दी जाती थीं। इस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा एकाङ्गी नहीं थी, अपितु वह समाज का सर्वाङ्गीण विकास करने में सहायक होती थी।

गुण-दोष विवेचन :

तत्कालीन शिक्षा-पद्धति के परिणाम से भारतीय संस्कृति की आलोक-शिखा युग-युगों से प्रदीप्त है। अनेकों विप्लव हुए, परिवर्त्तन की आँधियाँ आईं और विशाल साम्राज्य विस्मृति के अन्धकार में विलीन हो गये, किन्तु वह आलोक-शिखा प्रज्ज्वलित ही रही

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

और आज भी, जब कि विश्व के ऊपर विनाश की भयंकर घटायें मँडरा रही हैं, भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति भयभीत मानवता को विश्व-शान्ति का संदेश दे रही है।

(क) सफलतायें : वैदिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य जीवन में बाह्याभ्यान्तर पवित्रता उत्पन्न करके जीवन को चरम विकास अर्थात् मोक्ष की ओर ले जाना था। अपने इस महान् उद्देश्य में इस शिक्षा-पद्धति को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। गुरु आश्रमों में रहने वाले बालक प्रकृति की गोद तथा गुरु-चरणों में बैठकर धर्म, दर्शन तथा जीवनोपयोगी विद्याओं का अध्ययन करते थे। आन्तरिक अनुशासन का विशेष महत्त्व था। अनुशासन का अभिप्राय केवल यन्त्रवत् व भावना शून्य नियमितता तथा आडम्बरपूर्ण भय नहीं था। इसका बालक की आत्मा से सम्बन्ध था। अनुशासन या विनय वह आन्तरिक प्रेरणा थी जोकि जीवन की सभी क्रियाओं में प्रतिबिम्बित होती थी। इसके अतिरिक्त नैतिक अनुशासन तथा चरित्र-विकास के लिए बाह्य साधन भी थे। आधुनिक युग की भाँति विद्यार्थियों को विलास में निमग्न रहने की आज्ञा नहीं थी। उनके जीवन व्यतीत करने के नियम कठिन थे। उनके लिए शीघ्र जागरण, स्नान, भूमि-शयन, नग्नपद तथा विशिष्ट व अल्प-वस्त्र और अल्पाहार की व्यवस्था थी। मद्य, माँस, सुगन्धि, पुष्प, पदत्राण, प्रेम, क्रोध, लालच, नृत्य तथा अन्य विलास के उपकरणों के प्रयोग करने का निषेध था। विद्यार्थी को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का आदेश था। इन्द्रिय-निग्रह तथा इच्छा-दमन तत्कालीन विद्यार्थियों की विशेषता थी। इन सभी व्यवस्थाओं का प्रत्यक्ष लाभ हुआ। चरित्र तथा व्यक्तित्व एवं शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के विकास में इस व्यवस्था से बहुत सहायता मिली। यहाँ तक कि इसी कठोर व सात्त्विक जीवन व नैतिक अनुशासन का परिणाम था कि तत्कालीन समाज एक महान् साहित्य का सृजन कर सका। जीवन दिव्यता, पवित्रता तथा महानता से ओतप्रोत हो गया। जीवन को महान् व जीवन की विभूतियों को हितकारी बनाने में ब्राह्मणीय शिक्षा पूर्ण रूप से सफल हुई।

इसके अतिरिक्त प्राचीन संस्कृति व साहित्य की सुरक्षा एवं उसका प्रजनन भी ब्राह्मणीय शिक्षा का उद्देश्य था। प्रारम्भिक वैदिक युग में अथवा उत्तर वैदिक काल में भी, जब कि लेखनकला का विकास नहीं हुआ था, मुद्रण-कला, कागज इत्यादि का अस्तित्व नहीं था तथा पुस्तकें अलभ्य थीं, उस अवस्था में भी प्राचीन संस्कृति और साहित्य निरन्तर रूप से जीवित रहे। प्राचीन ऋषियों ने इतने विशाल साहित्य को अपने मस्तिष्क में ही सुरक्षित रखकर भावी सन्तान को मौखिक रूप से ही हस्तांतरित किया। जिस प्रकार प्राचीन काल में उसी प्रकार बहुत सीमा तक आधुनिक युग में भी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सांस्कृतिक ऐक्य व समानता का प्रधान कारण भारत की प्राचीन विशिष्ट शिक्षा-प्रणाली है।

सामाजिक सम्पन्नता की दृष्टि से भी यह शिक्षा बहुत सफल हुई। इसका पाठ्य-विषय केवल धर्म-शास्त्र ही नहीं था। धार्मिक-साहित्य की प्रचुरता तथा प्रधानता होते हुए भी हमारे वैदिक कालीन पूर्वज सांसारिक उन्नति की ओर से उदासीन नहीं थे। सामाजिक-सम्पन्नता तथा सुख एवं नागरिक उत्तरदायित्व की ओर इस शिक्षा का विशेष रुख था और इस उद्देश्य में उसे पर्याप्त सफलता मिली।

(ख) असफलतायें: यूरोप के प्राचीन शिक्षा-शास्त्रियों की भाँति भारत में भी शिक्षा-शास्त्रियों ने धर्म पर अधिक जोर दिया। उनके प्रत्येक कार्य का आधार धार्मिक था, यहाँ तक कि साधारण सांसारिक कार्यों में धार्मिकता की झलक होती थी। इससे एक प्रकार का पांडिताऊ रंग प्रत्येक कार्य को मिल जाता था। अधिकतर शिक्षक ब्राह्मण पुरोहित थे। अतः शिक्षा में यज्ञ तथा अन्य धार्मिक कर्मकाण्ड की धूम रही। इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, गणित तथा भौतिक विज्ञान का विकास अवश्य हुआ, किन्तु इतना नहीं हुआ जितना कि धर्म, दर्शन तथा धार्मिक कर्मकाण्ड आदि का। यद्यपि इसकी प्रतिक्रिया उस समय नहीं हुई तथापि कालान्तर में धर्म का जीवन के ऊपर अधिक प्रभाव हो गया और लोग अपने दम्भ में सांसारिक उन्नति को भूलने लगे। पूर्ण ज्ञानियों के लिये तो 'धर्म' कर्म तथा संघर्ष, का प्रेरक था, किन्तु साधारण-जनता इतनी ऊँची नहीं उठ सकी। वह तो 'ब्रह्म' को सत्य और 'जगत' को मिथ्या मानने लगी। इससे सांसारिक उन्नति को बड़ा आघात लगा।

कुछ आलोचकों का कहना है कि ब्राह्मणीय शिक्षा मनुष्य को केवल परलोक दृष्टा अथवा असांसारिक बनाने में सहायक हुई, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं। वैदिक साहित्य में संघर्ष और कर्त्तव्य पालन को बहुत प्रधानता दी गई। साथ ही वह रचनात्मक तथा क्रियात्मक युग था। ऋषियों ने व्यावहारिक जीवन के ठोस नियम बनाये, जिन पर चलकर समाज समृद्धि प्राप्त कर सकता था। इतना अवश्य है कि यज्ञ इत्यादि कर्मकाण्ड की प्रचुरता से जीवन भर गया था और चारों ओर एक धार्मिक वातावरण ही दृष्टिगोचर होता था। सांसारिक उन्नति उद्देश्य न होकर केवल साधन थी। उद्देश्य तो 'मोक्ष' था यही विचार-धारा भारत की आत्मा में समा गई, जिसकी प्रतिच्छाया आधुनिक युग में भी देखने को मिलती है।

इसके अतिरिक्त ब्राह्मणीय शिक्षा में शास्त्र को बहुत महत्त्व दिया गया। स्मृतियाँ और पुराण एक प्रकार से उदाहरण के रूप में कहे जाने लगे। जनसाधारण की धारणा हो गई कि जो शास्त्र में लिखा है वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता, अथवा जिसे शास्त्र

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में मिथ्या कह दिया गया वह कभी सत्य नहीं हो सकता। इस प्रवृत्ति से जन-साधारण के तर्क व कल्पना-शक्ति दुर्बल हो गये। शास्त्र के प्रमाण ही पर्याप्त समझे गये और परिस्थिति से उत्पन्न उचित और अनुचित होने की कसौटी का पूर्ण अभाव रहा। किन्तु ऐसा हुआ केवल भविष्य में जाकर ही; अन्यथा वैदिक व उपनिषद् युग में तर्कवाद अपनी चरम उन्नति पर था। प्रधानतः उपनिषदों में मानसिक-उन्नति एवं बौद्धिक-चमत्कार और तर्क-वैचित्र्य ही देखने को मिलता है। सूत्र-साहित्य भी मानसिक शक्ति के विकास का प्रमाण है।

इसके अतिरिक्त कला व हस्तकार्य अर्थात् 'देवजन विद्या' ब्राह्मणों के प्रभुत्व और वर्ण-व्यवस्था के जटिल होने से हेय समझा जाता था। मानसिक कार्य करने वाले निम्न समझे जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उच्च वर्ण के लोगों ने कला को संरक्षण नहीं दिया। हस्तकला का कार्य प्रधानतः शूद्र तथा नर्तन, गायन व चित्रकला का कार्य शूद्र स्त्रियों का प्रमुख कर्म माना गया। ये जटिलतायें व रूढ़ियाँ आगे चलकर और भी अधिक बढ़ गईं।

ब्राह्मणीय शिक्षा पर एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि इसमें विभिन्न विषयों का पारस्परिक सामंजस्य अथवा समन्वय नहीं था। प्रत्येक विषय में प्रारम्भ से ही विशेषता प्राप्त करने की चेष्टा की गई थी। परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक विषय गहरा तो हो गया, किन्तु विशाल या व्यापक नहीं हो पाया।

इसके अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा की अवहेलना, जन-साधारण की शिक्षा का अभाव तथा सार्वजनिक भाषा की अवहेलना इत्यादि अभियोग ब्राह्मणीय शिक्षा पर और लगाये जाते हैं, किन्तु ये अभियोग पूर्णतः सत्य नहीं है। स्त्रियों का उचित सम्मान था और वे बड़ी विदुषी होती थीं। सार्वजनिक-भाषा संस्कृत थी और उसी में समस्त वैदिक, पौराणिक, उपनिषद व सूत्र साहित्य का सृजन हुआ। सार्वजनिक शिक्षा अनिवार्य थी जैसे कि उपनयन संस्कार का सब वर्णों के लिए अनिवार्य होने से प्रतीत होता है। हाँ, ऐसा अवश्य है कि जब जन-साधारण की भाषा संस्कृत से भिन्न होने लगी अथवा उपनयन की अनिवार्यता शिथिल होने लगी एवं स्त्रियों की विवाह-अवस्था घटा दी गई तो अवश्य ही उपरोक्त दोष आ गये। किन्तु ऐसा ब्राह्मणीय-शिक्षा के युग में नहीं हुआ। उस समय तो बौद्ध धर्म का जोर बढ़ता जा रहा था।

उपसंहार :

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मानव-जीवन के सभी अंगों का ब्राह्मणीय शिक्षा में विकास हुआ। शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवन के समविकास में वह शिक्षा अपना विशेष महत्त्व रखती थी। चरित्र तथा व्यक्तित्व के विकास में इससे बहुत

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सहायता मिली। साथ ही सांसारिक उन्नति में भी इस शिक्षा की देन अनुपम है। इसकी कुछ विशेषतायें जैसे गुरु-शिष्य सम्बन्ध, नैतिक अनुशासन, व्यक्तिगत ध्यान, मानसिक स्वतन्त्रता, व्यापक उपनयन-प्रथा, स्त्री शिक्षा एवं गुरुकुल प्रथा इत्यादि ऐसी बातें हैं जो कि शिक्षा-सिद्धान्तों के अनुकूल हैं और प्रायः लाभकारी प्रमाणित हुई हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

४

बौद्ध शिक्षा-प्रणाली

भूमिका :

हिन्दू धर्म के अन्दर कुछ दोष आ जाने से बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। महात्मा बुद्ध के प्रादुर्भाव से पूर्व ही हिन्दू धर्म में एक प्रकार का दम्भ प्रवेश कर चुका था। कर्म-काण्ड की धूम थी। इसमें वास्तविक धर्म के मूल सिद्धान्तों का लोप हो रहा था। यज्ञ के नाम पर पशु-बलि का बोल-बाला था। तपस्या के नाम पर अनेक पुरुष गृह-त्याग कर वनों में मारे-मारे फिरते थे, तथा तपस्या के साधनों के नाम पर भिन्न-भिन्न शारीरिक यातनाओं के आविष्कार हो चुके थे। बुद्ध ने यह सब व्यर्थ समझा। महात्मा बुद्ध ने बतलाया था कि यदि बलि और यज्ञ में जीव हिंसा है तथा व्यर्थ धन व्यय होता है तो इसे बन्द कर दो। दूसरे, यदि वेद अपौरुषेय नहीं, तो उन्हें भी अन्य पुस्तकों की भाँति समझा जाय। साथ ही बुद्ध ने बताया कि अपने सम्पूर्ण यौवन को वेदों के कंठाग्र करने में ही नष्ट कर देना मूर्खता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा कि यदि हिन्दू देवी-देवता केवल नाम या प्रतीक मात्र हैं, तो हमें किसी ऐसी वस्तु की खोज करनी चाहिए जो कल्पित न होकर वास्तविक हो। अन्त में तपस्या के द्वारा शरीर को सुखाना एवं सांसारिक भोग-विलासों और गृहस्थ जीवन का भी बुद्ध ने निषेध किया। बुद्ध ब्राह्मणों का आदर करते थे। अपने प्रारम्भिक जीवन में उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा ही शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी। केवल जन्मत: ब्राह्मण होने के बुद्ध प्रतिकूल थे, तथापि उन्होंने अपने आपको एक समाज-सुधारक के रूप में कभी भी प्रस्तुत नहीं किया। उन्होंने तो सादा और सात्विक जीवन व्यतीत करने वाले भिक्षुओं के समाज की रचना की, जो बाल्यावस्था में ही गृह-त्याग करके शिक्षा और संयम के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके 'निर्वाण' प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। यह भी वास्तव में ब्राह्मणीय पद्धति के ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम की भाँति था। केवल गृहस्थ-आश्रम का ही बहिष्कार बुद्ध ने किया। इन सब बातों से प्रमाणित होता है कि बौद्ध धर्म विशाल हिन्दू धर्म का ही एक परिवर्तित स्वरूप था। बौद्ध धर्म का प्रचार भारत में

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

६०० ई० पू० ही हो गया था। बौद्ध शिक्षा के विहार या मठ प्रमुख केन्द्र थे। वास्तव में बौद्ध-कालीन शिक्षा-प्रणाली का इतिहास ही बौद्ध-संघ का इतिहास है। शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था ही भिक्षुओं के हाथों में थी। इसमें धार्मिक व भौतिक दोनों प्रकार की शिक्षायें सम्मिलित थीं। ब्राह्मणीय शिक्षा की भाँति इसमें भी विद्यार्थी की प्रारम्भिक दीक्षा होती थी। इसी का वर्णन अब हम आगे करेंगे।

प्रव्रज्या :

विद्यारम्भ प्रव्रज्या या 'पव्वजा' बौद्ध शिक्षा-प्रणाली का प्रथम संस्कार था। छोटी अवस्था में ही बालक प्रव्रज्या के उपरान्त 'श्रमण' बनकर मठ में उपस्थित होता था। संघ में प्रवेश करने से पूर्व नवागन्तुक को 'शरणत्रयी' लेनी पड़ती थी, अर्थात् 'बुद्ध शरणम् गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि' का उच्चारण करना पड़ता था। प्रवेश के लिए जाति-भेद नहीं था। महात्मा बुद्ध का स्वयं ही कहना था कि जैसे नदियाँ समुद्र में विलीन होकर एक रस हो जाती हैं उसी प्रकार भिन्न-भिन्न जातियाँ संघ में मिलकर एक रूप हो जाती हैं। प्रव्रज्या ८ वर्ष के बालक को दी जाती थी। उसके पश्चात् ही मठ की अनुशासन-प्रणाली उसके ऊपर लागू हो जाती थी और उसे घर-बार छोड़ कर अपने उपाध्याय के अन्तर्गत रहना पड़ता था। हिंसा, असत्य, मादक-पदार्थ, मांस, नृत्य तथा संगीत इत्यादि का श्रमण के लिए निषेध था। यह स्मरणीय है कि बिना माँ-बाप की आज्ञा के बालक का संघ में प्रवेश नहीं कराया जाता था। छूत के रोगों, जैसे कोढ़, खुजली तथा क्षय इत्यादि से पीड़ित रोगियों को तथा अन्य शारीरिक दोष रखने वाले नवागन्तुक को प्रव्रज्या का निषेध था। इसके अतिरिक्त दास, अभियुक्त तथा राज-कर्मचारियों जैसे सैनिक इत्यादि के लिए भी प्रवेश निषिद्ध था।

उपसम्पदा :

यह बौद्ध-पद्धति का द्वितीय एवं अन्तिम संस्कार था। २० वर्ष की उम्र से पूर्व इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता था। इसके उपरान्त भिक्षु अपनी सदस्यता को प्राप्त किया हुआ समझा जाता था। जैसा कि ब्राह्मणीय शिक्षा में बतलाया गया था कि स्नातक होने के उपरान्त ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था, ठीक उसके प्रतिकूल बौद्ध धर्म के अनुसार उपसम्पदा संस्कार होने पर श्रमण पूर्ण भिक्षु बन जाता था और उसका गृहस्थी अथवा संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता था। यद्यपि ब्राह्मणीय शिक्षा के अनुसार भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी या आजन्म ब्रह्मचारी होते थे, किन्तु ऐसे व्यक्ति विरले ही थे। बौद्ध धर्म में तो नैष्ठिक ब्रह्मचर्य भिक्षु के लिए अनिवार्य था। कालान्तर में जब स्त्रियों का भी भिक्षुणी के रूप प्रवेश हो गया तो उनके लिए भी यह अनुशासन पूर्ण रूप में आवश्यक समझा गया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

'पब्बजा' संस्कार में तो बालक उपाध्याय के निकट जाकर हाथ जोड़ कर कहता था कि "आप मेरे उपाध्याय हैं"; और एक पक्षीय सम्बन्ध स्थापित हो जाता था। किन्तु 'उपसम्पदा' सम्पूर्ण भिक्षुओं के सम्मुख एक उत्सव के रूप में होता था। श्रमण भिक्षु का भेष धारण करके, हाथ में कमण्डल, एक कंधे पर चीवर लेकर अन्य भिक्षुओं को प्रणाम करके, हाथ जोड़कर बैठ जाता था। वहीं वह अपने उपाध्याय (उपाज्भाय) को चुनता और इस प्रकार उपसम्पदा संस्कार समाप्त हो जाता। इसके अतिरिक्त यदि कोई भिक्षु संघ से हटना चाहता, तो यह भी सरल कार्य था। प्रतिज्ञा भंग करने पर या सांसारिकता का आकर्षण बढ़ने पर कोई भी भिक्षु संघ से हटाया जा सकता था। ऐसे भिक्षु को अपनी असमर्थता की घोषणा करनी होती थी।

शिष्य-गुरु सम्बन्ध :

बौद्ध काल में भी गुरु-शिष्य के सम्बन्धों में वही पवित्रता रही जो कि वैदिक कालीन शिक्षा में थी। विद्यार्थी का दूसरा नाम 'सिद्धविहारक' भी था। सिद्धविहारक उपाध्याय की सेवा करते हुए विद्यालाभ करता था। वह उपाध्याय से पूर्व उठता और बाद में सोता था। उसे प्रातःकाल गुरु के लिए जल, मिट्टी तथा दातुन इत्यादि की व्यवस्था करके उनके बैठने की चौकी लगानी होती थी और खाने को खीर परसनी होती थी। इसके अतिरिक्त उपाध्याय से कुछ दूरी पर चलना, उनके लिए भिक्षा लाना, पैर धोना, वस्त्र प्रक्षालन करना तथा रोगी होने पर उनकी सुश्रूषा करना इत्यादि भी शिष्य के कर्त्तव्य थे।

इसके विपरीत शिष्य के प्रति उपाध्याय या आचार्य के कर्त्तव्यों का भी उल्लेख है। उपाध्याय को शिष्य को पुत्र की भाँति रखना होता था। वह शिष्य को अभाव होने पर पात्र तथा चीर देता था। रोगी होने पर उपाध्याय को वही सेवायें करनी होती थीं जोकि शिष्य उसकी करता था। इसके अतिरिक्त उपाध्याय का यह परम कर्त्तव्य माना जाता था कि वह शिष्य को उच्चकोटि की मानसिक तथा अध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करे। गुरु लोग बड़ी सादगी से जीवन व्यतीत करते और शिष्य के समक्ष अपना आदर्श उपस्थित करते थे; और उनकी आवश्यकतायें न्यूनतम होती थीं।

विद्यार्थियों का निवास :

ब्राह्मणीय शिक्षा की भाँति इस शिक्षा में गुरुकुल की व्यवस्था नहीं थी। विद्यार्थी श्रमण अथवा पूर्ण-भिक्षु के रूप में मठों या विहारों में रहते थे। इन विहारों और मठों के मिलने से ही संघ का निर्माण होता था; इन मठों में विद्यार्थी और उपाध्याय साथ-साथ रहते थे। बौद्ध धर्म के प्रचार के प्रारम्भ में भिक्षु लोग वनों में, गुफाओं में तथा पेड़ों के नीचे रहते थे; किन्तु महात्मा बुद्ध ने उन्हें मठों या विहारों में रहने की आज्ञा प्रदान कर दी थी। यह आज्ञा केवल उसी समय के लिये थी जब कि खुले हुए में

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

रहना सम्भव नहीं था। ये बौद्ध-कालीन विहार शिक्षा के केन्द्र थे। इनका उपयोग केवल धार्मिक कार्यों में ही न होकर लौकिक विद्याओं के रूप में भी होता था। इसके अतिरिक्त कुछ विद्यार्थी इन विहारों में गुरु के साथ न रहकर अपने स्वयं के घरों में भी रहते थे और विद्याध्ययन के लिये विहार में जाते थे।

पाठ्य-क्रम :

बौद्ध शिक्षा निवृत्ति-प्रधान थी। इसका प्रधान उद्देश्य जीवन में 'निर्वाण' प्राप्त करना था, अत: शिक्षा भी धर्म प्रधान थी। अधिकांश बौद्ध भिक्षु, धर्म-शास्त्रों का ही अवलोकन करते थे। उनका जीवन ही धर्ममय था। सुत्तन्त, विनय साहित्य तथा धर्म इत्यादि ही उनके शिक्षा विषय थे। इससे यह न समझना चाहिये कि सम्पूर्ण समाज ही धर्म का अध्ययन करता था और देश में जीवनोपयोगी शिक्षा का अभाव था। भारत में मौर्यकाल तथा गुप्तकाल स्वर्णयुग के नाम से पुकारे जाते हैं, जब कि प्राचीन भारत साहित्य, दर्शन, कला, व्यापार, कृषि तथा सैनिक उन्नति की दृष्टि से अपने वैभव की पराकाष्ठा पर था। आर्थिक दृष्टि-कोण से भी भारत धन-धान्य से परिपूर्ण था। ऐसी अवस्था में हम यह नहीं कह सकते कि यहाँ भौतिक विषयों की शिक्षा का अभाव था क्योंकि बिना इन विज्ञानों की उन्नति हुए देश का सर्वाङ्गीण विकास असम्भव था। बौद्ध-कालीन लौकिक शिक्षा के प्रमुख विषय, कलाकौशल—जैसे कातना, बुनना, छपाई, दर्जी का कार्य अर्थात् सिलाई, लेखन, गणना, चित्रकला, चिकित्सा व आयुर्वेद, शल्य अर्थात् सर्जरी तथा मुद्रा इत्यादि थे।

शिक्षा दो भागों में विभक्त थी—प्रारम्भिक और उच्च शिक्षा। प्रारम्भिक शिक्षा में लिखना, पढ़ना तथा साधारण गणित का अध्ययन कराया जाता था। उच्च शिक्षा में धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, सैनिक-शिक्षा आदि सभी सम्मिलित थे। अध्ययन विषय चुनने में जाति-पाँति का कोई भेद नहीं था। तुलनात्मक-ज्ञान के लिये वेदों का अध्ययन किया जाता था।

विज्ञान, ललित एवं शिल्प कलाओं के नामों का उल्लेख जातकों में तो नहीं मिलता, किन्तु मिलिन्दपान्ह में १८ सिप्पों का वर्णन है, जो पाठ्य-क्रम में सम्मिलित थे। इनमें से केवल एक-एक विषय में ही विद्यार्थी विशेष योग्यता प्राप्त कर सकते थे। इन सभी विद्याओं में सैद्धान्तिक व व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। आयुर्वेद तथा शल्य की व्यावहारिक शिक्षा का भी प्रबन्ध इन विद्यालयों में था। यात्रा व देशाटन भी व्यावहारिक शिक्षा के अंग समझे जाते थे। इनके अतिरिक्त प्रकृति-निरीक्षण, कानून और सैनिक प्रशिक्षण भी पाठ्य-वस्तु में सम्मिलित थे। तक्षशिला इन विद्याओं का प्रधान केन्द्र था।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मिलिन्दपान्ह से प्रतीत होता है कि बौद्ध युग में ब्राह्मणीय शिक्षा का भी प्रचार था। वास्तव में दोनों प्रकार की शिक्षायें एक दूसरे की पूरक थीं। ब्राह्मणीय शिक्षा के चार वेद, इतिहास, पुराण, काव्य, शब्द-विद्या व्याकरण, ज्योतिष, वेदाङ्ग, सामुद्रिक-विद्या, शकुन-विद्या, सांख्य-योग, न्याय, वैशेषिक, संगीत, चिकित्सा-शास्त्र तथा तंत्र-विद्या इत्यादि सभी विषय भिन्न-भिन्न बौद्ध कालीन विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाते थे। विनय ग्रन्थ बौद्ध भिक्षुओं के प्रधान अध्ययन-ग्रन्थ थे। उच्च शिक्षा के लिए संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य था। इसके अतिरिक्त स्थानीय भाषाओं और पाली का भी प्रचार हो चुका था। यहाँ तक कि अधिकांश बौद्ध ग्रन्थ पाली में थे।

शिक्षा-पद्धति :

बौद्ध-काल तक लेखन-कला का पर्याप्त प्रचार हो चुका था, किन्तु जन-साधारण में इसका व्यवहार अधिक नहीं होता था। अतः वैदिक शिक्षा की भाँति बौद्ध-शिक्षा भी मौखिक दी जाती थी। जो व्यक्ति बौद्ध-धर्म में साधारणतः श्रद्धा रखते थे उन्हें 'उपासक' कहते थे। ये 'उपासक' भिक्षुओं को अपने घरों पर निमंत्रित करके उनके द्वारा उपदेश सुनते थे। विहारों तथा मठों में तर्क-पद्धति को अपनाया जाता था और उसके द्वारा विद्यार्थी का मानसिक विकास किया जाता था। हिन्दू या वैदिक-धर्म और जैन-धर्म का खण्डन करने के लिए बौद्ध-भिक्षु बाल की खाल निकाला करते थे। भिन्न-भिन्न धर्मावलम्वी समय-समय पर शास्त्रार्थ किया करते थे, अतः विद्यार्थियों को अपने प्रारम्भिक विद्या-काल से ही वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में प्रशिक्षण मिल जाता था। कभी-कभी मठों में विशेषज्ञों को आमन्त्रित किया जाता और भिन्न-भिन्न विषयों पर विद्यार्थियों के लिए उनके भाषण होते थे। इस प्रकार भाषण और वाद-विवाद ने शिक्षा-पद्धति में एक प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया था। इससे विद्यार्थी की मानसिक-शक्तियों और उसकी ज्ञान परिधि का विस्तार होता तथा जीवन से उसे एक क्रियात्मक रुचि हो जाती थी। कालान्तर में तो यह प्रणाली यहाँ तक बढ़ी कि विद्वान् लोन केवल 'तर्क, तर्क के लिये' करने लगे। वास्तविक ज्ञान और गम्भीर अध्ययन को इससे बड़ा धक्का लगा। ऐसे तर्क-शास्त्रियों में वाचालता अधिक आगई।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे विशेष आचार्य भी थे जो देशाटन करके विद्या-प्रचार करते थे। विद्यार्थियों के लिये उच्च शिक्षा की समाप्ति पर देशाटन के द्वारा ज्ञान को वास्तविक व व्यावहारिक रूप देने की पद्धति का प्रचलन था। इससे उनका ज्ञान अधिक पूर्ण, ठोस व प्रत्यक्ष हो जाता था। भिन्न-भिन्न स्थानों से आने वाले भिक्षुओं के सम्मेलन भी होते थे जहाँ शास्त्रार्थ और भाषण होते थे। विद्यार्थियों को इन सम्मेलनों में आने का पूर्ण अवसर दिया जाता था। इसके द्वारा विद्यार्थियों का ज्ञान बढ़ता था। कुछ बौद्ध

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भिक्षु निर्जन वनों में भी समाधिस्थ होकर चिन्तन व मनन करके अन्तर्ज्ञान प्राप्त करते थे, किन्तु सर्व-साधारण विद्यार्थियों के लिए ऐसी कोई पद्धति प्रचलित नहीं थी।

जीवनोपयोगी विज्ञानों और कला-कौशलों की शिक्षण-पद्धति वही थी जो ब्राह्मणीय शिक्षा में थी, अर्थात् विद्यार्थियों को शास्त्रीय और व्यावहारिक दोनों प्रकार की पद्धतियों के द्वारा शिक्षा दी जाती थी। कला-कौशल की शिक्षा के लिये विद्यार्थी कुछ समय तक कुशल कारीगरों के साथ रहते और धीरे-धीरे उनकी शिष्यता में कार्य सीखते थे।

स्त्री-शिक्षा :

बौद्ध-धर्म-सिद्धान्तों के अनुसार स्त्री को त्याज्य व हेय समझा जाता था। किन्तु दिन-प्रति-दिन के जीवन में यह असंभव था, विशेषत: उस अवस्था में जब उन्हें अपने शिष्यों के साथ गृहस्थों के यहाँ भिक्षान्न के लिये जाना होता था। अत: महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को सम्मिलित होने की आज्ञा प्रदान करदी थी। बौद्ध शिक्षा के प्रारम्भिक दिनों में तो स्त्री-शिक्षा को बहुत प्रोत्साहन मिला और स्त्रियों के लिये अलग मठों का भी निर्माण हो गया; किन्तु चौथी शताब्दि में भिक्षुणियों के विहारों का ह्रास होने लगा; क्योंकि बौद्ध-विहारों का शिक्षा के दृष्टिकोण से इतना महत्त्व बढ़ गया था कि वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा प्रदान की जाने लगी थी। अत: स्त्रियाँ उन विद्यालयों से कोई लाभ नहीं उठा सकीं। तथापि जो कुछ भी शिक्षा स्त्रियों को मिली उसने न केवल जन-साधारण की स्त्रियों का ही चरित्र-निर्माण व मानसिक विकास किया, अपितु कुछ ऐसी उच्चकोटि की विदुषी महिलाओं को भी उत्पन्न किया जिन्होंने धार्मिक व दार्शनिक क्षेत्र में समाज का नेतृत्व किया। बहुत सी स्त्रियाँ दर्शन-शास्त्र का गहन अध्ययन करती थीं और कुछ उच्चकोटि की कवियत्री भी थीं। कुछ समाज-सेवा का भार भी लेती थीं और उसी में शिक्षा भी प्राप्त करती थीं। बौद्ध-काल में कुछ स्त्रियों के धर्म-प्रचार के लिये विदेश जाने का भी उल्लेख मिलता है। उच्च-शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ शिक्षा का कार्य भी करती थीं और 'उपाध्याया' कहलाती थीं। स्त्रियाँ राजनीति का अध्ययन भी करती थीं। पति की मृत्यु के उपरान्त रानियाँ राज्यभार ग्रहण करतीं और प्रबन्ध को सुचारु रूप से चलाती थीं। उस समय कई ऐसे राज्य वर्तमान थे जहाँ का शासन-कार्य स्त्रियों के हाथ में रहा। इसके अतिरिक्त स्त्रियाँ आलोचना, मीमांसा, वेदान्त, आयुर्वेद तथा उच्च साहित्य का अध्ययन भी करती थीं। शंकराचार्य और मण्डन मिश्र के बीच में हुए शास्त्रार्थ में निर्णायिका का कार्य मण्डन मिश्र की पत्नी ने किया था। इससे सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि स्त्रियों की प्रतिभा किस कोटि को पहुँच गई थी।

इस प्रकार स्त्रियों को अपने आत्म-विकास का अवसर प्राप्त होता था, किन्तु

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि यह स्त्री-शिक्षा केवल उच्चवर्ग की महिलाओं को ही उपलब्ध हो सकी। साधारण जनता में कृषक, मजदूर, कारीगर तथा साधारण व्यापारियों और शिल्पियों के घरों में स्त्री-शिक्षा का प्रचार अधिक नहीं था। वैदिक काल में स्त्रियों का जो अनिवार्य उपनयन-संस्कार होता था, अब बहुत कम हो गया था अथवा पूर्णत: विलीन हो गया था। परिणाम यह हुआ कि स्त्री-शिक्षा को इससे बहुत आघात पहुँचा। नवीं और दशवीं शताब्दि में तो अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई। बालिकाओं का विवाह १० या ११ वर्ष की अवस्था में होने लगा। इस काल में स्त्रियों के धार्मिक व सामाजिक सम्मान का स्तर भी गिर गया। इससे स्त्री-शिक्षा को बड़ी क्षति पहुँची।

बौद्ध-शिक्षा और ब्राह्मणीय शिक्षा में विभिन्नता :

विद्यार्थियों की दिनचर्या प्राय: वही थी जैसी कि वैदिक काल में थी। वास्तव में सम्पूर्ण शिक्षण-पद्धति ही दोनों युगों में प्रधानत: एकसी थी। भेद केवल यही था कि ब्राह्मणीय शिक्षा गुरु-गृह पर पारिवारिक रूप में दी जाती थी, जबकि बौद्ध-शिक्षा मठों या सुसंगठित शिक्षा संस्थाओं में दी जाती थी। प्रथम में व्यक्ति पर अधिक जोर दिया जाता था, द्वितीय में व्यक्ति समूह की एक इकाई था अतएव शिक्षा सामूहिक रूप से दी जाती थी। ब्राह्मणीय शिक्षा में पारिवारिक जीवन एक महत्त्वपूर्ण अंग था। जबकि बौद्ध धर्म का आधार ही गृह-त्याग था। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा प्रणाली में परिवार के कोमल व प्राकृतिक सम्बन्धों को विच्छेद करके धार्मिक आधार पर 'बन्धु समाज' स्थापित किया जाता था। एक बौद्ध-बन्धु अपने सम्पूर्ण बन्धु-समाज पर निर्भर रहता था और 'बन्धु समाज' स्वयं साधारण उपासक या जनता पर निर्भर रहता था। इसमें व्यक्तिगत उत्साह, योग्यता, क्षमता और क्रिया का लोप हो जाता था।

दूसरा अन्तर यह था कि ब्राह्मणीय शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी कठोर शारीरिक व मानसिक अनुशासन में रहता था। उसके लिये सुख तथा सुख-सामग्रियों का निषेध था। किन्तु बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अनुसार "शरीर को सुन्दरता से सजाया, स्वच्छ किया और मला जाता था, नियम से भोजन दिया जाता, वर्षा काल में सुरक्षित स्थान पर रक्खा जाता था, मध्याह्न की गर्मी में विश्राम किया जाता, और अस्वस्थ होने पर सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक द्वारा चिकित्सा कराई जाती थी'।

तीसरा अन्तर यह था कि ब्राह्मणीय शिक्षा एक प्रकार से एकतंत्रवाद के सिद्धान्तों पर अवलम्बित थी, जबकि बौद्ध शिक्षा जनतंत्रवाद के सिद्धान्तों से मेल खाती थी। अर्थात् प्रथम में गुरु का 'प्राधान्य' और 'उच्चता' जीवन पर्यन्त स्थिर रहती थी, किन्तु दूसरी पद्धति के अनुसार शिष्य कुछ समय के उपरान्त संघ में सम्मिलित होने पर समान मत

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

देने का अधिकारी हो जाता था। गुरु और शिष्य में भेद केवल आध्यात्मिक ज्ञान के स्तर का रहता था।

अन्त में ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली के अनुसार केवल वही व्यक्ति तपस्या या वैराग्य का जीवन ग्रहण करते थे जो उसके लिये समर्थ होते थे; किन्तु बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अनुसार भगवान् बुद्ध के जीवन काल तक तो केवल निखरे हुए मनस्वी ही संघ के सदस्य थे, परन्तु कालान्तर में उसमें कुछ अवांछनीय बातें आ गईं।

बौद्ध शिक्षा-प्रणाली की आलोचना :

(क) दोष : बौद्ध शिक्षा दोषों से सर्वथा मुक्त न थी। वैदिक शिक्षा की भाँति इसमें भी धार्मिक शिक्षा का प्राधान्य था। अन्त में जाकर तो कला-कौशल को हेय समझा जाने लगा और उच्चवर्ग के लोगों ने तो इसे पूर्णतः छोड़ ही दिया। इसके अतिरिक्त सर्वसाधारण की शिक्षा का भी अनुपात उतना नहीं रहा जितना कि ब्राह्मणीय शिक्षा के अंतर्गत था। एक भयंकर दोष इस पद्धति का यह रहा कि इसमें जनतन्त्र के नाम पर स्वेच्छाचार का प्रवेश हो गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि संघीय नियन्त्रण शिथिल होने पर मठ भिक्षु-भिक्षुणियों के क्रीड़ास्थलों में परिवर्तित होने लगे। जिस 'संघ' की स्थापना में ही बौद्ध धर्म की सफलता का रहस्य था, वही इसके पतन का कारण भी बना। इसके अतिरिक्त बौद्ध-शिक्षा-प्रणाली में सैनिक-विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र निर्माण कला एवं युद्ध-कला का अधिक विकास न हो सका। कारण यह था कि बौद्ध-शिक्षा अहिंसा-प्रधान और निवृत्ति-मूलक थी। बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार संसार दुखमय था। अतः इसे छोड़कर तथा इच्छाओं का दमन कर निर्वाण प्राप्त करना ही जीवन का उद्देश्य समझा जाता था। फलतः जीवन में आडम्बर आ गया, भिक्षुओं का वाह्य जीवन निरा वनावटी प्रतीत होने लगा। जीवन-संघर्ष का अभिप्राय केवल आध्यात्मिक चिन्तन ही समझा गया। इससे उसकी सर्वतोमुखी प्रगति अवरुद्ध हो गई; और जब विदेशियों ने देश पर आक्रमण किया तो भारत सैनिक शक्ति से उनका सामना न कर सका।

(ख) गुण : यद्यपि भारतीय दृष्टिकोण सदा से ही पवित्र व सात्विक जीवन के पक्ष में रहा था, तथापि बौद्ध धर्म की शिक्षा ने इसे और भी अधिक पवित्र और महान् बना दिया। मठों और महाविहारों में श्रमण और भिक्षुओं का उच्च जीवन व्यतीत करना भारतीय जनता के लिए अनुकरणीय रहा; यहाँ तक कि बौद्ध कालीन विद्यालयों ने चीन, जापान, कोरिया, जावा, ब्रह्मा, लंका और तिब्बत आदि देशों से विद्यार्थियों और जिज्ञासुओं को आकर्षित किया। इन विदेशी विद्यार्थियों ने आकर भारत के धर्म, साहित्य और शिक्षा प्रणाली का गहन अध्ययन किया और यहाँ की संस्कृति को अपने देशों में विकीर्ण किया। बौद्ध विहारों में जाति-पाँति और धनी-निर्धन का भेद मिट

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

गया जो ब्राह्मणीय शिक्षा में जड़ पकड़ गया था। बौद्ध विद्यालय सभी के लिए खुले थे। यहाँ सभी वर्ग के विद्यार्थियों को अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार चरित्र-विकास का समान सुअवसर प्रदान किया जाता था। धार्मिक और दार्शनिक शिक्षा के अतिरिक्त बौद्ध कालीन शिक्षा सांसारिक भी थी। तत्कालीन शिक्षा-पद्धति ने नालन्दा, तक्षशिला तथा विक्रमशिला इत्यादि महान् अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं को जन्म दिया, जहाँ धार्मिक व लौकिक सभी प्रकार की उच्च शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा जीवन की वास्तविक समस्याओं के साथ मेल रखती थी और उन्हें हल करने का प्रयास करती थी। जिस प्रकार भारत की आधुनिक शिक्षा अधिकांश में पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली का अनुकरण मात्र है, उस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा नहीं थी। उसका विकास तो भारत-भूमि में, शुद्ध भारतीय परिस्थितियों में तथा भारतवासियों द्वारा ही हुआ था। यही कारण था कि वह शिक्षा-प्रणाली देश और काल के अधिक अनुकूल थी। उस समय शिक्षा का सार्वजनिक प्रचार था। बौद्ध धर्म की प्रारम्भिक शताब्दियों में स्त्री-शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म से सहानुभूति रखने वाले जन-साधारण की शिक्षा की भी व्यवस्था थी, क्योंकि वे संघ की भावी-निधि समझे जाते थे तथा इन्हीं उपासकों में से बौद्ध भिक्षुओं और आचार्यों का चुनाव होता था। जीवन में संयम व अनुशासन का संचार करने में भी बौद्ध शिक्षा को पर्याप्त सफलता मिली। आचार्य तथा शिष्य सभी संयम का जीवन व्यतीत करते थे। स्त्रियों का सम्पर्क निषिद्ध था। किन्तु एक बात उल्लेखनीय है कि शरीर को कृश करने अथवा यातना देने में बौद्ध विश्वास नहीं रखते थे। बौद्ध-शिक्षा की हमारी पृष्ठ-भूमि आज भी चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत, श्याम, कम्बोडिया तथा अन्य सुदूर पूर्व देशों में अपने सांस्कृतिक, राज-नैतिक तथा आर्थिक सम्बन्ध बनाये रखने में सहायक है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

५

प्राचीन कालीन प्रमुख शिक्षा-केन्द्र

प्राचीन काल में शिक्षा केन्द्रों की व्यवस्था :

प्राचीन काल में गुरु एवं शिष्य दोनों ही एक ही स्थान पर मिल कर रहते थे। वास्तव में आध्यात्मिक या दार्शनिक विकास के लिए, जैसा कि प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य था, वह आवश्यक भी था कि शिक्षा के वाह्य उपकरणों पर अधिक ध्यान न देकर विद्यार्थी की आर्थिक उन्नति की जाय। शिक्षा की इस व्यवस्था के कारण प्राचीन काल में सुसङ्गठित शिक्षा-केन्द्र, जैसे कि बौद्ध काल अथवा वर्तमान काल में मिलते हैं, स्थापित न हो सके; यद्यपि उस युग में भी कुछ मठ अथवा विशाल तीर्थ क्षेत्रों का निर्माण हो गया था। किन्तु उन क्षेत्रों में सामूहिक रूप से आराधना इत्यादि नहीं की जाती थी। अत: यह तीर्थ शिक्षा-केन्द्र अथवा शिक्षा-संस्थायें नहीं कहला सकते थे। तथापि वैदिक काल में संघ, परिषद्, चरण, मठ और गुरुकुल अवश्य स्थापित हो गये थे जहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों से विद्वान् आकर एकत्रित होते थे और उच्चकोटि के शास्त्रार्थ करते थे। ये गुरुकुल बहुधा गाँवों में ही स्थापित हुए। इसके अतिरिक्त वनों में भी गुरुकुलों की स्थापना हुई। किन्तु ये गुरुकुल भी इस प्रकार सङ्गठित और संचालित न थे जैसे आगे चलकर जैन और बौद्ध शिक्षा-संस्थायें बनीं। बौद्ध धर्म के सम्पर्क में आने पर हिन्दुओं ने सङ्गठित शिक्षा संस्थायें निर्माण करने में उनका अनुकरण किया और विशाल मठों या मन्दिरों में शिक्षा दी जाने लगी। इसके अतिरिक्त कुछ स्थान ऐसे भी बन गये जहाँ विशेष प्रकार की शिक्षा के केन्द्र स्थापित हो गये, जैसे तक्षशिला में आयुर्वेद, धनुर्वेद तथा राजनियम (कानून) का अध्ययन करने के लिए दूर-दूर से राजपुत्र आया करते थे। उज्जयिनी में ज्योतिष तथा काशी में दर्शन व संगीत इत्यादि के केन्द्र थे। दक्षिणी भारत में भी कुछ शिक्षा-केन्द्र स्थापित हो गये जैसे बीजापुर जिले में सलोत्गी गाँव में एक विशाल संस्कृत विद्यालय था। आगे चलकर इसकी इतनी उन्नति हुई कि इसमें सत्ताइस विशाल छात्रावासों का निर्माण करना पड़ा। इसके अतिरिक्त दूसरा हिन्दू-शिक्षा का केन्द्र एन्नायरम में था जो ग्यारहवीं शताब्दि में स्थापित हुआ था। तीरमुक्कुदल,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मालकापुरम, धार तथा पांडुचेरी अन्य केन्द्र थे। 'अग्रहार' ग्राम भी प्राचीन हिन्दू-शिक्षा के विशाल केन्द्र थे, जिनकी स्थापना दक्षिणी भारत में राजाओं द्वारा विद्वान् ब्राह्मणों के उपनिवेशों के रूप में हुई थी, बंगाल के 'टोल' भी इसमें उल्लेखनीय हैं। किन्तु यह स्मरणीय है कि इन हिन्दू शिक्षा-केन्द्रों की स्थापना बौद्ध केन्द्रों के अनुकरण के स्वरूप ही हुई।

सुसङ्गठित शिक्षा-संस्थायें :

इनका प्रारम्भ बौद्ध काल में हुआ। बौद्ध धर्म की स्थापना जनतन्त्रवाद के सिद्धान्तों पर हुई थी जिसमें सर्वसाधारण को उन्हीं की बोलचाल की भाषा में 'धर्म' का उपदेश दिया गया था। अत: प्रारम्भिक शिक्षा के लिए पाली और उच्चतम शिक्षा के लिए संस्कृत की सुसंचालित शिक्षा-संस्थायें स्थापित की गईं। साधारण उपासकों के लिए भी बुद्ध ने संस्थाओं की आवश्यकता का अनुभव किया। अत: मठों की स्थापना हुई। ये ही मठ, बड़े-बड़े शिक्षा विहारों के रूप में परिवर्तित हो गये। इन केन्द्रों में भिक्षु, भिक्षुणी एवं साधारण जनता सभी को विद्याध्ययन के लिये सुअवसर प्रदान किया जाता था। दूर-दूर जनपदों से सभी वर्गों के विद्यार्थी आ-आकर यहाँ नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे, यहाँ तक कि चीन, जापान, तिब्बत तथा अन्य पूर्वी द्वीपों से भी विद्यार्थी बौद्ध-धर्म का अध्ययन करने यहाँ आते और यहाँ से अन्य ग्रन्थों का अनुवाद करके अपने देशों को ले जाते थे। बौद्धकालीन शिक्षा-केन्द्रों का प्रबन्ध जनतन्त्र के सिद्धान्तों पर होता था। प्राय: कोई विद्वान् भिक्षु ही उसका प्रधान होता था। प्रत्येक विभाग जैसे प्रवेश परीक्षा, पाठ्य-क्रम, छात्रावास, भोजन-व्यवस्था, भवन-निर्माण, चिकित्सा, पुस्तकालय तथा भिन्न-भिन्न पाठ्य-विषयों के लिए अलग-अलग अध्यक्ष होते थे। नवीं शताब्दि में एक भिक्षु-छात्र जोकि जलालाबाद का निवासी था और विहार में तीर्थ-यात्रा के लिए आया था, विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया। इसका अभिप्राय यह है कि स्थानीय या प्रान्तीय भेद-भाव की भावना लोगों के हृदय में नहीं थी। इस प्रकार बुद्ध-कालीन सुसङ्गठित शिक्षा-संस्थायें, जो देश में मठ, विहार और विश्वविद्यालयों के रूप में स्थिति थीं, देश की सभ्यता की रीढ़ थी। आज भारत के जो सांस्कृतिक सम्बन्ध एशिया के विभिन्न देशों से स्थापित हैं उनका वहुत कुछ श्रेय इन्हीं शिक्षा-संस्थाओं को है। अब हम नीचे बुद्ध कालीन कुछ प्रमुख शिक्षा केन्द्रों का वर्णन करेंगे। इनमें तक्षशिला, नालन्दा, वलभी, विक्रमशिला, आदोन्तपुरी, नदिया, मिथिला तथा जगद्दला विशेष उल्लेखनीय हैं।

(१) तक्षशिला : प्राचीन काल में गान्धार प्रान्त की राजधानी था। किन्तु इसकी स्थापना का इतिहास इससे भी अधिक प्राचीन है। रामायण में लिखा है कि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

राजा भरत ने इसे अपने पुत्र 'तक्ष' के नाम पर बसाया था। तक्षशिला के भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर स्थित होने के कारण इस पर अनेक आक्रमण हुए। इन आक्रमणों के परिणामस्वरूप समय-समय पर इसका राजनैतिक स्वरूप बदलता रहा। अतः यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि इन राज्य-परिवर्तनों के साथ ही साथ शिक्षा का स्वरूप भी अवश्य बदला होगा।

तक्षशिला में कोई एक सुसंगठित विद्यालय या विश्वविद्यालय नहीं बना था। शिक्षण का आधार परिवार-प्रणाली था। यहाँ अनेकों विद्वान् आचार्य सैकड़ों विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे। इस प्रकार उत्तरी भारत के लिए यह एक दीर्घ शिक्षा-केन्द्र हो गया था। बनारस, मिथिला तथा राजगृह इत्यादि स्थानों से विद्यार्थियों के तक्षशिला जाने का वर्णन जातकों में मिलता है। तक्षशिला में प्रधानतः उच्च शिक्षा दी जाती थी। लगभग सोलह वर्ष की अवस्था के विद्यार्थी तक्षशिला पहुँचते थे। वेदत्रयी, वेदान्त, व्याकरण, आयुर्वेद, अठारह सिप्प, सैनिक विद्या, ज्योतिष विद्या, कृषि, व्यापार, सर्प-दंश-चिकित्सा तथा तन्त्र यहाँ अध्ययन के विशेष विषय थे। व्याकरण पिता पाणिनि तथा प्रसिद्ध चिकित्सक और शल्प-विद्या-विशेषज्ञ जीवक यहीं की उपज थे। इन विद्याओं के सीखने के लिये जाति पाँति का कोई बंधन नहीं था जैसा कि काशी से एक ब्राह्मण पुत्र के सैनिक विज्ञान सीखने के लिए आने के कथानक से प्रतीत होता है। तक्षशिला यवनों की संस्कृति से भी प्रभावित हुआ था। कुछ आचार्य वहाँ पर ग्रीक भाषा का भी शिक्षण करते थे। ग्रीक युद्ध का प्रशिक्षण भी यहाँ होता था। वास्तव में भारतीय युद्ध कला के लिए तो तक्षशिला अत्यन्त प्रसिद्ध था। चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन-काल सात वर्ष था। जीवक सात वर्ष तक तक्षशिला में रहा था। 'अर्थशास्त्र' के रचियता कौटिल्य ने भी अपनी उच्चशिक्षा यहीं प्राप्त की थी।

इस प्रकार कई शताब्दियों तक तक्षशिला ने अपनी ज्ञान-ज्योति देश में विकीर्ण की। भाग्य के अनेक चढ़ाव उतारों की अपेक्षा परिवर्तन के भयानक झंझा में भी यह ज्ञान शिखा अलौकित होती रही। अन्त में वर्बर हूणों ने इसे पदाक्रान्त कर डाला और इस प्रभा को सदा के लिये बुझा दिया।

(२) नालन्दा : बिहार प्रान्त में नालन्दा प्रसिद्ध बौद्ध-शिक्षा केन्द्र था। प्रारम्भ में यह एक छोटा सा गाँव था किन्तु धीरे-धीरे इसका महत्त्व बढ़ता गया। महात्मा बुद्ध के प्रिय शिष्य सारीपुत्त की जन्मभूमि होने के कारण इस स्थान का महत्त्व बौद्ध भिक्षुओं के लिए अधिक हो गया। सम्राट् अशोक जब सारीपुत्त का चैत्य देखने आये तो उन्होंने एक विहार यहाँ बनवाया। ईसा की प्रथम शताब्दि में महायान के विकास के समय से इस स्थान का महत्त्व बढ़ने लगा। चौथी शताब्दि तक यह स्थान शिक्षा की दृष्टि से

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भी प्रसिद्ध होगया। नागार्जुन तथा उसके शिष्य आर्यदेव जो कि अनुमानतः चौथी शताब्दि में ही उत्पन्न हुए थे, दोनों ही विद्वानों के उस समय नालन्दा में रहने से भी यही प्रतीत होता है कि उस समय तक यह स्थान ख्याति प्राप्त करता जा रहा था, इसका वास्तविक उत्थान तो सन् ४५० ई० से प्रारम्भ होता है। तत्पश्चात् लगभग तीन शताब्दियों तक यह उन्नति के शिखर पर रहा। कुमारगुप्त प्रथम (४१४-४५५ ई०) ने वहाँ एक मठ बनवाया। इसके उपरान्त तथागत गुप्त, नरसिंह गुप्त, बालादित्य, बुद्धगुप्त, वज्र तथा हर्ष ने भी वहाँ मठों की स्थापना की। इस प्रकार इन मठों के निर्मित हो जाने से नालन्दा का विस्तार बहुत बढ़ गया। ये ही मठ विश्वविद्यालय के प्रमुख भवन में सम्मिलित थे। विश्वविद्यालय के भवन-निर्माण की कला अत्यन्त उच्चकोटि की थी। इसके पुस्तकालय में सभी धर्मों, विषयों, कलाओं, विज्ञानों तथा कौशलों की अलभ्य पुस्तकों का संग्रह था।

नालन्दा में छात्रावास का भी समुचित प्रबन्ध था। तेरह मठ इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये बने हुए थे, जिनमें विद्यार्थियों के निवास के लिये कमरे बने थे। विद्यार्थियों के भोजन, वस्त्र व शिक्षा और चिकित्सा की व्यवस्था निःशुल्क की जाती थी। वास्तव में प्राचीन काल में शिक्षा का उत्तरदायित्व राजाओं और प्रजा दोनों पर ही था और दोनों ही मिलकर शिक्षा के निमित्त दान देते थे।

इत्सिंग ने, जो नालन्दा में लगभग दस वर्ष रहा, वहाँ की शिक्षा-पद्धति तथा पाठ्य-क्रम का प्रत्यक्ष वर्णन लिखा है। यद्यपि नालन्दा महायान बौद्ध शिक्षा का प्रधान क्षेत्र था, तथापि वहाँ हीनयान, वैदिक शिक्षा तथा जैन धर्म की शिक्षा भी दी जाती थी। शास्त्रार्थ में विजयी होने के लिये यह आवश्यक था कि सभी धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय। वाद-विवाद या शास्त्रार्थ वहाँ की शिक्षा-प्रणाली का एक विशेष अंग था। इसके अतिरिक्त, वेद, वेदाङ्ग, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन शास्त्र, पुराण और चिकित्साशास्त्र का भी अध्ययन किया जाता था। नालन्दा वास्तव में दार्शनिक शिक्षा का केन्द्र था।

विहार के अन्दर भिक्षुओं, आचार्यों और विद्यार्थियों का जीवन पूर्ण संयमित और सात्त्विक रहता था। यहाँ के विद्यार्थियों का सम्पूर्ण देश में सम्मान होता था। प्रवेश के समय न केवल भारत के विभिन्न कोनों से ही, अपितु विदेशों से भी विद्यार्थी यहाँ आ आकर इकट्ठे होते थे। चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत, सुमात्रा तथा जावा एवं लङ्का से असंख्यों विद्यार्थी बौद्ध धर्म का अध्ययन करने नालन्दा में आते थे। विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए लगभग १५०० विद्वान शिक्षकों का प्रबन्ध था। विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विकास का ध्यान रखा जाता था। शिक्षा-पद्धति प्रायः वही थी जो ब्राह्मणीय शिक्षा में प्रचलित थी। लेखन कला इस समय तक पर्याप्त विकसित हो चुकी थी। ग्रन्थ

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अवलोकन के अतिरिक्त विद्यार्थी शिक्षकों तथा विद्वानों के भाषण सुनकर भी ज्ञान-वर्धन करते थे। वाद-विवाद-प्रणाली का उल्लेख हम ऊपर कर ही आये हैं। दिन में लगभग १०० भाषणों की प्रतिदिन व्यवस्था की जाती थी, जिन्हें सुनना प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य था। आचार्यों की प्रसिद्धि सर्वविदित थी। ह्वानसांग कुछ शिक्षकों के नामों का भी उल्लेख करता है जिनमें चन्द्रपाल, धर्मपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र ज्ञानचंद्र इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं, इस विश्वविद्यालय की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर जावा के सम्राट् वलपुत्रदेव ने भी यहाँ एक मठ बनवाया।

इस प्रकार नालन्दा विद्या का एक प्रसिद्ध केन्द्र था जो कई शताब्दियों तक भारत में ज्ञान का प्रकाश फैलाता रहा। लगभग ८०० वर्ष तक एक गौरवशाली जीवन व्यतीत करने के उपरान्त १२वीं शताब्दि के अन्त में मुसलमान विजेता बख्तियार खिलजी की वर्वरता का आखेट हुआ।

(३) वलभी : बौद्ध कालीन भारत का एक प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र था। यह काठियावाड़ में मैत्रक सम्राटों की सन् ४७५ से ७७५ ई० तक राजधानी रहा। वलभी को प्रसिद्धि तथा शिक्षा महत्व के दृष्टिकोण से नालन्दा का प्रतिद्वन्द्वी कहा जा सकता है। यहाँ पर विशाल मठ और विहार बने हुए थे। ह्वानसांग जब यहाँ आया था उस समय वलभी में लगभग १०० संघाराम बने हुए थे। इत्सिग ने भी वलभी को भारत के पच्छिमी किनारे पर नालन्दा के समान ही महत्त्वशाली पाया था जहाँ भारत के प्रत्येक कौने से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए आते थे। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त ये विद्यार्थी राजदरवारों में उच्च पदों पर नियुक्त किये जाते थे। इससे विदित होता है कि वलभी केवल धार्मिक शिक्षा का केन्द्र ही नहीं था अपितु वहाँ अर्थशास्त्र, राजनियम, नीति, तथा चिकित्सा-शास्त्र का भी अध्ययन किया जाता था। यहाँ वौद्ध धर्म की दूसरी शाखा हीनयान का भी भिक्षु अध्ययन करते थे। इसका समुद्री व्यापार के लिये भी बड़ा महत्त्व था। यहाँ वड़े-वड़े धनवान व्यापारी रहते थे। यही व्यापारी शिक्षा के संरक्षकों की भाँति कार्य करते थे। इस प्रकार शिक्षा का प्रचार करते हुए यह विश्वविद्यालय लगभग १२वीं शताब्दि तक स्थापित रहा, तदुपरान्त विदेशियों के आक्रमण से विध्वंस हो गया।

(५) विक्रमशिला : विहार की स्थापना सम्राट् धर्मपाल ने ८ वीं शताब्दि में की थी। यह एक पहाड़ी चट्टान के ऊपर गंगा नदी के तट पर मगध में बसा हुआ था। कला की दृष्टि से विक्रमशिला विहार अत्यंत ही उच्चकोटि का था। विक्रमशिला की ख्याति शीघ्र ही फैल गई। यहाँ के शिक्षक अत्यन्त ही विद्वान् और उच्चकोटि के दार्श-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

निक थे। विक्रमशिला की ख्याति तिब्वत तक पहुँची। लगभग चार शताब्दियों तक तिब्बत के विद्यार्थी विक्रमशिला में उच्च शिक्षा के लिये आते रहे।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय का प्रबन्ध उच्चकोटि का था। शिक्षा का कार्य विद्वानों के एक बोर्ड के सुपुर्द था। ऐसा कहा जाता है कि यही बोर्ड नालन्दा से शासन को भी चलाता था। शासन-प्रबन्ध का अधिष्ठाता एक विद्वान् भिक्षु होता था। कार्य के भिन्न-भिन्न विभाग विभिन्न अधिकारियों के अन्तर्गत थे। विश्वविद्यालय में प्रवेश के समय विद्यार्थी की परीक्षा ली जाती थी। प्रमुख भवन की प्रत्येक दिशाओं में द्वार थे और इन्हीं द्वारों पर द्वार-पण्डित नियुक्त थे। यही द्वार-पण्डित प्रवेश-परीक्षा लेते थे, जिसमें उत्तीर्ण होने पर ही विश्वविद्यालय में प्रवेश हो सकता था। यहाँ प्रधानत: सांसारिक विद्याओं का अध्ययन किया जाता था। व्याकरण, तर्कशस्त्र, तंत्रवाद तथा दर्शन-शास्त्र अध्ययन के प्रमुख विषय थे। अधिक कौतूहल की बात तो यह है कि इस विश्वविद्यालय में परीक्षा के प्रमाण-पत्र भी मिलते थे जैसा कि अन्य किसी प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालय में नहीं होता था। इससे प्रमाणित होता है कि इस विश्वविद्यालय का संगठन अधिक सुव्यवस्थित था।

इस प्रकार एक दीर्घकाल तक विक्रमशिला 'विद्या-सम्राज्ञी" रही। तेरहवीं शताब्दि के प्रारम्भ में बख्तियार खिलजी ने आक्रमण किया और इसको युद्ध सम्बन्धी गढ़ समझ कर इस पर आक्रमण कर दिया।

(५) ओदन्त पुरी : मगध में पाल सम्राटों के अस्तित्व में आने से पूर्व ही इस विश्वविद्यालय की स्थापना हो चुकी थी। पाल सम्राटों ने इसका और भी अधिक विस्तार किया। उन्होंने यहाँ एक वृहत् पुस्तकालय की स्थापना की जिसमें ब्राह्मणीय और बौद्ध साहित्य की पुस्तकों का संग्रह था। ओदन्त पुरी की इतनी ख्याति नहीं थी जितनी विक्रमशिला या नालन्दा की थी। तथापि यहाँ लगभग १००० भिक्षु निवास करते व शिक्षा पाते थे। बुद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने में ओदन्तपुरी का भी पर्याप्त श्रेय रहा है। तिब्बत से भी विद्यार्थी आकर यहाँ विद्याध्ययन करते थे। इसी के आधार पर तिब्बत को प्रथम बौद्ध विहार बनाया गया।

(६) मिथिला : का प्राचीन नाम विदेह था। अनन्तकाल से यह ब्राह्मणीय शिक्षा का केन्द्र था। राजा जनक यहाँ उपनिषद् युग में धार्मिक शास्त्रार्थ किया करते थे जहाँ देश के भिन्न-भिन्न भागों से विद्वान् ऋषी आकर शास्त्रार्थ करते थे। बौद्ध युग में भी मिथिला ने अपनी परम्परा का निर्वाह किया। जगद्धर नामक विद्वान् जिसने गीता टीका देवी महात्म, मेघदूत, गीत गोविन्द तथा मालती माधव इत्यादि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

रचनाओं पर टीका की है; तथा कवि विद्यापति जिनकी सरस कविताओं से बंगाल और विहार के कवियों ने युगों से प्रेरणा ली है, यहीं पर उत्पन्न हुए थे। १२वीं शताब्दि से लेकर १५ वीं शताब्दि तक मिथिला विद्या का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा। साहित्य व ललित कलाओं के अतिरिक्त वहाँ वैज्ञानिक विषयों का भी अध्ययन होता था। न्याय का एक प्रसिद्ध विद्यालय मिथिला में था। गंगेश उपाध्याय ने 'नव्य-न्याय' के स्कूल को जन्म दिया। वहाँ पर उसकी युग-निर्माणक रचना 'तत्व चिन्तामणि' लिखी गई। मिथिला में अनेकों विद्वानों ने जन्म लिया। यहाँ तक कि मुगल सम्राट अकबर के समय में भी मिथिला विद्या का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। मिथिला अखिल भारतीय ख्याति का शिक्षा-केन्द्र था। न्याय तथा तर्क-शास्त्र के लिए यह विशेष प्रसिद्ध था। अध्ययन समाप्त होने पर यहाँ विद्यार्थी की अन्तिम परीक्षा लेने की प्रथा थी जो 'शलाका परीक्षा' के नाम से विख्यात थी। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही स्नातक की उपाधि दी जाती थी।

(७) नदिया या नवदीप : बंगाल के सेन सम्राटों द्वारा ग्यारहवीं शताब्दि के मध्य में बसाया गया था। पूर्वी बंगाल में भागीरथी तथा जलांगी के संगम पर प्रकृति की शोभा में यह स्थान बसा हुआ था। समय-समय पर यहाँ विद्वानों ने जन्म लिया है। जयदेव के गीत गोविन्द की वाणी अब भी लोगों के कानों में गूँजती है। उमापति की कवितायें तथा शूलपाणि का 'स्मृति-विवेक अमर' रचनायें मुसलमान शासकों के युग से भी नदिया हिन्दू शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र रहा। तर्क-शास्त्र, व्याकरण, नीति और कानून के लिये यह विशेष उल्लेखनीय है। नालन्दा तथा विक्रमशिला का पतन होने से नदिया का महत्व और भी अधिक बढ़ गया और वहाँ हिन्दू शिक्षा का एक विशाल केन्द्र स्थापित हो गया। रघुनाथ शिरोमणि ने वहाँ तर्कशास्त्र का एक स्कूल स्थापित किया था। वासुदेव सार्वभौम नामक विद्यार्थी जो मिथिला में न्याय व तर्कशास्त्र में विशेषता प्राप्त करने गया था वहाँ से तत्वचिन्तामणि को कंठाग्र कर लाया, क्योंकि मिथिला की यह जटिल परम्परा थी कि वहाँ से किसी समय विद्यार्थी को पुस्तकें रटाने, प्रतिलिपि लेने या अनुवाद करने की भी आज्ञा न थी। इस वासुदेव सार्वभौम ने ही नदिया में तर्कशास्त्र का सूत्रपात किया था। आगे चलकर उसके शिष्य रघुनाथ शिरोमणि ने न्याय की एक नवीन विचारधारा चलाई जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

इस प्रकार नदिया देश में शिक्षा का प्रचार करता रहा। मध्य युग में भी इसका महत्व रहा। आजकल वहाँ टोल-पद्धति से प्राचीन शिक्षा दी जाती है।

(८) जगद्दला : को बंगाल के सम्राट् रामपाल ने ग्यारहवीं शताब्दि के प्रारम्भ में गंगा तट पर रामवती नामक नगर बसाया जहाँ उसने एक विहार बनवाया जिसे उसने

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जगद्दला के नाम से पुकारा। यह जगद्दला लगभग १०० वर्ष तक बौद्ध शिक्षा का केन्द्र रहा और सन् १२०३ ई० में मुसलमानों ने इसे नष्ट कर दिया। तिब्वत के विद्यार्थियों ने भी यहाँ आकर संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद किया। यहाँ पर अनेक पण्डित, महापण्डित, उपाध्याय और आचार्य रहते थे। इनमें विभूतिचंद्र, दानशील, शुभाकर तथा मोक्षाकर गुप्त अधिक प्रसिद्ध हैं। जगद्दला भी तर्कशास्त्र तथा तन्त्रवाद के लिये उल्लेखनीय है।

इन प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्रों के अतिरिक्त देश में अन्य भी छोटे-छोटे विद्या केन्द्र थे जिनका प्रादुर्भाव बौद्ध काल में हुआ। ह्वानसांग और इत्सिग नामक चीनी यात्रियों ने उत्तरी भारत का दौरा किया और स्थान २ पर उन्होंने मठ और विहारों को पाया। यही विहार और मठ बौद्ध शिक्षा के केन्द्र थे, और सम्पूर्ण देश में छाये हुए थे। बिहार और बंगाल इनके प्रमुख क्षेत्र थे।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

६

इस्लामी-शिक्षा

उद्देश्य :

जब मुसलमान शासक भारत में स्थायी रूप से शासन करने लगे, तो उन्होंने यहाँ प्राचीन ब्राह्मणीय तथा बौद्ध शिक्षा को नष्ट करके उनके स्थान पर इस्लामी शिक्षा का प्रचार करने का यथासम्भव प्रयास किया। तत्कालीन हिन्दू शिक्षा भी इस नवीन शिक्षा-प्रणाली से प्रभावित हुए बिना न रह सकी और यह मुसलमानी शिक्षा भी प्रधानतः दर्शन, चिकित्सा तथा औद्योगिक शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दू शिक्षा से प्रभावित हुई। भारत में इस्लामी शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य रहे हैं। इन्हीं उद्देश्यों को लेकर यहाँ पर शिक्षा का प्रसार किया गया। हाँ, व्यक्तियों के साथ शिक्षा-प्रसार के उद्देश्यों में परिवर्तन अवश्य हुआ, जैसे अकबर और औरंगजेब के शिक्षा प्रसार के उद्देश्य सर्वथा भिन्न थे। संक्षेप में इस्लामी शिक्षा के उद्देश्यों को हम इस प्रकार लिख सकते हैं :—

१. इस्लामी शिक्षा का सर्व प्रथम उद्देश्य इस्लाम के बन्दों में ज्ञान का आलोक फैलाना है। पैगम्बरों के अनुसार ज्ञान अमृत है और इसके बिना मुक्ति नहीं। यही कारण था कि हजरत मुहम्मद ने ज्ञानार्जन अनिवार्य बतलाया और शिक्षा के द्वारा धर्म और अधर्म तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का भेद जानने का आदेश दिया और शिक्षा प्रत्येक सच्चे मुसलमान के लिए अनिवार्य कर दी।

२. शिक्षा का द्वितीय उद्देश्य था धर्म का प्रचार करना। इस्लाम का प्रचार एक धार्मिक कर्त्तव्य माना गया है और इसका प्रचार करने वाला ही गाजी होता है, ऐसा विश्वास इनमें था। मुसलमान शासकों ने इसी धार्मिक भावना से प्रेरित होकर भारत में शिक्षा को संरक्षण दिया और उसे पूर्णरूप से अपना लिया। स्कूलों का बनवाना उतना ही पवित्र कार्य हो गया जितना कि मसजिदों का निर्माण। इस धार्मिक भावना की तीव्रता के कारण ही उन्होंने प्राचीन बौद्ध तथा अन्य हिन्दू मन्दिरों, विद्यालयों और शिक्षा-केन्द्रों को नष्ट किया और उनके स्थान पर मसजिदें तथा मदरसे बनवाये।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

३. तीसरा उद्देश्य था लोगों में इस्लाम के अनुसार एक विशेष प्रकार की नैतिकता का विकास करना तथा प्राचीन इस्लामी कानून, सामाजिक-प्रथाओं और विशेष राजनैतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना।

४. इनके अतिरिक्त इस्लामी शिक्षा का उद्देश्य था सांसारिक वैभव प्राप्त करना। इस्लामी शिक्षा की यह एक दुर्वलता थी कि इसे प्रोत्साहन देने के लिये अथवा उसमें विद्यार्थियों की रुचि बनाये रखने के लिये उन्हें उच्च पद, सम्मान, तमगे तथा जागीरें इत्यादि प्रदान की जाँय। अत: इन वातों का लाभ उठाने के लिये वहुतसे हिन्दू भी इस्लामी शिक्षा पाने लगे।

५. अन्त में इस्लामी शिक्षा का उद्देश्य एक प्रकार से राजनैतिक भी था। मुसलमान एक ऐसे देश में आ गये थे जिसकी सभ्यता, संस्कृति तथा राजनैतिक ज्ञान उनसे कहीं अधिक उच्चकोटि का था। अत: उन्हें एक ऐसी राजनैतिक अवस्था उत्पन्न करना आवश्यक हो गया जिसके द्वारा उनका शासन स्थायी रूप से सम्भव हो सके। अकवर को हम यही उद्देश्य लेकर शिक्षा क्षेत्र में आगे वढ़ते हुए पाते हैं।

राज्य संरक्षण और शिक्षा-प्रसार :

आठवीं शताव्दी के प्रारम्भ में भारत पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ था। उस समय देश में वौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी तथा ब्राह्मणीय शिक्षा भी भिन्न-भिन्न स्थानों में विद्यमान थी। किन्तु प्रारम्भिक मुसलमान आक्रमणकारियों ने भारतीय शिक्षा के लिए कोई प्रयास नहीं किया। **महमूद गजनवी** ने भारतीय धन से ही गजनी में विद्या की उन्नति की, किन्तु भारतीय शिक्षा के लिए उसने कोई प्रयत्न नहीं किया। उसके उपरान्त सन् ११९२ ई० में **मुहम्मद गौरी** ने भारत में मुसलमान साम्राज्य की नींव डाली। उसने अजमेर में मन्दिर तुड़वाकर मस्जिद और मदरसे वनवाये। उसके एक प्रमुख सिपहसालार **वख्तियार** ने दक्षिणी भारत पर आक्रमण किया और विक्रमशिला इत्यादि वौद्ध विश्वविद्यालयों को विध्वंस करके भारतीय शिक्षा व संस्कृति को महान् क्षति पहुँचाई। वख्तियार ने कुछ मदरसों का निर्माण भी कराया। उसके उपरान्त **गुलाम वंश** के शासकों में इल्तुमश, रजिया तथा बलवन ने भी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। इन सुल्तानों में से कुछ साहित्य, शिक्षा तथा कला के संरक्षक थे और अपने दरवारों में धर्माचार्यों, कलाकारों, इतिहासकारों और कवियों को संरक्षण देते थे। बलवन स्वयं ऐसा शासक था। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो और अमीर हसन दहलवी, जो कि अपनी फारसी कृतियों के लिये भारत के वाहर भी ख्याति प्राप्त कर चुके थे, उसी के समकालीन थे। इस प्रकार १३वीं शताब्दि में धर्म, साहित्य तथा इतिहास और कथा साहित्य की प्रर्याप्त रचना हुई। दिल्ली के सुल्तानों ने मुसलमान जनता की शिक्षा का प्रबन्ध भी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

किया । प्रायः सभी मुसलमानों की बस्तियों में दो मकतबों की व्यवस्था थी । इन सुल्तानों ने मदरसों की स्थापना भी कराई और उदारता पूर्वक उनके लिये अनुदान दिया, इल्तुमश ने एक मदरसा दिल्ली और एक मुल्तान में बनवाया । एक बात स्मरणीय है कि सांस्कृतिक उन्नति की यह व्यवस्था प्रधानतः उच्च वर्ग के लोगों के लिए थी और जन-साधारण का मान-दण्ड गिरता जा रहा था ।

खिलजी वंश—में जलालुद्दीन स्वयं विद्वान् था । उसने शिक्षा को प्रोत्साहन दिया । किन्तु अलाउद्दीन खिलजी के समय में शिक्षा को बहुत आघात लगा । उसने राज्य की ओर से शिक्षा-संस्थाओं को दिया जाने वाला अनुदान बन्द करा दिया ।

तुगलक वंश—ने शिक्षा को प्रोत्साहन दिया । गयासुद्दीन और मुहम्मद तुगलक शिक्षा प्रेमी तथा स्वयं विद्वान् थे । मुहम्मद के दरबार में कवि, दार्शनिक, चिकित्सक तथा तर्कशास्त्री रहते थे । वह उनसे शास्त्रार्थ करता था । मौलाना मुईउद्दीन उमरानी उसके समय का सर्वप्रसिद्ध साहित्यकार था । उन्हीं ने व्यक्तिगत रूप से विद्यार्थियों को वजीफे दिये तथा मकतब निर्माण कराये । फिरोज के समय में दिल्ली विद्या का एक केन्द्र बन गई । वह विद्वानों को आर्थिक सहायता द्वारा प्रोत्साहन देता था; यहाँ तक कि उसके यहाँ १८ हजार दास-बालक शिक्षा पाते थे । उसने लगभग ३० मदरसे बनवाये जहाँ शिक्षक और विद्यार्थी साथ-साथ रहते थे । प्रत्येक मदरसे में, जो कि मसजिद के साथ जुड़ा होता था, स्थायी रूप से एक शिक्षक उसने नियुक्त कर दिया गया और उदारता-पूर्वक इन संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान की । जियासुद्दीन बरनी और शम्सेशिराज ने अपनी रचनायें फिरोज के संरक्षण में ही कीं । सुलतान ने स्वयं अपनी आत्मकथा 'फतूहाते फिरोजशाही' लिखी । काँगड़ा-विजय के उपरान्त उसके हाथ एक विशाल पुस्तकालय लग गया था जिसमें संस्कृत की अमूल्य पुस्तकों का विशाल संग्रह था । फिरोज ने उस पुस्तकालय की असंख्य पुस्तकों का अनुवाद फारसी में कराया । इस प्रकार उसके व्यक्तिगत विद्यानुराग के कारण उस समय मुसलमानी शिक्षा, नीति, धर्म तथा साहित्य की पर्याप्त उन्नति हुई ।

फिरोज की मृत्यु के उपरान्त बहुत से सूबेदार स्वाधीन हो गये, उन्होंने भी अपने छोटे-छोटे राज्य में शिक्षा-प्रसार के लिए सराहनीय प्रयत्न किये । दक्षिण में बहमनी वंश के सुल्तानों ने बहुत से मकतब और मदरसे बनवाये । महमूद गावाँ ने बीदर में एक विशाल मदरसे का निर्माण कराया जिसमें सहस्रों पुस्तकों से सुसज्जित एक पुस्तकालय भी था । इस्लामी-शिक्षा का प्रचार करने के लिये गाँवों में भी मकतब खोले गये । बहमनी राज्य में शिक्षा का मानदण्ड भी पर्याप्त ऊँचा हो गया । इसके अतिरिक्त बीजापुर, गोलकुण्डा, मालवा, खानदेश, जौनपुर, मुल्तान गुजरात और बंगाल भी विद्या के प्रमुख

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

केन्द्र बन गये। जौनपुर उस युग में अपनी कला, साहित्य, और उच्चकोटि की विद्या के लिये सर्व-प्रसिद्ध था। कुछ सरदार तथा सम्पत्तिवान् व्यक्तियों ने भी प्रारम्भिक अथवा धार्मिक-शिक्षा के प्रचार के लिये मदरसे खुलवाये। कुछ विद्वान् शिक्षक अपने घरों पर भी बालकों को शिक्षा देते थे।

बाबर—के आक्रमण के समय उत्तरी भारत में शिक्षा का कुछ ह्रास हो चुका था। बाबर यद्यपि स्वयं विद्वान् व कवि था तथापि अपने संक्षिप्त शासन-काल में शिक्षा के लिये कुछ भी न कर सका। हुमायूँ ने अवश्य दिल्ली में एक विशाल मदरसा निर्माण कराया और शेख हुसैन को इसका प्रधानाचार्य नियुक्त किया। सम्राट् ने दिल्ली में एक पुस्तकालय भी खुलवाया तथा शेरशाह के विलास-भवन को एक पुस्तकालय के रूप में बदल दिया। हुमायूँ के मकबरे में भी एक मदरसा खोला गया।

हुमायूँ की मृत्यु के उपरान्त अकबर भारत का सम्राट् हुआ। अकबर के शासन काल से मध्यकालीन शिक्षा में एक नये युग का सूत्रपात होता है। यद्यपि वह स्वयं निरक्षर था, किन्तु एक कुशाग्र बुद्धि व्यक्ति था। उसके समय में भारत में शिक्षा, ललितकला, साहित्य, दर्शन और इतिहास की बहुत उन्नति हुई। उसके दरबार में विद्वान् रहते थे जिनसे अकबर शास्त्रार्थ करता था। उसने भिन्न-भिन्न धर्मों को संरक्षण दिया और इस प्रकार ज्ञान-प्रसार में एक महान् सहयोग दिया। अकबर ने अबुलफजल जैसे विद्वान् मंत्रियों की सलाह से जन-साधारण की शिक्षा के लिये नियम व पाठ्य-क्रम बनाये। परम्परागत शिक्षा-विधि में भी अकबर ने राज्याज्ञा द्वारा सुधार किये तथा मुसलमान जनता के सुधार के लिए पाठ्य-क्रम में भी परिवर्तन कराया। उसने राजधानी में एक विशाल-पुस्तकालय का निर्माण भी कराया जिसमें भिन्न-भिन्न धर्मों, साहित्यों और दर्शन-शास्त्र के उच्च कोटि के ग्रन्थों का संग्रह था; तथा आगरा, फतहपुरसीकरी एवं अन्य स्थानों पर मदरसे बनवाये। उसने कई संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद भी कराया जिन्हें वह स्वयं पढ़वा कर सुनता था। हिन्दुओं ने राज्य-सेवा का लाभ लेने के लिये फारसी तथा अरबी भाषाओं का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था, यहाँ तक कि अकबर के समय में उसकी धर्म-सहिष्णुता की नीति के कारण हिन्दुओं ने फारसी पढ़ने में विशेष रुचि दिखाई। हिन्दू बालकों की शिक्षा के लिए भी अकबर ने विद्यालय खुलवाये। यद्यपि जहाँगीर अकबर के समान शिक्षा-प्रेमी नहीं था तथापि वह विद्वान् था और विद्वानों को प्रोत्साहन देता था। पुस्तकों से उसे बड़ा प्रेम था। वह चित्रकला का बड़ा संरक्षक था। उसने शिक्षा-प्रसार के लिए राजाज्ञा जारी की थी, "कि किसी भी धनवान नागरिक अथवा यात्री के बिना उत्तराधिकारी छोड़े हुए मरने पर उसकी सम्पत्ति राज्य में मिला दी जाय और वह धनराशि शिक्षा की उन्नति, मदरसों के निर्माण तथा उसकी मरम्मत में व्यय की जाय"।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शाहजहाँ—ललित कलाओं; जैसे; संगीत, चित्रकला तथा वास्तुकला का महान् संरक्षक था तथापि उसके समय में शिक्षा का सुधार व प्रसार के लिए कोई सराहनीय प्रयत्न नहीं हुए। उसने केवल अपने पूर्वजों की नीति को जारी रक्खा। दिल्ली में उसने एक बड़ा मदरसा बनवाया तथा दूसरा मदरसा जिसका नाम 'दारुल वकी' (अनन्त निवास) था, उसकी मरम्मत कराई। शाहजहाँ स्वयं तुर्की का विद्वान् था और रात का कुछ समय ग्रन्थावलोकन में व्यतीत करता था। उसका पुत्र दारा शिकोह तो उच्च कोटि का विद्वान् तथा हिन्दू दर्शन-शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित था। वह अरबी, फारसी तथा संस्कृत का ज्ञाता था। उसने उपनिषदों, भगवद्गीता तथा योग-वसिष्ठ, रामायण का अनुवाद किया। उसने सूफी दर्शन पर भी अपनी मीमांसा लिखी। ऐसा कहा जाता है कि यदि दारा को राजगद्दी मिल जाती तो अवश्य ही भारतीय शिक्षा और भारत का भाग्य कुछ और ही होता।

औरंगजेब—हिन्दू शिक्षा का शत्रु था। उसने हिन्दुओं के अनेक मन्दिर और विद्या-केन्द्रों को नष्ट करवा कर उनके स्थान पर मसजिदें, मकतब व मदरसे बनवा दिये थे। अकबर के प्रतिकूल औरंगजेब ने केवल इस्लामी शिक्षा को ही वास्तविक शिक्षा समझा और उसी के लिए उसने प्रयत्न किये। वास्तव में औरंगजेब कट्टर व संकीर्ण विचारों का होते हुए भी तुर्की, अरबी व फारसी का ज्ञाता था और कुरान व हदीस उसे कंठाग्र थीं। शाहजहाँ के समय में जो शिक्षा की अवनति प्रारम्भ हो गई थी वह औरंगजेब के काल में कुछ समय के लिए रुक गई। औरंगजेब ने शिक्षा के प्रसार के साथ ही शिक्षा का सुधार भी किया। उसने पाठ्य-क्रम में सुधार करके शिक्षा को अधिक जीवनोपयोगी बनाया। उसने राज्य की ओर से मकतबों और मदरसों का निर्माण कराया और उनके द्वारा इस्लामी धर्म-सिद्धान्तों व शिक्षा का प्रचार किया। राजकीय पुस्तकालय में भी उसने इस्लाम की असंख्य पुस्तकों का संग्रह कराया। बीजापुर के पुस्तकालय से भी औरंगजेब गाड़ियों में भरवाकर पुस्तकें लाया था।

औरंगजेब के समय में मुगल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया था। सूबेदारों के विद्रोह तथा मराठों के उत्कर्ष ने मुगल साम्राज्य की जड़ें हिला दीं। अतः ऐसी अवस्था में, जब कि देश में युद्ध, अव्यवस्था, लूट तथा विप्लव का अखण्ड साम्राज्य हो, शासकों से शिक्षा तथा साहित्य की उन्नति की आशा करना निर्मूल है। इतना अवश्य है कि प्रान्तों में अमीरों ने कुछ मदरसे स्थापित कर दिये थे। दिल्ली में गाजीउद्दीन का मदरसा इसमें उल्लेखनीय है। सुदूर गाँवों में हिन्दू और मुसलमानों के लिए प्रारम्भिक जीवनोपयोगी शिक्षा किसी भी प्रकार जीवित थी, किन्तु, अधिकांश मकतब और मदरसे जो कि मसजिदों से लगे हुए थे और अब तक राज्य की ओर से आर्थिक अनुदान पा रहे

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

थे बन्द हो गये और उनके विद्यार्थी तथा शिक्षक छिन्न-भिन्न हो गये। औरंगजेब के कुछ उत्तराधिकारियों ने शिक्षा-दीप को प्रज्ज्वलित रखने के कुछ क्षीण प्रयत्न किये किन्तु वह अठारहवीं शताब्दि में अपना कुछ भी प्रभाव प्रकट करने में असमर्थ रहे। मराठों व अंग्रेजों की विजय ने देश के मुस्लिम शिक्षा-केन्द्रों को नष्ट कर दिया।

हाँ, इतना निश्चय है कि जो शिक्षा इन मकतबों अथवा मदरसों के द्वारा दी जा रही थी वह जन-साधारण के लिए न होकर केवल उसी वर्ग विशेष के लिए थी जो इससे लाभान्वित होना चाहता था। इस प्रकार मुसलमान शासकों के शासन काल में देश में शिक्षा का विकास हुआ। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक दूसरे की शिक्षा-पद्धति से प्रभावित हुए और अन्त में जाकर एक समान शिक्षा पद्धति का विकास हुआ।

मुसलमानों के ७०० वर्ष के शासन-काल में युद्ध इत्यादि जारी रहे इससे बादशाहों का शिक्षा-सुधार अथवा विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं जा सका। शाही प्रयासों के अतिरिक्त व्यक्तिगत प्रयत्नों से भी इस युग में शिक्षा का पर्याप्त पोषण हुआ। वास्तव में देश के अमीरों व धनवान व्यक्तियों ने अपनी दानशीलता द्वारा शिक्षा का खूब प्रसार किया। व्यक्तियों के द्वारा बनाये हुए विद्यालय शाही मदरसों से अधिक स्थायी सिद्ध हुए, क्योंकि शाही मदरसे संरक्षण उठते ही नष्ट हो जाते थे। व्यवसाय और पदों के अभाव में तरुण विद्यार्थियों में आशा व उत्साह-संचार के लिये कोई उद्देश्य नहीं रह गया था। देश का व्यापार, कला-कौशल तथा कृषि सभी की अवस्था जर्जरित हो गई। परिणामत: इस युग में शिक्षा का घोर पतन हुआ और देशव्यापी अज्ञान व अशिक्षा के बादल जनसाधारण पर छा गये। अंग्रेजों तथा ईसाइयों ने हिन्दू तथा मुसलमानों के लिये कुछ पाठशालायें तथा बंगाल में टोल व मकतब और मदरसे खोले किन्तु यह प्रयास नगण्य था।

शिक्षा का संगठन :

इस्लामी शिक्षा को दो भागों में बाँटा जा सकता है—प्रारम्भिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा। इस्लामी प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य बालक को शब्द-ज्ञान कराना तथा धार्मिक प्रार्थनायें सिखाना था। यह कार्य मकतब में सम्पादित कराया जाता था। 'मकतब' का अर्थ उस स्थान से है जहाँ लिखने की शिथा प्रदान की जाती हो। ये मकतब मसजिदों से जुड़े रहते थे। कुछ धनी लोग अपने बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा के लिए घर पर भी शिक्षक रख लेते, तथापि मुहल्ले की साधारण जनता के बालक इन्हीं मकतबों में इकट्ठा होकर नियमानुसार विद्याध्ययन करते थे। मकतब-प्रवेश की एक विशेष विधि थी। जिस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा में 'विद्यारम्भ' विधि थी उसी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रकार इस्लामी शिक्षा में भी 'विस्मिल्लाह' रस्म थी। जब बालक चार वर्ष चार माह और चार दिन का हो जाता था तो मकतब-प्रवेश अथवा विस्मिल्लाह की रस्म मनाई जाती थी। नियत समय पर बालक को सम्बन्धियों के समक्ष नवीन वस्त्र पहिना कर बिठाया जाता था; फिर उसके सामने लिपि, कुरान की भूमिका तथा उसका ४५ वाँ अध्याय रक्खा जाता था और बालक को क्रम से पढ़ना सिखाया जाता था। सब न दोहराने पर केवल 'विस्मिल्लाह' कह देना ही पर्याप्त समझा जाता था। इस प्रकार बालक का विद्यारम्भ हो जाता था।

पाठ्य-क्रम :

शहजादों के विषय में उल्लेख मिलता है कि उन्हें अरबी और फारसी में कुछ लिखना व पढ़ना सिखाया जाता था। उनके शरीर को सैनिक शिक्षा के लिए तैयार किया जाता तथा उन्हें समानता व इंसाफ के सिद्धान्त सिखाये जाते थे। झगड़ों का योग्यता-पूर्वक निर्णय करना तथा कानून का अध्ययन भी कराया जाता था। अन्त में इन्हें इस्लाम धर्म की शिक्षा दी जाती तथा राष्ट्र कल्याण के विषय में शिक्षित किया जाता जिसकी सेवा का भार एक दिन उन पर आने वाला है। शहजादों के अतिरिक्त जन-साधारण के बालकों के लिए मकतब में प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था थी। मुसलमान बालकों के अतिरिक्त कुछ हिन्दू बालक भी इन मकतबों में फारसी पढ़ते थे। प्रारम्भ में बालक को लिपि का ज्ञान आँख तथा कान के मार्ग से कराया जाता था। इस प्रकार लिपि का ज्ञान होने पर कुरान का तीसवाँ भाग पढ़ाया जाता था, जिसमें दैनिक प्रार्थनायें तथा फातिहा है। उच्चारण पर बड़ा ध्यान दिया जाता था और इसी उद्देश्य से सादी का पन्दनामा भी पढ़ाया जाता था। प्राय: बालक को इन्हें समझने की आवश्यकता नहीं थी। इसके उपरान्त लिखने की शिक्षा दी जाती थी और फ़ारसी का व्याकरण रटाया जाता था। इसके बाद गुलिस्तां तथा बोस्तां समझा कर पढ़ाये जाते थे जिनसे नैतिक-शिक्षा भी मिलती थी। साथ ही लेखन-कला में प्रतिदिन चार-पाँच घण्टे लगाये जाते थे। फिर यूसुफ-जुलैखा, लैला मजनू, सिकन्दर नामा आदि काव्य पढ़ाये जाते थे। अवजद अथवा अक्षरों की संख्या से गणना (और शकुन विचार) भी सिखाया जाता था। अङ्कगणित, बातचीत का ढंग, पत्र-कला, अर्जीनवीसी आदि के उपरान्त फारसी की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त हो जाती थी। वर्णमाला की लिपि फारसी ही थी तथापि उर्दू उस समय अध्यापन का प्रमुख विषय थी; तथा कुरान के अतिरिक्त खालिकबारी, करीमा, मामकीमा भी पढ़ाई जाती थी। इस प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी साधारणत: शिक्षित होकर कुछ व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेते थे।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उच्च शिक्षा (मदरसा) :

मध्यकाल में भारत में इस्लामी उच्च शिक्षा मदरसों में दी जाती थी। ये वह स्थान थे जहाँ शिक्षक आकर भाषण करते थे। भिन्न-भिन्न विषयों के विद्वान् शिक्षक इन मदरसों में नियमित रूप से अध्यापन कार्य करते थे। मकतब की शिक्षा समाप्त करके विद्यार्थी मदरसे में प्रविष्ठ होता था। उस समय कोई विशेष रस्म अदा नहीं करनी होती थी। बहुधा इन मदरसों का प्रबन्ध वैयक्तिक प्रबन्ध-समितियों अथवा सम्मानित व दानशील नागरिकों द्वारा होता था। राज्य की ओर से आर्थिक सहायता अवश्य मिलती थी, किन्तु राजकीय शिक्षा-विभाग के अभाव में प्रबन्ध सरकार के हाथ में नहीं था।

मदरसों में उच्च शिक्षा दो भागों में विभाजित थी। (१) लौकिक और (२) धार्मिक। यह शिक्षा प्रायः दस या बारह वर्ष में समाप्त हो जाती थी। लौकिक-शिक्षा के अन्तर्गत अरबी व्याकरण, गद्य, साहित्य, तर्क-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, कानून, ज्योतिष, गणित, इतिहास, भूगोल, चिकित्सा, कृषि तथा रचना आदि विषय थे। शिक्षा का माध्यम अरबी था। औरंगजेब ने अरबी के स्थान पर मातृ भाषा के माध्यम पर ज़ोर दिया। धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत कुरान का गहन व विस्तृत अध्ययन तथा कुरान के भाष्य, मुहम्मद साहब की परम्परा, इस्लामी कानून तथा कभी-कभी सूफी धर्म के सिद्धान्त भी सम्मिलित थे। प्रारम्भ में मुसलमानों ने लौकिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया था किन्तु भारत में आकर उन्हें अपनी संख्या बढ़ाने के लिए धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता पड़ी। अतः कुछ समय उपरान्त इसका प्राधान्य होता गया। सम्राट् अकबर के समय में पुनः पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया गया। सम्राट् की नीति धार्मिक सहिष्णुता की थी, अतः भारतीय जनता को केवल इस्लामी शिक्षा देने में उसने अपनी सल्तनत के के लिए कुछ खतरा देखा; साथ ही यह शिक्षा भी उसे व्यावहारिक जीवन के लिए अनुपयोगी प्रतीत हुई। उसने हिन्दू प्रजा के बालकों के लिए भी मदरसे खुलवाये जहाँ फारसी के साथ ही साथ हिन्दू धर्म, दर्शन व साहित्य का अध्ययन कराया जाता था। राज्य सेवा का लाभ उठाने के लिए हिन्दुओं ने फारसी का अध्ययन तो प्रारम्भ कर ही दिया था जिसमें मंत्री टोडरमल ने विशेष सहायता की। किन्तु सम्राट् अकबर तत्कालीन प्रचलित शिक्षा पद्धति तथा पाठ्यक्रम से संतुष्ट नहीं था। उसने पद्धति में सुधार किया और पाठ्यक्रम को भी विस्तृत करके अधिक उपयोगी बनाया। आएने-अकबरी में अबुलफजल ने तत्कालीन शिक्षा के विषय में इस प्रकार लिखा है :—

"प्रत्येक बालक के द्वारा नीति-शास्त्र, अंकगणित, अंकगणित-समस्याऐं, कृषि-शास्त्र, क्षेत्रमिति, ज्यामिति, ज्योतिष विद्या, मुखाकृतिविद्या, गृहशास्त्र, राजतंत्र, औषधि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ज्ञान, तर्कशास्त्र, तिवी (चिकित्सा तथा शरीर विज्ञान), रियाजी (गणित, ज्योतिष, संगीत तथा शिल्पज्ञान) और इलाही (धर्म ज्ञान तथा दर्शन) और इतिहास, ये सभी ज्ञान क्रमशः प्राप्त किये जा सकते हैं। संस्कृत पढ़ने वाले विद्यार्थियों को व्याकरण, न्याय, वेदान्त और पातंजलि का अध्ययन करना चाहिए। किसी को भी उन बातों की अवहेलना नहीं करनी चाहिये जिनकी कि वर्तमान देश व काल की माँग है।"

यद्यपि शिक्षा अथवा धर्म के विषय में औरंगजेब इतना उदार नहीं था जितना कि अकबर, तथापि अपनी संकीर्णता की अपेक्षाकृत भी वह एक समर्थ व योग्य शासक था। उसने इस बात का अनुभव किया कि विद्यार्थियों का अधिकांश समय केवल शब्द तथा व्याकरण सीखने में ही व्यतीत होता है। धार्मिक शिक्षा के अनुकूल होते हुए भी उसे दम्भ व आडम्बर से अरुचि थी। वह ऐसी शिक्षा-पद्धति में विश्वास करता था जो बालक को व्यावहारिक जगत के अधिक उपयुक्त बना दे। केवल प्राचीन भाषाओं के साहित्य के अध्ययन में ही वह विद्यार्थियों के यौवन को नष्ट नहीं करना चाहता था। वस्तुतः शिक्षा के पाठ्य विषयों में वह सच्चा इतिहास, भूगोल, दर्शन, युद्ध-कला, राजनीति व कूटनीति इत्यादि को सम्मिलित करके उच्च शिक्षा को अधिक उपादेय बनाने के पक्ष में था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मदरसों में शिक्षा के विषय विभिन्न थे। इन मदरसों की तुलना वर्तमान कॉलिजों से की जा सकती है। मध्यकालीन भारत में भी तत्कालीन यूरोप की भाँति विद्यार्थियों के पुस्तकीय व शास्त्रीय ज्ञान पर ही अधिक जोर दिया जाता था। 'शिक्षा जीवन के लिये' न होकर केवल 'शिक्षा शिक्षा के लिये' रह गई थी और प्रधानतः आडम्बर युक्त पाण्डित्य-प्रदर्शन का एक साधन बन गई थी।

इतिहास अवश्य इस युग की विशेषता रहा है। प्राचीन भारतीय परम्परा में तुलनात्मक दृष्टि से अवश्य ही सच्चे इतिहास का अभाव था, किन्तु मध्य युग में हम प्रायः सभी मुसलमान सुल्तानों के दरबारों में इतिहासकार पाते हैं। कानून का अध्ययन भी इन मदरसों में कराया जाता था। ब्राह्मणीय व बौद्ध-शिक्षा की भाँति इस्लामी शिक्षा का आधार भी धार्मिक था, तथा इस युग में कानून भी कुरान इत्यादि धर्म ग्रन्थों तथा परम्परागत रीति-रिवाजों पर आधारित था। चिकित्साशास्त्र में इस युग में प्रायः यूनानी विधि का अनुसरण किया जाता था, किन्तु इस दृष्टि से मुसलमानी शिक्षा प्राचीन भारतीय शिक्षा की अपेक्षा कुछ कम विकसित और निम्न प्रकार की रही। यद्यपि संगीत सर्वप्रिय विषय नहीं था, तथापि बहुधा पढ़ाया जाता था। राजधानियों में तो कुछ मदरसे केवल संगीत के ही चलते थे। राज-दरबारों में संगीतज्ञों का विशेष सम्मान होता था। तानसेन अकबर के दरबार का एक उच्चकोटि का कलाकार था। शिल्प-कला व हस्त-कला

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

की दृष्टि से मुसलमानों ने परम्परागत प्रचलित भारतीय पद्धति को ही अपनाया और उसी में प्रशिक्षण भी दिया। तथापि इस पर तुर्किस्तान और फारस इत्यादि इस्लामी देशों के शिल्प की छाप भी स्पष्ट थी। तुर्क लोग अच्छे भवनों के बड़े शौकीन थे। अतः उन्होंने मध्य ऐशिया से मुसलमान शिल्पकारों को भी बुलाया। शिल्प-कला व वस्तु-कला की शिक्षा भारत में इस समय परम्परा के रूप में ही दी जाती थी।

शिक्षण विधि :

मकतब में शिक्षण विधि अत्यन्त सादी थी। जब से बालक ठीक प्रकार से बोलना सीखता था उसे 'कलमा' कंठाग्र करा दिया जाता था। तदुपरान्त उसे कुरान की कुछ आयतें याद कराई जाती थीं। लगभग ७ वर्ष की अवस्था में उसे नियमित रूप से कुरान आरम्भ कराकर धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। कुछ लिखना-पढ़ना तथा साधारण हिसाब-किताब भी सिखा दिये जाते थे। आधुनिक समय में भी जो मकतब विद्यमान हैं उनमें यही शिक्षण-पद्धति चल रही है।

कंठस्थ करने तथा रटने की विधि का अनुसरण इस काल में भी किया जाता था। मकतब में प्रधानतः शिक्षण-विधि मौखिक थी। सम्राट् अकबर ने इस बात का अनुभव किया कि विद्यार्थियों का अधिकांश समय केवल निरर्थक शब्दों के सीखने में में व्यतीत हो जाता है। अतः उसने शिक्षण-विधि में सुधार किये कि स्कूल का प्रत्येक बालक सर्व-प्रथम वर्णमाला के अक्षर लिखना सीखे तथा उनकी बनावट का अभ्यास करे। प्रत्येक अक्षर का नाम व बनावट दो दिन में सीखना चाहिये। तत्पश्चात् उसे संयुक्ताक्षर सीखने चाहिये। इसका अभ्यास एक सप्ताह तक होना चाहिये; और तब बालक को कुछ गद्य और पद्य कंठाग्र कराना चाहिये तथा प्रार्थना के लिए कुछ छन्द और नीति-वाक्य याद करना चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बालक स्वयं सीखने का प्रयास करे किन्तु शिक्षक भी थोड़ा पथ-प्रदर्शन कर सकता है। इस प्रकार बालक को प्रतिदिन के अभ्यास के द्वारा लिखना-पढ़ना खूब अच्छी प्रकार सीख लेना चाहिये। शिक्षक को विशेषतः पाँच बातों का ध्यान रखना चाहिये : अक्षर ज्ञान, शब्दार्थ, आधा-क़ाफ़िया, छन्द और पूर्व पाठ। अकबर ने शिक्षण की जो यह वैज्ञानिक विधि चलाई वह अधिक समय तक न रह सकी और क्रमशः इसका पतन हो गया, क्योंकि औरंगजेब को पुनः हम अरबी और फारसी की वर्णमाला सीखने तथा 'एक दीर्घ व अनन्त कार्य शब्द' सीखने में समय नष्ट होने की शिकायत करते हुए पाते हैं।

मदरसों में भी अधिकांशतः विधि मौखिक थी। शिक्षक भाषण-विधि को अपनाते थे जैसा कि 'मदरसा' शब्द के अर्थ से प्रतीत होता है। साथ ही विद्यार्थियों में ग्रन्थाव-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लोकन की आदत को भी प्रोत्साहन दिया जाता था। 'तिब्बी रियाजी और इलाही' तथा संगीत, चिकित्सा तथा हस्तकला की व्यावहारिक व प्रायोगिक शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास पर व्यक्तिगत ध्यान दिया जाता था। प्रत्येक विद्यार्थी को अपना-अपना अलग-अलग पाठ्य-विषय तथा पाठ दे दिया जाता था जिससे वह व्यक्तिगत तथा स्वतन्त्र रूप से प्रगति करता था। कमजोर विद्यार्थियों के साथ उसकी प्रगति अवरुद्ध नहीं हो पाती थी। यद्यपि शिक्षण-कार्य प्रधानत: कुशल शिक्षकों द्वारा किया जाता था, तथापि बौद्ध-कालीन शिक्षा की भाँति 'मानीटर-प्रथा' भी थी; अर्थात् गुरु की अनुपस्थिति में अथवा गुरु की आज्ञा से उसका कार्य-भार हलका करने के उद्देश्य से उच्च कक्षाओं के कुशल विद्यार्थी छोटी कक्षाओं को पढ़ाने का कार्य करते थे। पढ़ने लिखने का कार्य अलग-अलग सिखाया जाता था; अर्थात् एक कार्य पूरा होने पर ही कुछ दिनों पश्चात् दूसरे को प्रारम्भ कराया जाता था। इससे विद्यार्थियों की गति मन्द होने के कारण पर्याप्त समय नष्ट होता था। अकबर ने इसके लिये प्राचीन भारतीय परम्परा को अपनाकर लेखन और पाठन एक ही साथ कर दिया।

मदरसों में, जहाँ उच्च-शिक्षा के लिये धर्म, तर्कशास्त्र दर्शन तथा राजतन्त्र इत्यादि विषयों की व्यवस्था थी, तर्क-विधि को भी अपनाया जाता था। राजदरबारों में तो बहुधा महत्वपूर्ण विषयों पर शास्त्रार्थ हुआ करता था। फिरोज तुगलक तथा अकबर के दरबार इस प्रकार के शास्त्रार्थों के लिए प्रसिद्ध हैं।

स्वाध्याय अथवा विद्यार्थी द्वारा स्वतन्त्र अध्ययन भी मध्य-युग में एक प्रमुख विधि थी। अध्यापकों के यत्र-तत्र सहायता करने के उपरान्त विद्यार्थी एकान्त में स्वाध्याय करते थे। इसमें रटने से भी काम लिया जाता था।

दन्ड-विधान :

अपराध करने वाले विद्यार्थियों के लिये कठिन शारीरिक दण्ड की व्यवस्था थी। राज्य की ओर से स्थायी नियमों के अभाव में शिक्षक बालकों को स्वेच्छा से दण्ड देने के लिए स्वतन्त्र थे। अनुशासन साधारण नैतिक व व्यवहारिक शिष्टाचार तथा विनयशीलता विद्यार्थियों में अनिवार्यत: देखी जाती थी। इन्हें भंग करने वाले विद्यार्थी को बेंत, कोड़ा तथा घूँसों द्वारा दण्ड दिया जाता था। आधुनिक काल तक चली आने वाली निर्दय व हास्यप्रद 'मुर्गा' बनाने की प्रथा का भी संभवत: इसी युग में आविष्कार हुआ था। कुछ अपराधों के लिए बालक को गठरी बांध कर खूंटी पर भी लटका दिया जाता था। इस युग के शिक्षक जहाँ अनुशासन तथा अध्ययन के नाम पर कठोर दण्ड प्रदान करते थे वहाँ योग्य, कुशल तथा चरितवान् विद्यार्थियों को पारितोषिक देकर प्रोत्साहित भी करते

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

थे। किसी विशेष अध्ययन के समाप्त कर लेने पर विद्यार्थियों को तमगे तथा सनदें अर्थात् प्रमाण-पत्र देने की प्रथा थी। राज-दरबारों से विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ भी प्रदान की जाती थीं, तथा इन मदरसों के स्नातकों को राज्य में न्यायालय, सचिवालय तथा सेना में उच्च पदों पर भी आसीन किया जाता था। कुछ सम्मानित अमीर अथवा नागरिक भी विद्यार्थियों को पारितोषिक देकर प्रोत्साहित करते थे।

शिष्य-गुरु-सम्बन्ध :

मध्य काल में इस्लामी-शिक्षा के अन्तर्गत गुरु का समाज में एक विशेष स्थान होता था। शिष्य गुरुओं का आदर करते थे और उनकी सेवा भी करते थे। प्राचीन भारतीय शिक्षा के आदर्शों की भाँति इस युग में भी गुरु अपने शिष्यों को पुत्रवत् समझता था। मकतवों में पढ़ने वाले बालक तो प्राय: दिन में जब वे पढ़ने जाते थे, तभी अपने शिक्षक के सम्पर्क में आते थे, किन्तु कुछ मदरसों में, जिनमें छात्रावासों की व्यवस्था थी, शिक्षक और विद्यार्थी एक ही छत के नीचे निवास करते थे और पारस्परिक एक दूसरे के अधिक निकट आने का लाभ उठाते थे। अनुशासन की समस्या अध्यापक के समक्ष अधिक नहीं थी। समाज में शिक्षक का आदर होने के कारण विद्यार्थी स्वाभाविक रूप से विनयशील और आज्ञाकारी होते थे। गुरु-सेवा विद्यार्थी का कर्त्तव्य माना जाता था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि गुरु की कृपा तथा सम्पर्क से ही सच्चा ज्ञान प्राप्त करना सम्भव था। किन्तु इतना मानना पड़ेगा कि गुरु-भक्ति का आदर्श अब इतना उच्च नहीं रहा जितना कि प्राचीन काल में था। गुरुओं के लिए शिष्यों में कुरबानी की भावना का बहुत कुछ ह्रास हो चला था। औरंगजेब के द्वारा उसके गुरु मुल्ला शाह सालेह की दुर्दशा प्रसिद्ध है जिसमें सिंहासन पर बैठने के बाद औरंगजेब ने उससे मिलने से मना कर दिया था और अन्त में मिलने पर उससे अत्यन्त कठोरता का व्यवहार किया तथा उसे अज्ञातवास की आज्ञा दी।

छात्रावास :

मकतवों के विद्यार्थियों के लिए छात्रावास की कोई व्यवस्था नहीं रहती थी। अधिकतर मदरसों के ही साथ छात्रावास की व्यवस्था थी। इन मदरसों तथा छात्रवासों को बड़ी-बड़ी जागीरें मिली होती थीं जिनसे इनका दैनिक व्यय चलता था। ख्याति व प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए अमीर लोग छात्रावासों का निर्माण कराते थे। प्राचीन वैदिक तथा बौद्धकालीन छात्रावासों (आश्रमों) की अपेक्षा इन छात्रावासों का जीवन अधिक सुखदायक तथा सुविधाजनक था। रहन-सहन की दुरूहता पर अधिक जोर नहीं दिया जाता था। विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के आदर्शों में भी परिवर्त्तन हो गया था।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कालीन, कोर्मा, तेल और तश्तरी-मिष्ठान्न इत्यादि जो प्राचीन काल में विद्यार्थी के लिए वर्जित थे, वे इस युग में उसके लिए प्रदान किये जाने लगे। प्राचीन काल के आश्रम प्राय: निर्जन वनों में स्थित होते थे जहाँ विद्यार्थियों को स्वावलम्बन तथा ब्रह्मचर्य का कठोर पाठ पढ़ाया जाता था, किन्तु मुसलमान-शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों के लिए छात्रावास नगर के मध्य में स्थित होते थे जहाँ यथासम्भव संरक्षकों द्वारा विद्यार्थियों के आराम के सभी उचित उपकरणों को जुटा दिया जाता था। जीवन में अनुशासन और कठोरता इस युग में कम हो चली थी।

स्त्री शिक्षा :

मुसलमान स्त्रियाँ बहुधा पर्दा प्रथा में विश्वास रखती थीं। अत: वे नियमानुसार लड़कों की भाँति मकतब और मदरसों में नहीं जाती थीं। कुछ बालिकायें मुहल्ले से एकत्रित होकर कभी-कभी मसजिद में लगे हुए मकतब में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए पहुँच जाती थीं जहां केवल लिखना-पढ़ना भर सीख लेना ही उनका उद्देश्य रहता था। इन दिनों स्त्री-शिक्षा का व्यापक रूप प्रचलित नहीं था। जो कुछ भी शिक्षा थी वह बड़े नगरों तक ही सीमित थी। जन-साधारण की बालिकाओं के लिए पृथक शिक्षा व्यवस्था नहीं थी। अत: उनमें शिक्षा भी अपेक्षाकृत कम ही थी। मुगलकाल में भी स्त्री-शिक्षा किसी न किसी रूप में प्रचलित थी। शाही घरानों तथा अमीर उमरावों की पुत्रियों को घरों पर व्यक्तिगत रूप से शिक्षा दी जाती थी। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि मध्यमवर्ग के हिन्दुओं की बालिकायें भी लड़कों के साथ अथवा घरों पर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर लेती होंगी। बालिकाओं की शिक्षा के लिए पाठ्य-क्रम प्रधात: धर्म-ग्रन्थों का अवलोकन तथा गृह-शास्त्र था। कुछ राजकुमारियाँ साहित्य व संगीत में भी विदुषी होती थीं। बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम ने 'हुमायूँनामा' लिखा। इसी प्रकार सुल्ताना रजिया एक विदुषी व योग्य महिला थी। वह राजतन्त्र, युद्धकला तशा शासन में पारंगत थी। सुल्ताना सलीमा, नूरजहाँ, मुमताजमहल तथा जहाँनारा बेगम ने भी कला व साहित्य का अध्ययन किया। नूरजहाँ तो एक अत्यन्त ही योग्य सम्राज्ञी थी जो कि अपने पति के राज-काज का भी संचालन करती थी। औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा अरबी और फारसी की एक स्वाभाविक कवियत्री थी। 'दीवाने मखफी' उसके काव्य की एक अमर कृति है।

ललित कला व हस्तकला :

यद्यपि भारत में मुसलमानी राज्य प्राय: युद्धों तथा विप्लवों में ही व्यतीत हुआ, तथापि इस युग में भी ऐसे समय आये जब देश में पूर्ण शान्ति रही तथा कला-कौशल व साहित्य की पर्याप्त उन्नति हुई। साधारण कोटि की कारीगरी में मुसलमानों ने प्रचलित

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हिन्दू हस्तकलाओं को ही अपनाया। कुछ हस्तकलायें तो कला व उच्चता की चरम-सीमा तक पहुँच गई। हाथी दाँत का काम, आभूषण निर्माण, रेशम व जरी का काम, मलमल, जलयान-निर्माण तथा युद्ध-सामग्री का निर्माण इत्यादि प्रमुख शिल्प थे जिनका अनुसरण जीविका तथा कला दोनों के लिये किया जाता था। राज-दरबारों तथा अमीर उमरावों ने इन हस्तकलाओं को पर्याप्त संरक्षण दिया; परिणामत: इनकी और भी अधिक उन्नति हुई। इन शिल्पों का प्रशिक्षण प्राय: परम्परागत विधि से घरों अथवा कारखानों में ही होता था। इनके लिये आधुनिक प्रकार के औद्योगिक स्कूल नहीं थे।

ललित कला की दृष्टि से तो मुसलमान काल स्वर्ण युग कहा जाता है। वास्तव में अधिकांश सुल्तान व शाहंशाह विलासी थे और सांसारिक पदार्थों की चकाचौंध में ही अपने ऐश्वर्य भरे जीवन विताते थे। अत: ऐसी अवस्था में ललित कलाओं को संरक्षण तथा उनकी उन्नति स्वाभाविक ही है। इस युग में संगीत और चित्रकला की पर्याप्त उन्नति हुई। राजदरबारों में उच्चकोटि के गायक व चित्रकार रहते थे। मुगलकाल के चित्र वर्तमान संसार के लिए भी एक आश्चर्य की वस्तु हैं। राज-दरबारों में नृत्य-कला का भी प्रचार था। जनसाधारण में भी जन-नृत्य की प्रथा थी। नृत्य-कला व संगीत सिखाने के लिए उस्ताद भी रखे जाते थे। मुसलमान शासकों को भवन-निर्माण का शौक था। अत: वास्तुकला की इस युग में वहुत उन्नति हुई। आगरे का ताजमहल तथा अन्य स्थानों पर बनी हुई विशाल व आश्चर्यजनक इमारतें आज भी अतीत के गौरव की स्मृति दिला रही हैं।

सैनिक-शिक्षा :

मुसलमानों को भारत में आकर अपना राज्य स्थापित करने के लिए निरन्तर युद्ध लड़ने पड़े। अत: इस युग में युद्ध-कला का खूब विकास हुआ। प्रारम्भिक सुल्तानों के समय में भारत में सैनिक-शिक्षा का अच्छा प्रचार था। शाहजादों को प्रारम्भ से ही सैनिक शिक्षा दी जाती थी। यह निर्विवाद सत्य है कि मुसलमानों की युद्ध-कला हिन्दुओं से उत्तम कोटि की थी। यद्यपि शारीरिक बल और व्यक्तिगत निपुणता में हिन्दू सैनिक किसी भी प्रकार से निम्न नहीं थे, तथापि मुसलमानों की प्रणाली अपनी एक विशेष थी। मुगल-काल में युद्धकला का और भी अधिक विकास हुआ। सैनिक शिक्षा में बहुधा राजकुमारों को अश्वारोहण, भाला, तीर व तलवार चलाना, किले का घेरा डालना तथा अन्य प्रकार से सैनिक-विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। साधारण सैनिकों का भी प्राय: यही पाठ्य-क्रम था।

साहित्य का उत्कर्ष :

'साहित्य समाज का दर्पण है' कथन के अनुसार मध्यकालीन साहित्य के द्वार

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हम उस समय की शिक्षावस्था का अनुमान भी सहज ही लगा सकते हैं। तत्कालीन साहित्य का सृजन इस बात का प्रमाण है कि उस युग में शिक्षा का पर्याप्त प्रचलन था और वह उच्च कोटि की थी।

वास्तव में राज-दरबारों के संरक्षण में फारसी साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। अमीर खुसरो, जो कि खिलजी और तुगलक सुल्तानों के दरबार में रहा, एक उच्चकोटि का कवि था। उसकी रचनाएँ आज भी चाव के साथ पढ़ी जाती हैं। मीरहसन दहलवी ने मुहम्मद तुगलक के समय में उच्चकोटि की कविता की। उसने एक दीवान की रचना की तथा शेख निजामुद्दीन औलिया के संस्मरण लिखे। इन दोनों महाकवियों की रचनाएँ भारत से बाहर भी पढ़ी जाती थीं। १३वीं शताब्दी में इतिहास, काव्य तथा कथा साहित्य की खूब रचना हुई।

राजदरबारों में रहने वाले इतिहासकारों ने बहुत सी रचनाएँ कीं। जियाउद्दीन बरनी का 'तारीखे फीरोजशाही' तथा शम्स शिराज अफीफ का 'तारीखे फीरोजशाही' और यहिया बिन अब्दुल्ला का 'तारीखे मुबारकशाही' कुछ प्रसिद्ध रचनाओं के उदाहरण हैं।

बहुधा ये मुसलमान साहित्यकार संस्कृत के भी विद्वान् होते थे। अलबिरूनी, जो १०वीं शताब्दी में भारत आया, संस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित था। उसने दर्शन तथा ज्योतिष के संस्कृत ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद किया। उसकी 'तारीखे हिन्द' भारतीय संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। चौदहवीं शताब्दी में फिरोज तुगलक ने दर्शन, तंत्र तथा शकुन-विचार के एक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ का फारसी में अनुवाद कराया और इसका नाम 'दलायल फीरोजशाही' रखा। सिकन्दर लोधी के समय में चिकित्सा-शास्त्र की एक रचना का संस्कृत से फारसी में अनुवाद हुआ था।

मुगलकाल में तो साहित्य की और भी अधिक उन्नति हुई। स्वयं बाबर अरबी, फारसी और तुर्की भाषा का विद्वान् तथा कवि था। उसने तुर्की भाषा में अपने 'संस्मरण' लिखे हैं। मुगलों की धर्म-सहिष्णुता की नीति ने देश में एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया था जिसमें उच्चकोटि के साहित्य तथा कला का सृजन होता है। अकबर के समय में फारसी तथा हिन्दी दोनों की बड़ी उन्नति हुई। एक नई भाषा 'उर्दू' के नाम से चल पड़ी थी और उसमें भी कुछ रचना प्रारम्भ हो गई थी।

अकबर के समय में कुछ इतिहास भी लिखे गये। इनमें से मुल्ला दाऊद की 'तारीखे अलफी', अबुल फजल की 'आइने अकबरी' तथा 'अकबरनामा' तथा बदाउनी की 'मुन्तखाबूत तवारीख' अधिक प्रसिद्ध हैं। अबुल फजल उस समय का सबसे महान्

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लेखक, कवि, इतिहासकार, प्रवन्धक तथा तर्कशास्त्री था। सम्राट् अकबर की आज्ञा से बहुत सी संस्कृत रचनाओं के फारसी में अनुवाद भी हुए। बदाउनी ने रामायण तथा महाभारत के कुछ भाग फारसी में अनुवादित किए। हाजी इब्राहीम ने हिन्दी में अथर्ववेद का अनुवाद किया तथा फैजी ने गणित का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लीलावती' का फारसी में अनुवाद किया। गिजाली तथा फैजी इस युग के प्रसिद्ध फारसी कवि थे।

फारसी साहित्य तथा मुस्लिम शिक्षा के साथ ही साथ हिन्दी साहित्य और भारतीय प्राचीन शिक्षा-पद्धति भी फल-फूल रही थी जिसका वर्णन आगे किया जायगा। इस प्रकार साहित्य—गद्य और पद्य, इतिहास तथा दर्शन-साहित्य का सृजन इस बात के द्योतक हैं कि तत्कालीन शिक्षा-पद्धति में उच्च कोटि के विद्वान्, कवि, साहित्यकार तथा इतिहासकार उत्पन्न करने की क्षमता थी।

विशेषतायें :

यहाँ हम संक्षेप में इस्लामी शिक्षा की विशेषताओं का उल्लेख करेंगे :—

१. **धार्मिक व सांसारिक शिक्षा का समन्वय :** इस्लामी शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी धार्मिक व सांसारिक शिक्षा का एकीकरण है। इस्लाम परलोक अथवा पुनर्जन्म के सिद्धान्तों को नहीं मानता। अत: इससे सांसारिक वैभव अथवा इसी लोक की सम्पदाओं का विशेष महत्व है। इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमान शिक्षा-शास्त्रियों ने जीवनोपयोगी शिक्षा पर अधिक जोर दिया। और साथ ही एक नये देश में उन्होंने धार्मिक कट्टरता व उग्रता को भी अपने लिए अनिवार्य समझा। अत: शिक्षा पर भी उनके धार्मिक दृष्टिकोण की छाप पड़ना अनिवार्य था। समय-समय पर धार्मिक गुरुओं ने ज्ञान के महत्व का प्रतिपादन किया और उसे व्यावहारिक जीवन के लिए आवश्यक बतलाया।

२. **व्यावहारिकता :** शिक्षा केवल शिक्षा के लिए ही नहीं थी, अपितु वह जीवन के लिये थी। आध्यात्मिक शून्यवाद की ओर मुसलमानों की अभिरुचि नहीं थी। वे इसी संसार में अपने जीवन काल में ही अधिक से अधिक कर्म कर जाना चाहते थे। अत: शिक्षा का भी ऐसा रूप रहा जो कि विद्यार्थियों को भविष्य के लिए तैयार करता था।

३. **शिक्षा की अनिवार्यता :** मुसलमानी शिक्षा को जीवन के लिए अनिवार्य समझा जाता था; क्योंकि कुरान के आदेशों के अनुसार जो मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है, वही ईश्वर की भक्ति करता है। इस प्रकार की धार्मिक पृष्ठभूमि के कारण विद्या की प्राप्ति या शिक्षा की व्यापकता बढ़ गई। सांसारिक सम्पन्नता के लिए भी शिक्षा को

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अनिवार्य समझा गया। यही कारण था कि बहुत से धर्म-प्रेमी नागरिकों तथा सुल्तानों व शाहजादों ने मुसलमान जनता को शिक्षित बनाना अपना धार्मिक-कर्त्तव्य समझा।

४. **सरस साहित्य व इतिहास का विकास** : मुसलमानी शिक्षा की एक विशेषता यह भी रही कि इसमें सरस साहित्य व इतिहास का पर्याप्त विकास हुआ। इसके पूर्व जो कुछ भी प्राचीन इतिहास हमें मिलता है वह पौराणिक गाथाओं के रूप में है। सच्ची सांसारिक व ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमिक वर्णन हमें मुसलमानों से पूर्व बहुत कम मिलता है। किन्तु मुसलमान शासकों ने स्वयं अपने संस्मरणों के रूप में इतिहास लिखे तथा दरबारों में प्रसिद्ध इतिहासकारों को संरक्षण दिया। मुसलमानों के सौन्दर्य प्रेमी होने तथा उनकी प्रवृत्तियाँ सांसारिक भोग-विलास की ओर होने के कारण सरस साहित्य का भी उस युग में सृजन हुआ। अतः तत्कालीन शिक्षा के पाठ्य-क्रम में भी साहित्य के विभिन्न अंग जैसे गद्य, पद्य, कथा तथा काव्य को सम्मिलित किया गया।

५. **व्यक्तिगत सम्पर्क** : प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति की भाँति मुसलमानी शिक्षा-पद्धति में भी गुरु और शिष्य का व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हो जाता था। मकतब तथा मदरसों में अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी पर अलग-अलग ध्यान देते थे। प्रत्येक विद्यार्थी का पाठ स्वतन्त्र रूप से उसकी योग्यता तथा क्षमता के अनुसार चलता था। स्मरण रहे कि इस युग में कक्षा-प्रणाली नहीं थी। इसका परिणाम यह होता था कि योग्य व कुशल विद्यार्थियों को अपनी प्रतिभा दिखाने का पूर्ण सुअवसर मिलता था।

इस्लामी शिक्षा के दोष :

उपर्युक्त गुणों की अपेक्षा इस शिक्षा-पद्धति में कुछ दोष भी थे। प्रमुख दोष निम्नलिखित थे :—

१. **दृष्टिकोण अधिक सांसारिक** : इस्लाम के आधारभूत सिद्धान्तों के कारण मुसलमानों ने इस लोक की सम्पदा पर ही अधिक जोर दिया। परिणामतः शिक्षा में आध्यात्मिकता का अभाव रहा। शिक्षा का उद्देश्य राज्य में मान, पद, व नौकरी पाना इत्यादि ही रह गया। इस लालच में पड़े हुए विद्यार्थी जीवन-दर्शन की उस गहराई तक नहीं पहुँच सके जो कि प्राचीन भारत की एक विशेषता थी।

२. **शिक्षालय अस्थायी** : दूसरा दोष मुसलमानी शिक्षा का यह था कि मकतब और मदरसे आर्थिक सहायता के अभाव में बहुधा बन्द हो जाया करते थे और कुछ ही दिनों में जंगली जानवरों और चिड़ियों के निवास स्थान बन जाते थे।

३. **अरबी व फारसी भाषाओं का आधिपत्य** : प्रारम्भ से ही मकतब में फारसी की वर्णमाला रटाई जाती थी। उच्च शिक्षा का माध्यम भी फारसी था। राज्य

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भाषा फारसी होने के कारण इसका अध्ययन अनिवार्य हो गया था। यहाँ तक कि हिन्दुओं को भी राज्य में पद पाने की इच्छा से फारसी का अध्ययन करना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रान्तीय भाषाओं का विकास न हो सका।

४. **शिक्षा की व्यापकता का अभाव** : इस्लाम-धर्म में शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य बतलाया गया है; किन्तु इसकी अपेक्षाकृत भी मुसलमानी शिक्षा व्यापक न हो सकी। नगरों में जहाँ पर मुसलमानों के उपनिवेश बने हुए थे, वहीं शिक्षा-केन्द्र बन गये किन्तु जन-साधारण की शिक्षा की अवहेलना रही। वस्तुत: सरकार के द्वारा कोई सुसंगठित तथा नियमित शिक्षा-विभाग जैसी वस्तु की स्थापना नहीं की गई थी, जिसका एकमात्र उद्देश्य जनता को शिक्षित करना तथा शिक्षा-सिद्धान्तों का विकास करना रहा हो। शासकों तथा अमीर-उमरावों ने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर अथवा कीर्ति व सम्मान के लालच से मकतबों और मदरसों की स्थापना कराई थी। उनकी मृत्यु के उपरान्त वे मंदरसे प्राय: नष्ट हो जाया करते थे। इसके अतिरिक्त अधिकतर मुसलमान शासकों का धार्मिक-दृष्टिकोण कट्टर होने के कारण हिन्दू जनता की शिक्षा की अवहेलना की गई। उन्होंने केवल अपनी मुसलमान प्रजा की शिक्षा का ही प्रबन्ध किया। इतना ही नहीं औरंगजेब इत्यादि कट्टरपंथी शासकों ने तो हिन्दू मन्दिरों तथा विश्वविद्यालयों को विध्वंस करके उनके स्थान पर इस्लामी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

५. **स्त्री शिक्षा की अवहेलना** : मुसलमानों में पर्दा-प्रथा के कारण स्त्रियाँ शिक्षा से बहुधा वंचित रहीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि शहजादियों तथा अमीर सरदारों की पुत्रियों की शिक्षा-व्यवस्था उनके महलों में ही हो जाया करती थी और उनमें से कुछ तो विदुषी भी हुईं; किन्तु सर्व-साधारण की लड़कियों के लिए शिक्षा की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। मुहल्ले की मसजिद में ही दो चार बालिकायें लड़कों के साथ बैठकर लिखना-पढ़ना भर सीख लेती थीं।

६. **लेखन व पाठन की असमानता** : मुसलमान शिक्षा-पद्धति के अनुसार पहिले पहल शब्दों के पढ़ने का अभ्यास कराया जाता था और उसकी समाप्ति पर लिखने का। इससे बालक का संतुलित विकास नहीं हो पाता था और व्यर्थ में ही पर्याप्त समय नष्ट हो जाया करता था।

७. **अन्य दोष** : इसके अतिरिक्त स्वाध्याय का अभाव, रटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना, मौलिकता का अभाव, विद्यार्थियों के आराम व विलास की प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव तथा उच्चादर्शों का अभाव, कठिन शारीरिक दण्ड-व्यवस्था तथा विद्यार्थियों में शुद्ध तार्किक अभिरुचि उत्पन्न करने की प्रवृत्ति इत्यादि मुसलमानी शिक्षा के अन्य दोष हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इतना होते हुए भी इस्लामी शिक्षा की अपनी एक विशेषता भी थी जिसने सम्पूर्ण मुस्लिम समाज को एक सूत्र में बाँध कर उनके समक्ष जीवन का एक नवीन रूप रखा। मुस्लिम संस्कृति की एकता का एक मात्र श्रेय उसकी शिक्षा-प्रणाली को ही है। इस शिक्षा-प्रणाली के द्वारा जनता न केवल अपना सम्बन्ध मध्य एशिया के अन्य इस्लामी देशों से बनाये रखने में सफल हो सकी, अपितु भारतीय धर्म परिवर्तित मुसलमानों में भी एक साम्य व भ्रातृत्व-भावना का समावेश कर सकी।

प्रमुख शिक्षा केन्द्र :

मुसलमानों ने भारत में आकर अपनी बस्तियाँ बसा लीं। ये बस्तियाँ धीरे-धीरे बड़े-बड़े नगरों के रूप में बदल गई। प्रायः ये नगर ही इस्लामी शिक्षा व संस्कृति के केन्द्र बन गये। प्रारम्भिक शिक्षा मकतबों में दी जाती थी, जो कि मसजिदों से लगे होते थे। ये मसजिद प्रायः प्रत्येक नगर, ग्राम और मुहल्ले में बनी होती थी। अतः प्रारम्भिक-शिक्षा इन्हीं मसजिदों में विकसित हुई। उच्च-शिक्षा मदरसों में दी जाती थी। प्रायः प्रत्येक नगर में एक या अधिक मदरसा होता था। मुसलमान शासकों की राजधानी होने, किसी अमीर अथवा सूबेदार का निवास-स्थान होने अथवा किसी प्रकार से धार्मिक महत्व रखने अर्थात् दरगाह इत्यादि पर ही कोई भी नगर शिक्षा का केन्द्र बन जाता था। नीचे हम इन केन्द्रों में से कुछ प्रमुख केन्द्रों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

१. आगरा : आगरा नगर की नींव सिकन्दर लोदी ने डाली थी। सिकन्दर ने आगरा को एक प्रमुख शिक्षा-केन्द्र बनाया तथा सैकड़ों मदरसे बनवाये। यह नगर एक विश्वविद्यालय सा बन गया जहाँ विदेशी विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते थे। सिकन्दर के उपरान्त बाबर ने भी यहाँ कुछ मदरसों का निर्माण कराया। अकबर के समय में पुनः आगरा इस्लामी शिक्षा, संस्कृति व कला-कौशल का एक प्रमुख केन्द्र बन गया। देश के भिन्न-भिन्न कोनों से आकर विद्वान्, दार्शनिक, कवि तथा कलाकार आगरा में एकत्रित होने लगे। स्वयं सम्राट् इन विद्वानों के साथ उच्चकोटि के शास्त्रार्थों में भाग लेता था। अकबर ने आगरा तथा आगरा से कुछ मील दूर फतहपुर सीकरी में कई मदरसे बनवाये। इन मदरसों में साहित्य, गणित, दर्शन, चिकित्सा, कृषि, ज्योतिष तथा वाणिज्य इत्यादि सभी विषयों की उच्च-शिक्षा दी जाती जाती थी। यहाँ छात्रावासों की भी व्यवस्था थी, जहाँ विदेशों से, प्रधानतः मध्य ऐशिया के देशों से विद्यार्थी आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। इसके उपरान्त जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने भी कुछ मदरसे बनवाये। औरंगजेब ने यहाँ प्रारम्भिक तथा धार्मिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार मुगल साम्राज्य की अवनति के साथ आगरे का वैभव भी नष्ट होने लगा। आधुनिक युग में भी कुछ मकतब मसजिदों में अपनी जीर्णावस्था में विद्यमान हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२. दिल्ली : यह मुसलमान शिक्षा का प्रारम्भ से ही एक प्रमुख केन्द्र रही है। वास्तव में दिल्ली ही सुल्तानों की राजधानी रही और मुगल सम्राटों ने भी दिल्ली की शान-शौकत को बढ़ाया। नासिरुद्दीन ने दिल्ली में मिनहाजे-शिराज की अध्यक्षता में नसीरिया मदरसा की स्थापना की। इसके उपरान्त गुलाम वंश के अन्य शासकों के समय में भी दिल्ली शिक्षा का केन्द्र बनी रही। अलाउद्दीन खिलजी के समय में दिल्ली में विद्वानों का जमघट लग गया। फिरोज तुगलक ने ५० मदरसे बनवाये तथा पुराने मदरसों की मरम्मत कराई। अपने गुलामों की शिक्षा का भी उसने प्रबन्ध किया। इसके उपरान्त मुगलकाल में हुमायूँ ने दिल्ली में ज्योतिष तथा भूगोल का एक मदरसा खोला। अकबर ने भी दिल्ली में कुछ मदरसे खोले तथा उसकी आया महमअनगा ने भी सन् १५६१ ई० में एक विशाल मदरसे का निर्माण कराया। जहाँगीर ने वहाँ पुराने मदरसों की मरम्मत कराई। शाहजहाँ ने जामा मस्जिद के पास एक मदरसे की स्थापना की। औरंगजेब ने भी अपना प्रयास जारी रखा। उसके उपरान्त गाजीउद्दीन ने भी एक मदरसा बनवाया। मुगल-साम्राज्य के बाद नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने दिल्ली की शान-शौकत को मिट्टी में मिला दिया।

३. जौनपुर : सुल्तानों के शासनकाल में जौनपुर शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था। फिरोज के समय में यहाँ बहुत से मकतब और मदरसे बने। उस समय अपनी कला, साहित्य तथा उच्च-कोटि की विद्या के लिये जौनपुर बहुत प्रसिद्ध हो गया था। यही कारण है कि उसे शीराजे-हिन्द कह कर पुकारा गया। शर्कियों ने जौनपुर में बहुत से मदरसे खुलवाये। पन्द्रहवीं शताब्दी में इब्राहीम शर्की ने यहाँ शिक्षा की बहुत उन्नति की। उसने मदरसों के साथ में जागीरें लगा दीं तथा सफल विद्यार्थियों को उच्च-पद तथा जागीरें देकर सम्मानित व प्रोत्साहित किया। शेरशाह सूरी यहीं का विद्यार्थी था। जौनपुर में इतिहास, दर्शन, राजकीय तथा सैनिक शिक्षा इत्यादि विषय विशेष रूप से पढ़ाये जाते थे। हस्तकला व शिल्प के लिये भी जौनपुर कई शताब्दियों तक प्रसिद्ध रहा। मुगलकाल के अन्तिम दिनों तक यह विद्या का एक प्रमुख केन्द्र बना रहा।

४. बीदर : बीदर शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था। महमूद गाँवा ने वहाँ एक विशाल मदरसा बनवाया जिसमें शहस्रों पुस्तकों से सुसज्जित एक पुस्तकालय भी था। कुछ समय उपरान्त औरंगजेब ने इसे नष्ट करा दिया। इसके पूर्व अलाउद्दीन अहमद ने भी यहाँ पर बहुत से मकतब और मदरसों का निर्माण कराया था। इस प्रकार बीदर के एक प्रमुख शिक्षा-केन्द्र हो जाने के कारण बहमनी राज्य में शिक्षा का मानदण्ड पर्याप्त ऊँचा हो गया। यहाँ पर ग्रामीण मकतबों के द्वारा फारसी और अरबी भाषा का खूब प्रचार किया गया। ये मकतब मसजिदों से लगे हुए थे तथा इनके खर्चे के लिये जागीरें

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लगा दी गई थीं। कोई ऐसा छोटे से छोटा गाँव भी नहीं रह गया था जहाँ पर कम से कम एक मकतब न हो। इनमें प्राय: शिक्षा-पद्धति एक ही प्रकार की थी, जिसका उद्देश्य जितना शिक्षा व साहित्य का प्रसार था उतना ही शासकों के धार्मिक विश्वासों और सिद्धान्तों का प्रचार भी था, जिसके चिन्ह आज भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

इनके अतिरिक्त बीजापुर, गोलकुण्डा, मालवा, खानदेश, मुल्तान, गुजरात, लखनऊ, स्यालकोट तथा बंगाल इत्यादि अन्य स्थान थे जो कि मुस्लिम शिक्षा के समय-समय पर प्रमुख केन्द्र रहे हैं।

मध्यकाल में हिन्दू शिक्षा :

मुसलमानों के आक्रमण के समय भारत में पर्याप्त शिक्षा प्रचार था। अधिकांश शिक्षा-केन्द्रों के आक्रमणकारियों अथवा मुसलमान शासकों के द्वारा नष्ट कर दिये जाने की अपेक्षाकृत भी यहाँ हिन्दू शिक्षा की धारा अजस्र रूप से बहती रही। हिन्दुओं का सामाजिक संगठन ऐसा था कि प्रयत्न करने पर भी मुसलमान प्राचीन भारतीय संस्कृति को पूर्णत: नष्ट नहीं कर सके। यहाँ तक कि प्रचलित शिक्षा-प्रणाली पर भी उनका प्रभाव नगण्य रहा। राजनैतिक परिवर्तन अधिकतर बड़े-बड़े नगरों तक ही सीमित रहे। वस्तुत: सुदूर ग्रामों में, जहाँ एक विशिष्ट धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा जनतन्त्रीय शिक्षा-प्रणाली विकसित हो चली थी, उसकी परम्परा भी अधिक प्रभावित न हो सकी। सुसंगठित शिक्षा-केन्द्रों को अवश्य नष्ट किया जा चुका था, किन्तु गुरुओं के आश्रम निर्जन वनों तथा ग्रामों में सुचारु रूप से चलते रहे। साथ ही कुछ ऐसे साधु-सन्त व योद्धा भी उत्पन्न हुए जो कि प्राचीन भारतीय संस्कृति व शिक्षा की रक्षा करते रहे और विदेशी अत्याचारों के विरुद्ध सदा अपनी आवाज उठाते रहे। इस विप्लव व अशान्ति के युग में भी हिन्दुओं ने विशाल व उच्च कोटि के साहित्य का सृजन किया तथा अपनी शिक्षा-पद्धति को जारी रखा।

शिक्षा प्रणाली का रूप :

शिक्षा का स्वरूप प्रधानत: वही चलता रहा जो कि परम्परागत था। गुरु लोग अपने आश्रमों में ब्रह्मचारियों को वेद, पुराण, स्मृति, उपनिषद् और दर्शन, तर्कशास्त्र, भिषज इत्यादि विषयों को पढ़ाते थे। शिक्षा-केन्द्रों के नष्ट हो जाने से हिन्दू-शिक्षा अब उतनी सामूहिक रूप से नहीं दी जाती थी जितनी कि व्यक्तिगत रूप से। विद्यार्थी संयम से रहते हुए गुरुओं के व्यक्तिगत सम्पर्क में रहते थे। हाँ संयम अब इतना कठोर व उच्चकोटि का नहीं रह गया था जितना प्राचीन काल में था। बौद्ध-धर्म का तो इस युग में पूर्णत: लोप हो चुका था। अतएव बौद्ध शिक्षा का भी ह्रास हो गया और उसके स्थान पर ब्राह्मणीय शिक्षा का पुन: प्रचार हो गया था। शिक्षा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जीवनोपयोगी होते हुए भी उसका स्वरूप प्रधानतः धार्मिक ही बना रहा। साहित्य की इस युग में बहुत उन्नति हुई। अधिकांश शिक्षा-केन्द्र वही स्थान बन सके जो कि मुसलमानों के प्रभाव से दूर थे। यद्यपि हिन्दू शिक्षा को मध्य युग में राज्य-संरक्षण प्राप्त नहीं था, तथापि यह मानना भूल होगी कि इस युग में हिन्दू शिक्षा का स्तर गिर गया था अथवा उसमें उच्चकोटि के साहित्य का सृजन नहीं हुआ। वस्तुतः हिन्दू भी मुसलमानों से साहित्यक क्षेत्र में पीछे नहीं रहे तथा संस्कृत व प्रान्तीय भाषाओं में उन्होंने अपनी रचनायें कीं। दर्शन-शास्त्र की शाखाओं जैसे, योग, वैशेषिक तथा न्याय इत्यादि पर टीकाएँ लिखी गईं। बौद्ध और जैन तर्क-शास्त्रियों ने तर्क शास्त्र की बहुत सी रचनायें कीं।

इस युग की हिन्दू शिक्षा की एक विशेषता यह रही कि इसमें प्रान्तीय भाषाओं में रचनायें खूब हुईं। हिन्दू-शिक्षा का माध्यम अब यही भाषायें होने लगीं। धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन करने के लिये विद्यार्थी संस्कृत भाषा सीखते थे। पाली तथा प्राकृत भाषायें विकसित होकर हिन्दी का रूप धारण कर रही थीं। राजस्थानी, मराठी, गुजराती तथा बँगला आदि भाषायें भी शिक्षा का माध्यम होने लगी थीं। मध्यकाल में प्रायः इन सभी भाषाओं में उच्चकोटि की रचनायें हुईं। उत्तर भारत की भाँति दक्षिण-भारत में भी मध्यकाल में हिन्दू शिक्षा का पर्याप्त प्रचार था। विजयनगर उस समय शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ के राजा कृष्णदेवराय ने शिक्षा तथा साहित्य के विकास के लिए प्रयास किये और कवियों तथा कलाकारों को अपने राज्य में संरक्षण दिया। उसके समय में संगीत, नृत्य, नाटक, व्याकरण, तर्क-शास्त्र, दर्शन तथा अन्य ज्ञान-शाखाओं पर ग्रन्थ-रचनायें हुईं तथा चित्रकला और वास्तुकला को उदार संरक्षण दिया गया। मध्य युग के आरम्भ में जैन लेखकों ने तामिल तथा कन्नड़ भाषाओं में रचनायें कीं। ११वीं व १४वीं शताब्दी में शैव-आन्दोलन ने दक्षिण में जोर पकड़ा जिससे साहित्यिक रचनाओं की पर्याप्त प्रगति हुई। यहाँ संस्कृत तथा तैलगु भाषाओं में भी रचनायें हुईं। इस युग में वेदों का व्याख्याता सायण तथा उसके भाई माधव विद्यारण्य ने भी संस्कृत में महान् रचनायें कीं। इन दोनों भाइयों ने वेदों पर टीकायें लिखीं तथा दर्शन-शास्त्र पर भी ग्रन्थ रचे।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

७

प्रारम्भिक योरुपीय शिक्षा-प्रयत्न
(१८१३ ई० तक)

तत्कालीन देशी शिक्षा की दशा :

भारत में योरुपीय शिक्षा-प्रयत्नों के पूर्व देशी शिक्षा की अवस्था तथा पद्धति का एक संक्षिप्त विवरण आवश्यक है क्योंकि इस शिक्षा को ही आधार मानकर विदेशियों ने अपने प्रयत्न आरम्भ किये थे। किन्तु तत्कालीन शिक्षा के विषय में ठीक-ठीक आँकड़े उपलब्ध करने के साधन अपर्याप्त तथा कभी-कभी संदिग्ध भी हैं। वास्तव में १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विदेशी शासकों ने इस कार्य-भार को अपने ऊपर लिया और तत्कालीन ब्रिटिश भारत के क्षेत्रों में देशी शिक्षा के रूप, विशेषताओं तथा विस्तार की जाँच पड़ताल कराई। जिस क्षेत्र के अन्तर्गत जाँच की गई वह सम्पूर्ण देश का एक अल्पांश था। किन्तु उदाहरण के रूप में अवश्य ही वह इतिहास के एक विद्यार्थी के लिये सूचनाप्रद हो सकता है। जाँच के प्रमुख क्षेत्र मद्रास, वम्बई तथा बंगाल थे। यहाँ हम संक्षेप में प्रत्येक का वर्णन प्रस्तुत करते हैं।

मद्रास : सन् १८८२ ई० में सर टाम्स मुनरो ने मद्रास में देशी शिक्षा की जाँच कराई। मुनरो का कथन था कि अँग्रेजी शासन के हित में आवश्यक है कि भारत की शिक्षा में कुछ रुचि प्रदर्शित की जाय। अत: मद्रास प्रान्त की तत्कालीन शिक्षा के विषय में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिये भिन्न-भिन्न जिलों के जिलाधीशों को आदेश दिये गये। श्री मुनरो ने स्थिर किया कि "सवा करोड़ की आवादी में १८८,००० (अर्थात् ६७ में एक के अनुपात से) लोग शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। यह विवरण सम्पूर्ण जन-संख्या के विषय में है न कि केवल पुरुषों के लिये। यद्यपि शिक्षा का यह प्रतिशत इङ्गलैंड की अपेक्षा कम है, तथापि युरोप के बहुत से देशों की अपेक्षा अधिक है और भूतकाल में तो इससे भी अधिक था।

बिल्लारी तथा कनाड़ा के जिलों से प्राप्त सूचनायें बहुत यहत्वपूर्ण हैं। बिल्लारी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में लगभग १ करोड़ प्राणियों के लिये ५३३ स्कूल थे जहाँ ६,६४१ विद्यार्थी थे; अर्थात् लगभग १२ विद्यार्थी प्रत्येक स्कूल में थे। इन स्कूलों में ६० हिन्दू बालिकायें भी थीं। हिन्दू बालकों की संख्या ६,३९८ तथा मुसलमानों की २४३ थी। स्कूलों में एक स्कूल अंग्रेजी भाषा के लिये भी था तथा ४ तामिल के लिये, २१ फारसी, २३ मराठी, २२६ तेलगु तथा २६५ करनाटका के लिये थे। २३ स्कूल संस्कृत में उच्च-शिक्षा के लिये भी थे।

शिक्षा की व्यवस्था साधारण किन्तु प्रभावशाली थी। प्राय: सवेरे ६ बजे बालक स्कूल आते थे। प्रथम बालक के हाथ पर विद्या की देवी सरस्वती का नाम लिखकर सम्मानित किया जाता था। फिर एक-एक करके सभी बालक इकट्ठे हो जाते थे और सरस्वती वन्दना करते थे। देर से आने वाले विद्यार्थियों को कोई स्वास्थ्य-वर्धक शारीरिक दण्ड मिलता था। दण्ड में बेंत लगाना, छत से लटका देना तथा बैठक कराना भी सम्मिलित थे। इसके उपरान्त बालक अपनी योग्यता तथा संख्या के अनुसार समूहों में बँट जाते थे। बड़े तथा योग्य विद्यार्थी छोटे बालकों को पढ़ाते थे तथा बड़े विद्यार्थियों को शिक्षक स्वयं पढ़ाता था। शिक्षक के अधिकार में प्राय: चार कक्षायें रहती थीं। इस प्रकार मानीटरों की सहायता से अकेला शिक्षक सम्पूर्ण स्कूल के शिक्षण व व्यवस्था पर अपनी दृष्टि रखता था। डा० बेल ने इस 'मानीटर पद्धति' की प्रशंसा की। उन्होंने इस पर एक पुस्तक लिखी और स्कॉटलैंड तथा इङ्गलैंड में इस प्रथा का अनुकरण किया गया। भारतीय शिक्षा-पद्धति का इङ्गलैंड की शिक्षा-पद्धति पर यह एक ऋण है। इस प्रकार बालक स्कूल में आकर प्रथमत: बालू पर उँगली से लिखना सीखते थे और इसके उपरान्त वे बड़े-बड़े पत्तों पर भी लिखना सीखते थे। लकड़ी की पट्टी का भी प्रयोग किया जाता था। लिखने के उपरान्त बालक स्वर, व्यंजन और आवश्यक गणित का ज्ञान प्राप्त करते थे। पहाड़े, पौवे, अद्धे और सवैये इत्यादि भी गा गाकर याद किये जाते थे। इस प्रकार यह व्यवस्था अल्पव्ययी, सादा तथा उच्चकोटि की थी। मानीटर प्रथा एक सराहनीय साधन था, किन्तु साथ ही पुस्तकें बड़े निम्नकोटि की थीं और शिक्षक भी बहुधा अयोग्य और अदीक्षित होते थे। उनके वेतन इतने अल्प होते थे कि योग्य आदमी शिक्षक बनना पसन्द नहीं करते थे।

बिल्लारी की भाँति कनाड़ा के जिलाधीश ने भी अपनी जाँच प्रस्तुत की और व्यक्तिगत शिक्षा के प्रचार का वर्णन करते हुए इस आशय की बात लिखी कि, "कनाड़ा जिले में शिक्षा इतनी अधिक घरेलू रूप में होती है कि शिक्षालयां और उनके विद्यार्थियों का लेखा देना व्यर्थ ही नहीं, वरन् जनसंख्या के अनुसार शिक्षा पाने वालों का अनुपात निकालना भी भ्रामक होगा।"

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

बम्बई : सन् १८२९ ई० बम्बई प्रान्त के गवर्नर श्री एलफिस्टन ने शिक्षा की जाँच कराई। इस जाँच की रूपरेखा प्रायः वही थी जो कि मद्रास में मुनरो की थी। इस रिपोर्ट के अनुसार स्कूलों की संख्या १,७०५ थी जिनमें ३५,१४३ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। प्रान्त की जनसंख्या ४६,८१,७३५ थी। आँकड़ों से सिद्ध होता है कि बम्बई में मद्रास की अपेक्षा शिक्षा ⅓ थी। किन्तु इस संख्या को अन्तिम रूप से प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है, क्योंकि इसमें उस समय घर-घर प्रचलित व्यक्तिगत शिक्षा के आँकड़े सम्मिलित नहीं थे। तत्कालीन सरकारी अफसरों का भी अनुभव यह था कि उस समय देशी प्रारम्भिक शिक्षा बम्बई में अधिक व्यापक रूप में थी। सन् १८२१ ई० में बम्बई के गवर्नर की कार्य कारिणी के एक सदस्य श्री प्रेन्डरगास्ट के मतानुसार "कठिनाई से राज्य भर में ऐसा कोई छोटा या बड़ा गाँव होगा, जहाँ एक न एक स्कूल न हो। बड़े गाँवों में अधिक तथा नगरों में बहुत से स्कूल हैं जहाँ भारतीय बच्चों को लिपि तथा गणित की शिक्षा इतनी सस्ती, अर्थात् एक दो मुट्ठी अनाज से लेकर एक रुपया प्रति मास पर दी जाती है; किन्तु साथ ही वह इतनी प्रभावोत्पादक होती है कि ऐसा कोई किसान अथवा छोटा व्यापारी नहीं है जो हमारे देश के छोटे लोगों से अधिक कुशलता से हिसाब न रखता हो। बड़े व्यापारी तथा साहूकार तो किसी भी अँग्रेजी व्यापारी के समान स्पष्ट तथा सुविधाजनक हिसाब रखते हैं।" अतः इस विवरण से प्रकट होता है कि उस समय शिक्षा का प्रचार अच्छा रहा होगा।

बम्बई प्रान्त में देशी-शिक्षा की शिक्षण-पद्धति का भी उल्लेख मिलता है। प्रधानतः शिक्षक ही विद्यार्थियों को पढ़ाता था। मानीटर-प्रथा यहाँ भी प्रचलित थी। एक अन्य पद्धति भी बम्बई में चल रही थी जिसका वर्णन इस प्रकार मिलता है:— "जब कोई बालक स्कूल में आता है, तो तत्काल ही वह अधिक योग्य विद्यार्थी के संरक्षण में रख दिया जाता है। उसका यह कर्त्तव्य होता है कि वह नये बालक को पाठ पढ़ाये और उसकी शिक्षा-प्रगति तथा आचरण की सूचना शिक्षक को दे। बालकों का विभाजन कक्षानुसार न होकर दो-दो के जोड़ों में कर दिया जाता है। प्रत्येक जोड़े में एक छोटा विद्यार्थी तथा एक बड़ा व योग्य विद्यार्थी शिक्षक के रूप में होता है। इन जोड़ों के बैठने की व्यवस्था भी इस प्रकार की जाती है कि कुशल विद्यार्थी के पास ही नये विद्यार्थी को बैठाया जाता है। इस प्रकार जब बहुत से विद्यार्थी समान रूप से ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तो उन्हें एक साथ इकट्ठा बैठाया जाता है और वे सीधे शिक्षक के द्वारा पढ़ाये जाते हैं। इस प्रकार शिक्षक के पास पर्याप्त अवकाश स्कूल के निरीक्षण तथा प्रत्येक विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से देखने के लिये मिल जाता है।" इस पद्धति के द्वारा शिक्षक अकेला अधिक से अधिक विद्यार्थियों की देख भाल कर सकता है। साथ ही

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यह बड़ी अल्पव्ययी प्रथा है। यही कारण है कि डा० वेल के द्वारा इङ्गलैण्ड ने भी १९वीं शताब्दीं में इस प्रथा को अपनाया और शिक्षा-प्रसार किया।

बंगाल : निम्नतर गंगाघाटी की शिक्षा के विषय में जानकारी प्राप्त करना विशेष महत्त्व की वस्तु है, क्योंकि वहाँ प्राचीन तथा मध्य युग में भी शिक्षा के बड़े २ केन्द्र थे। इसके अतिरिक्त विदेशियों ने भी १८वीं शताब्दि में यहीं पर अपने प्रारम्भिक प्रयत्न प्रारम्भ किये थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन से पूर्व भी बंगाल में देशी शिक्षा पर्याप्त रूप से प्रचलित थी। लार्ड वैंटिक की प्रार्थना पर श्री एडम ने जो जाँच की उसके विषय में उन्होंने सन् १८३५-३८ ई० में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। नत्तौर थाना के विषय में संख्या देते हुए श्री ऐडम ने बतलाया है कि वहाँ की जनसंख्या १,९५,२९६ थी, जिसके लिए २७ स्कूल थे। इनमें २६२ विद्यार्थी पढ़ते थे। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से दी जाने वाली शिक्षा का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि-२३८ गाँवों में १,५८८ ऐसे परिवार थे जो २,३८२ बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा देते थे। इस प्रकार व्यक्तिगत शिक्षा का प्रचार पाठशालाओं से अधिक था। शिक्षा बहुत सस्ती थी। स्त्री शिक्षा का कोई अस्तित्व नहीं था। शिक्षकों को ५ रु० से ८ रु० तक मासिक वेतन मिलता था।

श्री ऐडम के अनुसार सम्पूर्ण बंगाल विहार में ४ करोड़ की जनसंख्या थी और स्कूलों की संख्या १ लाख थी; अर्थात् प्रति ४०० व्यक्तियों पीछे एक स्कूल था। सर फिलिप हर्टोग ने श्री ऐडम के इन आँकड़ों को बिल्कुल अतिशयोक्ति पूर्ण बतलाया है। वास्तव में यह भ्रम 'स्कूल' शब्द की भिन्न-भिन्न व्याख्यायें करने से उत्पन्न होता है। श्री एडम ने घरेलू रूप से परिवारों में दी जाने वाली शिक्षा के स्थानों को भी 'स्कूल' में सम्मिलित कर लिया है।

श्री ऐडम के अनुसार इन पाठशालाओं में शिक्षकों की आय बहुत कम होती थी। अधिकांश में इनका व्यय कुछ धनी नागरिकों, जमीदार तथा ताल्लुकेदारों द्वारा उठाया जाता था। धनी लोग अपनी जगह देकर घर पर ही पाठशाला खुलवा देते थे। मुसलमानों में फारसी व अरबी का प्रचार था; तथा हिन्दुओं में बंगला, संस्कृत व हिन्दुस्तानी भी पढ़ते थे। उर्दू का प्रचलन स्कूलों के पाठ्य-क्रम में नहीं था, यद्यपि वह शिक्षित मुसलमानों की बोल चाल की भाषा थी। स्त्री शिक्षा के नाम से लोग डरते थे। मुसलमानों में लड़कियों को शिक्षित करना अशुभ समझा जाता था। बहुत से हिन्दू परिवारों में भी यह भ्रांति थी कि पढ़ी, लिखी लड़की विवाहोपरान्त शीघ्र विधवा हो जाती है। लड़कियों की शिक्षा से लोग इतने डरते थे कि यदि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कोई वालिका अपने पढ़ते हुए भाई के पास खेलते-खेलते पहुँच जाती थी तो उसका ध्यान शीघ्र ही उधर से हटा कर अन्य कार्यों में लगा दिया जाता था। इतना अवश्य था कि कुछ धनी जमींदार अवश्य छिप कर थोड़ा बहुत ज्ञान वालिकाओं को करा देते थे।

आगरा प्रान्त : मध्ययुग में आगरा शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र रहा था। इसके ध्वंसावशेष १९वीं शताब्दि में भी विद्यमान थे। प्रान्त के नगर में अपने स्कूल थे। प्रत्येक परगने में दो या अधिक स्कूल थे और अधिकांश गांवों में भी अध्यापक रहते थे। इस प्रान्त में प्रधानतः लौकिक व उपयोगी शिक्षा प्रदान की जाती थी। लिपि का लिखना, पढ़ना, व्यवहार गणित, महाजनी हिसाब-किताब तथा उर्दू, फारसी और हिन्दी के स्कूल यहाँ पर थे। फारसी स्कूल घरेलू रूप से चलते थे, हिन्दी, कैथी तथा मुड़िया की पाठशालायें भी थीं। हिन्दू और मुसलमान दोनों अध्यापन-कार्य करते थे। फारसी का प्रयोग वहुधा कचहरी के लिए किया जाता था। गणित में मौखिक गणित, पहाड़े तथा सिक्के और वजन इत्यादि का ज्ञान कराया जाता था। पटवारी लोग कैथी स्कूलों में पैमाइश इत्यादि सीखते थे। लिखने इत्यादि का अभ्यास भी पट्टी पर कराया जाता था, जिस पर काले रंग के रंग कर सफेद खड़िया से लिखा जाता था। जन-साधारण में कृषकों की संख्या अधिक थी। कृषक-वालकों में शिक्षा का प्रचार वहुधा कम था। व्यापारी वर्ग तथा राज-कर्मचारियों में शिक्षा अधिक थी।

देशी शिक्षा की अवनति :

१९वीं शताब्दि में अंग्रेजों का राज्य पूर्णतः स्थापित हो चुका था। अतः अब यहाँ विदेशी शिक्षा पद्धति को प्रोत्साहन दिया जा रहा था। परिणामतः देशी शिक्षा की अवनति होने लगी। इसके कई कारण थे।

(१) प्रथमतः देश की बढ़ती हुई निर्धनता इसका कारण थी। जनसाधारण इतने निर्धन हो चले थे कि शिक्षक के वेतन के लिये वे बालकों की नाम मात्र की फीस तक नहीं दे सकते थे।

(२) राज्य की उदासीनता : प्रारम्भिक शिक्षा का जो विशाल जाल देश में फैला हुआ था, सरकार ने उसकी ओर उचित ध्यान नहीं दिया। ऐडम और एलफिस्टन जैसे विचारकों के प्रयत्नों, सन् १८५४ ई० की शिक्षा घोषणा तथा 'भारतीय शिक्षा आयोग' की सिफारिशों की अपेक्षाकृत भी देशी प्रारम्भिक शिक्षा के स्कूलों का या तो सुधार की भ्रमात्मक योजनायें बनाकर बध कर डाला गया अथवा अवहेलना के द्वारा उन्हें अपनी मौत मरने को छोड़ दिया गया।

(३) अंग्रेजी के प्रचलन ने देशी भाषाओं की उपयोगिता को कम कर दिया। राज्य में पद पाने के लिये अंग्रेजी पढ़ना आवश्यक हो गया। परिणामतः देशी शिक्षा की

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अवहेलना कर दी गई। सरकारी अधिकृत प्राथमिक स्कूलों के खुल जाने से सरकार का ध्यान देशी प्रारम्भिक स्कूलों व पाठशालाओं से बिलकुल हट गया। उत्तर प्रदेश में यह बात विशेष रूप से हुई।

(४) इसके अतिरिक्त अध्यापकों के वेतन इतने कम थे कि योग्य व्यक्तियों को शिक्षण कार्य के लिये आकर्षित करना कठिन था।

(५) शिक्षक बहुधा निम्न-ज्ञान-स्तर के तथा अदीक्षित होते थे। उनका अज्ञान भी देशी शिक्षा के ह्रास का एक कारण बन गया।

इस प्रकार देशी शिक्षा-पद्धति, जो कि १८वीं शताब्दि में भारत में प्रचलित थी, प्राय: समाप्त हो गई। यह प्रणाली भारत की तत्कालीन अवस्था को देखते हुए पूर्ण उपयुक्त थी। यदि वर्तमान शिक्षा-पद्धति को देशी शिक्षा के आधार पर ही विकसित किया जाता; तथा शिक्षा-विभाग के प्रयत्न उस पद्धति के विकास में लग जाते तो आज भारत में हमें अधिक सच्ची, सस्ती व उपयुक्त शिक्षा देखने को मिलती। किन्तु ऐसा न हो सका। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में साक्षरता के प्रतिशत में कोई सराहनीय वृद्धि न हुई। अत: महात्मा गांधी को भी सन् १९३१ ई० में यह बात स्वीकार करनी पड़ी थी कि भारत में आधुनिक काल में साक्षरता १०० वर्ष की अपेक्षा कम है।

प्रारम्भिक मिशनरी प्रयत्न :

१७वीं शताब्दि के प्रारम्भ में ही भारत में पश्चिमी देशों के लोगों की सरगर्मियाँ बढ़ने लगी थीं। पुर्तगालियों के भारत में आने के उपरान्त ही डच, फ्रांसीसी, स्पेन निवासी तथा अंग्रेज आने लगे। उन्होंने यहाँ अपनी व्यापारिक कम्पनियाँ स्थापित कीं तथा मुगल काल के अन्त में भारत के सुदूर बन्दरगाहों में आकर अपनी कोठियाँ बनालीं। शीघ्र ही उनका व्यापार बढ़ने लगा। भारत की तत्कालीन राजनैतिक दुर्बल अवस्था से लाभ उठाकर ये कम्पनियाँ हाथ में अस्त्र लेकर यहाँ अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिये संघर्ष करने लगीं। सन् १६०१ ई० में स्थापित हुई ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी इस संघर्ष में भाग लिया और अन्त में भारत में अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुई। इन योरुपीय व्यापारियों के भारत में बस जाने का उद्देश्य न केवल व्यापारिक ही था, वरन् वे धर्म प्रचार भी करना चाहते थे। वे कहते थे कि हम भारत में "ईसाइयों तथा मसालों की खोज में आये हैं।" अत: उन्होंने यहाँ आते ही अपने स्कूल भी स्थापित कर दिये, जिनका उद्देश्य था अपने अधगोरे ईसाई कर्मचारियों के बालकों को शिक्षा देना तथा ईसाई धर्म का इस देश में प्रचार करना। प्रारम्भ में

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उन्होंने प्राथमिक शिक्षा को ही अपने हाथ में लिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी प्रारम्भ में शिक्षा को धर्म प्रचार का साधन बनाया था, किन्तु कालान्तर में राजनैतिक तथा शासन सम्बन्धी कारणों से उसे यह विचार छोड़ कर धार्मिक निरपेक्षता की नीति का आश्रय लेना पड़ा और सन् १८१३ ई० तक इस नीति को यथावत् रखा। इस प्रकार यथार्थ में अपनी स्थापना के लगभग १०० वर्ष तक कम्पनी ने देश की शिक्षा के लिये कोई सराहनीय प्रयत्न नहीं किया। विभिन्न योरोपीय प्रयत्नों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

पुर्तगाल : वास्तव में पुर्तगालियों को भारत में आधुनिक शिक्षा पद्धति की नींव डालने वाला कहा जा सकता है। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा के लिये स्कूल खोले, जिनमें धर्म, स्थानीय भाषा, पुर्तगाली, गणित तथा कुछ कारीगरी की शिक्षा दी जाती थी। उच्च शिक्षा के लिये इन्होंने जैसुएट कालेजों की स्थापना की। इनमें लैटिन, धर्म, तर्कशास्त्र और संगीत की शिक्षा तथा पादरियों को ट्रेनिंग दी जाती थी। भारत में आने वाले प्रथम धर्म-प्रचारकों में सन्त जावियर प्रमुख था। जावियर ने भारत में इस क्षेत्र में सराहनीय कर्य किया। वह गाँवों तथा गलियों में पैदल घूम-घूम कर ईसाई धर्म का प्रचार करता था। ईसाई धर्म की कुछ पुस्तकें भी उसने प्रत्येक गाँव में रखवा दी थीं। उसने बम्बई के निकट बान्दरा में सेन्ट ऐनी विश्वविद्यालय तथा कोचीन में एक प्रेस स्थापित किया। दूसरा धर्म प्रचारक राबर्ट डी० नोबीली था, जो कि अपने आपको पाश्चात्य ब्राह्मण कहता था तथा भारतीय सन्यासियों की भाँति वेषभूषा और भोजन पकाने के लिए ब्राह्मण रसोइये रखता था। उसने ईसाई धर्म का खूब प्रचार किया।

पुर्तगालियों ने भारत में प्रथम जैसुएट कालेज सन् १५७५ ई० में गोआ में स्थापित किया, जिसमें ३०० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। १५८० ई० में गोआ तथा अन्य स्थानों में अन्य कालेज भी खुले। वर्नियर ने आगरा में भी एक जैसुएट कालेज का उल्लेख किया है, जिसे सम्राट् अकबर ने जैसुएट पादरियों के प्रभाव में आकर बनवाया था। इसमें लगभग ३० परिवारों के बालक शिक्षा पाते थे। सत्रहवीं शताब्दि में पुर्तगालियों का पतन हो गया। उनके शिक्षा सम्बन्धी प्रयत्न भी समाप्त हो गये। उनके पतन के अन्य कारणों में से धार्मिक बातों में अधिक हस्तक्षेप करना भी एक प्रमुख कारण था, जिसका भारतीयों ने तीव्र विरोध किया। इन प्रारम्भिक धर्म-प्रचारकों के शिक्षा-कार्य बहुत साधारण कोटि में थे और भारत की वर्तमान शिक्षा-पद्धति के निर्माण में उन्होंने अकिंचन योग दिया था।

डच : यह बात ध्यान देने योग्य है कि डचों ने प्रारम्भ से ही अपनी नीति कठोर

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

धार्मिक-निरपेक्षता की रखी। भारतवासियों में धर्म-प्रचार का भूत इन पर सवार नहीं था। इन्होंने केवल व्यापारिक हितों को ही अपनाया। अपने कर्मचारियों के बालकों के लिये इन्होंने कुछ स्कूल अवश्य खोले, जिनमें भारतीय बालकों को पढ़ने की स्वतन्त्रता थी। इन्होंने थोड़ा प्रयास रोमन कथलिक ईसाइयों को बदल कर उन्हें प्रोटेस्टैंट बनाने का अवश्य किया। शिक्षा द्वारा ईसाइयों में प्रोटेस्टैंट धर्म के गुणों का गान किया। लंका भी इनका केन्द्र था।

फ्रान्सीसी : सन् १६६४ ई० में फ्रांसीसियों ने यहाँ अपनी व्यापारिक कम्पनी स्थापित की तथा माही, यानान, कारीकल, चन्द्रनगर और पाण्डुचेरी में अपनी फैक्टरियां चालू कीं। इन्हीं स्थानों पर इन्होंने प्राथमिक स्कूल खोले। पाण्डुचेरी में एक माध्यमिक शिक्षा का स्कूल भी खोला जहाँ फ्रेंच भाषा सिखाई जाती थी। प्रारम्भिक स्कूलों में भारतीय शिक्षकों द्वारा स्थानीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी प्रत्येक स्कूल में एक धर्म-प्रचारक शिक्षा देता था। गैर-ईसाई बालक भी इन स्कूलों में प्रवेश पाते थे। उन्हें बहुधा भोजन, वस्त्र, पुस्तकें तथा अन्य आवश्यक सामग्री देकर स्कूलों में आने के लिये प्रोत्साहित भी किया जाता था। फ्रांसीसी मिशनरी पुर्तगालियों की भाँति रोमन कैथलिक थे। जिन स्कूलों में धर्म-शिक्षा दी जाती थी वहाँ उनका कार्य महत्त्वपूर्ण रहा। फ्रांसीसियों के पतन के उपरान्त इनकी बस्तियाँ अंग्रेजों के अधिकार में आ गईं और वहाँ की शिक्षा-व्यवस्था भी बदल गई।

डेन : राजनैतिक दृष्टिकोण से इस जाति का भारत में कोई महत्त्व न बढ़ सका, किन्तु इनके धर्म तथा शिक्षा-प्रचार के कार्य अवश्य महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तव में डेन ही भारत में आधुनिक शिक्षा के अग्रणी समझे जाते हैं। आगे चल कर डेन मिशनरियों ने अपने आपको अँग्रेजों में मिला दिया। सन् १७०६ ई० में डेनों ने अपने उपनिवेश तरंगमपाड़ि (Trancubar) में जीगेनबल्ग तथा प्लूशो नामक दो पादरियों को भेजा। जीगेनबल्ग तथा प्लूशों ने आते ही तामिल तथा पुर्तगाली भाषायें सीखीं और अपने कार्य को तञ्जोर, मद्रास, तिनेवली और त्रिचनापल्ली तक विस्तृत कर दिया। इन्होंने शिक्षा द्वारा धर्म-परिवर्तन करके लगभग ५०,००० लोगों को बैप्टिस्ट बनाया। किन्तु इतना अवश्य था कि इन धर्म-परिवर्तित भारतीयों को अपनी-अपनी जातियों में बने रहने को आज्ञा दे दी। डेनों ने मुसलमानों के लिये बहुत से प्राथमिक स्कूल खोले। शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषायें ही रखा। जीगेनबल्ग ने शुल्ज की सहायता से तामिल में बाइबिल का अनुवाद किया तथा तामिल व्याकरण की रचना की। शुल्ज ने तेलगु में बाइबिल का रूपान्तर किया। एक तामिल शब्द-कोष भी छापा। छापे को ये लोग धर्म-प्रचार में खूब प्रयोग करते थे। सन् १७१२-१३ ई० में तामिल तथा रोमन

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लिपि का एक प्रेस स्थापित किया गया। १७१६ ई० में अध्यापकों की दीक्षा के लिये एक कालेज खोला और दीक्षित शिक्षकों को मद्रास में तामिल बच्चों को अँग्रेजी तथा बाइबिल पढ़ाने के लिये रखा गया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शिक्षा-प्रयत्न :

यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना केवल व्यापार के लिये हुई थी, तथापि उस समय देश की राजनैतिक अवस्था तथा अन्य प्रतिद्वन्दी योरुपीय कम्पनियों के कारण उसे अपनी प्रारम्भिक नीति कुछ सीमा तक धार्मिक भी रखनी पड़ी। कम्पनी के ये प्रयास ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये थे। अपने ईसाई कर्मचारियों के आध्यात्मिक-कल्याण तथा भारतीयों में बाइबिल के संदेश को फैलाने के लिये कम्पनी ने भारत में पादरियों को भेजा एवं कुछ भारतीय ईसाइयों को धार्मिक-दीक्षा के लिये इङ्गलैंड भी भेजा, जिससे कि देश लौटने पर वे ईसाई धर्म का प्रचार करके लोगों का धर्म परिवर्तन कर सकें। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भारत के लिये प्रचारक तैयार करने के उद्देश्य से अरबी-विभाग खोला गया। किन्तु कम्पनी ने धर्म प्रचार के स्थान में धार्मिक तटस्थता को अपनाया और मद्रास में १६७० ई० में पुर्तगाली, अँग्रेज तथा यूरेशियन बच्चों के लिये प्रथम स्कूल खोला गया तथा शिक्षा-कर लगा कर अँग्रेजी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। सन् १६९८ ई० के आज्ञा-पत्र में इंगलैण्ड की संसद ने एक वाक्यांश जोड़ दिया जिसके फलस्वरूप कम्पनी को भारत में अपने कारखानों में धर्म-गुरु तथा अध्यापक रखने का आदेश दिया गया तथा ५०० टन अथवा इससे अधिक वजन के प्रत्येक जहाज में एक पादरी लाने की आज्ञा हुई। घोषणा-पत्र में सैनिकों तथा कारखाने के कर्मचारियों के लिये स्कूल खोले जाने की बात भी कही गई। परिणामत: कुछ निशुल्क दातव्य शिक्षा-लयों की स्थापना की गई। १७१५ ई० में ऐसे स्कूल मद्रास में और १७१८ ई० में कल-कत्ता में भी खुले। बाद में तन्जौर तथा कानपुर में भी दातव्य स्कूल खोले गये, जिनमें भारतीय ईसाइयों को प्रथमता दी जाती थी। यह माना जा सकता है कि इस समय तक कम्पनी ने स्पष्ट रूप से शिक्षा का कोई उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लिया था। जो कुछ भी प्रयास इस ओर हुआ था वह अत्यन्त अपर्याप्त था। १८वीं शताब्दि के अन्त में उसने अपनी नीति में परिवर्त्तन कर मिशनरियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया और कम से कम उत्तरी भारत में इनका कठोरता से पालन किया। संक्षेप में; कम्पनी के शिक्षा-प्रयत्न इस काल में बहुत अपर्याप्त रहे।

मद्रास : यह अँग्रेजों का प्रमुख उपनिवेश था। इस प्रान्त में शिक्षा-प्रचार के कार्य में श्वार्ज, एक जर्मन मिशनरी, का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने इस प्रान्त की शिक्षा में अपने जीवन को लगा दिया। श्वार्ज ने तञ्जोर तथा मेवाड़ के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

राजाओं को भी प्रभावित करके उनसे तञ्जोर, रामेन्द्रपुरम, तथा शिवगंगा नामक नगरों में अङ्गरेजी के प्रचार के लिये स्कूल खुलवा लिये । इसके अतिरिक्त उसने देशी भाषाओं के लिये भी दो स्कूल खोले । आगे चलकर श्री जॉन सलीवन ने श्वार्ज की नीति में परिवर्तन करके मातृ-भाषा के स्थान पर शिक्षा का माध्यम अङ्गरेजी करा दिया । इस योजना का समर्थन कम्पनी के संचालकों ने भी किया तथा प्रत्येक स्कूल को आर्थिक सहायता का वचन दिया । भारतीय धनिकों ने भी इसके लिये रुपया दिया । इस नीति का परिणाम यह हुआ कि मद्रास प्रान्त में तेजी से नये स्कूल बनने लगे । इस तरह फ्रेडरिक श्वार्ज के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही १८वीं शताब्दि के मध्य में इस प्रान्त की शिक्षा-नीति एक नये साँचे में ढल गई । अंग्रेजी स्कूलों का भारत में यह प्रारम्भ था । इनमें अङ्गरेजी, हिसाब, तामिल, हिन्दी तथा ईसाई धर्म की शिक्षा दी जाती थी । सरकारी निरीक्षकों द्वारा उनका नियमित निरीक्षण भी होता था । इनके अतिरिक्त मद्रास में १७८६ ई० में श्रीमती कैम्पवैल ने एक महिला अनाथालय खोला, जिसके लिये भवन का दान अर्काट के नवाब ने किया । जनता और सरकार दोनों ने इसके खर्च को चलाया । डा० एन्ड्रयू बेल के नाम से ऐसा ही एक आश्रम लडकों के लिये भी खोला गया जहाँ उन्होंने 'मानीटर प्रथा' का परीक्षण प्रथम बार किया । इस प्रकार ईसाई मिशनरियों के प्रयत्नों से मद्रास की शिक्षा को बहुत प्रगति मिली । जिस कार्य का कम्पनी के संचालकों ने सूत्रपात किया था, उसकी पूर्ति मिशनरियों ने की ।

वम्बई में १७१९ ई० में रिचार्ड कौब ने निर्धन योरुपीय प्रौटेस्टेन्ट बालकों के लिये एक स्कूल खोला । शिक्षा की दृष्टि से बंगाल ने पर्याप्त प्रगति की । वास्तव में १७५७ ई० प्लासी-विजय के उपरान्त कम्पनी ने बंगाल का सम्पूर्ण शासन-कार्य संभाल लिया, किन्तु कम्पनी ने बंगाल की शिक्षा का प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं किया । वहाँ जो कुछ प्रगति हुई वह सब वैयक्तिक प्रयत्नों के फलस्वरूप हुई । पुराने देशी स्कूलों को कम्पनी ने न तो सहयोग ही दिया और न उन्हें अन्य प्रकार से ही छेड़ा । एक प्रकार से उसकी नीति पूर्ण तटस्थता की थी । पाठशालाओं के लिये पुराने चले आने वाले भूमिदान को उसने अवश्य यथावत् छोड़ दिया ।

इसी प्रकार बंगाल में व्यक्तिगत प्रयत्नों द्वारा कुछ स्कूलों की स्थापना की गई । वारेन हैस्टिंग्ज ने जो कि स्वयं बंगाली और फारसी भाषाओं का ज्ञाता था, शिक्षा की उन्नति में योग दिया । सन् १७८१ ई० में कलकत्ता मदरसा की स्थापना की गई । जिसका उद्देश्य अदालतों के लिये अङ्गरेजी जजों के सलाहकार बनाने का था । कलकत्ता मदरसा की भाँति हिन्दुओं के लिये बनारस संस्कृत कालेज

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

की स्थापना भी सन् १७९१ ई० में हुई। यह हिन्दुओं को हिन्दू कानून की शिक्षा देकर उन्हें अङ्गरेज जजों के लिये सलाहकार या सहायक-जज के रूप में हिन्दू कानून की व्याख्या करने के लिये तैयार करता था।

सन् १७८० ई० में संसद ने भारतीय न्यायालयों में अङ्गरेजी कानून के स्थान पर भारतीय कानून लागू कर दिया था, जिसकी व्याख्या करने के लिये मुसलमान मौलवियों तथा हिन्दू पण्डितों की आवश्यकता थी। कलकत्ता, मदरास ने शीघ्र ही ख्याति प्राप्त करली और वहाँ काश्मीर, गुजरात तथा कर्नाटक से विद्यार्थी आकर विद्याध्ययन करने लगें। विद्यार्थियों को सरकार की ओर से छात्र-वृत्ति दी जाती थी। दर्शन, कुरान के धर्म-सिद्धान्त, कानून, ज्यामिति, गणित, तर्कशास्त्र तथा व्याकरण इत्यादि विषय यहाँ पढ़ाये जाते थे। शिक्षा का माध्यम अरबी तथा शिक्षाकाल ७ वर्ष था। इन दोनों शिक्षा संस्थाओं के खुलने से जहाँ शिक्षा प्रचार हुआ, वहाँ कम्पनी को योग्य राजभक्त भी मिलने लगे। देश के शिक्षित तथा विद्वान् उच्च और मध्यम वर्ग के लोग कम्पनी के विश्वासपात्र स्तम्भ बन गये। इस प्रकार कम्पनी का यह प्रयास देश की दो प्रमुख जातियों हिन्दू और मुसलमानों को प्रसन्न करने का भी एक साधन रहा।

इसके अतिरिक्त फोर्ट विलियम कालेज (१८०० ई०), सराहनीय कार्य कर रहा था। यहाँ हिन्दू व मुसलमान-कानूनों, इतिहास, अरबी, फारसी, संस्कृत तथा हिन्दुस्तानी की शिक्षा दी जाती थी। बंगाली साहित्य को भी इस कालेज ने बड़ा प्रोत्साहन दिया। डा० कैरे, कोलब्रुक, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा गिलक्राइस्ट जैसे विद्वान् शिक्षक यहाँ नियुक्त किये गये थे। इसके अतिरिक्त बहुत से अङ्गरेजी स्कूल इस समय बढ़ने लगें। अब भारतीय लोग अङ्गरेजी में रुचि दिखाने लगे थे। ब्राउन ने हिन्दुओं के लिये १७८८ ई० में एक कालेज कलकत्ता में खोला। इसी समय बहुत सी महिलाओं ने भी शिक्षा में रुचि दिखलाई और उन्होंने लगभग ६ स्कूल बालिकाओं के लिये भी खुलवाये। इनमें श्रीमती पिट, श्रीमती लॉसन और श्रीमती कलपैंड के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

बंगाल में मिशनरियों का प्रभाव कम था, तथापि जो कार्य शिक्षा-क्षेत्र में बैप्टिस्ट मिशनरी ने किया है उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। इनके प्रमुख नेता वार्ड, केरे तथा मार्शमेन थे। इन्हें "सीरामपुर त्रिमूर्ति" के नाम से पुकारा जाता है। इन्होंने कलकत्ता के उत्तर में एक गाँव सीरामपुर को अपना कार्य-क्षेत्र चुना। उन्होंने १८०० ई० में यहाँ एक छापाखाना खोला और बंगला भाषा में बाइबिल छापी और शीघ्र ही इसका अनुवाद भारत की लगभग ३ दर्जन भाषाओं में कर दिया। इनका धार्मिक जोश इन्हें यहाँ तक ले गया कि ये हिन्दू मुसलमानों के अवतारों और देवताओं

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

को गाली देने लगे। सरकार ने इनकी नीति को अपने राज्य-हित में घातक समझ कर इनके प्रेस को जब्त कर लिया तथा इन धर्म-प्रचारकों को नजरवन्द करके कलकत्ता भेज दिया। यह लार्ड मिन्टो का शासन-काल था। इस घटना के उपरान्त भी बैप्टिस्टों ने अपना कार्य चालू रखा। १७९४ ई० में कैरे ने दीनाजपुर में एक स्कूल खोला, तथा जैसोर में भी अपना प्रयत्न किया। १८१० ई० में मार्शमैन की सहायता से उसने 'कलकत्ता-जन-हितकारी संस्था' के नाम से एक स्कूल गरीब ईसाइयों के लिये खोला। इस प्रकार १८१७ ई० तक इन लोगों ने लगभग ११५ स्कूल खोले, जो कि प्राय: कलकत्ता के आस-पास ही स्थित थे। इस मिशनरी के कार्यों में सरकार ने राज्य के लिये आपत्ति देख कर उनको रोका। कम्पनी के संचालकों ने ७ सितम्बर, १८०८ ई० को पुन: एक घोषणा करके स्पष्ट कर दिया कि उनकी नीति कठिन धार्मिक-तटस्थता की है। भारत में सरकार की इस नीति के प्रति इङ्गलैंड में कहा गया कि कम्पनी की नीति ईसामसीह के धर्मोपदेशों के प्रतिकूल है तथा वह भारतीयों की शिक्षा की भी अवहेलना कर रही है। परिणामत: १८१३ ई० के आज्ञापत्र में शिक्षा-सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण वाक्यांश जोड़ दिये गये।

संसद में आन्दोलन :

सन् १७९१ ई० से १८१३ ई० तक का काल इङ्गलैण्ड के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण काल है। यह वह युग था जब कि देश में औद्योगिक-क्रान्ति प्रारम्भ हो गई थी और पूंजीवादी तथा मजदूर दो दल स्पष्ट बनते चले जा रहे थे। मजदूरों की दीन-दशा पर दया दिखाने वाले कुछ धार्मिक तथा परोपकारी सज्जनों ने उनकी दशा सुधारने के लिये अपनी आवाज उठाई और सुझाव रखे कि लोगों में शिक्षा तथा सदाचार का प्रचार करने और उद्यम के साधन उपलब्ध करने से उनकी हीनावस्था में सुधार हो सकता है। इस प्रकार जब इङ्गलैंड में शिक्षा-सुधार के लिये ये आन्दोलन चल रहे थे, भारत में भी कम्पनी को भारतीयों की शिक्षा को अपने हाथ में लेने के लिये विवश होना पड़ा। उन दिनों इङ्गलैंड में भी शिक्षा राज्य का उत्तरदायित्व न होने से, तथा कुछ आर्थिक-हितों को दृष्टि में रखने के कारण तथा भारत में अराजकता एवं स्वयं भारतीयों के शिक्षा के विषय में उदासीन होने के कारण कम्पनी भी यहाँ शिक्षा का प्रत्यक्ष भार नहीं लेना चाहती थी। किन्तु ब्रिटिश संसद में बर्क, ग्रान्ट और विल्बरफोर्स तथा भारत में लार्ड मिन्टो के प्रयत्नों के फलस्वरूप कम्पनी को शिक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना पड़ा।

१७९२ ई० में चार्ल्स ग्रान्ट ने 'ग्रेट ब्रिटेन की एशियाई प्रजा की सामाजिक दशा का निरीक्षण' नामक रचना में बताया कि "प्रकाश की उत्पत्ति ही अन्धकार के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विनाश का साधन है। हिन्दू भूलें इसलिये करते हैं क्योंकि वे अज्ञानी हैं।" ग्रान्ट ने अनुभव किया कि भारत में लोगों का नैतिक स्तर बहुत गिर गया है जिसे शिक्षा और ईसाई धर्म के उपदेशों द्वारा ही सुधारा जा सकता है। "योरुप के गये बीते भागों में भी सच्चे, ईमानदार और शुद्ध हृदय वाले व्यक्ति निकल आवेंगे। बंगाल में तो सच्चा और ईमानदार आदमी एक अलभ्य वस्तु है; और मुझे भय है कि जीवन में सर्वाङ्ग रूपेण विशुद्ध आचरण वाला चरित्रवान् व्यक्ति तो दुष्प्राप्य है।............भारतीयों के हाथ में दी हुई शक्ति अत्याचार और अन्याय द्वारा प्रयुक्त होती है। सभी प्रकार के पदों का रुपया कमाने में दुरुपयोग किया जाता है।............न्याय रुपये से खरीदा जा सकता है। रुपये की शक्ति इतनी प्रबल है कि यहाँ धोखेबाजी से बढ़कर न कोई अपराध है और न सोचा जा सकता है। जिस तिरस्कार या अवहेलना की दृष्टि से हिन्दू उन व्यक्तियों या हितों को देखते हैं जिनसे उनका कोई स्वार्थ नहीं होता, वह योरुप-वासियों को उनके प्रति एक अपमानपूर्ण घृणा व क्रोध से भर देता है।" किन्तु ग्रान्ट का यह विवरण उग्र व अतिशयोक्ति पूर्ण है। उसके इतना कटु होने पर भी उसका कथन इसलिये क्षम्य है कि उसका एकमात्र उद्देश्य भारतवासियों में शिक्षा-प्रचार द्वारा नैतिक जाग्रति करना था और इसी सद्भावना से प्रेरित होकर उसने यह सब लिखा था। उसने ज्ञान देने के लिये दो साधन बताये : एक तो देशी भाषाओं द्वारा और दूसरा अङ्ग्रेजी द्वारा। किन्तु उसने अङ्ग्रेजी माध्यम को ही चुना। उसका कहना था कि चरित्रवान् शिक्षकों के नेतृत्व में अङ्ग्रेजी कलायें, साहित्य-दर्शन तथा धर्म भारतीयों की विचार-धारा को परिवर्तित कर देंगे। विज्ञानों द्वारा देश की औद्योगिक व आर्थिक उन्नति होगी। इस प्रकार लोगों में वाह्य सम्पन्नता तथा सामाजिक शान्ति का प्रादुर्भाव होगा। इन भावनाओं से प्रेरित ग्रान्ट की प्राय: सभी सिफारिशें आगे चलकर मान ली गई। १८१३ ई० के आज्ञापत्र के निर्णय पर उसकी विशेष छाप है। इतना अवश्य है कि ग्रान्ट के प्रयत्न शुद्ध परोपकार की दृष्टि से नहीं थे। उनके पीछे उसकी धर्म-प्रचार तथा भारतीयों का धर्म-परिवर्तन करने की मनोवृत्ति भी काम कर रही थी।

इसके पूर्व १७९३ ई० में विल्वरफोर्स ने कम्पनी के चार्टर में शिक्षा-सुधार की एक धारा जोड़नी चाही थी, और ब्रिटिश संसद के समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव रखा :—

"ब्रिटिश धारा सभा का यह विशेष तथा अनिवार्य कर्तव्य है कि वह प्रत्येक उचित तथा बुद्धिमत्तापूर्ण साधन द्वारा भारत में अँग्रेजी राज्य के हित और समृद्धि को बढ़ावे; और इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ऐसे साधनों को अपनाया जाय जो कि क्रमश: लाभदायक ज्ञान प्राप्त करने में उनकी उन्नति करें तथा उनके धार्मिक तथा नैतिक स्तर को ऊँचा उठावें।" किन्तु कम्पनी के संचालकों ने उसे यह कह कर गिरा दिया कि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

"स्कूल और कालेजों की स्थापना की मूर्खता कर हमने अभी अमेरिका को खोया है। अतः भारत में भी वही मूर्खतापूर्ण कार्य ठीक न होगा।" लायोनिल स्मिथ ने भी यही कहा था कि "शिक्षा जाति तथा धर्म के उन कुसंस्कारों को दूर कर देगी जिनके द्वारा हमने हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध करके भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर कर रखा है। शिक्षा उनके मस्तिष्कों को विकसित करके उनकी अपार शक्ति का उन्हें बोध करा देगी।"

इस प्रकार भारतीय शिक्षा के भाग्य का निर्णय इंगलैण्ड की संसद में किया जा रहा था। भारत में भी लार्ड मिन्टो ने १८११ ई० में संचालकों को भारतीय शिक्षा के पतन की दुख गाथा लिखकर भेजी। उसने लिखा कि "भारतवासियों में विज्ञान तथा साहित्य का उत्तरोत्तर पतन हो रहा है। विद्वानों की संख्या घटने के साथ ही साथ उनके ज्ञान की परिधि भी संकीर्ण होती जा रही है। विज्ञान तथा साहित्य त्याग दिये गये हैं, केवल धार्मिक शिक्षा ही शेष बची है। इसका तत्कालीन परिणाम हुआ है कई ग्रन्थों का विनाश। यदि सरकार ने शीघ्र ही सहायता प्रदान नहीं की तो भय है, कि ग्रन्थों तथा उनकी व्याख्या करने वालों के अभाव में शिक्षा का पुनरुद्धार भी असम्भव हो जायगा।" इस प्रकार के आन्दोलन ने भारतीय शिक्षा के प्रश्न को महत्वपूर्ण तथा वाद-विवाद का प्रश्न बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जब १८१६ ई० में कम्पनी का आज्ञा-पत्र जारी हुआ तो उसमें भारतीय शिक्षा के लिये विशेष धारायें जोड़ दी गईं। इस आज्ञा-पत्र ने मिशनरियों को भी भारत में जाकर शिक्षा विचार की स्वतन्त्रता दे दी। पत्र में एक धारा यह जोड़ दी गई कि "कम से कम एक लाख रुपये की धनराशि प्रतिवर्ष अलग रख दी जायगी जिसका उपयोग साहित्य के पुनरुद्धार तथा उन्नति एवं भारतीय विद्वानों के प्रोत्साहन के लिए तथा ब्रिटिश भारतीय क्षेत्रों में भारत-वासियों के अन्तर्गत विज्ञानों का आरम्भ करने तथा उनकी उन्नति करने में लगाया जायगा।" इस धारा ने भारत में राज्य शिक्षा-पद्धति की नींव डाल दी। मिशनरियों के क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक उतर आने के कारण भारतवासियों में भी स्पर्द्धा जागृति हुई और इस प्रकार देश में राजकीय तथा व्यक्तिगत दोनों प्रकार के संगठनों का बीजारोपण हुआ तथा भारत में आधुनिक शिक्षा का एक व्यवस्थित रूप प्रारम्भ हो गया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

८

संघर्ष का प्रारम्भ

(१८१३–३३ ई० तक)

विवाद-ग्रस्त प्रश्न :

१८१३ ई० के आज्ञा-पत्र के अनुसार कम्पनी ने भारत में अपने शिक्षा-उत्तरदायित्व को आंशिक रूप में स्वीकार तो कर लिया था और "भारतवासियों की शिक्षा तथा उनमें विज्ञान का प्रारम्भ तथा उन्नति के लिये" एवं "साहित्य के पुनरुत्थान व विकास" के लिये एक लाख रुपये की धन-राशि भी अलग सुरक्षित कर दी थी, किन्तु उसने इस रुपये के व्यय करने की विधि निश्चित नहीं की। परिणामत: भारत में शिक्षा की समस्या को लेकर एक विवाद उठ खड़ा हुआ। १८१३ ई० से ३३ ई० तक २० वर्ष का युग तो शिक्षा की दृष्टि से अत्यन्त ही अनिश्चित युग था। वास्तव में कम्पनी के संचालक स्वयं शिक्षा के विषय में अनभिज्ञ तथा उदासीन थे और अधिकांश में भारत-स्थित अँग्रेज अफसरों की नीतियों का समर्थन करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि यहाँ निम्नलिखित विषयों पर विवाद उठ खड़े हुए :—

१. **उद्देश्य :** पहिला विवाद शिक्षा के उद्देश्य के विषय में था कि यहाँ थोड़े से लोगों में उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय अथवा जन-साधारण में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रसार किया जाय। इसी में एक उद्देश्य और सम्मिलित था कि प्राच्य शिक्षा और संस्कृति की सुरक्षा की जाय अथवा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञानों को प्रारम्भ करके उनकी उन्नति की जाय।

२. **माध्यम :** शिक्षा का माध्यम प्राच्य भाषायें संस्कृत, अरबी और फारसी रखी जायें अथवा देशी भाषायें और या फिर अँग्रेजी भाषा रखी जाय।

३. **साधन :** शिक्षा सरकार का उत्तरदायित्व है अथवा इसे वैयक्तिक प्रयासों पर छोड़ दिया जाय। इसी में मिशनरियों को शिक्षा-प्रसार या धर्म-प्रचार की छूट देने की बात भी उठ खड़ी हुई।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उपर्युक्त प्रश्नों को लेकर देश में प्रमुख तीन विचार-धारायें बहने लगीं। एक विचार-धारा के समर्थकों का यह दृष्टिकोण रहा कि संस्कृत और अरबी भाषा के द्वारा भारतवासियों की प्राचीन सभ्यता की रक्षा की जाय तथा उन्हें इन्हीं भाषाओं के माध्यम के द्वारा यूरोप के नवीन विज्ञानों का भी बोध कराया जाय। इस विचार-धारा के समर्थकों में कम्पनी के पुराने अधिकारी सम्मिलित थे जो कि लार्ड हैंस्टिंग्ज तथा मिन्टो के अनुगामी थे। इस विचार-धारा का जोर बंगाल में रहा।

दूसरी विचार-धारा के मानने वालों के अनुसार भारत में शिक्षा का माध्यम देशी व प्रान्तीय भाषायें होना चाहिये था। इनमें मद्रास में मुनरो और बम्बई में माउन्ट स्टुअर्ट एलफिस्टन थे। मुनरो के अनुसार भारतीय सभ्यता उच्च कोटि की थी जिससे इंगलैंड को भी बहुत कुछ सीखना था। उसने लोक सभा (हाउस आव कामन्स) में घोषणा की कि "यदि सभ्यता को ऐसा पदार्थ मान लिया जाय जिसका व्यापार दोनों देशों के मध्य में होने लगे, तो मुझे विश्वास है कि इङ्गलैंड इस पदार्थ के आयात से महान् लाभ उठा सकेगा।"

तीसरा दल ऐसे लोगों का था—यद्यपि यह इस समय अल्पमत में था—जिनमें प्रधानतः कम्पनी के नवयुवक अधिकारी थे। उनके अनुसार भारत में शिक्षा तथा पाश्चात्य विज्ञानों के प्रचार के लिये शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी होना चाहिये था। ये लोग ग्रान्ट के मत के अनुगामी थे। मिशनरी लोग भी इसी नीति के समर्थक थे यद्यपि वे लोग देशी भाषाओं द्वारा भी धर्म प्रचार कर रहे थे और अपने समय को व्यर्थ के विवाद में अधिक नष्ट नहीं कर रहे थे। उस समय सरकारी मामलों में भारतीय मत का कोई मूल्य नहीं था, तथापि बंगाल में राजा राममोहनराय जैसे सुधारक भी अँग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा पाश्चात्य विज्ञानों और विचारों का प्रसार करने के पक्ष में थे।

अँग्रेजी माध्यम के समर्थक सभी प्रान्तों में थे, किन्तु बंगाल में उनका प्राधान्य था। आगे चलकर इसी दल की विजय हुई और इन्होंने शिक्षा को अन्तिम रूप दिया; जिसका फल यह हुआ कि भारत में शिक्षा की तीव्र प्रगति को बड़ा आघात लगा। प्रान्तीय भाषाओं के विकास की गति रुक गई और भारत की प्राचीन सभ्यता को एक भयानक धक्का लगा। वास्तव में वे एक ऐसे समाज का निर्माण करने में सफल हुए जो कि अँग्रेजों तथा "उन करोड़ों प्राणियों के, जिनके कि वे शासक थे, बीच विचार-वाहक (मध्यस्थ) बने, अर्थात् एक ऐसा वर्ग जो रंग तथा रक्त में भारतीय किन्तु विचारों, रुचियों, नैतिक आदर्शों तथा बुद्धि में अँग्रेज हों।" इस प्रकार प्राचीन भारतीय सभ्यता पर विजय पाकर भारत में अपनी सभ्यता का बीजारोपण करने में यह दल सफल

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हुआ और इसमें सहायता दी राजा राममोहनराय जैसे उच्च वर्ग के भारतीयों ने जिनका अँग्रेजों से व्यक्तिगत सम्पर्क था और जो भारत के करोड़ों जन-साधारण से अधिक सम्पर्क नहीं रखते थे।

राजकीय शिक्षा प्रयत्न (१८१३-३३ ई०):-

१८१३ ई० के आज्ञा-पत्र में शिक्षा के लिये १ लाख रुपये का अनुदान नियत कर दिया गया। इसके लिये ३ जून १८१४ ई० में कम्पनी संचालकों ने अपना प्रथम शिक्षा-प्रादेश जारी किया जिसके द्वारा वे शिक्षा की उन्नति करना चाहते थे। उन्होंने कहा कि "यह धारा दो प्रमुख विचारणीय समस्याएँ उपस्थित करती है:—प्रथम भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहन तथा साहित्य का पुनरुथान व उन्नति और द्वितीय भारतीयों में विज्ञानों का प्रचार व उन्नति।" किन्तु संचालकों ने अँग्रेजी प्रकार के स्कूल व कालेजों की स्थापना का विरोध किया और देशी शिक्षा तथा प्राच्य भाषाओं की उन्नति पर जोर दिया। वास्तव में अपने राजनैतिक हितों के लिये वे भारत के प्रभावशाली वर्गों को प्रसन्न रखना चाहते थे। अत: इस समय उनका उद्देश्य प्राच्य शिक्षा-पद्धति की उन्नति करना था। उन्होंने लिखा "हम समझते हैं कि विद्वान् हिन्दुओं को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये तथा अपनी विधि से सहमत कराने के लिये उन्हें अपनी चिरकालीन परम्परा द्वारा अपने घरों पर शिक्षा प्राप्त करने दिया जाय तथा उनके गुणों का विकास करने के लिये उन्हें प्रोत्साहित किया जाय और इस प्रकार प्रोत्साहन के लिये उन्हें सम्मान-सूचक उपाधियाँ तथा कभी-कभी आर्थिक अनुदान भी दिये जाँय।"

कम्पनी के संचालकों ने भारतीय शिक्षण-विधि तथा उसके साहित्य की सराहना की। उन्होंने लिखा कि "हमें विदित हुआ है कि संस्कृत भाषा में कई उत्तम ग्रन्थ ज्योतिष तथा गणित के हैं जिसमें ज्यामिति व बीजगणित भी सम्मिलित हैं। सम्भव है इनका ज्ञान योरुपीय विद्वानों में वृद्धि न कर सके, किन्तु इनके द्वारा भारतीयों और हमारे उन कर्मचारियों में सम्पर्क स्थापित हो जायगा जो कि हमारी वेधशालाओं या इंजीनियरी-विभाग में कार्य करते हैं। इस प्रकार के सम्पर्क द्वारा भारतीय इन तथा अन्य आधुनिक विज्ञानों में प्रगति कर सकते हैं।"

इस प्रकार प्राच्य शिक्षा को प्रोत्साहन देकर वे भारतीयों तथा अपने कर्मचारियों की घनिष्ठता को बढ़ाना चाहते थे। ब्रिटिश अफसरों में उन्होंने प्राच्य-शिक्षा के प्रचार पर जोर दिया और यह भी कहा कि जो अफसर संस्कृत पढ़ने के लिये उद्यत हों उन्हें हर प्रकार की प्रथमता दी जाय। गाँव के स्कूलों के अध्यापकों की दशा पर द्रवित होकर उनके सुधार के लिये भी इन्होंने संकेत किया। इस प्रकार उन्होंने एक ऐसी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शिक्षा-पद्धति को प्रोत्साहन दिया जिसमें शिक्षण-विधि पूर्णतः प्राच्य थी। अँग्रेजी शिक्षा तथा मुसलमानों की शिक्षा के विषय में भी १८१३ ई० के आज्ञा-पत्र में कोई उल्लेख नहीं था। किन्तु यह सब सामयिक राजनैतिक चालें थीं। वस्तुतः वे केवल सम्मानसूचक उपाधियों तथा थोड़ी बहुत आर्थिक सहायता से आगे और कुछ नहीं करना चाहते थे। उनके इस आज्ञा-पत्र से कोई महत्त्वपूर्ण प्रगति की आशा नहीं की जा सकती थी। "इस आज्ञा-पत्र से अधिक निराशाजनक लेख की कल्पना भी नहीं की जा सकती, और यह एक करुणाजनक ऐतिहासिक सत्य है कि १८१३ ई० के आज्ञा-पत्र की धारा ४३ सन् १८३३ ई० तक बिल्कुल निष्क्रिय रही।"

यह बात स्मरणीय है कि कम्पनी के कर्मचारियों ने संचालकों की इस नीति को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने भारत में शिक्षा-प्रसार के अपने कर्त्तव्य को समझा। इस क्षेत्र में लार्ड मोहरा एवं सर चार्ल्स मैट्काफ का नाम भारत में सदा आदर के साथ लिया जायगा। मैटकाफ ने लिखा था कि—"भारतीयों को शिक्षित बनाने के विरुद्ध तर्क दिये गये हैं, पर एक उदार सरकार के लिये उन पर ध्यान देना कितनी अयोग्यता की बात होगी! ईश्वर ही साम्राज्य देता तथा छीनता है। शासक तो प्रजा के हित-साधन द्वारा शासन के योग्य बनते हैं। अतः यदि हम अपना कर्त्तव्य पालन करें तो भविष्य में चाहे जो परिवर्तन हों, हमें भारतीयों से कृतज्ञता तथा भूमण्डल पर प्रशंसा मिलेगी। किन्तु यदि हम अपने स्वार्थ तथा भावी विपत्तियों के सम्भावित डर से अपनी प्रजा को अच्छी बातों से वंचित रखेंगे, तो हमें अपना राज्य रखने का कोई अधिकार नहीं है, हमें अपनी इच्छाओं का विपरीत ही मिलेगा जो सम्भवतः हमारे भाग्य में भी है........ और हमें पतन के साथ ही साथ मानव जाति की घृणा भी मिलेगी।........मेरा स्वयं का विचार है कि हम विद्यार्थियों के लिये जितनी अधिक अच्छी बातें करेंगे उतना ही अधिक वे हमसे स्नेह करेंगे और परिणामतः साम्राज्य की शक्ति तथा आयु बढ़ेगी। अब यह बात सरकार की बुद्धिमानी पर निर्भर है कि वह निर्णय करे कि यह सलाह केवल काल्पनिक है अथवा सत्य पर आधारित है।"

इसी बीच में इंगलैंड में समाज-सुधार आन्दोलन जोर पकड़ रहे थे। उस भावना का भारत-स्थित अँग्रेज शासकों पर भी प्रभाव पड़ा और वे भारत में उदारता-पूर्वक शिक्षा तथा मानव-सुख की वृद्धि में जुट गये। कम्पनी संचालकों के विचारों में भी परिवर्तन हो गया और उन्होंने उदारता तथा उत्साह-पूर्वक शिक्षा-प्रसार करने के आदेश दिये। अतः इन सभी परिस्थितियों पर दृष्टि रखते हुए हम भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस काल की शिक्षा-प्रगति का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

बंगाल : यहाँ सन् १८१३ से सन् १८२३ ई० तक कोई सराहनीय शिक्षा-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रयत्न नहीं हो सका। १८२३ ई० में जाकर ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने कर्तव्य की सुध ली। फलत: १७ जुलाई, १८२३ ई० के एक प्रस्ताव के अनुसार बंगाल में गवर्नर-जनरल ने एक 'लोक-शिक्षा समिति' नियुक्त की, जिसके उद्देश्य "जनता की शिक्षा में सुधार, उनमें हितकारी ज्ञान का प्रचार तथा उनके नैतिक चरित्र को ऊँचा उठाना" इत्यादि थे। कम्पनी ने सारा उत्तरदायित्व व शिक्षा सम्बन्धी अनुदान इसी समिति को हस्तान्तरित कर दिया तथा उसकी सहायता के लिए कुछ स्थानीय समितियाँ भी बनाईं। इस समिति में बहुमत प्राच्य-शिक्षा-प्रणाली के समर्थकों का ही था।

इस समिति ने अपना कार्य प्राच्य शिक्षा को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से ही प्रारम्भ कर दिया और इसके लिए प्रथमत: इसने कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज का पुनर्संगठन किया तथा १८२४ ई० में कलकत्ता, आगरा और दिल्ली में प्राच्य शिक्षा के लिए कालेजों का निर्माण कराया। इसके अतिरिक्त १८२४ ई० में कलकत्ता में 'कलकत्ता शिक्षा प्रेस' भी स्थापित किया; और कई संस्कृत, अरबी तथा फारसी के ग्रन्थ छापे तथा बहुत से विज्ञान सम्बन्धी योरुपीय ग्रन्थों का अरबी, फारसी तथा संस्कृत में अनुवाद कराकर छपवाया। ये पुस्तकें स्कूलों में भी पढ़ाई जाने लगीं। समिति ने प्राच्य भाषाओं के विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ भी दीं।

किन्तु 'लोक-शिक्षा समिति' अपनी इस नीति पर अधिक दिनों तक न चल सकी। शीघ्र ही इसकी नीति का बड़ा विरोध होने लगा। कम्पनी के संचालकों ने भी इस नीति का समर्थन नहीं किया और १८ फरवरी १८२४ ई० के आदेश के अनुसार समिति की कार्यवाहियों पर एक प्रकार से रोक लगा दी। उनकी राय में ऐसे पुस्तकालय अथवा विद्यालय खोलकर जिनका उद्देश्य 'केवल हिन्दू या केवल मुसलमान साहित्य का ही पढ़ाना है' समिति अपने आपको उस साहित्य के पढ़ाने के लिये बाध्य कर रही है "जिसका अधिकांश भाग मूर्खताओं से भरा है तथा एक बड़ा भाग शरारतपूर्ण है, और बचा हुआ एक थोड़ा सा भाग अवश्य ऐसा है जिससे थोड़ी बहुत उपयोगिता प्राप्त हो सकती है।" समिति की राय यह थी कि हिन्दू व मुसलमान योरुपवासियों से घृणा करते हैं। अत: उनके साहित्य को पढ़ने के लिए तैयार भी नहीं होंगे और जनता की राय भी योरोपीय ज्ञान-विज्ञानों के शिक्षण के प्रतिकूल है। किन्तु यह कथन सर्वांश में सत्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि बंगाल में राजा राममोहन राय ने कलकत्ता संस्कृत के खुलने का विरोध किया। उन्होंने भारत में योरुपीय विज्ञानों तथा गणित इत्यादि के पढ़ाये जाने पर जोर दिया, उनकी राय में संस्कृत की शिक्षा देश की शिक्षा-प्रगति को रोक कर उसे अज्ञान अंधकार में रखने की एक राजनैतिक चाल थी। किन्तु उनके इस

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विरोध की कोई परवाह नहीं की गई और संस्कृत कालेज का निर्माण हो गया। आगे चलकर इसी विचार धारा ने 'प्राच्य-आँग्ल' विवाद का रूप धारण कर लिया।

वास्तव में यह वह युग था जब भारतीयों में राजनैतिक चेतनता का बीजारोपण हो चुका था। उनमें अँग्रेजी भाषा तथा पाश्चात्य ज्ञान के लिए एक तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हो गई थी। जिसके प्रमुख कारण थे मिशनरियों के द्वारा अँग्रेजी की माँग, तथा अँग्रेजी भाषा के शासकों की भाषा होने से उससे उत्पन्न होने वाले आर्थिक तथा राजनैतिक लाभ। अतः इन बातों को ध्यान में रखते हुए 'लोक शिक्षा समिति' ने आगरा कालेज तथा कलकत्ता, मदरास में अँग्रेजी की कक्षायें खुलवा दीं और दिल्ली तथा बनारस में ज़िला अँग्रेजी स्कूल खुलवा दिये। किन्तु ये प्रयत्न अपर्याप्त थे।

बम्बई : १८१८ ई० में बम्बई प्रेसीडेन्सी बनी और पूना के श्री ऐलफिंस्टन को १८१६ ई० में वहाँ का गवर्नर नियुक्त किया। श्री ऐलफिस्टन ने अपना पद संभालते ही अपना ध्यान प्रान्त की शिक्षा की ओर दिया। उन्होंने पेशवा के दक्षिणाफण्ड में से, जो कि ५,००,०००) रु० वार्षिक था, ब्राह्मणीय शिक्षा के प्रसार के लिए पूना संस्कृत कालेज खोला। यह कालेज प्रधानतः बम्बई की प्रभावशाली जाति ब्राह्मणों को प्रसन्न करने के लिए राजनैतिक उद्देश्यों से खोला गया था। १८२३ ई० तक बम्बई सरकार शिक्षा के लिए और कुछ न कर सकी। 'बम्बई-भारतीय-शिक्षा-समिति' के शिक्षा अनुदान के लिए प्रार्थना करने पर एलफिस्टन ने १३ दिसम्बर, १८२३ ई० को अपना प्रसिद्ध शिक्षा-विवरण पत्र लिखा जिसके अनुसार उसने निम्नलिखित सात सुझाव रखे:—

(१) भारतीय स्कूलों में शिक्षण-विधि का सुधार तथा स्कूलों की संख्या में वृद्धि;

(२) पाठ्य-पुस्तकों की पूर्ति;

(३) निम्न वर्ग के भारतीयों को इस शिक्षा से लाभ उठाने के लिए आकर्षित करना;

(४) योरुपीय विज्ञानों तथा उच्च शिक्षण के लिये स्कूल स्थापित करना;

(५) भारतीय भाषाओं में नैतिक तथा भौतिक विज्ञान पर पुस्तकें लिखवाना तथा प्रकाशित कराना;

(६) ऐसे लोगों के लिये अँग्रेजी स्कूलों की स्थापना करना जो कि अँग्रेजी भाषा का उच्च अध्ययन करने के इच्छुक हैं तथा योरुपीय अनुसंधानों को करने के लिये अँग्रेजी को साधन के रूप में प्रयोग करना चाहते हैं, तथा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(७) भारतीयों को ज्ञान की अन्तिम शाखाओं में अध्ययन करने के लिये प्रोत्साहन प्रदान करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐलफिस्टन जन-शिक्षा के एक प्रमुख समर्थक थे। उनकी राय में निर्धनों की शिक्षा का भार सरकार पर होना चाहिये। यह ऐलफिस्टन की बुद्धिमत्तापूर्ण नीति का ही परिणाम था कि बम्बई प्रान्त में प्रान्तीय भाषा की बहुत उन्नति हुई और यह प्रान्त सदा देशी भाषाओं द्वारा ही शिक्षा पर जोर देता रहा।

ऐलफिस्टन ने शिक्षा के संगठन के लिये सरकारी प्रयत्नों के साथ ही साथ वैयक्तिक प्रयत्नों को भी प्रोत्साहित किया, क्योंकि सरकार शिक्षा के पूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर सकती थी। यही कारण था कि उन्होंने सरकार और वैयक्तिक प्रयासों के बीच सहकारिता की भावना पर जोर दिया। 'बम्बई भारतीय शिक्षा समिति' जैसी व्यक्तिगत संस्थाओं के लिये उन्होंने शिक्षा-अनुदान की व्यवस्था की और 'ग्रान्ट-इन-एड' प्रथा को चालू किया। परीक्षा-प्रणाली भी चालू कर दी गई तथा सफल विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र, पारितोषिक और छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं।

किन्तु ऐलफिस्टन के विवरण-पत्र का उनकी कांउसिल में ही घोर विरोध हुआ। वार्डन ने, जो कि कांउसिल का सदस्य था, ऐलफिस्टन का विरोध किया। वार्डन अंग्रेजी द्वारा केवल उच्च वर्ग के कुछ लोगों को शिक्षित करने के पक्ष में था। अतः उसने प्रान्तीय शिक्षा द्वारा जन-साधारण को शिक्षा देने का विरोध किया। गाँव के देशी प्रारम्भिक शिक्षा के स्कूलों को वह निरर्थक समझता था और इनके स्थान पर प्रत्येक जिले में उच्च वर्ग तथा मध्य वर्ग के बालकों के लिये अंग्रेजी शिक्षा के स्कूल खोलने के पक्ष में था। उन्हीं बातों को लेकर आगे चलकर 'ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर विवाद' उठ खड़ा हुआ जो कि मैकाले के प्रसिद्ध विवरण-पत्र के प्रस्तुत करने पर ही समाप्त हुआ। ऐलफिस्टन ने बम्बई प्रान्त की शिक्षा में ऐतिहासिक उन्नति की, यद्यपि उन्हें अपनी नीति में पूर्ण सफलता न मिल सकी। ऐलफिस्टन-वार्डन विवाद को देखते हुए कम्पनी के संचालकों ने ऐलफिस्टन की सभी सिफ़ारिशों को नहीं माना। सरकार ने 'बम्बई-भारतीय-शिक्षा-समिति' को बम्बई प्रान्त में शिक्षा-संगठन के लिये प्रमुख संस्था स्वीकार कर लिया तथा कोई अन्य सरकारी समिति इस कार्य के लिये नियुक्त नहीं की। 'बम्बई भारतीय शिक्षा समिति' को ६०० रु० प्रति माह की आर्थिक सहायता भी स्वीकार कर ली गई। इसके अतिरिक्त बम्बई प्रान्त में अन्य कोई शिक्षा-कार्य १८१३–३३ ई० के मध्य में न हो सका।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मद्रास : पिछले अध्याय में मुनरो द्वारा मद्रास की शिक्षा की जाँच का उल्लेख हो चुका है। अपनी जाँच के दौरान में मुनरो इसी निष्कर्ष पर पहुँचा था कि शिक्षा के पतन का प्रमुख कारण सरकार की अवहेलना तथा जनता की निर्धनता है। अतः इनको दूर करने के लिये उसने स्कूलों को आर्थिक सहायता दी तथा नये स्कूल खुलवाये। शिक्षकों के प्रशिक्षण तथा उनके लिये आकर्षक वेतनों का भी मुनरो ने प्रवन्ध किया। १० मई, १८२६ ई० के अपने विवरण-पत्र में उसने स्कूलों के लिये पाठ्य-पुस्तकें छापने तथा शिक्षकों की दीक्षा के लिये प्रस्ताव किये। ये दोनों कार्य 'मद्रास-स्कूल बुक सोसाइटी' को दे दिये गये और ६०० रु० मासिक का अनुदान भी उसके लिये देना निश्चय किया गया। उसने २० जिलों में उच्च-कोटि के दो स्कूल—एक हिन्दुओं तथा दूसरा मुसलमानों—के लिये खुलवाने पर जोर दिया। वाद में ३०० तहसीलों में क्रमशः एक-एक वर्नाक्यूलर स्कूल हिन्दुओं के वास्ते खोलने की योजना बनाई। दुर्भाग्यवश १८२७ ई० में मुनरो की मृत्यु हो जाने से उसके उपरान्त यह योजना अच्छी प्रकार से कार्यान्वित न की जा सकी। इस शिक्षा-योजना के कार्यान्वित करने के लिये मुनरो ने अपने जीवन-काल में ही जून १८२६ ई० में 'लोक शिक्षा समिति' की स्थापना कर ली थी। इस समिति ने मद्रास में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये एक नॉर्मल स्कूल खोला। तहसीली स्कूलों की प्रगति भी निराशाजनक रही। १८३० ई० तक केवल १४ जिलों में ७० तहसीली स्कूल खोले जा सके। इनमें न तो शिक्षकों को वेतन ही ठीक प्रकार से मिल पाता था और न इनका निरीक्षण ही नियमित रूप से होता था।

यद्यपि मुनरो की मृत्यु से उसकी योजना सफल न हो सकी, तथापि इसका एक प्रमुख कारण दूसरा भी है। वास्तव में मुनरो का उद्देश्य शिक्षा द्वारा जनता के नैतिक, मानसिक तथा आर्थिक-स्तर को ऊँचा उठाकर सरकार के कर्त्तव्य को पूरा करना था। "हमें सदा साम्राज्य बनाये रखने का ही स्वप्न न देखना चाहिये, बल्कि भारतीयों को ऐसा बना देना चाहिये कि वे अपना शासन इस प्रकार कर सकें कि उससे उनका, हमारा तथा विश्व का कल्याण हो। हमें अपने प्रयासों के प्रतिफल स्वरूप अपना कर्त्तव्य पूरा करने की भावना तथा इसकी सफलता का श्रेय ही प्राप्त करना चाहिये।" किन्तु मुनरो अपनी योजना को भली-भाँति लागू भी नहीं कर पाया था कि कम्पनी के संचालकों ने अपना २९ सितम्बर, १८३० ई० का आज्ञापत्र भेजा जिसके अनुसार कहा गया कि मद्रास में प्रारम्भिक जन-शिक्षा पर पर्याप्त कार्य किया जा चुका है, किन्तु उच्च शिक्षा के लिये कोई प्रयत्न नहीं किये गये हैं। अतः ऐसी अवस्था में मद्रास सरकार को अपनी नीति वदल देना चाहिये। आज्ञापत्र में कहा गया कि "तुम्हारी सरकार के प्रथम प्रस्तावों में जनता के किसी भी भाग की उच्च शिक्षा को

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कोई स्थान नहीं दिया गया है। प्रारम्भिक शिक्षा का सुधार ही उनका उद्देश्य है…… परन्तु जनता की नैतिक तथा मानसिक दशा सुधारने में वही शिक्षा-सुधार सफल होते हैं जिनका सम्बन्ध उच्चतर वर्गों से होता है, जिनके पास पर्याप्त अवसर तथा अपने देश-वासियों के मस्तिष्कों पर पर्याप्त प्रभाव होता है। बहुसंख्यक वर्गों पर सीधे प्रभाव डालने के स्थान पर इन्हीं उच्च वर्गों के शिक्षा स्तर को ऊंचा करके जनता के विचारों तथा भावनाओं में अधिक व्यापक तथा हितकारी परिवर्तन करना सम्भव है। साथ ही तुम्हें ज्ञात है कि हमारी यह उत्कट इच्छा है कि हमें ऐसे भारतीयों की आवश्यकता है जो अपने स्वभाव तथा विद्या द्वारा अपने देश में उच्चतर पदों पर रखने योग्य हों। तुम्हारे प्रान्त की शिक्षा में ऐसे व्यक्ति उत्पन्न करने की क्षमता नहीं। प्रधान प्रान्त (बंगाल) में भारतीय उच्च वर्गों को अंग्रेजी भाषा तथा योरुपीय साहित्य और विज्ञानों की शिक्षा देने का प्रयास किया गया था। वहाँ इन प्रयासों को इतनी सफलता मिली कि उनकी कार्य-अवधि के थोड़े होते हुए भी वह अत्यन्त संतोष-जनक है; तथा ये प्रयास भारतीयों में सभ्य योरुपीय भावनाओं के फैलाने की व्यावहारिकता की आशा का पुष्टीकरण करते हैं। हमारी अभिलाषा है कि इसी प्रकार के प्रयत्न तुम्हारे प्रान्त में भी हों।

वास्तव में अंग्रेज शासकों का भारत में प्रमुख हित राजनैतिक था। वे नहीं चाहते थे कि यहाँ के जन-साधारण में उपयोगी शिक्षा का शीघ्र प्रचार किया जाय तथा उनके अन्दर राजनैतिक जागृति उत्पन्न करके उन्हें उनके अधिकारों तथा क्षमताओं से परिचित करा दिया जाय। यही कारण था कि उन्होंने उच्चवर्ग के लोगों को शिक्षित करने का निश्चय किया था। उच्चवर्ग के लोग बहुधा प्रत्येक देश में निम्नस्तर की कही जाने वाली जनता का शोषण करके उसके ऊपर अपना जीवन निर्भर करते हैं। भारत में भी यही अवस्था थी। उन उच्चवर्ग के लोगों के आर्थिक स्वार्थ भी इसी में थे कि वे अंग्रेजों के इस षडयंत्र के कार्यवाहक बनकर उनकी नीतियों का समर्थन करें। वस्तुत: ब्रिटिश सरकार एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना चाहती थी जो कि उनके शासन-भवन के स्तम्भ बनकर जनता के शोषण में उन्हें सहायता दें। सरकार इस स्वामिभक्ति के लिये अपने इन 'उच्चवर्ग' के दासों के समक्ष कुछ प्रलोभन रख देती थी और इस प्रकार इन्हें देश पर शासन करने तथा उसका शोषण करने का अस्त्र बनाती थी। इसी नीति को उसने बंगाल में भी अपनाया था जहाँ उसे पर्याप्त सफलता मिली। अपनी इस सफलता से उत्साहित होकर उसने अपने इस सिद्धान्त को सम्पूर्ण देश पर लागू किया और यही कारण था कि टाम्स मुनरो को, जिसने जन-शिक्षा के लिये एक उदार योजना बनाई थी, कम्पनी ने आदेश दिया कि वह बंगाल की भाँति, जहाँ राजा राममोहन राय जैसे 'देश सेवी' भारतीय शिक्षा के स्थान पर पाश्चात्य 'लाभदायक' शिक्षा को स्थाना-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पन्न करने के लिये संघर्ष कर रहे थे, मद्रास में भी उच्चवर्ग पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञानों का प्रसार करें। इस प्रकार उच्चवर्ग को शिक्षा देकर यह धारणा करना कि शिक्षा उच्चवर्ग से छन कर निम्नवर्गों तक पहुँच जायगी, भारतीय शिक्षा के इतिहास में 'शिक्षा छनाई का सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है।

गैर-सरकारी प्रयत्न :

किन्तु इन सरकारी प्रयासों के समानान्तर गैर-सरकारी प्रयास भी जारी थे जिन्हें प्रधानत: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है : १—मिशनरी और, २—गैर मिशनरी। आगे की पंक्तियों में हम इन्हीं का उल्लेख करेंगे।

(क) मिशनरी शिक्षा प्रयत्न (१८१३-३३) : १८१३ ई० के आज्ञा-पत्र ने अंग्रेजी मिशनरियों के लिये भारत के द्वार खोल दिये थे। फलत: यहाँ कई धर्मप्रचारक मंडलियाँ आईं और इन्हीं धर्म-प्रचारकों ने अपने धार्मिक उद्देश्यों से भारत में शिक्षा का कार्य अपने हाथ में लिया। यह निर्विवाद है कि शिक्षा-प्रचार इनका प्रत्यक्ष उद्देश्य नहीं था। वे तो धर्म परिवर्त्तन करना चाहते थे। अत: शिक्षा के द्वारा ही वे निम्न तथा उच्च वर्गों के सम्पर्क में आकर उन्हें प्रभावित कर सकते थे। इसके अतिरिक्त धर्म-परिवर्तित लोगों के साथ अपना सम्बन्ध स्थायी करने के लिये भी उनका शिक्षा प्रबन्ध आवश्यक था। साथ ही उन्हें ऐसे सहायक धर्म-प्रचारक भी तैयार करने थे जो भारतीय जनता में से ही हों। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उन्हें शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों को अपनाना पड़ा। किन्तु इतना अवश्य है कि उनके इस प्रयत्न से देश में शिक्षा की बहुत उन्नति हुई। उनकी प्रारम्भिक नीति देशी भाषाओं में शिक्षा देने की थी। देशी भाषाओं में उन्होंने पाठ्य-पुस्तकें, शब्दकोष तथा व्याकरणों की रचना करके एक ऐसा सराहनीय कार्य किया जिसके लिये भारत उनका चिर-ऋणी रहेगा। धर्म-प्रचार के उनके जोश ने शिक्षा-उन्नति में भी उन्हें उसी जोश के साथ लगा दिया। १८१३ ई० के बाद जो मिशनरियाँ भारत में आईं उनमें 'जनरल बैप्टिस्ट मिशन सोसाइटी', 'लन्दन मिशनरी सोसाइटी,' 'चर्च मिशन सोसाइटी,' 'वैसलियन मिशन' तथा 'स्कॉच मिशनरी सोसाइटी' प्रमुख हैं। इन्होंने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अपने कार्य को प्रसारित किया।

बंगाल : बंगाल में सीरामपुर में बैप्टिस्ट मिशन ने धर्म-प्रचार बड़े जोरों से प्रारम्भ किया था। १८१५ ई० में लगभग १५ स्कूल खोले। सीरामपुर का छापाखाना सराहनीय कार्य कर ही रहा था। 'समाचार दर्पण' नामक एक समाचार-पत्र भी उन्होंने निकाला। १८१८ ई० में सीरामपुर कालेज की नींव डाली जिसका प्रमुख उद्देश्य भारतीय तथा अधगोरों को धर्म-प्रचार की दीक्षा देना था। भारत में यह प्रथम मिशन कालेज

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

था। इसके अतिरिक्त 'लन्दन मिशनरी सोसाइटी' के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता ने चिनसुरा में प्रारम्भिक शिक्षा के ३६ स्कूल खोले जिनमें ३,००० बच्चे पढ़ते थे। 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' के कप्तान स्टीवर्ट ने वर्दवान में १० वर्नाक्यूलर स्कूल खोले जिनमें लगभग १००० बच्चे पढ़ते थे। भवानीपुर तथा वरहमपुर में भी स्कूल खोले गये। १८२० ई० में शिवपुर में विशेष कॉलेज की स्थापना हुई। बंगाल में मिशनरियों के कार्यों को १८३० ई० में स्काटलैंड के मिशनरी अलैक्जेंडर डफ के आगमन से बड़ा प्रोत्साहन मिला। उसके अथक प्रयासों से बंगाल में अँग्रेजी शिक्षा का प्रचार भी हुआ। डफ जगद्गुरु भारत को 'मुक्ति' का पाठ पढ़ाने आया था। उसके मतानुसार भारतीयों की मोक्ष 'पश्चिम तथा बाइबिल' की कृपा पर ही अवलम्बित थी। डफ ने कलकत्ता में स्काटिश चर्च कालेज भी स्थापित किया, जहाँ शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी का तथा बाइबिल अनिवार्य थी।

बम्बई : १८१५ ई० में अमेरिकन मिशन ने बम्बई में एक स्कूल लड़कों के लिये तथा १८२४ ई० में लड़कियों के लिये खोला। कोंकण में १८२२ ई० में 'स्काटिश मिशन' ने अपना कार्य प्रारम्भ किया। १८२९ ई० में डा० विल्सन ने लड़कियों के लिये एक स्कूल बम्बई में खोला। इसके अतिरिक्त सूरत में भी कुछ स्कूल खोले गये। इस प्रकार बम्बई में मिशनरियों का शिक्षा-कार्य इतना व्यापक नहीं था जितना कि बंगाल में।

मद्रास : चर्च मिशन सोसाइटी ने मद्रास में १८१५ से १८३५ ई० तक बहुत से स्कूल खोले। अकेले तिनेवली में १०७ स्कूल थे, जिनमें २८८२ विद्यार्थी पढ़ते थे। १८१७ ई० में हग ने ९ स्कूल खोले, जिनमें २८३ विद्यार्थी पढ़ते थे। 'वैसलियन मिशन' ने भी १८१९ ई० में मद्रास में कुछ स्कूल खोले। इसके अतिरिक्त कुम्भकोणम, चित्तूर, सेलम, कोइम्बटूर, विशाखपट्टणम्; कड़पा तथा बिलारी इत्यादि अन्य स्थान मद्रास प्रान्त में और थे जहाँ मिशनरियों ने अपने स्कूल स्थापित किये। डफ (१८३० ई०) तथा जॉन विल्सन (१८२९ ई०) ने भी मद्रास में अपने शिक्षा केन्द्र स्थापित करके ईसाई धर्म का प्रचार किया।

इनके अतिरिक्त अजमेर भी एक प्रमुख केन्द्र था जहाँ ईसाइयों ने 'लंकास्ट्रियन-प्रणाली' पर स्कूल खोले। सन् १८२३ ई० में वहाँ चार स्कूल थे जिनमें १०० विद्यार्थी थे। चार वर्ष उपरान्त चारों स्कूल मिलाकर एक स्कूल बना दिया गया। इसी प्रकार 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' ने वर्दवान, आगरा, मेरठ, बनारस, आजमगढ़ तथा जौनपुर में भी अपने प्रचार-केन्द्र स्थापित करके वहाँ स्कूलों की व्यवस्था की। बम्बई प्रान्त में नासिक भी एक केन्द्र था।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(ख) गैर-मिशनरी प्रयास १८१३-३३. बंगाल : बंगाल में सरकारी तथा मिशनरी प्रयत्नों के साथ ही साथ जनता का व्यक्तिगत प्रयत्न भी शिक्षा-प्रसार में लगा हुआ था। ब्रह्मसमाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय, तथा डैविड हेयर, राधाकान्त देव और सर एडवर्ड हाइड ईस्ट इत्यादि महानुभावों के नाम इस क्षेत्र में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राजा राममोहन राय प्रथम भारतीय थे जिन्होंने पाश्चात्य सभ्यता, ज्ञान तथा विज्ञानों की सराहना की। इन विज्ञानों के द्वारा वे भारत में भी सांस्कृतिक जागरण लाना चाहते थे। यद्यपि वे संस्कृत तथा बंगाली के भी ज्ञाता थे, किन्तु प्राच्य साहित्य तथा प्राच्य भाषाओं को वे देश के लिये वर्त्तमान परिस्थितियों में अधिक हितकर नहीं समझते थे। राजा राममोहन राय उन प्रथम भारतीयों में से थे जो कि प्राच्य और पाश्चात्य ज्ञान व संस्कृतियों का समन्वय व सामंजस्य चाहते थे। यद्यपि उन्हें विश्वास था कि भारतीय संस्कृति की अपनी मौलिक विशेषताएँ हैं तथापि उन्होंने यह भी अनुभव कर लिया था कि इस समय भारतीय ज्ञान-विज्ञानों तथा संस्कृत भाषा के अध्ययन से देश का कल्याण नहीं हो सकेगा। उन्होंने प्राच्य संस्कृति की निन्दा नहीं की और न उसके उन्मूलन की ही इच्छा प्रकट की। उन्होंने तो प्राच्य व पाश्चात्य संस्कृति के सामंजस्य के लिये ही प्रयास किये; और साथ ही भारतवासियों में व्याप्त अज्ञान, अन्धविश्वासों तथा प्रतिक्रियावादी परम्पराओं को तोड़ कर उन्हें पश्चिम के वैज्ञानिक व यथार्थवादी संसार के सम्पर्क में लाने के यत्न किये।

सर एडवर्ड हाइड ईस्ट बंगाल के चीफ जस्टिस तथा राजा राममोहन राय के मित्र थे। १४ मार्च, १८१६ ई० को इन लोगों ने एक सभा की जिसमें एक अँग्रेजी स्कूल खोलने की योजना पर विचार किया। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये तत्काल ही ५०,०००) रु० चन्दा कर लिया। इस प्रकार २० जनवरी, १८१७ ई० को महाविद्यालय (हिन्दू कालेज) की नींव पड़ी। सन् १८२४ ई० में जाकर इसे सरकारी सहायता भी मिलने लगी। इसमें अँग्रेजी, नीति-शास्त्र, व्याकरण, हिन्दुस्तानी, बंगला, गणित, इतिहास, भूगोल तथा ज्योतिष पढ़ाये जाते थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसमें संस्कृत तथा फारसी भाषा का बहिष्कार कर दिया गया। यह वास्तव में एक मूलभूत भूल थी, क्योंकि ऐसा करने से पाश्चात्य और प्राच्य सभ्यताओं के सम्मिश्रण का सुअवसर जाता रहा।

हिन्दू कालेज के अतिरिक्त अन्य प्रयत्न भी किये गये। १८१७ ई० में 'कलकत्ता स्कूल-पुस्तक समाज' स्थापित किया गया जिसने बिना मूल्य या नाममात्र मूल्य पर पुस्तकें छापीं। १८२१ ई० तक लगभग १ लाख २६ हजार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं, सरकार ने भी ७,०००) रु० का दान इस समाज को दिया। १८१६ ई० में 'कलकत्ता

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विद्यालय समाज' की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य बंगाल प्रान्त में अंग्रेजी तथा बँगला के स्कूल स्थापित करना था। सन् १८२१ ई० तक इस समाज ने ११५ स्कूल खोले जिनमें ३८२८ विद्यार्थी थे। १८२३ ई० में सरकार ने इन स्कूलों की सहायता के लिये ६०००) रु० वार्षिक की स्वीकृति दी। इस प्रकार ये दोनों समाज मिलकर १८३३ ई० तक सराहनीय कार्य करते रहे।

वम्बई : बम्बई प्रान्त में इस काल में शिक्षा-विकास का श्रेय अधिकांश में वैयक्तिक प्रयत्नों को ही है। १८१५ ई० में इङ्गलैंड के चर्च के सदस्यों ने वम्बई राज्य के अन्तर्गत निर्धनों की शिक्षा की उन्नति के लिये एक समाज की स्थापना की जिसका प्रधान उद्देश्य योरुपीय सैनिकों के बच्चों को शिक्षित करना था। इस समाज ने बहुत से स्कूल सूरत, थाना तथा वम्बई में खोले। धर्म के उपदेशों का श्रवण वैकल्पिक होने के कारण बहुत से हिन्दू, पारसी तथा मुसलमान बालक भी इन स्कूलों में जाने लगे। आगे चलकर यह समाज 'वम्बई शिक्षा समाज' के नाम से कार्य करने लगा। सन् १८२० ई० तक इसने चार स्कूल भारतीय बालकों के लिये खोल दिये जिनमें २५० विद्यार्थी थे। सन् १८२० ई० में ऐलफिंस्टन के प्रयत्नों से इस समाज के अन्तर्गत एक समिति स्थापित हुई जिसका नाम 'भारतीय शिक्षालय तथा पाठ्य-पुस्तक समिति' था। इस समिति के दो उद्देश्य थे—१. भारतीय बालकों के लिये प्रचलित स्कूलों का सुधार तथा नये स्कूल खोलना और २. स्कूल में पढ़ने वाले भारतीय बालकों के लिये पाठ्य-पुस्तकें तैयार करना। बम्बई शिक्षा समाज इस प्रकार शिक्षा की उन्नति कर रहा था। सन् १८२७ ई० में जाकर उसने 'बम्बई भारतीय शिक्षालय-पुस्तक तथा शिक्षालय समाज' की स्थापना की जो कि १८२७ में 'बम्बई भारतीय शिक्षा समाज' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस समाज ने भारतीय बालकों की शिक्षा की पर्याप्त उन्नति की। अपनी स्थापना के उपरान्त ही इस समाज ने तत्कालीन शिक्षा अवस्था की जाँच पड़ताल कराई जिसके अनुसार इसने मालूम किया कि उचित पुस्तकों तथा शिक्षकों का अभाव, गलत शिक्षण-विधि तथा धन का अभाव इत्यादि प्रमुख कठिनाइयाँ थीं जो कि प्रान्त की शिक्षा-उन्नति में बाधक थीं। फलत: देशी भाषाओं में अच्छी पाठ्य-पुस्तकों के छपने की व्यवस्था की गई। शिक्षकों की दीक्षा के लिये ६ शिक्षक मराठी, गुजराती, कन्नड़ तथा उर्दू में दीक्षित किये गये। कुछ अंग्रेजी स्कूलों के खोलने की भी समिति ने सिफारिश की। 'बम्बई शिक्षा समाज' ने समिति की इन सिफारिशों को मान लिया तथा सरकार से स्कूल खोलने के लिये सहायता की माँग की। फलस्वरूप समाज को ६००) रु० मासिक की सहायता सरकार से प्राप्त हुई। इस सहायता के उपरान्त इसने बड़ी उन्नति की।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मद्रास : इस प्रान्त में शिक्षा को गैर-मिशनरी प्रोत्साहन बहुत कम मिला। मैसूर का राजा बंगलौर के अंग्रेजी स्कूल के लिये ३५०) रु० वार्षिक सहायता देता था। 'मद्रास शिक्षालय समाज' को सरकार की ओर से ६,०००) रु० वार्षिक सहायता मिलती थी। पच्चयप्पा ने जोकि एक धनवान् हिन्दू था, अपनी मृत्यु के उपरान्त ४ लाख रु० दान के लिये छोड़ा था, किन्तु इस धन का उपयोग १८४२ ई० में जाकर ही हो सका और गरीब विद्यार्थियों के लिये अंग्रेजी, तमिल तथा तैलुगु के स्कूल खुल सके। बाद में इस धन-राशि में से कुछ छात्रवृत्तियाँ भी प्रदान की गईं।

संयुक्त प्रान्त : इसके अतिरिक्त संयुक्त प्रान्त और दिल्ली में भी व्यक्तिगत दानियों ने शिक्षा के हेतु को आगे बढ़ाया। सन् १८१८ ई० में बनारस में श्री जयनारायण घोषाल ने जयनारायण स्कूल के लिये २० हजार रुपये दान दिये। सरकार की ओर से भी इस स्कूल को ३ हजार रु० का वार्षिक अनुदान प्राप्त हुआ। सन् १८२४ ई० में आगरा के संस्कृत कॉलेज को आगरा कालेज के नाम से संगठित किया गया। इसका श्रेय श्री गंगाधर शास्त्री को है। उन्होंने अपनी १½ लाख की सम्पत्ति, जिसकी वार्षिक आय २० हजार रुपया है, कॉलेज को दान दे दी। दिल्ली में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रोत्साहन व्यक्तिगत रूप से किया गया। इनमें श्री डवल्यू फ्रेजर के प्रयत्न विशेष उल्लेखनीय हैं। सन् १८२६ ई० में नवाब इस्लामउद्दौला ने दिल्ली कॉलेज के लिये १ लाख ७० हजार रु० का दान देकर उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

पाश्चात्य-शिक्षा प्रणाली की प्रगति :

बंगाल, मद्रास तथा बम्बई प्रान्तों में शिक्षा ने १८२३ ई० के उपरान्त अच्छी प्रगति की। बंगाल में हिन्दू कालेज अंग्रेजी के लिये आन्दोलन कर रहा था। परिणामत: देश में बहुत अंग्रेजी के स्कूल खुले। डा० डफ के द्वारा चलाया हुआ पाश्चात्य शिक्षा व सभ्यता प्रचार-आन्दोलन भी अपना प्रभाव उत्पन्न कर रहा था। अंग्रेजी का राजनैतिक व आर्थिक महत्त्व बढ़ता ही जा रहा था। फलत: उच्च व मध्य वर्गों द्वारा इसकी माँग बढ़ी। प्राचीन रूढ़ियाँ व परम्परायें टूटने लगीं और लोगों के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे। अंग्रेजी पढ़े हुए भारतीय अपनी प्राचीन सभ्यता से घृणा करने लगे और अपने ही देश में स्वयं को एक विचित्र जीव समझने लगे। 'उन्होंने हिन्दू धर्म का पूर्णत: परित्याग कर दिया।' ये लोग अधिकांश में हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थी थे। उधर छापेखाने ने भी शिक्षा-क्षेत्र में क्रान्ति कर दी। प्राचीन अलभ्य ग्रन्थ अब जनसाधारण के लिये सुलभ हो गये। एक विशाल स्तर पर पाश्चात्य-साहित्य का सृजन हुआ जिसने दीर्घकाल से चली आने वाली जीवन की शुष्कता को नष्ट करके

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जीवन को एक नवीन समीरण के झकोरों से हरा-भरा करके स्फुरित कर दिया। इसके अतिरिक्त एक दल सुधारकों तथा दूसरा रूढ़िवादियों का भी था। सुधारकों ने पाश्चात्य तथा प्राच्य-शिक्षा के मध्यम मार्ग को अपनाया।

बंगाल की भाँति बम्बई तथा मद्रास में भी शिक्षा ने १८२३ ई० के उपरान्त प्रगति की। बम्बई में ऐलफिंस्टन जैसे योग्य तथा सात्त्विक परोपकारी शासकों के संरक्षण में देशी भाषा व ज्ञान और अङ्गरेजी तथा पाश्चात्य विज्ञानों, दोनों की ही आशाजनक उन्नति हुई। बम्बई निवासियों ने ऐलफिस्टन की स्मृति अमर करने के लिये दो लाख रुपया इकट्ठा करके उसके नाम से एक स्कूल की स्थापना की। कम्पनी के संचालकों ने भी दो लाख रुपया दान दिया और १८३४ ई० में 'ऐलफिस्टन इंस्टीट्यूट' की स्थापना की गई। मद्रास में भी अङ्गरेजी का प्रचार दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा था। उधर 'लोक शिक्षा समिति' भी अपनी शिक्षा योजनाओं को कार्यान्वित कर रही थी। कम्पनी के संचालक भी अब राजनैतिक उद्देश्यों से प्रभावित होकर शिक्षा का उद्देश्य 'राजकार्यों के लिये योग्य व्यक्ति उत्पन्न करना' बताने लगे। फलतः अंग्रेजी का प्रचार और भी अधिक बढ़ा। विलियम बैंटिक के गवर्नर जनरल नियुक्त हो जाने पर भारत की शिक्षा-नीति जो अब तक अनिश्चित व अस्थिर थी, स्थिर होने लगी। आपने २६ जून, १८२९ ई० के पत्र में, जो उसने 'लोक शिक्षा समिति' के नाम लिखा था, स्पष्ट कर दिया कि उसका विचार अंग्रेजी को क्रमशः तथा अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण देश में व्यावहारिक राजभाषा बनाने का है।

बीस वर्ष के उपरान्त कम्पनी ने १८३३ ई० में अपना आज्ञा-पत्र जारी किया। इसके अनुसार भारत में सभी देशों की मिशनरियों को अपने कार्य चलाने की पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई। दूसरे, इस आज्ञा-पत्र ने यह सिद्धान्त भी घोषित कर दिया कि "कोई भी भारतवासी तथा सम्राट् का कोई भी स्वाभाविक प्रजाजन अपने धर्म, जन्म-स्थान, वंश तथा वर्ण के आधार पर किसी भी स्थान तथा पद को प्राप्त करने से रोका न जाय।" इससे अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार सभी वर्गों में अबाध गति से बढ़ने लगा। इस पत्र के द्वारा बंगाल के गवर्नर का अधिकार अन्य प्रान्तों की सरकारों पर भी कर दिया गया, जिसके द्वारा उसे अपनी नीतियों को लागू करने का अधिकार भारत के अन्य भागों पर भी मिल गया। शिक्षा-अनुदान को एक लाख रुपये से बढ़ाकर १० लाख कर दिया गया, जिससे शिक्षा के विकास की आशा बंध गई। अन्त में इस आज्ञापत्र के द्वारा गवर्नर-जनरल की कौंसिल में एक चौथा सदस्य (कानून सदस्य) भी बढ़ा दिया गया। इस पद पर सर्वप्रथम लॉर्ड मैकाले की नियुक्ति हुई, जिसने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ दिया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१

संघर्ष की समाप्ति और शिक्षा का आँग्लीयकरण
(१८३५ से १८५३ ई० तक)

प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा विवाद :

१९वीं शताब्दि के प्रारम्भ से ही एक संघर्ष चला आ रहा था कि भारत में संस्कृत, अरबी तथा फारसी के माध्यम के द्वारा प्राच्य-ज्ञान का प्रचार किया जाय अथवा अँग्रेजी भाषा द्वारा पाश्चात्य साहित्य व विज्ञानों का। प्राच्य-मत के समर्थकों ने १८१३ ई० के आज्ञा-पत्र की ४३वीं धारा जिसके अनुसार 'एक लाख रुपया साहित्य के विकास तथा विद्वान् भारतवासियों के प्रोत्साहन के लिये और ब्रिटिश भारत के निवासियों में विज्ञानों के प्रचार तथा प्रसार के लिये,' पृथक् रख दिया था, उसकी व्याख्या इस प्रकार की : "वह साहित्य जिसके विकास का उल्लेख किया गया है उसका अर्थ दो महान् जातियों—हिन्दू-मुसलमानों के साहित्य से है।"........विज्ञानों के प्रचार व प्रसार के विषय में भी इन लोगों का मत था कि वे संस्कृत और अरबी फारसी में पढ़ाये जाने चाहिये। उनकी राय में भारतवासियों में पाश्चात्य विज्ञानों के प्रति पर्याप्त घृणा थी। अतः अपने देश की प्राचीन भाषाओं में ही वे स्वीकार किये जा सकते थे। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए प्राच्य शिक्षा के स्कूलों के द्वारा वे संस्कृत व फारसी के ज्ञान तथा संस्कृति को जीवित रखना चाहते थे। अँग्रेजी को वे शिक्षा का माध्यम रखने को तैयार नहीं थे। प्राच्य-ज्ञान के प्रचलित स्कूलों जैसे कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज जैसी संस्थाओं की भी सुरक्षा चाहते थे। प्रिंसेप के मत में कलकत्ता मदरसा वारेन हैस्टिङ्गज का स्मारक था और इसका तोड़ना विश्वासघात के समान था; तथा यही एक ऐसी संस्था थी जिसके द्वारा बंगाल के मुसलमानों से सम्पर्क बना हुआ था। प्रिंसेप ने तर्क भी दिया कि भारतीय कभी भी अँग्रेजी भाषा के विद्वान् नहीं हो सकते। यद्यपि उसका यह कथन असत्य था क्योंकि भारतीय दिन-प्रतिदिन इस बात का प्रमाण देते जा रहे थे कि वे अँग्रेजी के प्रकाण्ड पंडित हो सकते हैं। तो इस प्रकार के कुछ तर्कों के द्वारा इन लोगों ने भारत में शिक्षा का माध्यम संस्कृत, अरबी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V.Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

तथा फारसी रखने की सिफारिश की तथा प्राच्य संस्कृति की सुरक्षा के लिये प्रयत्न किये।

पाश्चात्य शिक्षा के समर्थकों का कहना था कि प्राच्य-शिक्षा-पद्धति ढीली व हानिप्रद है। वे नहीं चाहते थे कि भारत के पुराने ठूंठ पर योरुप की नई कोंपलों की कलम लगाई जाय। अत: उन्होंने अँग्रेजी भाषा के माध्यम के द्वारा पाश्चात्य विज्ञानों और साहित्य का भारतवासियों में प्रसार करने का समर्थन किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि भारतीय योरुपीय ज्ञान को सम्पादित करना चाहते हैं तथा अँग्रेजी के लिये भी उनमें बड़ी माँग है। अत: वे चाहते थे कि शिक्षा के लिये संकल्पित सम्पूर्ण धन-राशि पाश्चात्य शिक्षा पर ही व्यय की जाय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों मतों के समर्थक इस बात पर एक मत थे कि देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम न बनाया जाय; क्योंकि उनके मतानुसार वे बड़ी 'अविकसित तथा गँवारू' थीं तथा उनमें 'उदार शिक्षा के लिये न तो पर्याप्त साहित्यिक और न वैज्ञानिक ज्ञान' ही था। वे इस बात पर भी एक मत थे कि केवल उच्च और मध्यम वर्ग को ही शिक्षित किया जाय, क्योंकि जनसाधारण को शिक्षित करने के लिये सरकार के पास पर्याप्त धन नहीं है, साथ ही उच्चवर्ग के शिक्षित होने से उनके सम्पर्क से जनता के निम्नवर्गों में भी शिक्षा छन-छन कर पहुँच जायगी।

मैकाले का विवरण-पत्र तथा उसके परिणाम :

१० जून, १८३४ ई० को लार्ड मैकाले गवर्नर जनरल की कांउसिल का कानून सदस्य बनकर आया। कानून-सदस्य की हैसियत से सरकार ने उससे यह कानूनी सलाह माँगी थी कि क्या १ लाख रुपये की धनराशि प्राच्य शिक्षाओं के अतिरिक्त और किसी प्रकार भी खर्च की जा सकती है? तथा १८१३ ई० के आज्ञापत्र की शिक्षा-सम्वन्धी धारा की वास्तविक व्याख्या क्या है? २ फरवरी, १८३५ ई० को उसने कौंसिल के समक्ष अपना प्रसिद्ध विवरण-पत्र रखा। उसके तर्कों के प्रमुख अंशों को हम यहां उद्धृत करते हैं।

"लोक शिक्षा समिति के कुछ सदस्यों का मत है कि उनकी शिक्षा-नीति अब तक १८१३ ई० के आज्ञा-पत्र द्वारा निर्धारित हुई है।........मेरी राय में संसद के कानून का वह अर्थ नहीं लगाया जा सकता जो कि लगाया गया है। उसमें विशेष भाषाओं तथा विज्ञानों का नाम नहीं है। शिक्षा-अनुदान भी "साहित्य पुनरुद्धार तथा उन्नति और भारतीय विद्वानों के प्रोत्साहन तथा भारतीयों में विज्ञानों का प्रचार व प्रसार" करने के लिये है। तर्क दिया जाता है कि 'साहित्य' से संसद का अभिप्राय

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

'संस्कृत तथा अरबी साहित्य' से ही हो सकता है तथा भारतीय विद्वान् से उनका अभिप्राय न्यूटन के भौतिक शास्त्र तथा मिल्टन के काव्य के ज्ञाताओं से नहीं हो सकता।''....

इस प्रकार मैकाले ने 'साहित्य के पुनरुद्धार' तथा 'भारतीय विद्वान्' शब्दों की उससे भिन्न व्याख्या की जो कि प्राच्य-शिक्षा समर्थक अब तक करते चले आ रहे थे। उसने यह भी धमकी दी कि यदि उसकी ये व्याख्यायें स्वीकार नहीं की गई तो वह १८१३ ई० के एक्ट की ४३वीं धारा में ही संशोधन कराने का प्रस्ताव रखेगा।

संस्कृत, अरबी तथा फारसी के शिक्षालयों पर होने वाले व्यय को वह एक निरर्थक दुरुपयोग समझता था। उसके अनुसार कोई भी ऐसा तर्क नहीं दिया जा सकता था जिसके अनुसार एक बार स्थापित हुए इन शिक्षालयों को सरकार न तो तोड़ सकें, विशेषत: जबकि वे हानिप्रद हों। उसने कलकत्ता मदरसा की हिन्दू कालेज से तुलना करके दर्शाया कि कलकत्ता मदरसा इतना लाभप्रद नहीं है। ''अरबी तथा संस्कृत पुस्तकों पर तीन वर्ष में ६ हजार रुपये व्यय हुए और एक हजार भी वसूल न हो सका। इसके विपरीत 'कलकत्ता पुस्तक समाज' सात आठ हजार पुस्तक बेचकर २ प्रतिशत लाभ उठा सकता है।'' उसने यह भी कहा कि इन अरबी और संस्कृत शिक्षालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी बिना आर्थिक सहायता दिये हुए नहीं पढ़ सकते, जब कि अंग्रेजी स्कूलों में विद्यार्थी उल्टी फीस देने को तैयार हैं। ऐसी अवस्था में प्राच्य शिक्षालयों को बन्द कर देना चाहिए। उसने कहा, ''मेरे मत में वाइसराय को इस रुपये को अरबी और संस्कृत शिक्षा पर व्यय होने से रोकने का उतना ही अधिकार है जितना मैसूर में चीते मारने वालों के पारितोषिक को कम करने का।''

इसके उपरान्त मैकाले शिक्षा के माध्यम के प्रश्न को लेता है। उसने वस्तुत: अँग्रेजी को ही शिक्षा-माध्यम के लिये सबसे उपयुक्त चुना। देशी भाषाओं के विषय में तो उसने कहा है कि ''भारत के निवासियों में प्रचलित भाषाओं में एक तो साहित्यिक और वैज्ञानिक ज्ञान-कोष का अभाव है, साथ ही वे इतनी अविकसित तथा गँवारू हैं कि जब तक उन्हें किसी वाह्य-भण्डार से सम्पन्न नहीं किया जायगा, उनमें कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अनुवादित नहीं हो सकते। अत: यह सर्वमान्य प्रतीत होता है कि उच्च-स्तर की शिक्षा द्वारा उस वर्ग का बौद्धिक सुधार, जिनके पास इसके लिये साधन हैं, किसी ऐसी भाषा में ही सम्भव है जो उनके बोलचाल की भाषा नहीं है।........समिति का एक भाग चाहता है कि यह भाषा अँग्रेजी हो तथा दूसरा संस्कृत और अरबी की वकालत करता है। मेरी समझ में प्रश्न यह है कि कौनसी भाषा अधिक सीखने योग्य है?''

इस प्रकार देशी भाषाओं के माध्यम का प्रश्न समाप्त करके उसने अँग्रेजी और

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

संस्कृत इत्यादि में ही विकल्प रखा। मैकाले अरबी तथा संस्कृत नहीं जानता था, तथापि अज्ञान, दम्भ और साहसपूर्वक उसने कहा कि "एक अच्छे योरुपीय पुस्तकालय की केवल एक अलमारी भारत तथा अरब के सम्पूर्ण साहित्य के बराबर होगी। सम्भवत: इससे बड़ा अज्ञानपूर्ण दम्भ नहीं हो सकता। इन भावनाओं के जोश में उसने अंग्रेजीं माध्यम के जिये जोरदार अपील की : "भारत में अँग्रेजी शासकों की भाषा है तथा राजधानियों में उच्च वर्ग के भारतीय भी इसे बोलते हैं। साथ ही संभावना है कि पूर्वीय समुद्रों में यह व्यापार की भाषा भी बन जाय। आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका में उन्नतिशील योरुपियों की भी भाषा यही हैं, जिनका सम्बन्ध दिन प्रतिदिन भारत से बढ़ रहा है। अत: चाहे हम भाषा के महत्त्व पर विचार करें अथवा देश की स्थिति पर, अँग्रेजी ही भारतीयों के लिये सबसे हितकर होगी।"

भारतीय विज्ञानों तथा साहित्य का परिहास करते हुए मैकाले आगे चलकर कहता है कि—

"अब हमारे सम्मुख प्रश्न केवल यह है कि जब हम इस भाषा (अँग्रेजी) को पढ़ा सकते हैं तो क्या हम उन भाषाओं को पढ़ायेंगे जिनमें सर्वसम्मति से किसी विषय पर भी ऐसी पुस्तक नहीं है जिनकी तुलना हमारे ग्रन्थों से हो सके ? जब हम योरुपीय विज्ञान पढ़ा सकते हैं तो क्या हम ऐसे विज्ञान पढ़ायेंगे जो खराब हैं; जब हम सच्चा इतिहास तथा दर्शन पढ़ा सकते हैं तो क्या सरकारी रुपये से ऐसे चिकित्सा-सिद्धान्त पढ़ायेंगे जिन पर अँग्रेजों के पशु-चिकित्सकों तक को लज्जा आवेगी अथवा वह ज्योतिष जिस पर स्कूलों की अँग्रेज बालिकायें हंस पड़ेंगी; इतिहास जिसमें ३० फीट लम्बे राजाओं का वर्णन है जिनके राज्य ३० हजार वर्ष तक चलते थे; और ऐसा भूगोल पढ़ायेंगे जिसमें शीरे और मक्खन के समुद्रों (क्षीर सागर) का वर्णन है ?"

मैकाले तो संस्कृत और अरबी को कानून के लिये भी अध्ययन करने के पक्ष में नहीं था। उसने सुझाव रखा था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिये संहिता (कोड) बन जाने चाहिये जिनमें उनके धर्म-सिद्धान्त निहित हों। धर्म के विषय में मैकाले कठोर धार्मिक-निरपेक्षता का पक्षपाती था और भारतीयों के धर्म में किसी प्रकार का भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। उसकी राय में यदि संस्कृत व अरबी के द्वारा शिक्षण दिया गया तो "हमें झूठा इतिहास, झूठी ज्योतिष तथा झूठा चिकित्सा-शास्त्र इसलिये पढ़ाने पड़ेंगे क्योंकि उनका सम्मिश्रण एक झूठे धर्म से हो रहा है। हम धर्म के विषय में तटस्थ हैं, और मुझे विश्वास है कि सदा तटस्थ रहेंगे, और धर्म परिवर्तन करने वाले ईसाइयों को कभी खुले रूप में प्रोत्साहन नहीं देंगे; और जब हमारा व्यवहार इस प्रकार

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

का होगा तो क्या हम राज्य-कोष में से लोगों को रिश्वत देकर इस बात के सीखने में उनकी युवावस्था नष्ट हो जाने देंगे कि गधे से छू जाने पर किस तरह शरीर पवित्र करना चाहिये अथवा बकरी के मारने पर पाप-प्रच्छालन के लिये कौन से वेद-श्लोकों का जाप करना चाहिये ?''

इस प्रकार मैकाले ने भारतीय शिक्षा के विषय में अपने उद्‌गार प्रकट किये। मैकाले का विवरण-पत्र प्रिंसेप के पास उसके मत के लिये भेजा गया उसने मैकाले के तर्कों को काटने का प्रयास किया और संस्कृत व अरबी के माध्यम तथा प्राच्य शिक्षा के विद्यालयों, विशेषत: कलकत्ता मदरसा के बने रहने के लिये तर्क दिये। किन्तु जब उसने भी अपना विवरण-पत्र प्रस्तुत किया, तो उसके तर्क बैंटिक को प्रभावित न कर सके। बैंटिक वास्तव में एक प्रगतिशील सुधारक था। वह दृढ़तापूर्वक भारत में कुछ सुधार करना चाहता था। उसकी राय में अँग्रेजी भाषा द्वारा शिक्षण भी एक महत्त्वपूर्ण सुधार था, जिसके पक्ष में वह प्रारम्भ से ही था। ७ मार्च १८३५ ई० को बैंटिक ने एक प्रस्ताव पास करके आज्ञा दी कि—

(१) ब्रिटिश सरकार का महान् उद्देश्य योरुपीय साहित्य तथा विज्ञानों का भारत में प्रचार करना है। अत: सारा रुपया केवल अँग्रेजी शिक्षा शिक्षा में व्यय किया जाय।

(२) प्राच्य-शिक्षालयों को भंग न किया जाय। उनके आचार्यों तथा विद्यार्थियों पूर्ववत् वेतन तथा छात्रवृत्तियाँ दी जाँय।

(३) भविष्य में प्राच्य-भाषाओं पर पुस्तकें न छापी जाँय, क्योंकि इनमें पर्याप्त धन व्यय किया जा चुका है।

(४) इस उपाय से बचने वाली सम्पूर्ण धन-राशि को अँग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा अँग्रेजी साहित्य तथा विज्ञान का भारतीयों में प्रचार करने में व्यय किया जाय।

इस प्रकार लार्ड बैंटिक की इस घोषणा ने भारत में अँग्रेजी शिक्षा की नीति को स्थायी रूप दे दिया। भारत सरकार की ओर से यह लगभग प्रथम शिक्षा घोषणा थी जिसके अनुसार शिक्षा के उद्देश्य, साधन, तथा माध्यम इत्यादि को स्थिर कर दिया गया। यद्यपि उसने अँग्रेजी को माध्यम बनाया, प्राच्य भाषाओं में पुस्तकें छपना भी बन्द करा दिया, किन्तु संस्कृत और अरबी के प्रचलित शिक्षालयों को भंग नहीं किया और न उनकी आर्थिक वृत्तियों को ही समाप्त किया। वास्तव में बैंटिक पहले से ही अँग्रेजी का पक्षपाती था। मैकाले के तर्कों से उसे अधिकृत रूप से शीघ्र निर्णय करने की प्रेरणा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मिल गई। इसके अतिरिक्त भारत में सती-प्रथा को बन्द कराने में उसका शिक्षित भारतीयों ने साथ दिया ही था। उसका विश्वास था कि अँग्रेजी शिक्षा के प्रचार से देश में सामाजिक जागृति होगी और इस प्रकार बहुत-सी सामाजिक कुरीतियों का अन्त हो जायगा। अतः अब भारतीय शिक्षित समाज से समर्थन मिलने की आशा से उसने अँग्रेजी के विषय में निर्णय शीघ्र दे डाला।

आलोचना :

मैकाले के विवरण के आधार पर भारत ने स्थायी रूप से एक शिक्षा-नीति निर्धारित हो गई। अतः भारतीय शिक्षा के इतिहास में उस विवरण-पत्र का बड़ा महत्त्व है। यहाँ उसकी संक्षिप्त आलोचना देना असंगत न होगा।

वास्तव में मैकाले के विषय में लोगों की भिन्न-भिन्न धारणायें हैं। कुछ लोगों का कथन है कि भारतीय शिक्षा का वह अग्रदूत था, तो कुछ उसे भारत की गुलामी के लिये उत्तरदायी ठहराते हैं। किन्तु यह दोनों ही मत पक्षपातपूर्ण हैं। वह भारत में आधुनिक शिक्षा का अग्रदूत नहीं कहा जा सकता। उससे १८३४ ई० में आने से पूर्व ही यहाँ शिक्षाजगत में पर्याप्त जागृति हो चुकी थी। ईसाई धर्म-प्रचारकों के कार्यों से यहाँ की शिक्षा पाश्चात्य साँचे में ढलना प्रारम्भ हो गई थी। अतः अंग्रेजी शिक्षा की बड़ी माँग थी। लोक-शिक्षा-समिति में अँग्रेजी-दल पहिले से ही विद्यमान था। हाँ, इतना अवश्य है कि मैकाले के तर्कों ने सरकार को एक नीति शीघ्र घोषित करने की स्थिति में लाकर रख दिया।

साथ ही मैकाले पर भारत के साथ कुछ अन्य बुराई करने का आरोप लगाना भी सत्य नहीं है। कुछ लोगों का कथन है कि उसने देशी भाषाओं की अवहेलना की। इस विषय में इतना कहा जा सकता है कि उसने देशी भाषाओं को 'अविकसित, अपर्याप्त तथा गँवारू' अवश्य बनाया, किन्तु उनके विकास के मार्ग में रोड़े कभी नहीं अटकाये। 'लोक-शिक्षा-समिति' ने, जिसका मैकाले सभापति था, अपनी रिपोर्ट में कहा है कि, "देशी भाषाओं के प्रोत्साहन तथा विकास में हमें अत्यन्त रुचि है। हम नहीं समझते कि ७ मार्च की आज्ञा हमें ऐसा करने से रोकती है और हमने निरन्तर रूप में इसके निर्माण की ओर क़दम उठाया है……देशी भाषाओं के साहित्य का विकास हमारा अन्तिम उद्देश्य है जिसकी ओर हमारे सम्पूर्ण प्रयास जुट जाने चाहिये।"

ऐसी अवस्था में मैकाले पर देशी भाषाओं के साथ विश्वासघात करने का दोष नहीं लगाया जा सकता। वास्तव में जो सबसे गम्भीर दोष मैकाले पर लगाया जा सकता है वह है प्राच्य-संस्कृति तथा धर्मों का अपमान। उसने भारतीय धर्म, ज्ञान,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दर्शन, तथा साहित्य का परिहास किया। वह स्वयं उनके विषय में अज्ञान में था। वह इंगलैंड से अपनी एक विशिष्ट विचारधारा तथा भारतीय सभ्यता के विषय में वह एक पूर्व-निश्चित विचार लेकर उतरा था। अतः बिना अध्ययन के उसने समस्त भारतीय तथा अरबी साहित्य को यूरोप के पुस्तकालय की एक अलमारी के बराबर बता दिया था। संभवतः वेद, उपनिषदों और संस्कृत भाषा के अगाध साहित्य की जिसकी विद्वान् विदेशियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, मैकाले को हवा तक नहीं लगी थी। वह प्राच्य-संस्कृत जिसका सृजन भारत में उस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था जब कि संभवतः श्री मैकाले के पूर्वज वनों में जंगली हिंसक पशुओं की भाँति जीवन बिताते अथवा भेड़ें चराते थे उन्हें अन्धकार तथा अन्ध विश्वासों से पूर्ण लगी। भारतीय दर्शन, ज्योतिष तथा चिकित्सा-शास्त्र, जो कि अपनी उच्चता के लिये एक समय आधे भूमण्डल में विख्यात थे, उन पर मैकाले को ऐसा लगा कि उनके विषय में सुनकर अँग्रेजों की लड़कियाँ तक हँसेंगी।

वास्तव में मैकाले भूल गया था कि उस समय भी भारत में जहाँ अँग्रेजी शिक्षा की माँग थी, प्राच्य-भाषाओं के पढ़ने की भी आवश्यकता थी। प्राच्य-पाश्चात्य सभ्यता के सम्मिश्रण का वह एक महान् अवसर था जो कि एक विदेशी शासक के अहंकार व दम्भ तथा अपनी स्वयं की सभ्यता के विषय में अधिक आशावादी होने के कारण एक दीर्घकाल के लिये नष्ट हो गया। वह भारत पर बलात् पाश्चात्य सभ्यता भी थोपना चाहता था। संभवतः मैकाले यह भी भूल गया था कि भारतीय संस्कृति की जड़ें लोगों की आत्मा में इतनी गहरी पहुँच चुकी हैं जिन्हें उखाड़ कर फेंकना असम्भव है। मैकाले पर भारत में शिक्षित लोगों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करने का पूर्ण उत्तरदायित्व है जो कि पाश्चात्य शिक्षा में पलकर अपने देश की जनता से बिल्कुल अलग हो गया, और जिसने अँग्रेजों के साथ मिलकर भारतीय जनता का सदा शोषण किया। उसका भारतवासियों को अंग्रेज बनाने का स्वप्न भी अधूरा रह गया। संभवतः वह इतिहास के इस महान् सत्य के विषय में पूर्णतः अनभिज्ञ था कि इसी प्रकार भारत में अनेक जातियाँ आईं और उनकी क्षीणधारा यहाँ की सभ्यता के महासागर में सदा के लिये विलीन होकर रह गई। उसके हौसले यहाँ तक थे कि भारत की धार्मिक एकता नष्ट होकर खण्डित हो जाय। उसने १८३६ ई० में एक पत्र में अपने पिता को लिखा था—"हमारे अंग्रेजी स्कूल आश्चर्यजनक गति में बढ़ रहे हैं,.........हिन्दुओं पर इस शिक्षा का बड़ा प्रभाव पड़ता है। कोई भी हिन्दू नहीं है जिसने अँग्रेजी पढ़कर अपने धर्म में सच्चा लगाव रखा हो। यदि हमारी शिक्षा की यह नीति सफल हो जाती है तो बंगाल के भले घरानों में एक भी मूर्ति-पूजक शेष नहीं रह जायगा। यह सब कुछ बिना

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

धर्म-प्रचार के किंचित भी धार्मिक हस्तक्षेप के बिना केवल स्वाभाविक तौर से ज्ञान और विचारों के प्रचार से हो जायगा ।

इतना सब होते हुए भी मैकाले ने भारत का कुछ अंशों में हित भी किया। उसने भारत में पाश्चात्य विचारों तथा विज्ञानों के फैलने में सहायता की । जिन कारणों से भारत में राजनैतिक जागृति, वैज्ञानिक चेतना तथा धार्मिक विचारधारायें प्रस्फुटित हुईं उनमें अंग्रेजी भाषा के प्रचार तथा मैकाले को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जा सकता है । भारतवासियों ने अंग्रेजी पढ़ी और उससे प्रेरणा लेकर संघर्ष किया और उसमें सफलता मिली। किन्तु एक बात समझ में नहीं आती कि जब बाइबिल जैसी दुरूह पुस्तक का अनुवाद भारत की प्राय: सभी भाषाओं में हो सकता था तो फिर क्या यह आवश्यक था कि सरकार के द्वारा उनके विकास-कार्य को सच्चे रूप से अपने हाथ में लेनें पर भी उनमें अच्छे साहित्य का सृजन नहीं हो पाता ? क्या ऐसी स्थिति में भी उनका 'गँवारूपन' स्थिर रहता ? वास्तव में देशी भाषाओं के प्रश्न को तो टाल ही दिया गया था । संघर्ष तो केवल एक ओर संस्कृत, अरबी और फारसी भाषाओं तथा दूसरी ओर अँग्रेजी भाषा में था । इसमें अंग्रेजी की विजय हुई और देशी-भाषाओं के विकास के प्रश्न को कम से कम उस समय तो टाल ही दिया गया ।

ऑकलैंड की शिक्षा-नीति :

लार्ड विलियम बैंटिक के उपरान्त लार्ड ऑकलैंड भारत का गवर्नर-जनरल हुआ । बैंटिक के चले जाने पर प्राच्य शिक्षा के समर्थकों ने पुन: कुछ आपत्ति उठाई । उसी समय ऐडम हौगसन तथा विल्किन्सन इत्यादि शिक्षा-शास्त्रियों ने देशी भाषाओं के माध्यम का प्रश्न उठाया। इन सभी बातों को दृष्टि में रखते हुए ऑकलैंड ने २४ नवम्बर, १८३९ ई० को अपना विवरण-पत्र जारी किया। प्राच्य और आंग्ल विवाद को अच्छी प्रकार जाँचने के उपरान्त वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यदि कुछ रुपया प्राच्यवादियों को व्यय करने के लिये अधिक दे दिया जाय तो वे शांत हो जाँयगे । अत: उसने संस्कृत और अरबी के शिक्षालयों की आर्थिक सहायता को पूर्ववत् कर दिया और आदेश कर दिया कि यह रुपया पहिले संस्कृत और अरबी के लिये व्यय किया जाय, बाद में, यदि बचे तो, अँग्रेजी के लिये। उसने छात्रवृत्तियाँ भी पूर्ववत् रखीं तथा आवश्यक प्राच्य पुस्तकों के भी छपने की आज्ञा कर दी । इस योजना में ३१,०००) रुपया वार्षिक का खर्च था, जिसे देकर उसने एक झगड़ा समाप्त कर दिया । दूसरी माँग अंग्रेजी के समर्थकों की थी । उसको भी ऑकलैंड ने पूरा किया । उसने एक लाख से भी अधिक रुपया अंग्रेजी शिक्षा के लिये स्वीकृत कर दिया और अंग्रेजी भाषा के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

द्वारा योरुपीय साहित्य, दर्शन तथा विज्ञानों के प्रचार की व्यवस्था कर दी। उसने यह भी कहा कि सरकार के प्रयत्न केवल उच्च वर्ग के लोगों को सर्वोत्तम शिक्षा देने के ही होने चाहिये। इसी प्रभाव में आकर उसने जन साधारण में शिक्षा-प्रचार के लिये ऐडम के सुझाव यह कर अस्वीकार कर दिये कि अभी इनके लिये उपयुक्त समय नहीं आया है। इसका वर्णन हम आगे करेंगे। उसने ढाका, पटना, बनारस, इलाहाबाद, आगरा, बरेली तथा दिल्ली में कुछ अंग्रेजी कालेज खोले।

शिक्षा माध्यम के विषय में ऑकलैंड का मत था कि अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम रहे। वम्बई में उस समय कुछ कालेजों में उच्च शिक्षा भी देशी भाषाओं में दी जा रही थी और उचित संरक्षण मिलने पर प्रत्येक प्रान्त में उनका विकास हो सकता था। इस प्रकार उच्च शिक्षा जनता तक पहुँच सकती थी, किन्तु दुर्भाग्यवश यह प्रश्न टाल दिया गया। ऑकलैंड ने कह दिया कि इस समय तो समस्त बंगाल में अंग्रेजी तथा वम्बई में देशी भाषाओं के परीक्षण चल रहे हैं, उनकी और अधिक परीक्षा होनी चाहिए। खेद है वह भारत के लिये देशी भाषाओं का महत्त्व नहीं समझ सका। वास्तव में जन-साधारण में शिक्षा-प्रसार तथा विज्ञानों की उन्नति अंग्रेजों की राजकीय नीतियों के विरुद्ध थी, ऑकलैंड ने भी उसी नीति को अक्षुण्ण रखा। इसके अतिरिक्त बंगाल प्रान्त का प्रभाव शेष प्रान्तों पर हो जाने के कारण उन्हें भी शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी अपनाने के लिये विवश होना पड़ा। जनशिक्षा को इससे बड़ा आघात लगा।

ऐडम-योजना तथा उसकी अस्वीकृति :

ऐडम की नियुक्ति बंगाल में देशी शिक्षा की अवस्था की जाँच-पड़ताल करने के लिये हुई थी वह एक सच्चा व्यक्ति था और अन्तरात्मा से भारत में शिक्षा-प्रचार द्वारा देश का कल्याण चाहता था। अतः देश की शिक्षा के विषय में उसने कुछ बुद्धिमत्तापूर्ण सुझाव रखे। पहिली बात तो यह थी कि वह जन-शिक्षा में विश्वास करता था, फलतः 'शिक्षा छनाई के सिद्धान्त' का उसने घोर विरोध किया, जिसके अनुसार केवल उच्च-वर्ग को ही शिक्षित करने की सरकारी योजना थी। उसने कहा कि "छोटे बच्चों को केवल वर्णमाला सीखने के लिये उच्च कालेजों में नहीं भेजा जा सकता। किसी भवन का ऊपरी भाग ऊँचा तथा दृढ़ बनाने के लिये उसकी नींव चौड़ी तथा गहरी होनी चाहिये।"

दूसरे, उसने भारत के प्रचलित देशी स्कूलों को अत्यन्त उपयोगी बताया। उसकी धारणा थी कि सरकार को उन्हीं स्कूलों को संरक्षण देना चाहिये। क्योंकि प्रचलित देशी स्कूल नीचे से लेकर ऊपर तक, हर प्रकार की शिक्षा के एक मात्र साधन हैं जिनके

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

द्वारा जनता का चरित्र ऊँचा उठाया जा सकता है। यदि इन स्कूलों को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये काम में लाया जायगा तो यही सबसे सादा, सुरक्षित, सर्वप्रिय, मितव्ययी एवं सबसे अधिक प्रभावशाली योजना होगी जिसके द्वारा शिक्षा के लिये में भारतवासियों के मस्तिष्क को जागृत किया जा सकता है जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ऐडम ने सुझाव दिया कि पहिले परीक्षण के लिये केवल कुछ जिले चुन लिये जाँय फिर शिक्षकों तथा बालकों के लिए देशी भाषाओं में पुस्तकें तैयार कराई जाँय और एक जिला शिक्षा-अधिकारी नियुक्त कर दिया जाय जो कि सम्पूर्ण प्रगति का निरीक्षण करे। इसके उपरान्त शिक्षकों के लिए नार्मल स्कूल स्थापित कर दिये जाँय तथा उनमें अच्छी पुस्तकें वितरित की जाँय, और उन्हीं के आधार पर बच्चों को पढ़ाने का आदेश दिया जाय। तत्पश्चात् शिक्षकों की परीक्षा भी ली जाय और अन्त में शिक्षकों की आय स्थिर कर दी जाय जिससे कि वे ग्रामीण बच्चों को पढ़ाने के लिये गाँवों में बस जाँय। इसके लिये सरकार कुछ भूमिदान इत्यादि दे।

इस योजना का मैकाले ने घोर विरोध किया जो कि अपने हृदय में कुछ भेद तथा मस्तिष्क में एक भिन्न योजना छिपाये बैठा था। उसने इस पर बड़ी बुरी रिपोर्ट दी; परिणामत: जब यह लॉर्ड ऑकलैंड के समक्ष रखी गई तो उसने इसे रद्द कर दिया। इस प्रकार जन-शिक्षा विकास का एक और अवसर जाता रहा।

शिक्षा छनाई का सिद्धान्त[1]

वास्तव में १९वीं शताब्दि के प्रारम्भ में ही अँग्रेज शासकों ने अनुभव कर लिया था कि भारत में केवल उच्चवर्ग को ही अपनाया जाय और जन-समूह को अन्धकार में रखा जाय। अत: उन्होंने अपनी शिक्षा-नीति को भी इसी प्रकार रखा। १८२७ ई० में कम्पनी के संचालकों ने भी इसी प्रकार के आदेश दिये और १८३५ ई० में मैकाले ने भी कहा कि, "वर्तमान समय में हमें ऐसे वर्ग को उत्पन्न करना चाहिए, जो हमारे तथा जनता के बीच विचार-वाहक बने; एक ऐसा वर्ग जो कि रंग-रूप में भारतीय किन्तु रुचि, विचार, नैतिकता तथा बुद्धि में अँग्रेज हो। इन्हीं का कार्य यह होगा कि वे देशी भाषाओं को परिष्कृत तथा सम्पन्न करके जनता तक ज्ञान पहुचने के योग्य बनावेंगे।"

वास्तव में प्रसिद्ध सिद्धान्त का अभिप्राय था कि "जन-समूह में शिक्षा ऊपर से टपकाई जाय। बूँद-बूँद करके भारतीय जीवन के हिमालय से लाभदायक शिक्षा नीचे बहे जो कि समय पाकर एक चौड़ी तथा विशाल धारा में परिवर्तित हो जाय और शुष्क

1 The Filtration Theory of Education.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विशाल मैदानों का सिंचन करे।" 'बंगाल लोक शिक्षा समिति ने भी १८३९ ई० में कहा था कि, "हमारे प्रयास सर्वप्रथम उच्च तथा मध्यमवर्ग की शिक्षा पर केन्द्रित रहने चाहिए; इन्हीं विद्वानों के द्वारा ग्रामीण शिक्षालयों में सुधार होगा और शिक्षा के लाभ उन सभी को मिल जावेंगे जो निर्धनता के कारण अभी वंचित हैं।"

इसके अतिरिक्त ईसाई मिशनरियों को भी यही आशा थी कि यदि कुछ उच्च वर्ग के सवर्ण हिन्दुओं को ईसाई धर्म में दीक्षित कर दिया जावे तो वे जनसमूह तक पहुँच कर ईसा के सिद्धान्तों का उनमें प्रचार कर सकेंगे। यही कारण था कि उन्होंने अँग्रेजी स्कूलों का जोरदार समर्थन किया, किन्तु भारतीय बालकों ने उन स्कूलों में शिक्षा के लिए प्रवेश कराया था न कि धर्म के लिए। धर्म तो उनके ही देश में पर्याप्त था। अत: उन्होंने धर्म परिवर्तन नहीं किया। यहाँ तक कि बहुधा बाइबिल की कक्षायें सूनी पड़ी रहती थीं। कुछ पिछड़ी जातियों के बालक जैसे हरिजन इत्यादि, कुछ अनाथ तथा कुछ ईसाइयों के बालक अवश्य बैठे रह जाते थे।

आलोचना: इस प्रकार शिक्षा छनाई के सिद्धान्त के द्वारा यह जो कल्पना सरकारी क्षेत्रों में करली गई थी कि कुछ उच्च वर्ग के लोगों के पढ़ाने से वे लोग अपना ज्ञान निम्नवर्ग तथा जन-समूह को देकर शिक्षित कर देंगे, व्यर्थ जान पड़ी। वस्तुत: जो उच्चवर्ग के लोग शिक्षा प्राप्त करते थे, वे अपने स्वार्थों के लिए करते थे; और उच्च पदों पर आसीन होकर जनता से तो पहिले से भी अधिक दूर हो जाते थे।

दूसरे, इस सिद्धान्त को देश में लागू करके अँग्रेजों ने हमारे देश में एक ऐसे शिक्षित वर्ग को जन्म दे दिया जो कि अपने ही देश में अपने को अजनबी समझने लगा। अधिकांश में इन लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा होता था। गरीबों से ये सम्पर्क नहीं रखते थे। दैनिक कार्यों में अँग्रेजी भाषा का व्यवहार करते तथा अफसरी अभिमान में कहीं-कहीं पर जनता के साथ अत्याचार भी करते थे। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में ही शिक्षा का सुअवसर मिलने से इन लोगों में शिक्षा प्राप्त करने की परम्परा पड़ गई और परम्परागत यही लोग धनवान् बनने तथा उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त होने लगे। यहाँ तक कि यह कहना भी अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि इसमें से अधिकांश भारत में विदेशी शासकों के स्तम्भ के रूप में राष्ट्रीय आन्दोलनों का विरोध करते रहे। किन्तु इसके विपरीत यह भी सत्य है कि अन्ततोगत्वा यही शिक्षित मध्यम वर्ग था जिसने राष्ट्रीय आन्दोलनों की बागडोर अपने हाथ में सँभाली और विदेशी शासन को नष्ट करने में जन-समूहों का नेतृत्व किया। किन्तु मैकाले की वह अभिलाषा अंशत: अवश्य पूरी हो गई कि वह रंग-रूप में भारतीय किन्तु आचार-विचार में अँग्रेज उत्पन्न करने में सफल हुआ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ऐडम ने भी इस सिद्धान्त का विरोध करके देशी स्कूलों में जन-साधारण की शिक्षा की व्यवस्था कराने का प्रयास किया, किन्तु शासकों के समक्ष उसकी एक भी नहीं चली। क्रमशः इस सिद्धान्त की व्यर्थता प्रमाणित होती गई और अन्त में यह विस्मृति के अंक में विलीन हो गया। लगभग सन् १८७० ई० तक भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में इस सिद्धान्त की छाया पड़ती रही।

१८३५ से १८५३ तक शिक्षा-प्रगति :

बंगाल : सरकारी नीति के कारण अंग्रेजी का प्रचार बहुत बढ़ गया था। सन् १८३५ ई० में समिति के अन्तर्गत १४ स्कूल थे और वर्ष के अन्त तक ६ और खोल दिये गये; तथा इतने ही स्कूल १८३६ ई० में भी खुलवाये गये। यहाँ तक कि १८३७ ई० तक समिति के अन्तर्गत ४८ स्कूल हो गये जिनमें ५,१९६ विद्यार्थी पढ़ते थे। ऑकलैंड ने सारे प्रान्त को ९ भागों में विभक्त कर दिया तथा प्रत्येक जिले 'जिला स्कूल' स्थापित कर दिये। १८४० ई० में बंगाल में ऐसे ४० स्कूल थे। इनमें हुगली कॉलेज बहुत प्रसिद्ध था जो कि हाजी मुहम्मद मुहसिन के दान के द्वारा बनवाया गया था। इस प्रकार शिक्षा का विकास होता जा रहा था; यहाँ तक कि स्थिति ऐसी आ गई कि जब संस्कृत-अरबी के स्कूलों में छात्रवृत्ति देने पर भी बालक नहीं जाते थे, अंग्रेजी स्कूलों में फीस देने पर भी जगह नहीं मिलती थी। १८४१ ई० में 'लोकशिक्षा परिषद्' की स्थापना की गई। इसी प्रकार की परिषदें बम्बई और मद्रास में भी बनीं। १८४४ ई० में लार्ड हार्डिंग्ज ने एक घोषणा की जिसका प्रभाव शिक्षा पर ऐसा पड़ा कि वह आज तक यथावत् बना हुआ है। उसने कहा कि "सरकारी नौकरियों के लिये ऐसे लोगों को प्रथमता दी जायगी जिन्होंने इस प्रकार स्थापित अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा पाई हो।" उसने दफ्तरों में छोटे-छोटे पदों के लिये भी इसी प्रकार के आदेश कर दिये। इस प्रकार के आदेशों का प्रभाव यह पड़ा कि सारे भारतवर्ष में शिक्षा का उद्देश्य सरकारी पदों की प्राप्ति करना होगया। उच्च पदों की संख्या इतनी नहीं थी जहाँ सभी शिक्षित भारतीयों की खपत हो सके। परिणामतः बहुत से लोग दफ्तरों में क्लर्क या बाबू बनने पर विवश हुए। इस प्रकार योग्य व्यक्तियों का उद्योग-धन्धों में अभाव रहने लगा। यह बुराई आज भी यथावत् बनी हुई है। इसी दौरान में मिशनरियों ने भी अपने प्रयत्न जारी रखे। १८५३ ई० में सम्पूर्ण बंगाल में इनके २२ अंग्रेजी स्कूल हो गये। कुछ व्यक्तिगत स्कूल भी खुले क्योंकि शिक्षा की माँग बढ़ रही थी और सरकारी अंग्रेजी स्कूल उसके लिए पर्याप्त नहीं होते थे। किन्तु इन स्कूलों को कोई मदद नहीं दी गई।

सन् १८४५ ई० में 'शिक्षा परिषद्' ने कलकत्ता में एक विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव भी रखा, किन्तु डायरेक्टरों ने उसे 'असामयिक' कह कर टाल दिया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्राथमिक शिक्षा का पतन हो रहा था, तथापि लॉर्ड हार्डिञ्ज ने इस ओर ध्यान दिया और १८४४ ई० में १०१ स्कूल प्राथमिक शिक्षा के लिये खुलवाये। प्रत्येक स्कूल में लिखना, पढ़ना, गणित, भूगोल, बंगला तथा भारत का इतिहास पढ़ाने के लिए एक-एक शिक्षक नियुक्त कर दिया गया। शिक्षकों के लिये १८४७ ई० में एक नार्मल-स्कूल भी खोल दिया गया। प्राथमिक स्कूलों में एक आना प्रति माह फीस भी लगा दी। किन्तु ये स्कूल अधिक दिनों तक न चले। १८५२ ई० में केवल २६ स्कूल बच रहे। लार्ड डलहौजी ने भी प्राथमिक शिक्षा के लिए कुछ कुछ प्रयत्न किये। उसने ऐडम योजना में कुछ परिवर्त्तन करके आगरा प्रान्त में परीक्षण के अनुरूप देशी स्कूलों को प्रोत्साहन देने की चेष्टा की। शिक्षा-अनुदान भी दिये। किन्तु १८५४ ई० तक केवल ३३ सरकारी प्राथमिक स्कूल बन सके जिनमें १४०० बच्चे पढ़ते थे।

डलहौजी शिक्षा में रुचि लेता था। उसने १८४४ ई० में हिन्दू कालेज कलकत्ता में इंजीनियरी की कक्षा खोली। उसने स्त्री-शिक्षा के लिये भी प्रयास किया। १८२१ ई० में जब से श्रीमती विल्सन ने लड़कियों के लिये एक स्कूल खोला था तब से इस दिशा में कोई कार्य नहीं हुआ। १८४६ ई० में श्री ड्रिंकवाटर बैथ्यून ने स्त्री-शिक्षा में रुचि दिखाई और कलकत्ता में एक स्कूल खोला।

उसी समय शासन-यंत्र में एक परिवर्तन हुआ। १८४३ ई० में शिक्षा संस्थाएँ एक नए बने हुए प्रान्त (उत्तर पश्चिम प्रान्त), जो कि वर्तमान उत्तर प्रदेश है, को हस्तांतरित कर दी गईं। इसी समय 'शिक्षापरिषद्' ने भी बहुत उन्नति की। १८४३ ई० में इसने पाठ्य-पुस्तकों में सुधार किया तथा योग्य शिक्षक उत्पन्न किये। १८४४ ई० में स्कूल तथा कालेजों के लिये शिक्षा-निरीक्षक नियुक्त किये गये। १८५६ ई० में इसने प्राथमिक शिक्षा को भी अपने हाथ में ले लिया और १८४३ से १८५४ ई० तक इनकी संख्या २८ से १५१; तथा विद्यार्थियों की संख्या ४,६३२ से १३,१६७ कर दी। १८५४ ई० में इसके अन्तर्गत ५ अँग्रेजी कालेज, एक मेडिकल कालेज, ३ प्राच्य कालेज तथा ४७ अँग्रेजी स्कूल थे। १८५४ ई० में इन सब का व्यय ५,६४,५०० रुपये था।

यहाँ शिक्षा के माध्यम के विषय में भी दो शब्द कहना वांछनीय है। बम्बई में तो यह प्रश्न बड़ा विवादास्पद हो गया था। बङ्गाल में भी यह प्रश्न उठा। श्री के० एम० बनर्जी तथा डा० वैलेन्टाइन जैसे विद्वानों ने मातृभाषा के लिये सिफारिश की, किन्तु अंग्रेज शासकों के सम्मुख किसी की भी न चली और इस प्रकार मातृभाषा का बहिष्कार कर अँग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम रखा गया।

बम्बई : बम्बई में 'भारतीय शिक्षा समाज' ने अच्छा काम किया था। किन्तु १८४०

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ई० में इसे भंग करके 'शिक्षा बोर्ड' बना दिया। 'बम्बई भारतीय शिक्षा समाज' ने १८ वर्ष के अपने जीवन में ४ अँग्रेजी स्कूल तथा ११५ जिला प्राथमिक स्कूल स्थापित किये थे, जिनमें मातृभाषा के माध्यम के द्वारा लिखना, पढ़ना, दर्शन, बीजगणित, ज्यामिति तथा त्रिकोणमिति का शिक्षण दिया जाता था। वास्तव में यह पाठ्य-क्रम आधुनिक माध्यमिक स्कूलों के समान था, किन्तु बम्बई में इनका उद्देश्य मातृभाषा के द्वारा पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार करना था।

इनके अतिरिक्त सरकार पूना संस्कृत कालेज, एलफिस्टन इंस्टीट्यूट तथा पुरन्दर ताल्लुका में ६३ प्राइमरी स्कूल भी चला रही थी। ये पुरन्दर स्कूल इस ताल्लुका के सहायक कलक्टर श्री शॉर्टरीड ने देशी पाठशालाओं के आधार पर स्थापित किये थे, जहाँ लिखना-पढ़ना और हिसाब की प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी। इनके शिक्षक सरकारी कर्मचारी समझे जाते थे। रुपये के अभाव में समाज का कार्य मंद गति से अवश्य चला, किन्तु १८४० ई० तक कुल मिलाकर यह ११५ प्राथमिक स्कूलों का भी संचालन करता रहा। यद्यपि इसने कुछ अँग्रेजी स्कूलों का भी संचालन किया, तथापि प्रधानतः यहाँ शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही रहा, क्योंकि इसके अनुसार जनसमूह तक पाश्चात्य ज्ञान को पहुँचाने के लिये मातृभाषा ही सर्वोत्तम माध्यम था।

शिक्षाबोर्ड : १८४० ई० में नये शिक्षा बोर्ड ने कार्यभार सम्भाला और १८५७ ई० तक बड़ी योग्यता पूर्वक उसका सम्पादन किया। इस बोर्ड में सभापति के अतिरिक्त ६ सदस्य और होते थे जिनमें ३ 'बम्बई भारतीय शिक्षा समाज' के प्रतिनिधि तथा ३ सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इस बोर्ड ने 'शिक्षा समाज' की नीति को ही कायम रखा तथा समाज की सभी शिक्षा-संस्थाओं को अपने अधिकार में कर लिया। १८४२ ई० में इसने प्रान्त को ३ भागों में विभक्त करके प्रत्येक को एक यूरोपियन शिक्षा-निरीक्षक तथा भारतीय उपनिरीक्षक के अधिकार में कर दिया। इसने कुछ नये नियम भी बनाये जो कि १ जून, १८४३ ई० से लागू कर दिये गये। बोर्ड ने १८४२ ई० में प्रान्त में स्कूलों की गणना भी कराई तथा ऐडम-योजना का प्रयोग करना चाहा, किन्तु यह योजना कार्यान्वित न की जा सकी, क्योंकि पाश्चात्य ज्ञान पिपासा लोगों में दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही थी। अतः बोर्ड ने देशी स्कूलों की अवहेलना की और उन्हें बन्द करने का दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय किया।

शिक्षा का माध्यम : शिक्षा के माध्यम की ओर से बम्बई प्रान्त ने एक साहसपूर्ण नीति को अपनाया। जबकि बङ्गाल में प्राच्य और पाश्चात्य भाषाओं का

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

संघर्ष चल रहा था, बम्बई ने स्थानीय भाषा को शिक्षा का माध्यम रखा। अँग्रेजी तथा संस्कृत को भी उचित स्थान दिया गया। वास्तव में बम्बई में मातृभाषा तो शिक्षा का माध्यम थी और उसमें उच्चज्ञान भी दिया जाता था, किन्तु संस्कृत 'क्लासिकल' भाषा के रूप में तथा अँग्रेजी आधुनिक भाषा के रूप में पढ़ाई जाती थी। पाश्चात्य ज्ञान को पाठ्यक्रम में उचित स्थान दिया गया था। इसके अतिरिक्त बम्बई ने 'शिक्षा छनाई के सिद्धान्त' की अवहेलना करके जनसमूहों में शिक्षा का प्रसार किया।

किन्तु १८४३ ई० में सर पैरी के शिक्षा बोर्ड का सभापति नियुक्त हो जाने की अशुभ घटना ने इस प्रान्त में भी शिक्षा जगत में एक गन्दी राजनीति का सूत्रपात कर दिया। सर पैरी उच्चवर्ग को शिक्षा देने का पक्का हिमायती था और मैकाले तथा आँकलैंड से प्रेरणा लेता था। उसने आँख मीच कर अँग्रेजी भाषा का पक्ष लिया। उसने कहा कि देशी भाषाओं में अँग्रेजी ग्रन्थों का अनुवाद व्यर्थ तथा खर्चीला होता है। जनता में अँग्रेजी की माँग है और हमारी सरकारी नीति भी अंग्रेजी का प्रचार करना है। ऐसी स्थिति में अँग्रेजी ही बम्बई में शिक्षा-माध्यम होना चाहिये। इस प्रश्न को लेकर शिक्षा बोर्ड में दो दल हो गये। पैरी ने दो यूरोपियनों को साथ में लेकर अँग्रेजी दल बनाया। उधर बम्बई इंजीनियरिंग कालेज के प्रिंसीपल कर्नल जर्विस ने ३ भारतीयों के साथ मातृ-भाषा दल का निर्माण किया। श्री जर्विस ने कहा कि—

"साधारण शिक्षा का प्रसार उस भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में नहीं किया जा सकता जिससे कि व्यक्ति का मस्तिष्क भली भाँति परिचित है।........ अतः इसे मैं अपना महान् कर्त्तव्य समझता हूँ कि मातृ-भाषा का प्रसार करूँ।........ यदि लोगों के साहित्य की रक्षा करनी है तो यह उनका स्वयं का साहित्य ही होना चाहिये। साहित्य का विषय अधिकांश में पाश्चात्य भले ही हो किन्तु इसका देशी विषय से तादात्म्य हो जाना चाहिये, और उसका स्वरूप एशियाई होना चाहिये।"

यह संघर्ष १८४८ ई० तक चलता रहा। अन्त में स्थानीय सरकार ने ५ अप्रैल, १८४८ ई० को अपनी आज्ञा जारी करदी जिसके अनुसार अन्त में जाकर यह निश्चय हुआ कि प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के लिये मातृभाषा, तथा उच्च-कालेज शिक्षा के लिये अँग्रेजी भाषा माध्यम रहेगी। केन्द्रीय सरकार के आदेशों के अनुसार अँग्रेजी का इस प्रान्त में भी प्रभुत्व बढ़ने लगा।

इस प्रकार पैरी के समय में बम्बई में देशी शिक्षा की अवहेलना हुई और

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अँग्रेजी स्कूलों की संख्या दुगुनी हो गई। बड़े-बड़े केन्द्रों में नये अँग्रेजी स्कूलों की स्थापना की गई तथा अहमदाबाद में लड़कियों के एक स्कूल को भी सहायता दी गई। १८५१ ई० में पूना संस्कृत कालेज तथा पूना अँग्रेजी स्कूल को मिलाकर 'पूना कालेज' बना दिया गया जो कि आगे चलकर 'डकन कालेज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसमें नार्मल विभाग भी जोड़ दिया गया। इसके अतिरिक्त १८५२ ई० में जिला स्कूलों को 'ग्रान्ट-इन-एड' देने के लिये सरकारी आदेश हुए तथा गाँवों में भी सरकार ने स्कूलों को सहायता देकर उच्च शिक्षा के स्कूल खुलवाने का प्रयत्न किया। पैरी के भारत छोड़ने पर देशी शिक्षा की भी उन्नति हुई। १८५४ ई० में सरकार ने ग्रामीण स्कूलों के अध्यापकों का आधा वेतन देना स्वीकार कर लिया और शेष व्यय गाँव वालों पर डाल दिया। इस प्रकार बम्बई में इस दौरान में संतोषजनक प्रगति रही।

मद्रास : १८३३ से १८५३ ई० तक मद्रास की शिक्षा-प्रगति की कहानी बड़ी दुख भरी है। इस दौरान में सरकार की नीति बड़ी अस्थिर रही। व्यक्तिगत प्राथमिक स्कूलों की सहायता बन्द कर दी गई थी और देशी स्कूलों को भी कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया। मुनरो के द्वारा स्थापित जिला तथा तहसीली स्कूलों को १८३६ ई० में बन्द कर दिया गया और उनके स्थान पर मद्रास में अँग्रेजी कालेज; तथा कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानों पर अँग्रेजी स्कूल खोल दिये गये। १८४१ ई० में मद्रास में एक हाईस्कूल भी स्थापित कर दिया यया। बंगाल की शिक्षा के लिये लिखे हुए मैकाले के विवरण-पत्र का प्रभाव यहाँ भी हो गया था। फलत: इस प्रान्त में भी मातृ-भाषा-स्कूलों का भाग्य-सितारा डूब गया। केन्द्रीय सरकार की ओर से मद्रास सरकार को आदेश मिले कि देशी शिक्षा से हटाकर सम्पूर्ण शिक्षा-अनुदान उच्च अँग्रेजी शिक्षा पर व्यय किया जाय। फलत: अँग्रेजी के माध्यम के द्वारा उच्च पाश्चात्य शिक्षा की उन्नति होने लगी।

मद्रास में एक विश्वविद्यालय खोलने का भी प्रस्ताव हुआ, किन्तु उसके लिये समय अभी उपयुक्त नहीं समझा गया, केवल १८४१ ई० में हाईस्कूल विभाग तथा १८५२ ई० में कालेज विभाग खोल दिया गया। विश्व विद्यालय बोर्ड की अपेक्षा एक शिक्षा-परिषद् की स्थापना करदी गई जो कि १८४७ ई० में जाकर शिक्षा बोर्ड में बदल दी गई। शिक्षा बोर्ड को १ लाख रुपये की धनराशि दे दी गई, जिसमें से दो अँग्रेजी स्कूल एक १८५३ ई० में कडलूर तथा दूसरा १८५५ ई० में राजमहेन्द्री में स्थापित किये गये। प्राथमिक शिक्षा के लिये भी २० हजार रुपये सुरक्षित कर दिये गये।

व्यक्तिगत प्रयासों में ईसाई मिशनरियों तथा पच्चयप्पा का नाम विशेष उल्लेखनीय

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

है। मिशनरियों ने प्रारम्भिक शिक्षा को इस काल में बड़ा प्रोत्साहन दिये जाने के प्रयत्नों का उल्लेख करते हुए १८५४ ई० के आज्ञा-पत्र में कहा गया है कि मद्रास में जहाँ सरकार के प्रयत्न सन्तोषजनक नहीं रहे वहाँ ईसाई धर्म-प्रचारकों ने तामिल शिक्षा का बहुत प्रचार किया।

उत्तर-पश्चिम आगरा प्रान्त : १८४० ई० में भारत सरकार ने उत्तर-पश्चिम प्रदेश आगरा व अवध की सभी शिक्षा संस्थाओं का प्रबन्ध बंगाल सरकार से हटाकर प्रान्तीय सरकार के अधिकार में कर दिया। उस समय तक यहाँ अँग्रेजी शिक्षा के कुछ स्कूल स्थापित हो चुके थे जिनमें आगरा, दिल्ली तथा बनारस के कालेज प्रमुख थे। प्रारम्भ से ही इस प्रान्त ने एक भिन्न नीति को अपनाया जिसके अनुसार 'शिक्षा छनाई के सिद्धान्त' को ठुकरा कर मातृ-भाषा में शिक्षा देने का निश्चय हुआ।

सन् १८४३ ई० में श्री जेम्स टॉम्सन, यहाँ के गवर्नर नियुक्त हुए। १८४५ ई० में उन्होंने शिक्षा की पड़ताल कराई। उन्होंने ज्ञात किया कि प्रान्त में अँग्रेजी तथा मिशनरी स्कूलों को छोड़ कर हर प्रकार के केवल ७,९६६ स्कूल थे जिनमें प्रान्त के २० लाख लड़कों में से केवल ७०,८२६ लड़के पढ़ते थे, अर्थात् प्रान्त में ३·७ प्रतिशत साक्षरता थी। नवम्बर, १८४६ ई० में श्री टॉम्सन ने भारत सरकार के समक्ष एक विस्तृत योजना रखी जिसका उद्देश्य वर्नाक्यूलर शिक्षा का पुनर्संगठन था। इस योजना के अनुसार २०० घरों वाले प्रत्येक गाँव में एक स्कूल स्थापित करने और अध्यापकों के वेतन के लिये जागीरें लगा देने का प्रस्ताव किया। संचालकों ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। अतः श्री टॉम्सन को अप्रैल १८४८ ई० में दूसरी योजना प्रस्तुत करनी पड़ी जो कि स्वीकृत करली गई। इसके अनुसार देशी स्कूलों का सुधार किया गया और आदर्श तहसीली स्कूल खोलने की योजना बनी। इस स्कूल के लिये १०) रु० से २०) रु० प्रतिमाह का एक प्रधान अध्यापक रखा गया। पाठ्य-क्रम में हिन्दी-उर्दू, लिखना, पढ़ना तथा हिसाब के साथ-साथ इतिहास, भूगोल तथा ज्यामिति रखे गये। इन स्कूलों के लिये १८५० ई० में ५० हजार रुपया वार्षिक देना स्वीकृत हुआ। १८५३ ई० में इनमें विद्यार्थियों की संख्या ५ हजार थी। ये मिडिल स्कूलों के समान थे। सर्वप्रथम यह योजना ८ जिलों : बरेली, शाहजहाँपुर, आगरा, मथुरा, मैनपुरी, अलीगढ़, फर्रुखाबाद तथा इटावा में चलाई गई जिनमें ५० कस्बे १४,५७२ गाँव, ३,१२७ स्कूल थे जिनमें २७,८५६ विद्यार्थी थे। इन स्कूलों में से बीस स्कूलों में अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती थी। इन स्कूलों के निरीक्षण की व्यवस्था की गई। जिलों के लिए विजटर जनरल, प्रत्येक जिले के लिए एक जिला विजिटर तथा उसके नीचे परगना विजटर रखे गये। इनका

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

काम देशी स्कूलों का निरीक्षण करना तथा लोगों को 'सलाह, सहायता तथा प्रोत्साहन' देना था।

हल्कावन्दी स्कूल : तहसीली स्कूलों की स्थापना के अतिरिक्त शिक्षा के विकास के लिए एक साधन और सोचा गया जो 'हल्कावन्दी स्कूल' के नाम से विख्यात है। १८५१ ई० में मथुरा के कलक्टर श्री अलैक्जेंडर ने एक योजना बनाई। उन्होंने एक परगने को लिया और उसकी मालगुजारी तथा जनसंख्या को लेकर शिक्षा योग्य बच्चों की संख्या तथा उन पर होने वाले व्यय के आंकड़े निकाल लिए और क्योंकि धन अभाव में प्रत्येक गाँव में स्कूल खोलना असम्भव था। अतः कुछ गाँवों का एक-एक या क्षेत्र बना लिया गया और उसके केन्द्र में एक स्कूल स्थापित कर दिया, जिससे प्रत्येक गाँव से यह स्कूल २ या २½ मील से अधिक दूर न पड़े। ये स्कूल प्रारम्भिक शिक्षा के लिए थे। इन स्कूलों के खर्च के लिए जमींदारों से उनकी मालगुजारी का १ प्रतिशत लिया गया। शीघ्र ही यह योजना सात अन्य पड़ौसी जिलों में फैल गई और १८५४ ई० स्कलों की संख्या ७५८ हो गई जिनमें १७,००० बालक पढ़ते थे। कुछ समय बाद यह योजना बंगाल में भी चालू की गई।

उच्चशिक्षा के दृष्टिकोण से भी इस प्रान्त ने प्रगति की। १८५४ ई० तक आगरा, दिल्ली तथा बनारस के सरकारी कालेजों के विद्यार्थियों की संख्या ९७६ हो गई। १८५२ ई० में सेन्ट जौंस कालेज आगरा की नींव पड़ी और उसी वर्ष आगरा में एक नार्मल स्कूल भी खुला। १८५३ ई० में जयनारायण घोषाल स्कूल बनारस-कालेज बना दिया गया। इस प्रकार १८५४ ई० तक आगरा प्रान्त में ४ हजार कुल स्कूल हो गये जिनमें ५३,००० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। १८५४ ई० के आज्ञा-पत्र ने भी इस योजना को अन्य प्रान्तों में लागू करने तथा योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने की सिफारिश की।

पंजाब : पंजाब प्रान्त नया ही बना हुआ था (१८४९)। अतः यहाँ शिक्षा की अभी कोई प्रगति नहीं हुई थी। यहाँ पहिले से ही हिन्दी, उर्दू और गुरुमुखी के कुछ देशी स्कूल स्थित थे। उर्दू का प्रचार इस प्रान्त में बहुत था और अधिकांश हिन्दू बालक भी उर्दू पढ़ते थे। सन् १८४९ ई० में अमृतसर में सरकार ने एक अंग्रेजी स्कूल खोला, जिसमें हिन्दी- उर्दू, अंग्रेजी, फारसी, अरबी और संस्कृत पढ़ाई जाती थी। लाहौर में भी शिक्षा ने प्रगति की। लड़कियों में भी वहाँ शिक्षा का प्रचार था। बाद में ४ नार्मल स्कूल ६० तहसीली स्कूल, लाहौर में एक कालेज खोलने तथा १ विजिटर जनरल नियुक्त करने, एवं १२ जिला तथा ५० परगना विजिटरों की नियुक्त की गई।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उपसंहार :

इस प्रकार इस युग की समाप्ति के साथ लगभग अर्द्ध-शताब्दि से चला आने शिक्षा के माध्यम का संघर्ष समाप्त हो गया और भारतीय शिक्षा पूर्णतः अंग्रेजी रंग में रंग गई। यद्यपि शिक्षा प्रगति सन्तोषजनक नहीं रही, तथापि कुछ निश्चित सिद्धान्तों का प्रस्थापन अवश्य होगया। उदाहरणतः सरकार को जनता को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व स्वीकार करना पड़ा, शिक्षा-निरीक्षण की व्यवस्था हुई तथा सरकार को अपनी शिक्षा नीति खुले रूप से घोषित करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त शिक्षा छनाई के सिद्धान्त का प्रचार; देशी शिक्षा, प्राच्य तथा मातृ-भाषाओं की अवहेलना; पाश्चात्य ज्ञान तथा अँग्रेजी का प्रचार; शिक्षा में राज्य द्वारा धार्मिक तटस्थता की नीति तथा व्यक्तिगत प्रयासों का प्रोत्साहन इत्यादि कुछ इस युग की अन्य विशेषताएँ हैं। इन्हीं विशेषताओं को लेकर प्रत्येक प्रान्त ने अपने-अपने प्रयत्न जारी रखे और अपने-अपने प्रयोग किये।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१०

वुड का शिक्षा घोषणा-पत्र (१८५४ ई०)

भूमिका :

कम्पनी का आज्ञा-पत्र प्रति २० वर्ष उपरान्त बदलता था। इस प्रकार जब १८५३ ई० में भी आज्ञा-पत्र को बदलने का अवसर आया तो भारतीय शिक्षा में कुछ स्थायी नीति ग्रहण करने की आवश्यकता स्पष्ट प्रकट हो रही थी। अतएव एक संसदीय समिति स्थापित की गई जिसने भारतीय-शिक्षा की प्रगति की जाँच की। इस समिति ने ट्रैविलियन, पैरी, मार्शमैन, डफ, विल्सन, केमरन, तथा सर फ्रैडरिक हैलीडे इत्यादि महानुभावों की साक्षी तथा भारतीय शिक्षा के विषय में उनके वक्तव्य लिये! ये सभी सज्जन भारतीय शिक्षा से गहरा सम्बन्ध रखते थे। इन लोगों ने अधिकारियों को यह बात स्पष्ट: बता दी कि भारत की शिक्षा आवश्यकताओं को टाला नहीं जा सकता और न भारतीय जनता को शिक्षित करने में कोई राजनैतिक हानि ही है। इन सभी प्रयत्नों के फलस्वरूप १८५४ ई० में 'वुड का शिक्षा घोषणा-पत्र' प्रकाशित हुआ। चार्ल्स वुड 'बोर्ड ऑव कन्ट्रोल' का प्रधान था। अत: यह आज्ञा-पत्र उसी के नाम से विख्यात हो गया। इसके उपरान्त भारतीय शिक्षा में एक नये युग का प्रारम्भ होता है। यहाँ हम संक्षेप में इसकी प्रमुख बातों को देंगे।

आज्ञा-पत्र की सिफारिशें :

सर्वप्रथम इस आज्ञा-पत्र में कम्पनी की शिक्षा-नीति के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसके अनुसार अन्य उत्तरदायों की अपेक्षा कम्पनी के ऊपर भारतीय शिक्षा का उत्तरदायित्व सर्वप्रथम माना गया है। अत: इसका प्रसार उसका पवित्र कर्त्तव्य है। इसके उपरान्त आज्ञा-पत्र में प्राच्य-पाश्चात्य विवाद का भी उल्लेख है। वह संस्कृत व अरबी की शिक्षा की निन्दा नहीं करता, अपितु उनके थोड़े से ज्ञान को अच्छा समझता है। किन्तु अन्त में लॉर्ड मैकाले की भाँति पाश्चात्य ज्ञान को ही भारतीयों के लिये उपयुक्त समझ कर कहता है कि "हम यह जोरदार शब्दों में घोषणा करते हैं

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कि जिस शिक्षा का हम भारत में प्रसार करना चाहते हैं उसका उद्देश्य योरुपीय उच्च कला, विज्ञान, दर्शन तथा साहित्य अर्थात् संक्षेप में योरुपीय ज्ञान है।"

शिक्षा के माध्यम के विषय में प्रथमत: वह यह व्यक्त करता है कि किस प्रकार अच्छी पुस्तकों के अभाव में देशी भाषाओं को माध्यम नहीं बनाया जा सका और विवश होकर अंग्रेजी माध्यम रखाना पड़ रहा है, किन्तु केवल अँग्रेजी को ही माध्यम रखना हानिकारक है। अत: इसके समानान्तर देशी भाषाओं को भी माध्यम के रूप में रखाया जाना चाहिये। "इसलिये हम अँग्रेजी तथा देशी दोनों ही प्रकार की भाषाओं की ओर शिक्षा के माध्यम के लिये देखते हैं जिससे वे भी साथ-साथ यूरोपीय ज्ञान को फैलाने में सहायक हों। अत: यह हमारी इच्छा है कि भारतीय शिक्षालयों में वे दोनों ही फलें फूलें।"

इस प्रकार कुछ प्रश्नों का सिंहावलोकन करने के उपरान्त आज्ञा-पत्र ने अपनी सिफारिशें की हैं :—

१. शिक्षा-विभाग : प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा-विभाग स्थापित करने की सिफारिश की गई। यह भी कहा गया कि प्रत्येक प्रान्त में इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी जन-शिक्षा-संचालक नियुक्त कर दिया जाय तथा उसकी सहायता के लिये अन्य छोटे निरीक्षक नियुक्त कर दिये जाँय।

२. विश्वविद्यालय : दूसरी सिफारिश उसने भारत में कलकत्ता, बम्बई और यदि आवश्यक हो तो मद्रास में विश्वविद्यालय खोलने की। शिक्षा-परिषद ने लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मानने का प्रस्ताव किया था और हम उससे सहमत हैं। अत: भारत में तीनों विश्वविद्यालयों को लन्दन विश्वविद्यालय के आदर्श पर जो कि केवल परीक्षा-संस्था थी, स्थापित करने के लिये विश्वविद्यालय के लिये "चांसलर, वाइस चांसलर तथा फेलो होंगे जिनको मिलाकर सीनेट बनेगा। सीनेट नियम बनायेगा जो सरकार स्वीकृत करेगी। विश्वविद्यालय के आय-व्यय का प्रबन्ध भी सीनेट ही करेगा। वही विज्ञानों और कलाओं के विभिन्न भागों में परीक्षकों को नियुक्त करके परीक्षाओं का आयोजन करेगा। विश्वविद्यालय का काम अपने से सम्बन्धित कालेजों के विद्यार्थियों को परीक्षाओं के बाद डिग्रियाँ प्रदान करना होगा।........डिग्री परीक्षाओं में धार्मिक विषय न होंगे।........जिन विषयों के पढ़ाने का प्रबन्ध कालेजों में होगा उनके लिये विश्वविद्यालय प्रोफेसरों को नियुक्त करेंगे।

३. जन-समूह की शिक्षा का विस्तार : जीवन के सभी अङ्गों के लिये व्यावहारिक शिक्षा उन जन साधारण को दी जाय जो कि स्वयं बिना सहायता के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कुछ भी लाभदायक शिक्षा पाने में पूर्णतः अशक्त हैं। अतः सरकार की अधिक सक्रिय योजनाएँ भविष्य में इस ओर लगा दी जाँय जिसकी प्राप्ति के लिए अधिक व्यय स्वीकार करने के लिए तैयार है।" इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिक हाईस्कूल, मिडिल स्कूल तथा प्राथमिक स्कूलों की सिफारिश आज्ञा-पत्र ने की। इन भिन्न-भिन्न स्तर के शिक्षालयों की शिक्षा को एक दूसरे से सम्बन्धित करने के लिए छात्रवृत्तियों का भी उल्लेख किया गया। इस प्रकार देशी प्रारम्भिक स्कूलों को शिक्षा का आधार मान लिया गया और सम्पूर्ण शिक्षा-भवन को इनके ऊपर ही निर्मित करने का प्रस्ताव किया गया। 'शिक्षा छनने के सिद्धान्त को' सिद्धान्ततः बुरी तरह ठुकरा दिया गया।

४. सहायता-अनुदान : इस आज्ञा-पत्र के द्वारा भारतीय शिक्षालयों को शिक्षा-अनुदान (ग्रान्ट-इन-एड) देने का प्रस्ताव किया गया। भारतीयों की शिक्षा के लिए यथेष्ट साधन जुटाने में सरकार की असमर्थता तथा उन प्रयासों से मिल सकने वाली सहायता पर, जिसको सरकार ने अभी तक प्रोत्साहित नहीं किया है, विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस दिशा में भारतीय जनता की शिक्षा-आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सरकारी प्रयासों के साथ-साथ शिक्षित और धनी वर्गों की उदारता तथा प्रयासों को मिला देना चाहिए। अस्तु हमने भारतवर्ष में सहायता-अनुदान-प्रथा अपनाने का निश्चय किया है। यह अनुदान, सहायता प्राप्त स्कूलों में धार्मिक तटस्थता पर आधारित होगा। उन सभी संस्थाओं को सहायता प्रदान की जायगी, जो अच्छी लौकिक-शिक्षा (धर्म रहित) देते हों, जो यथेष्ट स्थानीय प्रबन्ध में चलते हों और जिनके प्रबन्धक स्कूलों के सरकारी-निरीक्षण तथा सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियमों को स्वीकार करलें।........हमारा मत है कि सहायता केवल उन्हीं स्कूलों को प्रदान की जाय जो विद्यार्थियों से कम से कम कुछ शुल्क अवश्य लेते हों।"

इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न उद्देश्यों जैसे शिक्षकों के वेतन की तरक्की के लिए, पुस्तकालय के लिए, भवन निर्माण के लिए, छात्रवृत्ति तथा विज्ञान-कक्षा इत्यादि के लिए अलग-अलग अनुदान देने का वचन भी दिया गया। इन अनुदानों की कालेजों से लेकर देशी प्राथमिक स्कूलों तक देने की व्यवस्था की गई।

५. शिक्षकों का प्रशिक्षण : इस पत्र के द्वारा संचालकों ने अपनी इच्छा प्रकट की कि जितना शीघ्र हो सके प्रत्येक प्रेसीडैन्सी में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए स्कूल स्था पितकर दिये जाँय। इसके लिए उन्होंने इंगलैंएड की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए उसी प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की सिफारिश की जैसी कि इंगलैंएड में स्थापित की गईं थीं। उन्होंने शिक्षकों को दीक्षाकाल में छात्र-वृत्ति देने पर

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भी जोर दिया। साथ ही कानून, चिकित्सा और इंजीनियरी में भी औद्योगिक-प्रशिक्षण की सिफारिश की।

६. स्त्री-शिक्षा : अन्त में आज्ञा-पत्र में स्त्री-शिक्षा पर भी जोर दिया गया। "जिन संस्थाओं को सहायता मिलेगी उनमें लड़कियों के स्कूल भी हैं और इस दिशा में जो प्रयत्न किये जा रहे हैं उनके प्रति हम अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट किये बिना नहीं रह सकते हैं। गवनर जनरल की घोषणा से, जो बंगाल के गवर्नर के लिये की गई है, हम पूर्णतया सहमत हैं कि भारतीय स्त्री-शिक्षा को सरकार की स्पष्ट तथा मैत्री-पूर्ण सहायता मिलनी चाहिये।"

इस प्रकार उच्च शिक्षा के लिए अँग्रेजी तथा माध्यमिक और प्रारम्भिक शिक्षा के लिए मातृभाषा का माध्यम, विश्वविद्यालयों की स्थापना, शिक्षा सहायता अनुदान प्रथा; शिक्षकों का प्रशिक्षण; धार्मिक तटस्थता; औद्योगिक शिक्षा तथा स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन; शिक्षित व्यक्तियों के लिए नौकरी तथा जनसमूह में शिक्षा-प्रसार इत्यादि कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिफारिशें हैं जो कि इस महान् पत्र में की गई हैं। अब हम संक्षेप में इसके गुण-दोषों का विवेचन करेंगे।

आलोचना :

(क) गुण : इस ऐतिहासिक-पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नवीन किन्तु शानदार युग का सूत्रपात किया। जेम्स ने तो इसे "भारत में अँग्रेजी शिक्षा का मैग्ना कार्टा" तक कह डाला है। वास्तव में इसके द्वारा कुछ बातें मूलतः स्वीकार कर ली गईं, जैसे शिक्षा देना सरकार का उत्तरदायित्व है। इस पत्र ने एक अत्यन्त विशद व विस्तृत शिक्षा-योजना देश के समक्ष रखी जो कि प्रायः शिक्षा के प्रत्येक अङ्ग से सम्बन्धित है। प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा तथा अध्यापकों की दीक्षा इत्यादि ऐसी योजनायें थीं जिनका सर्वांश में सम्पादन आज तक भी नहीं हो सका।

(१) पहिला काम जो इस आज्ञा-पत्र ने किया वह था भारत में उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों की स्थापना की सिफारिश करना। हाईस्कूल के उपरान्त उच्च शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। अतः इनकी स्थापना उचित समय पर ही हुई। यद्यपि उस समय इनकी संख्या अपर्याप्त थी तथापि इनसे एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हुई।

(२) प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा-विभाग स्थापित करके प्रथम बार शिक्षा को राज्य के अन्तर्गत एक सुसङ्गठित तथा सुव्यवस्थित स्वरूप दिया गया। शिक्षा संचालक तथा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

निरीक्षक और उपनिरीक्षकों की नियुक्ति करके सरकार ऊपर शिक्षा की देखरेख का भार भी डाल दिया गया। इससे शिक्षा की श्रेष्ठता बढ़ी और साथ ही विकास भी हुआ।

(३) देशी स्कूलों, मिडिल तथा हाई स्कूलों को प्रोत्साहन देकर लोक-शिक्षा सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। शिक्षा छनाई के सिद्धान्त की निन्दा की गई। इसके बाद जनता की साधारण शिक्षा द्रुत गति से बढ़ी, यद्यपि आज भी वह आशा तथा आवश्यकता से कम है।

(४) साथ ही शिक्षकों की दीक्षा तथा विद्यार्थियों और शिक्षक दोनों को ही छात्रवृत्तियाँ देकर प्रोत्साहित करने से बड़ा लाभ हुआ। अच्छे व योग्य अध्यापकों के अभाव में शिक्षा का मानदण्ड नीचा रहता था और शिक्षक अध्यापन की ओर आकर्षित नहीं होते थे, किन्तु अब उन्हें कुछ प्रेरणा मिली जिससे अत्यन्त लाभ हुआ। निर्धन विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति की व्यवस्था करके प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा में एक शृङ्खला स्थापित कर दी गई।

(५) सहायता-अनुदान-प्रथा ने तो शिक्षा-प्रसार को बड़ा प्रोत्साहन दिया; वैयक्तिक प्रयास, जो कि शिक्षा-क्षेत्र में अपर्याप्त था, इस प्रथा के कारण क्षेत्र में उतर आया और शिक्षा-प्रबन्ध अधिकांश में जनता के हाथों में पहुँचने लगा; यद्यपि वैयक्तिक प्रबन्धकों ने इसका दुरुपयोग किया जो हम आगे चलकर देखेंगे।

(ख) दोष : इन सब गुणों के होते हुए भी इस आज्ञा-पत्र में कुछ भारी दोष भी हैं।

(१) इसने देश में शिक्षा का उद्देश्य "पुस्तकें पढ़ना तथा परीक्षा में पास होकर सरकारी नौकरी ढूँढ़ना" कर दिया।

(२) शिक्षा एक प्रकार से पूर्णत: नौकरशाही के अधिकार में आगई। उसमें उन्मुक्त विकास की प्रेरणा का अभाव हो गया। जिस प्रकार सरकार का एक व्यापार विभाग है, एक कृषि-विभाग है उसी प्रकार एक शिक्षा-विभाग भी हो गया जिसके कार्यों को अधिकारी लोग अन्यमनस्क रूप में पूरा करने लगे। लालफीतावाद ने शिक्षा की उन्मुक्त प्रगति को बड़ा धक्का पहुँचाया और शिक्षा-प्रणाली का लालचीपन नष्ट हो गया।

(३) विश्वविद्यालयों का ढाँचा एक दम विदेशी रखा गया। प्रधानत: इन विश्वविद्यालयों की जड़ें इंगलैंड में थीं और पत्तियाँ भारत में। सम्भवत: इस आज्ञा-पत्र के प्रणेता यह बात भूल गये कि अतीत काल में भारत में भी उच्चकोटि के विश्वविद्यालय थे जो देश-विदेश से विद्यार्थियों को आकर्षित करते थे। इसके अतिरिक्त इस आज्ञा-पत्र

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

के अनुसार सीनेट में सभी सदस्यों के सरकार के द्वारा मनोनीत करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि सीनेट में अधिकांश में जो कुछ चुने हुए तथाकथित वड़े लोग पहुँच जाते थे वे वहुधा शिक्षा-विज्ञान के मर्मज्ञ नहीं होते थे।

(४) अन्त में, सरकारी पदों का लालच देकर विदेशी शिक्षा को प्रोत्साहन देने का दोष भी वहुधा इस आज्ञा-पत्र के ऊपर लगाया जाता है। इसके प्रणेताओं ने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि "वे असंख्य रिक्त स्थान जिनको कि लगातार भरना पड़ता है, शिक्षा के प्रचार में सहायक हो सकते हैं।" इस तरह अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त युवकों को सरकारी पदों के लिए प्राथमिकता देने का अभिप्राय यह हुआ कि भारत के युवकों तथा उनके अभिभावकों की यही अभिलाषा रहने लगी कि शिक्षा के उपरान्त उन्हें कोई सरकारी उच्च पद मिल जाय। यह कुप्रवृत्ति आज भी भारत में उसी प्रकार बढ़ी हुई है। परिणामत: देश में शिक्षितों में बेकारी बहुत वढ़ रही है और जिनको कुछ नौकरी इत्यादि मिल भी जाती है वह वहुधा एक सभ्य व सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करने के लिए विल्कुल अपर्याप्त होती हैं; और यदि यह मान भी लिया जाय कि इस आज्ञा-पत्र के रचयिताओं का उद्देश्य यह नहीं था कि वह दफ्तरों के लिये केवल क्लर्क या वावू उत्पन्न करें तथापि स्वर्गीय श्री परांजपे के शब्दों में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि "उनका उद्देश्य यह भी नहीं था कि शिक्षा नेतृत्व के लिए हो, शिक्षा भारत के औद्योगिक विकास के लिए हो, शिक्षा मातृभूमि की रक्षा के लिये हो; संक्षेप में वह शिक्षा हो जिसकी कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिकों को आवश्यकता है।"

उपसंहार :

आज हमें यह मानना पड़ेगा कि इन दोषों के होते हुए भी इस आज्ञा-पत्र ने भारत में आधुनिक शिक्षा का रूप स्थिर करने से वहुत योग दिया है। इसके रचयिताओं का उद्देश्य सच्चा था। किन्तु खेद का विषय है कि भारत सरकार इसके अनुसार अपना कर्त्तव्य पालन करने में असफल रही। सरकार ने इन सिफारिशों के अनुसार ईमानदारी से काम नहीं किया। फलत: हम आज भारत की शिक्षा में वहुत से दोष पाते हैं। लोक-शिक्षा पर आज्ञा-पत्र के जोर देने की अपेक्षा भी उसकी उपेक्षा की गई। मातृभाषा को उचित स्थान स्कूलों और कालेजों में लगभग एक शताब्दि व्यतीत होने पर आज तक नहीं मिला। उच्च शिक्षा में आज भी अँग्रेजी का प्राधान्य है और आज वह हमारे लिए एक स्वाभाविक व अनिवार्य बुराई बन कर हमारे जीवन पर छा गई है। औद्योगिक शिक्षा का विकास बहुत दिनों तक टाला गया और आज भी समय की माँग को देखते हुए एक प्रकार से अपर्याप्त चला आ रहा है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

११

शिक्षा की प्रगति (१८५४-१८८२ ई०)

भूमिका :

१८५४ ई० के आज्ञा-पत्र के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा-विभाग की स्थापना हो गई। सन् १८५७ ई० में कलकत्ता, वम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालय भी स्थापित कर दिये गये। शिक्षा-योजनाओं के लिये सरकार ने आर्थिक-सहायता भी बढ़ा दी। वस्तुतः १८५७ ई० के प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के उपरान्त कम्पनी का शासन भारत में समाप्त हो गया और ब्रिटिश संसद ने भारत का राज्य-भार संभाला। कम्पनी के समय में आधुनिक शिक्षा का आरम्भ अवश्य हो चुका था, किन्तु अपने शासन को पुष्ट करने में वह इतनी व्यस्त रही कि शिक्षा की समस्या उसके समक्ष गौण रही। १८५५ ई० तक केवल १,४७४ शिक्षा संस्थाएँ कम्पनी के अन्तर्गत हो सकीं। किन्तु इस समय तक सिद्धान्ततः भारत में अंग्रेजी शिक्षा के उद्देश्य, साधन और माध्यम का प्रश्न वहुत कुछ स्पष्ट हो चुका था। १८५४ ई० के उपरान्त क्रमशः शिक्षा का भारतीयकरण होता जा रहा था। आज्ञा-पत्र के आदेशों के अनुसार सरकार का उद्देश्य यह था कि शिक्षा को क्रमशः व्यक्तिगत संस्थाओं के हाथों में सौंप कर सरकार धीरे-धीरे उस क्षेत्र से पूर्णतः निकल आवे। फलतः माध्यमिक तथा कालेज शिक्षा के क्षेत्र में वैयक्तिक प्रयास को वहुत प्रोत्साहन दिया गया। अब तक केवल ईसाई मिशन ही व्यक्तिगत साधन थे, किन्तु अब भारतीयों ने भी अधिकतर शिक्षा को अपने हाथ में ले लिया। यहाँ हम शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली तत्कालीन प्रगति का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

(क) विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा :

भारत में कालेज तो पहिले ही से थे; यद्यपि जिस संस्था से हम वर्तमान युग में कालेज का अर्थ लेते हैं वह १८५७ ई० से पूर्व नहीं था। अब घोषणा-पत्र के अनुसार १८५७ ई० में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में नियमित विश्वविद्यालय खुल गये। इन विश्वविद्यालयों के लिये अलग-अलग अधिनियम पास किये गये यद्यपि तीनों

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

एक ही प्रकार के थे। अधिनियम के अनुसार विश्वविद्यालय का प्रवन्ध सीनेट के अन्तर्गत रखा गया, जिसमें कुलपति प्रान्त का गवर्नर, उपकुलपति गवर्नर द्वारा दो वर्ष के लिये मनोनीत तथा 'फैलो' होते थे। अधिकांश में ये "फैलो" जनता के बड़े कहलाने वाले लोगों में से बिना उनकी शिक्षा-योग्यता का ध्यान रखे हुए नियुक्त कर लिये जाते थे। ज्ञान का वास्तविक स्रोत तथा शिक्षा की रीढ़ शिक्षक इस संगठन में कोई महत्व नहीं रखता था। इस नीति का शिक्षा पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ा। विश्वविद्यालय के दिन-प्रतिदिन के कार्यों का संचालन करने के लिये एक 'सिंडीकेट' का निर्माण कर दिया जाता था। यह बात स्मरणीय है कि यद्यपि घोषणा-पत्र में विश्वविद्यालयों को सीधे शिक्षा प्रदान करने का कार्य भी सौंपा गया था, किन्तु इस अधिनियम के अनुसार वे केवल परीक्षा लेने तथा प्रमाण-पत्र बाँटने के यंत्र बने रहे। एक प्रकार की प्रवेशिका परीक्षा (मैट्रीक्यूलेशन) स्थापित कर दी गई थी और इसमें उत्तीर्ण होने वाला विद्यार्थी ही विश्वविद्यालय में प्रवेश पा सकता था। इस प्रवेशिका-परीक्षा को पास करने के उपरान्त निम्नकोटि के सरकारी पद भी मिल सकते थे। इसके अतिरिक्त प्रवेशिका और बी० ए० के बीच में २ वर्ष की एक इंटरमीडियेट कक्षा भी थी।

१८५७-८२ ई० में उच्च शिक्षा ने अच्छी प्रगति की। इधर माध्यमिक शिक्षालयों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही थी। अत: उन विद्यार्थियों के लिये उच्च-शिक्षा के लिये कालेजों का खोलना आवश्यक हो गया। सरकार ने भी कालेजों के प्रति अपना दृष्टिकोण अपेक्षाकृत उदार रखा। फलत: जबकि १८५७ ई० में कालेजों की संख्या २७ थी, १८८२ ई० में ७२ हो गई। कलकत्ता तथा मद्रास में प्रेसीडेंसी कालेज खुले। १८६९ ई० में लाहौर यूनीवर्सिटी कालेज की स्थापना हुई, जो १८८२ ई० में जाकर पंजाब विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ। यहाँ मातृभाषा के माध्यम के द्वारा यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान पढ़ाये जाते थे तथा प्राच्य-भाषाओं को भी पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया। उत्तर-प्रदेश में भी एक विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रश्न गवर्नर म्योर ने १८६९ ई० में उठाया था और एक किराये के भवन में १८७२ ई० में 'सैन्ट्रल कालेज' की स्थापना कर दी, जिसका शिलारोपण १८७३ ई० में लार्ड नौर्थब्रुक ने किया था। इन राजकीय कालेजों के अतिरिक्त लगभग ३४ गैर-सरकारी कालेज भी खुले। इनमें दो विशेष उल्लेखनीय हैं—एक तो १८६४ ई० में लखनऊ का कैनिङ्ग कालेज जो एक प्रकार से आधुनिक लखनऊ विश्वविद्यालय का प्रारम्भ था, दूसरा 'मुस्लिम ऐंग्लो ओरिएन्टल कालेज', अलीगढ़ जिसकी स्थापना सर सैयद अहमद खाँ ने १८७४ ई० में मुसलमानों में पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार करने के लिये की थी।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

आलोचना : इस प्रकार बनने वाले विश्वविद्यालयों में कई त्रुटियाँ थीं—प्रथम इन विश्वविद्यालयों का उद्देश्य उच्च शिक्षा न होकर केवल कुछ शिक्षित व्यक्ति तैयार करना था जो कि सरकारी मशीन के पुर्जे बन सकें, अन्यथा प्राचीन काल में भारतीय विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा जीवन को महान्, दिव्य तथा अमर बनाने के लिये होती थी। जो कुछ विद्यार्थी पढ़ते थे वह उनके जीवन में काम आता था। किन्तु इन आधुनिक विश्वविद्यालयों ने भारत में एक ऐसी भयानक परम्परा को जन्म दिया जो आज तक अपना विषाक्त प्रभाव भरतीय उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बनाये हुए हैं; अर्थात् विश्वविद्यालयों में कुछ वर्ष शिक्षा पाने के उपरान्त विद्यार्थी को कागज का प्रमाण-पत्र मिलने लगा। यही उसकी वास्तविक योग्यताओं का प्रतीक था। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी उसने विद्यालय में पढ़ा वह आसानी से भुलाया जा सकता था। यह आवश्यक नहीं था कि वह अपने ज्ञान तथा विद्वत्ता को मस्तिष्क में रखकर जीवन में अग्रसर होवे। केवल इन कागजी प्रमाण-पत्रों के बल पर हमारे शिक्षित युवक क्रमश: अपनी संस्कृति, परम्परा और साधारण जनता से दूर होने लगे। दूसरे, इन विश्वविद्यालयों में औद्योगिक शिक्षा की अवहेलना करके केवल कला सम्बन्धी विषयों का ही शिक्षण दिया गया। यह बात कहना व्यर्थ है कि भारत को औद्योगिक शिक्षालयों की कितनी तीव्र आवश्यकता थी और जो उदाहरण इन प्रारम्भिक विश्वविद्यालयों ने रखा उसका अनुकरण बाद में भी किया गया। फलत: आज हम भारत को औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ पाते हैं। हमारे ये विश्वविद्यालय ऐसे कर्मठ उत्पन्न न कर सके जो कारखानों, खेतों तथा खानों में देश का निर्माण करते हुए देखे जाते; प्रत्युत उन्होंने ऐसे कोमलांग, शुभ्रवदन कृशकायों को जन्म दिया जो कि केवल लिखने-पढ़ने के उद्यमों में ही अपना दुर्बल जीवन समाप्त कर देते हैं। तीसरे, इन विश्वविद्यालयों में शिक्षण-कार्य न होकर केवल परीक्षा ही ली जाती थी। यह हानिकर सिद्ध हुआ। चौथे, सीनेट में अध्यापकों का उचित प्रतिनिधित्व न होने से शिक्षा-विशेषज्ञों की राय से वंचित रहना पड़ा। पाँचवें, विश्वविद्यालयों के निरीक्षण में नौकरशाही का हाथ अधिक रहा, क्योंकि ये सरकार की संस्थायें थीं। सरकारी निरीक्षकों की रिपोर्टों पर ही इनकी उन्नति अवनति निर्भर थी। फलत: विश्वविद्यालयों का स्वाभाविक विकास न हो सका।

(ख) माध्यमिक शिक्षा : सरकारी आज्ञा-पत्र के द्वारा निर्देशित आदेशों के के अनुसार इस काल में माध्यमिक-शिक्षा की भारत में बहुत संतोषजनक प्रगति रही। वास्तव में सरकारी शिक्षा-विभाग ने इतना ध्यान प्रारम्भिक अथवा उच्च शिक्षा की ओर नहीं दिया जितना कि माध्यमिक शिक्षा की ओर। इस काल में राजकीय माध्यमिक स्कूल भी खुले और साथ ही वैयक्तिक प्रबन्धकों को भी अनुदान द्वारा प्रोत्साहित किया

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

गया । फलत: इन स्कूलों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई । जबकि १८५४ ई० में राजकीय विद्यालयों की संख्या १६९ थी जिनमें १८,३४५ विद्यार्थी पढ़ते थे तो १८८२ ई० में इनकी संख्या १,३६६ हो गई जिनमें ४४,६०५ विद्यार्थी शिक्षा पाने लगे । इधर सरकार ने व्यक्तिगत प्रबन्धों को 'सहायता अनुदान' (grants-in-aid) देने के नियम प्रत्येक प्रान्त में बना दिये और उनके अनुसार स्कूलों को उदारता पूर्वक आर्थिक सहायता दी जिससे उनकी संख्या में भी संतोष-जनक वृद्धि हुई । १८५७ ई० की घटनाओं के उपरान्त भारत सरकार मिशनरियों पर कुछ कड़ी आँख रखने लगी थी, और इधर शिक्षा-क्षेत्र में अब तक वैयक्तिक प्रयास अधिकांश में ईसाइयों का था किन्तु १८८२ ई० में भारतीयों ने भी इस ओर बड़ी रुचि दिखलाई थी और उसका परिणाम यह हुआ कि १८८२ ई० में भारतीयों के अन्तर्गत ७५७ माध्यमिक स्कूल थे ।

दोष : इस काल में माध्यमिक शिक्षालय बढ़े तो अबाध गति से थे किन्तु इनमें कुछ दोष थे । यद्यपि १८५४ ई० के आज्ञा-पत्र में मातृ-भाषा का माध्यम रखने की जोरदार सिफारिश की गई थी, किन्तु देश में अँग्रजी का प्रभुत्त्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था । यहाँ तक कि कलकत्ता विश्वविद्यालय में १८६२ ई० से 'मैट्रिक्युलेशन' परीक्षा में उत्तर देने के लिए अँग्रजी को अनिवार्य कर दिया गया, जो अब तक केवल विद्यार्थी की इच्छा पर निर्भर था । बहुत से मिडिल स्कूलों में भी अँग्रेजी पढ़ाई जाने लगी और और दो प्रकार के मिडिल स्कूल—ऐंग्लो हिन्दुस्तानी तथा वर्नाक्यूलर-मिडिल होने लगे । अँग्रेजी की इस प्रभुता के कई कारण थे । एक तो जनता में अँग्रेजी की मांग बढ़ रही थी और इसका ज्ञान आधुनिक सभ्यता का प्रतीक समझा जाने लगा था । दूसरे, कालेजों में शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण विद्यार्थियों के लिये यह आवश्यक था कि कालेज प्रवेश से पूर्ण इस भाषा का उनका ज्ञान बहुत अच्छा होना चाहिए, अन्यथा जितना समय उन्हें विषय को समझने में लगता था उससे कहीं अधिक कठिनाई भाषा का अर्थ समझने गें होती थी । अधिकांश कालेजों में प्रबन्धक या शिक्षक प्राय: योरुपीय थे । इस प्रकार माध्यमिक-स्तर पर देश में प्रारम्भ से ही मातृ-भाषाओं की अवहेलना होती रही । दूसरा दोष था प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव । उस समय सम्पूर्ण भारत में केवल दो स्कूल—एक मद्रास तथा दूसरा लाहौर में थे जहाँ अध्यापकों को ट्रेनिंग दी जाती थी । यह अवस्था बड़ी असन्तोषजनक थी । ट्रेनिंग भी बहुत साधारण कोटि की दी जाती थी । तीसरा दोष था केवल पुस्तकीय ज्ञान पर जोर देना और औद्योगिक शिक्षा का अभाव । यह कोरा पुस्तकीय ज्ञान जीवन को सम्पूर्ण अङ्गों में व्यावहारिक रूप से उपयोगी नहीं बनाता था । सारे भारतवर्ष में १८८२ ई० में, केवल बम्बई में एक स्कूल को छोड़कर, कोई अन्य स्कूल ऐसा नहीं था जहाँ किसी भी प्रकार की औद्योगिक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शिक्षा दी जाती हो। इसका प्रमुख कारण यह था कि लोगों का उद्देश्य एन्ट्रेंस पास करके या तो तत्काल ही नौकरी पा जाने का था अथवा कालेज में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के योग्य होकर प्रवेश पा जाने का था, जिसके लिये कि मैट्रिक का प्रमाण-पत्र अनिवार्य था। इसके अतिरिक्त सरकारी स्कूलों में भी इसकी कोई व्यवस्था नहीं थी। अतः वैयक्तिक प्रवन्धक उनसे औद्योगिक शिक्षा के लिये प्रेरणा न ले सके। सरकार तो इधर से निश्चय ही उदासीन थी। सम्भवतः उसकी दृष्टि में उस समय भारत का औद्योगिक-विकास इङ्गलैंड की व्यापारिक नीति के लिये अहितकर था। धन का अभाव भी माध्यमिक स्कूलों में औद्योगिक शिक्षा प्रारम्भ न करने का एक शक्तिवान् कारण बना रहा; और यह दुर्दशा आज तक भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

स्टैनले का आज्ञा-पत्र :

लार्ड स्टैनले भारत का सर्वप्रथम भारत मंत्री था। वह इस बात की जाँच करना चाहता था कि भारत के स्वतन्त्रता-संघर्ष का यहाँ की शिक्षा-नीति से भी कुछ सम्बन्ध है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त वह शिक्षा पर १८५४ ई० के आज्ञा-पत्र की प्रतिक्रिया भी देखना चाहता था। तदनुसार १८५९ ई० में लार्ड स्टैनले ने १८५४ ई० के आज्ञा-पत्र की नीति का समर्थन किया। केवल प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में उसने कुछ परिवर्तन किये। इस नये आज्ञा-पत्र के अनुसार लार्ड स्टैनले ने शिक्षकों की दीक्षा पर विशेष जोर दिया। प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में उसकी धारणा थी कि इस क्षेत्र में कुछ भी कार्य नहीं हुआ है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि जनसाधारण की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाय और साथ ही जो 'सहायता-अनुदान-प्रथा' १८५४ ई० के आज्ञा-पत्र के द्वारा जारी की गई थी उसे केवल माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा तक ही सीमित रखा जाय तथा प्रारम्भिक शिक्षा के लिये सरकार सीधा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले, क्योंकि सहायता-अनुदान-प्रथा प्रारम्भिक स्कूलों के लिये लाभदायक नहीं है। प्रारम्भिक शिक्षा के व्यय के लिये सरकार आवश्यकता पड़ने पर लोगों पर एक स्थानीय कर लगाये। लार्ड स्टैनले वास्तव में इंगलैंड की तत्कालीन शिक्षा-नीति से प्रभावित हुआ था, जहाँ पर स्थानीय-करों तथा जन-शिक्षालयों के लिये एक आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा था। इसके साथ ही १८५९ ई० में शिक्षा को आंशिक रूप से केन्द्रीय सरकार से प्रान्तीय सरकारों को हस्तान्तरित कर दिया गया। लार्ड मेयो ने १८७१ ई० में शिक्षा-विभागों का नियन्त्रण भी प्रान्तीय सरकारों के अधीन कर दिया और उन्हें अपना व्यय करने का अधिकार दे दिया गया। इसके उपरान्त १८७७ ई० में लार्ड लिटन ने शिक्षा का और भी अधिक विकेन्द्रीयकरण कर दिया। इसके अनुसार शिक्षा पूर्णतः ५ वर्ष के लिये प्रान्त के अधिकार में आ गई तथा कानून और आबकारी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विभागों की आय का कुछ भाग इसके व्यय के लिए नियत कर दिया। किन्तु केन्द्रीय सरकार का प्रभुत्व एक देशव्यापी शिक्षा-नीति निर्धारित करने का बना रहा। यह अवस्था १८८२ ई० तक रही।

(ग) प्राथमिक शिक्षा : यह तो हम देख ही चुके हैं कि १८५४ ई० तक प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में राजकीय प्रयत्न बड़े निराशा-जनक थे और कम्पनी एक प्रकार से उच्च वर्ग के लिये उच्च शिक्षा देना ही अपना कर्त्तव्य समझती थी। १८५४ ई० में कम्पनी का ध्यान इस ओर गया और प्रारम्भिक शिक्षा के निरीक्षण तथा सरकारी अनुदान देने का भार कम्पनी ने ले लिया। किन्तु अनुदान तो प्राय: उच्च शिक्षा के हीं लिये दिये गये और देशी प्रारम्भिक शिक्षा के लिये कुछ न किया जा सका। वास्तव में १८५६ ई० के उपरान्त एक प्रकार का विवाद उठ खड़ा हुआ। यह विवाद प्राथमिक-शिक्षा के सम्बन्ध में था जिसके विषय थे कि इस शिक्षा को सरकारी आय से सहायता अनुदान दिया जाय अथवा नहीं; स्थानीय कर लगाये जांय अथवा नहीं और देशी स्कूलों के प्रति क्या नीति रखी जाय ? किन्तु अन्त में प्रत्येक प्रान्त को अपनी-अपनी नीति के अनुसरण करने की स्वतन्त्रता दे दी गई। बम्बई और बङ्गाल ने बिल्कुल ही विरोधी रुख ग्रहण किये। बम्बई ने देशी स्कूलों की अवहेलना कर दी और सरकारी स्कूल खोले, जब कि बङ्गाल ने देशी स्कूलों को प्रोत्साहन दिया। मद्रास ने एक मध्यम मार्ग का अनुसरण किया। इस प्रकार कुछ प्रान्तों के अतिरिक्त देशी स्कूलों को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला। फलत: धीरे-धीरे यह स्कूल या तो समाप्त हो गये अथवा सरकारी स्कूलों में विलीन हो गये।

जहाँ तक स्थानीय-कर लगाने का प्रश्न था यह भी बहुत महत्त्वपूर्ण था। वास्तव में यह स्थानीय-कर केवल शिक्षा ही के लिये नहीं थे अपितु इनमें जनहित की अन्य चीजें भी सम्मिलित थीं जैसे पुलिस तथा सड़क व चिकित्सा इत्यादि। अत: एक तो इसकी आय में से शिक्षा का भाग नियत करना एक प्रमुख प्रश्न था; दूसरे, यह स्थानीय-कर अन्य प्रान्तों में तो लागू हो सकता था, किन्तु बंगाल में स्थायी-बन्दोबस्त के कारण यह नहीं लगाया जा सकता था। पश्चिमोत्तर प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में तो श्री टाम्सन ने पहिले से ही अपनी योजना के अनुसार १ प्रतिशत कर मालगुजारी पर लगा दिया था। इसी प्रकार पंजाब में भी १८५७ ई० में भूमि पर स्थानीय-कर लागू कर दिया। धीरे-धीरे यह योजना सभी प्रान्तों ने स्वीकार करली। गाँवों के अतिरिक्त नगरों में मकानों पर इस प्रकार का कर लगाया गया जिसका प्रबन्ध नगरपालिकाओं को सौंप दिया गया। किन्तु इन नगरपालिकाओं ने सन्तोषजनक कार्य नहीं किया, और उस समय प्राथमिक शिक्षा में कुछ अधिक योग न दे सकीं। परिणामत: गाँवों

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

से जो रुपया भूमि की मालगुजारी पर कर के रूप में इकट्ठा किया जाता था उसका अधिकांश नगरों में व्यय होने लगा। कहीं-कहीं पर यह कर माध्यमिक तथा कालेज शिक्षा पर भी व्यय कर दिया जाता था यद्यपि इसका उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा का विकास था। यहाँ तक कि कुछ प्रान्तों में तो शिक्षा-कर को शिक्षा के अतिरिक्त अन्य कार्यों में भी व्यय किया गया। अन्त में १८७१ ई० में जाकर ही इस विषय में निश्चित आदेश हुए। बंगाल में यद्यपि स्थानीय शिक्षा-कर नहीं लगाया गया था, तथापि वहाँ सरकारी अनुदान के कारण देशी प्राथमिक शिक्षा का खूब विकास हुआ तथा 'सर्किल-स्कूल-प्रथा' चालू की गई जो कालान्तर में नार्मल स्कूल प्रथा में परिवर्तित हो गई।

इस प्रकार १८७१ ई० से १८८२ ई० तक प्राथमिक शिक्षा का भारत में पर्याप्त विकास हुआ। परिणामतः १८८२ ई० में यहाँ ८२,९१६ स्कूल थे, जिनमें लगभग २१ लाख बालक शिक्षा पाते थे, जबकि १८७१ ई० में केवल १६,४७३ स्कूल थे जिनमें ६३/४ लाख बालक थे। तथापि भारत की जनसंख्या को देखते हुए साक्षरता का प्रतिशत बहुत नीचा था। वास्तव में धनाभाव, सरकार की नीति तथा उदासीनता इत्यादि कुछ ऐसे कारण थे जिनके कारण प्राथमिक शिक्षा में आशाजनक परिणाम उपलब्ध न हो सके। देश की जनसंख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही थी, किन्तु शिक्षा-विकास बहुत मंदगति से हो रहा था। अतः शिक्षा-क्षेत्र में किसी अधिक उदार और जागृत नीति की आवश्यकता थी।

सन् १८५७ ई० के विप्लव के उपरान्त सरकार ने ईसाई मिशनरियों के प्रति अपना रुख कड़ा कर दिया था। फलतः मिशनरियों ने भारत तथा इंगलैंड में सरकार की शिक्षा-नीति के विरुद्ध एक आन्दोलन खड़ा कर दिया। उन्होंने सरकारी अफसरों को नास्तिक तथा स्कूलों को 'ईश्वर विहीन' और 'अधार्मिक' कह कर प्रचार करना शुरू कर दिया। इन सभी कारणों के फलस्वरूप १८८२ ई० का प्रसिद्ध 'भारतीय शिक्षा कमीशन' नियुक्त हुआ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१२

भारतीय शिक्षा कमीशन तथा उसके उपरान्त शिक्षा-प्रगति
(१८८२ से १९०४ ई० तक)

(क) भारतीय-शिक्षा कमीशन :

नियुक्ति : १८५४ ई० के आज्ञा-पत्र के उपरान्त भारत में ईसाई पादरियों को 'सहायता-अनुदान-प्रथा' के कारण जो आशा बँधी थी वह पूरी न हो सकी। वास्तव में वे भारत में शिक्षा के द्वारा धार्मिक प्रचार कर रहे थे। अतः शिक्षा संस्थाओं पर अपना पूर्ण अधिकार चाहते थे। यही कारण था कि वे शिक्षा-विभाग द्वारा खोले हुए राजकीय स्कूलों को नहीं चाहते थे। साथ ही सरकार की धार्मिक तटस्थता की नीति भी उन्हें अरुचिकर प्रतीत होती थी। अतः वे आन्दोलन करने लगे कि भारत में शिक्षा-नीति १८५४ ई० के आज्ञा-पत्र के विरुद्ध जा रही है। इस आन्दोलन की लपटें इङ्गलैंड तक पहुँच गई और वहाँ भी 'जनरल काउंसिल ऑव एजूकेशन इन इंडिया' नामक एक संगठन बना लिया गया जिसमें लॉर्ड हैलीफैक्स तथा लार्ड लारेंस जैसे व्यक्ति सम्मिलित थे। १८८२ ई० के प्रारम्भ में जब लार्ड रिपन भारत के वायसराय पद पर नियुक्त हुए तो इस संगठन के प्रतिनिधियों ने अपना एक शिष्ट-मण्डल उनसे मिलने भेजा जिसने भारतीय शिक्षा की जाँच करने की प्रार्थना की। तदनुसार, १८८२ ई० में लार्ड रिपन ने विलियम हंटर की अधीनता में, जो कि वायसराय की कार्य-कारिणी के सदस्य थे, प्रथम भारतीय शिक्षा-कमीशन की नियुक्ति की। श्री हंटर के इस कमीशन के चेयरमैन के होने के कारण कभी-कभी इसका नाम 'हंटर कमीशन' भी लिया जाता है। चेयरमैन के अतिरिक्त इसमें अन्य २० सदस्य और थे जिनमें भारतीय प्रतिनिधि सैयद महमूद, भूदेव मुकर्जी, आनन्दमोहन बोस, के० टी० तैलंग इत्यादि तथा पादरियों के प्रतिनिधि मद्रास के डा० मिलर थे। श्री बी० एल० राइस, शिक्षा संचालक मैसूर, इसके मंत्री नियुक्त हुए।

उद्देश्य :

संक्षेप में कमीशन को निम्नलिखित बातों की जाँच करनी थी : (१) प्राथमिक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शिक्षा की अवस्था तथा उसके विकास के उपाय; (२) सरकारी शिक्षालयों की अवस्था तथा उनकी आवश्यकता; (३) मिशनरी शिक्षालयों का भारतीय शिक्षा में स्थान तथा (४) वैयक्तिक प्रयास के प्रति सरकार की नीति। सहायता-अनुदान प्रथा की जाँच भी कमीशन को सौंपी गई। इसके अतिरिक्त माध्यमिक तथा कालेज शिक्षा के विषय में भी कमीशन ने अपने सुझाव दिये। इस आयोग का वास्तविक उद्देश्य "विशेषत: उस विधि की जाँच करना था जिसके अनुसार सन् १८५४ ई० के घोषणा-पत्र के सिद्धान्तों को कार्यान्वित किया गया था; तथा उस घोषणा-पत्र में निहित नीति को भविष्य में भी अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये ऐसे सुझाव देना था जो कि कमीशन के मतानुसार वांछनीय हों।"

सिफारिशें :

यहाँ संक्षेप में हम कमीशन के द्वारा की गई सिफारिशों का वर्णन करते हैं। यहाँ एक बात स्मरणीय है कि प्राय: कमीशन ने उन्हीं बातों को कुछ घटा-बढ़ाकर दुहराया, जिन्हें १८५४ ई० के आज्ञा-पत्र द्वारा कुछ वर्ष पूर्व ही स्वीकार कर लिया गया था।

देशी शिक्षा : कमीशन ने देशी शिक्षालय का अभिप्राय उस स्कूल से लिया 'जो कि भारतवासियों द्वारा भारतीय प्रणालियों के आधार पर संचालित हो।' इन स्कूलों के विकास, संरक्षण तथा इन्हें नये ढाँचे में सम्मिलित करने के लिए कमीशन ने सिफारिश की। यह बात अनुभव की गई कि अनन्त काल की कठिनाइयों और बाधाओं का सामना करते हुए भी देशी स्कूल आज तक जीवित हैं, यह उनकी 'सजीवता तथा सर्वप्रियता' का द्योतक है। मद्रास और बंगाल के उदाहरणों ने यह भी सिद्ध कर दिया था कि इन देशी स्कूलों को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप डालना संभव है। अत: कमीशन ने कहा कि "देशी स्कूलों को यदि सरकार सुझावों के अनुसार स्वीकार कर लेती है तथा सहायता देती है, तो अवश्य ही उनकी शिक्षण प्रणाली में सुधार की आशा की जा सकती है और इस प्रकार वे सरकार द्वारा संचालित राष्ट्रीय शिक्षा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान की पूर्ति कर सकते हैं।" इन स्कूलों के प्रबन्ध के लिए कमीशन ने ऐसे जिला बोर्ड तथा म्यूनिसिपल बोर्ड, जिनमें भारतीयों का प्रतिनिधित्व हो, निर्माण करने की सिफारिश की तथा उनके पाठ्यक्रम में किसी प्रकार का भी हस्तक्षेप करने का निषेध किया। इन स्कूलों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देकर उत्साहित करने का सुझाव भी रखा। अन्त में इनका पाठ्यक्रम, पाठ्य-विधि तथा परीक्षा इत्यादि के मानदण्ड के लिये प्रत्येक प्रान्त को स्वतन्त्र रखा गया। पाठ्यक्रम में कुछ उपयोगी विषयों के सम्मिलित करने के लिए कुछ विशेष आर्थिक सहायता प्रदान करने की व्यवस्था की। इस प्रकार जो देशी शिक्षा इतने दिनों

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

से उचित संरक्षण के अभाव में प्रायः जर्जरित हो चुकी थी पुनः संरक्षण का आश्वासन पाकर प्रगति करने लगी। किन्तु इतना आवश्य है कि कमीशन ने जिस 'परीक्षाफल के अनुसार वेतन' प्रथा (Payment by Results system) को माध्यमिक व कालेजीय-शिक्षा के लिये बुरा बताया था उसी को देशी शिक्षा के लिये स्वीकृत करके देशी शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसी परम्परा को जन्म दिया जिसके कारण प्रायः सभी प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा में 'सहायता-अनुदान-प्रथा' के नियमों के ऊपर उपर्युक्त नियम का आधिपत्य हो गया जिससे देशी स्कूलों की स्वाभाविक प्रगति में कुछ बाधा पड़ी।

प्राथमिक शिक्षा : प्राथमिक शिक्षा के विषय में शिक्षा-कमीशन ने सबसे अधिक रुचि दिखाई। वास्तव में यह उनकी जाँच का प्रमुख विषय था। अतः उन्होंने निर्भीक होकर स्वीकार किया कि "जबकि शिक्षा के प्रत्येक विभाग में राजकीय संरक्षण का औचित्य स्वीकार किया जा सकता है.........तो जनसमूह की शिक्षा, इसकी उपलब्धि, प्रसार तथा उन्नति तो शिक्षा प्रणाली का वह भाग है, जिसके लिए सरकार के अथक प्रयास भूतकाल की अपेक्षा एक वृहत् पैमाने पर प्रारम्भ किये जाने चाहिये।"

प्रारम्भिक शिक्षा की नीति के विषय में घोषणा करते हुए कमीशन ने सिफारिश की कि इसे मातृभाषा के द्वारा दी जाने वाली ऐसी शिक्षा समझना चाहिए जो कि जन-साधारण के जीवन के व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्धित हो न कि विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए एक साधन मात्र। इसके अतिरिक्त सरकार को चाहिये कि इसे पहिले से भी कहीं अधिक संरक्षण प्रदान करे। सरकारी निम्नपदों पर नियुक्ति में ऐसे लोगों को प्रमुखता दी जाय जो लिखना-पढ़ना जानते हों तथा ऐसे जिलों में जो शिक्षा के दृष्टिकोण से पिछड़े हुए हों, जैसे वे स्थान जहाँ आदिवासी रहते हैं, वहाँ शिक्षा-विभाग के प्रयत्नों तथा उदार आर्थिक सहायता द्वारा प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय।

संगठन के विषय में कमीशन ने शिक्षा का सम्पूर्ण दायित्व—व्यय, निरीक्षण, प्रबन्ध तथा विकास जिला तथा म्युनिसिपल बोर्डों को सौंप दिया। इस प्रकार की व्यवस्था से सरकार एक प्रकार से प्राथमिक शिक्षा के भार से, जो कि उसका प्रथम कर्त्तव्य था, मुक्त हो गई। प्राथमिक शिक्षा की आर्थिक व्यवस्था के लिये कमीशन ने कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव रखे। प्रथमतः जिलाबोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्डों को आदेश दिये गये कि वे प्राथमिक शिक्षा के लिये अलग फंड निर्धारित कर दें। इसके अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी नगरों तथा गाँवों के हिसाब भी पृथक्-पृथक् कर दिये जाँय जिससे गाँवों की धनराशि नगरों पर व्यय न हो सके। साथ ही स्थानीय फंड के व्यय के विषय में कमीशन ने यह निश्चित कर दिया कि वे एक मात्र प्राथमिक शिक्षा पर

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ही व्यय किये जाँय। अन्त में स्थानीय फंड में उचित आर्थिक सहायता प्रदान करना भी सरकारों का कर्त्तव्य है ऐसी सिफारिश भी कमीशन ने की। स्थानीय फंड में सहायता देने में प्रान्तीय सरकारों के समक्ष यह आदर्श रखा गया कि वे कम से कम स्थानीय धनराशि का ½ अथवा कुल व्यय का ⅓ प्रदान करें। किन्तु यह कहना व्यर्थ है कि यह सहायता भारतीय जनसंख्या के आकार को देखते हुए कितनी अपर्याप्त थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राथमिक शिक्षा के लिये आर्थिक व्यवस्था करने में कमीशन का उद्देश्य उसके लिये वर्तमान परिस्थितियों में अधिक से अधिक सुविधा प्रदान कराने का रहा। इसके अतिरिक्त कमीशन ने शिक्षकों के लिये अधिक नार्मल स्कूल खोलने पर भी जोर दिया जिससे एक डिवीजनल इन्सपैक्टर के अन्तर्गत कम से कम एक नार्मल स्कूल हो जाय। पाठ्यक्रम के विषय में कमीशन ने पर्याप्त उदारता दिखलाई। उन्होंने प्रत्येक प्रान्त को अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुसार स्वतंत्रता दे दी और सम्पूर्ण देश के लिये एक सा ही पाठ्यक्रम निश्चित नहीं किया। पाठ्यक्रम में उन्होंने कुछ व्यावहारिक व जीवनोपयोगी विषय जैसे बहीखाता, क्षेत्रमिति, भौतिक विज्ञान तथा कृषि और चिकित्सा में उनकी उपयोगिता इत्यादि और सम्मिलित कर दिये।

माध्यमिक शिक्षा : माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में कमीशन ने शिक्षा-विस्तार तथा तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा के दोषों के दूर करने के साधनों को बताया। प्राथमिक शिक्षा को सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य समझा गया था। अतः माध्यमिक शिक्षा को कुछ कम महत्त्व दिया गया। कमीशन ने सिफारिश की कि सहायता अनुदान द्वारा जहाँ तक हो सके माध्यमिक शिक्षा में सहायता देकर सरकार शीघ्र उसके उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाय। तथापि यह भी निश्चय हुआ कि सरकार प्रत्येक ऐसे जिले में एक हाई स्कूल आदर्श-स्कूल के रूप में रखे "जहाँ जन-हित के लिये ऐसे स्कूल रखना आवश्यक हो, और जहाँ जनता स्वयं सहायता-अनुदान के आश्रय पर ही स्कूल चलाने के लिये पर्याप्त रूप से प्रगतिशील तथा धनवान न हो।" किन्तु ऐसा स्कूल जिले में एक से अधिक नहीं हो सकता। जिले की सम्पूर्ण शिक्षा आवश्यकता की पूर्ति के लिये जनता स्वयं इसका उत्तरदायित्व ले। इसके लिये प्रोत्साहन देने के लिये कमीशन ने यह भी सिफारिश की कि व्यक्तिगत शिक्षालयों के प्रबन्धक राजकीय-विद्यालयों की अपेक्षा बालकों से कम फीस ले सकते हैं।

माध्यमिक शिक्षालयों में शिक्षा सुधार के लिये कमीशन ने हाई-स्कूल शिक्षा को दो भागों में बाँट दिया : (१) 'अ' कोर्स तथा (२) 'ब' कोर्स। प्रथम कोर्स विश्व-विद्यालय में प्रवेश पाने के लिये था। दूसरा एक व्यावहारिक शिक्षा-कोर्स था जिसमें व्यापारिक, असाहित्यिक तथा उपयोगी विषय पढ़ाये जाने को थे। शिक्षा के माध्यम के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विषय में कमीशन ने वड़ी असंतोषजनक सिफारिशें कीं। इसने माध्यमिक स्कूलों में मातृभाषा के प्रयोग का कोई उल्लेख तक न किया। संभवत: कमीशन अँग्रेजी के पक्ष में था। मिडिल स्कूलों के लिये भी इसने कोई निश्चयात्मक नीति निर्धारित नहीं की और स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार इसे स्कूल के प्रवन्धकों पर ही छोड़ दिया।

उच्च शिक्षा : जैसा कि कहा जा चुका है कि कमीशन को विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा की अवस्था की जाँच करने से निषेध कर दिया गया था, किन्तु इसने कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव कालेज शिक्षा के लिये भी रखें। कमीशन ने यह तो घोषित कर ही दिया था कि सरकार को शीघ्र ही उच्च शिक्षा के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाना चाहिये। इसके लिये प्रत्येक कालेज को सहायता देने में "सहायता दर; शिक्षकों की संख्या, कालेज संचालन-व्यय का परिणाम, कालेज की कार्यक्षमता तथा उस स्थान की आवश्यकताओं" का ध्यान रखना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर विशेष सहायता जैसे भवन, फर्नीचर, पुस्तकालय तथा विज्ञान का सामान इत्यादि के लिये देने की भी व्यवस्था की गई। बिना फीस पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या नियत कर दी गई। शिक्षा समाप्त होने पर उनके रोजगार की सिफारिश तथा योग्य विद्यार्थियों को विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने के लिये सुविधा प्रदान करने की और भारत में विभिन्न कालेजों में एक ऐसे विस्तृत पाठ्यक्रम के लागू करने की जोकि विद्यार्थियों के रुचि-वैचित्र्य के लिये लाभदायक हो सके, कमीशन ने सिफारिश की। इसके अतिरिक्त प्रधानाध्यापक अथवा किसी अन्य शिक्षक के द्वारा नैतिक उपदेशों की एक व्याख्यानमाला जारी करने का सुझाव भी कमीशन ने रखा और एक ऐसी पाठ्यपुस्तक की रचना का आदेश दिया जो मानव-धर्म के मूल-भूत सिद्धान्तों तथा प्रकृति-धर्म पर आधारित हो। किन्तु कमीशन ने वैयक्तिक कालेजों को राजकीय कालेजों की अपेक्षा कम फीस स्वीकार करने का अधिकार देकर एक अवांछनीय स्पर्द्धा तथा अयोग्य और निम्नकोटि की शिक्षा संस्थाओं को जन्म दिया।

मिशनरी प्रयास : इस कमीशन की सिफारिशों ने तो उनकी आशाओं पर तुषारापात ही कर दिया। प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय बोर्डों के अन्तर्गत कर देने से पादरियों को अधिक आपत्ति नहीं हुई थी, क्योंकि उनके अधिकार में प्राथमिक शिक्षा तो नाम मात्र को ही थी। किन्तु कमीशन की इस सिफारिश ने कि, माध्यमिक तथा कालेजीय शिक्षा-क्षेत्र से सरकार को व्यक्तिगत प्रवन्धकों के हाथों में उसे सौंप कर शीघ्र ही हट जाना चाहिये, पादरियों के हृदयों में एक बुझती हुई आशा को पुन: जगा दिया। किन्तु ऐसा भी न हो सका। कमीशन ने इस विषय में वहुत सावधानी से काम लिया और इस बात को स्पष्ट कर दिया कि "व्यक्तिगत प्रयास का अभिप्राय स्वयं जनता के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रयास से है। यदि शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति शिक्षा साधनों से करनी है तो स्वयं भारतवासी ही इसके सबसे महत्त्वपूर्ण साधन हो सकते हैं।.........साथ ही हम एक मत होकर यह लिख देना आवश्यक समझते हैं कि शिक्षा-विभाग के प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व का शिक्षा-क्षेत्र में से हट जाने का अर्थ यह नहीं होता है कि हम उसे मिशनरियों के हाथ में सौंप दें। इस प्रकार पादरियों की स्थिति को वैयक्तिक प्रयास में जनता द्वारा संगठित शिक्षालयों की तुलना में एक निम्नतर कक्षा दी गई।

सरकार का शिक्षा क्षेत्र से क्रमिक पलायन : कमीशन की नीति यह थी कि सरकार क्रमशः जन-शिक्षा के भार से मुक्त हो जाय और उसे स्वयं भारतीय जनता के हाथों में सौंप दे, क्योंकि सरकार ने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि शिक्षा पर व्यय करने के लिये उसके पास धन का अभाव था। अतः जनता को अपना धन अपनी शिक्षा के लिये लगाना चाहिये। इस तरह जो सरकारी धन बचेगा वह अधिक स्कूलों को सहायता प्रदान करने में व्यय किया जा सकेगा। अतः जहाँ तक प्राथमिक शिक्षा का सम्बन्ध था उसे स्थानीय बोर्डों के अन्तर्गत कर दिया गया और माध्यमिक तथा कालेजीय शिक्षा को शिक्षा-विभाग की देख-रेख में व्यक्तिगत संस्थाओं को हस्तांतरित कर देने की व्यवस्था की गई। इस प्रकार नये खुलने वाले शिक्षालयों को सब प्रकार से सहायता देने का वचन दिया गया और राजकीय-शिक्षालयों को स्थानीय प्रबन्धकों को देने पर उनके सभी कागज-पत्र, भवन, पुस्तकें तथा अन्य सामान भी प्रबन्धकों को हस्तांतरित करने की सिफारिश की गई तथा उनके अधिकारों को सुरक्षित रखा गया। इस प्रकार कमीशन ने सरकार को राष्ट्रीय-शिक्षा के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया।

सहायता-अनुदान-प्रथा : व्यक्तिगत शिक्षालयों के लिए कमीशन ने अनुदान प्रथा के सुधार तथा विकास पर विशेष जोर दिया। इस विषय में कमीशन ने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में चालू-अनुदान-प्रथा के नियमों का अध्ययन किया। बम्बई में 'परीक्षा-फल के अनुसार वेतन' प्रथा (Payment by Results System), मद्रास में 'वेतन-अनुदान-प्रथा' (Salary Grant System) तथा उत्तरी भारत और मध्यप्रान्त में 'नियतकालीन-प्रथा' (Fixed Period System) प्रचलित थीं। इन सब प्रथाओं का अध्ययन करके कमीशन ने प्रत्येक प्रान्त को इस विषय में स्वतन्त्रता दे दी तथा कुछ सर्वमान्य कसौटी नियत करके प्रत्येक प्रान्त को आदेश दे दिये। इनके अनुसार सरकारी और गैर-सरकारी का भेद भी मिटा दिया गया, अनुदान-नियम अधिक उदार कर किये गये; आन्तरिक प्रबन्ध में हस्तक्षेप निषिद्ध कर दिया गया तथा प्रबन्धकों की सहायता तथा पथ-प्रदर्शन के लिए कुछ ऐसे शिक्षा-अधिकारी नियुक्त कर दिये गये जो उनके विश्वासपात्र बन सकें।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विशिष्ट शिक्षा : इन सब बातों के अतिरिक्त कमीशन ने कुछ विशेष प्रकार की शिक्षा जैसे स्त्री शिक्षा, मुसलमानों की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, राजकुमारों की शिक्षा; प्रौढ़ शिक्षा तथा आदिवासियों की शिक्षा इत्यादि पर भी अपने विचार प्रकट किये। उदाहरण के लिए, स्त्री शिक्षा के लिए कमीशन ने लड़कियों के स्कूलों को उदार सहायता, अध्यापिकाओं को वेतन-अनुदान, उनके लिए नार्मल स्कूल, लड़कियों की प्राथमिक शिक्षा के लिये सरल पाठ्यक्रम तथा निरीक्षण के लिये अलग निरीक्षिकायें नियुक्त करने की सिफारिशें कीं। मुसलमानों में हिन्दुओं की अपेक्षा कम शिक्षा पाकर उनके लिये विशेष सुविधाओं की सिफारिश की गई। अत: मुसलमान विद्यार्थियों के लिए अधिक छात्रवृत्ति, मुसलमान नार्मल स्कूल, मुसलमान शिक्षा निरीक्षक तथा मुसलमानी विशेष मिडिल तथा हाई स्कूलों की स्थापना की सिफारिश की। धार्मिक शिक्षा क्षेत्र में कठोर धार्मिक तटस्थता की पूर्वनीति का समर्थन किया; साथ ही नैतिक शास्त्र पर एक पाठ्य-पुस्तक की रचना तथा व्याख्यानमाला की सिफारिश की। राजकुमारों तथा सरदारों के लड़कों के लिये विशेष विद्यालय खोलने को कहा। प्रौढ़-शिक्षा ने भी उनका ध्यान आकर्षित कर लिया था और इसके लिये उन्होंने रात्रि-पाठशालाओं की सिफारिश की। आदिवासियों के लिए प्राथमिक शिक्षा की सिफारिश की।

कमीशन की सिफारिशों के अनुसार प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय बोर्डों और नगरपालिकाओं को दे दिया गया। माध्यमिक शिक्षा के लिये वैयक्तिक स्कूलों को खूब प्रोत्साहन दिया गया। सरकार ने यद्यपि अपनी शिक्षा संस्थाओं को स्थानीय प्रबन्धकों को नहीं दिया, तथापि अधिक विद्यालय खोलना बन्द कर दिया। इस प्रकार धार्मिक शिक्षा के विषय में की गई सिफारिशों को छोड़कर सरकार ने उसकी सभी सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। अधिकांश में कमीशन ने १८५४ ई० के आज्ञा-पत्र की नीति का ही समर्थन किया। शिक्षा-विभाग का निरीक्षण-कार्य बढ़ जाने से स्कूलों पर उसका अनुचित अधिपत्य भी हो गया। किन्तु इससे राजकीय और अराजकीय प्रयत्नों में पारस्परिक साम्य तथा सहकारिता की भावना भी उत्पन्न हो गई और यह भी प्रमाणित हो गया कि इस सहकारिता के आधार पर प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय-स्तर तक शिक्षा सङ्गठन करने की सम्भावना है। हाई स्कूलों में औद्योगिक शिक्षा की सिफारिश करके कमीशन ने यह संकेत किया कि हमारी शिक्षा आवश्यकता से अधिक पुस्तकीय होती जा रही थी।

(ख) शिक्षा-प्रगति (१८८२—१९०४ ई०)

१. विश्वविद्यालय तथा कालेज शिक्षा : भारतीय शिक्षा कमीशन की

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सिफारिशों के उपरान्त देश में कालेजों की बहुत वृद्धि हुई १८८२ ई० में पंजाब विश्व-विद्यालय की स्थापना लाहौर यूनीवर्सिटी कालेज से विकसित होकर हुई थी। इसमें भाषा का माध्यम अँग्रेजी न रख कर मातृ-भाषा रखा गया। अरबी, फारसी तथा संस्कृत में उच्च उपाधियों के वितरण की व्यवस्था भी इसमें की गई। पंजाब में विश्वविद्यालय की अलग स्थापना हो जाने के कारण यह आवश्यक समझा गया कि संयुक्त प्रान्त के लिये भी एक विश्वविद्यालय अनिवार्य है। अब तक यहाँ के कालेजों का सम्बन्ध कलकत्ता विश्वविद्यालय से था, जो कि प्रबन्ध तथा पाठ्यक्रम की कठिनाइयों के कारण अब असम्भव प्रतीत होता था। अत: १८८७ ई० में एक विशेष कानून के द्वारा इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसमें परीक्षाओं के अतिरिक्त पढ़ाने की भी व्यवस्था रखी गई। इस प्रकार भारत में पाँच विश्वविद्यालय १९वीं शताब्दी के अन्त तक हो गये। इनके पाठ्यक्रम प्राय: एक से थे।

शिक्षा कमीशन की शिफारिशों का अप्रत्यक्ष रूप से कालेजों के विकास पर भी प्रभाव पड़ा। एक तो माध्यमिक स्कूलों के खुलने तथा उनमें विद्यार्थियों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या के कारण यह आवश्यक हो गया कि उनकी उच्च शिक्षा के लिये नये कालेज खोले जायँ। अधिकतर विद्यार्थी कालेजों में जाना भी चाहते थे क्योंकि उच्च शिक्षा के उपरान्त ही वे सरकारी उच्च पद पाने की आशा करते थे। दूसरे कमीशन ने भारतीय शिक्षा में व्यक्तिगत प्रयास को भी प्रोत्साहन दिया था, अत: शिक्षित भारतीयों ने इस ओर आश्चर्यजनक प्रगति की, यहाँ तक कि उनके द्वारा संचालित कालेजों की संख्या मिशनरियों के कालेजों से भी अधिक बढ़ गई। ईसाइयों ने कमीशन तथा सरकार की नीति से दुखी होकर उच्च शिक्षा की ओर अधिक रुचि नहीं दिखलाई। अतएव अधिकांश में ये कालेज भारतवासियों द्वारा ही संचालित रहे।

इस दौरान में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना तथा उसके उपरान्त राष्ट्रीय आन्दोलन ने भी शिक्षा-प्रसार में बड़ा योग दिया। कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन की रिपोर्ट में इसका उल्लेख मिलता है :—

"ये सहस्त्रों विद्यार्थी जो कि दो पीढ़ियों से बंगाल के योग्यतम सुपुत्र हैं, अँग्रेजी भाषा पढ़ना सिखाये गये। इस भाषा की व्यावहारिक उपयोगिता के कारण प्रथमत: इसे अध्ययन करने के उपरान्त वे अँग्रेजी साहित्य-सरोवर से जलपान करने लगे, जो कि वस्तुत: स्वतन्त्रता का साहित्य है। बेकन, मिल्टन, लॉक, वर्क, वर्डसवर्थ तथा बाइरन की विचारधाराएँ उनके मस्तिष्कों में बह रही थीं जिनमें स्वराज्य का संदेश था। (इन युवकों के) प्राचीन आदर्श स्वतन्त्रता तथा व्यक्तिगत साहस प्रदर्शन के न होकर आत्म-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

समर्पण तथा आत्म-त्याग के थे। ऐसे विचारों ने, जो कि प्राच्य विचारधारा में आत्मसात् नहीं हो सकते थे, लोगों के हृदय में एक व्याकुलता भरदी। इन विचारों के राजनैतिक परिणामों से हमारा यहाँ सम्बन्ध नहीं है। किन्तु राजनैतिक विचार मानसिक हलचलों से अलग नहीं किये जा सकते; और १८८२ ई० के उपरान्त आने वाली पीढ़ी ने इन नवीन विचारधाराओं का शक्तिशाली प्रभाव शिक्षा प्रणाली के विकास में देखा।"

इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारतीय शिक्षा विकास को इस युग में काफी प्रगति दी। भारतीय यह समझ गये थे कि उनके चरित्रों का निर्माण वे स्वयं ही कर सकते हैं। यद्यपि अब तक अधिकतर कालेजों तथा हाई स्कूलों में अँग्रेज प्रिंसीपल तथा प्रधान अध्यापक रहते थे और योग्य भारतीयों का अभाव होने के साथ ही साथ उन्हें अयोग्य भी समझा जाता था किन्तु सर आर० पी० परांजपे जैसे उद्भट विद्वानों ने इस ओर भी पथ-प्रदर्शन किया। इस प्रकार कुछ त्यागी भारतीय विद्वानों ने उच्च सरकारी पदों पर न जाकर कालेजों तथा उच्च शिक्षा के स्कूलों का संचालन अपने हाथ में लेकर शिक्षा प्रसार में महान् योग दिया। १८८० ई० में पूना में फर्ग्युसन कालेज की स्थापना प्रसिद्ध देश भक्त बालगंगाधर तिलक, चिपलांकर तथा श्री अगारकर के प्रयत्नों से हो ही चुकी थी। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कलकत्ता में रिपन कालेज का भार सँभाला। उधर आर्य समाज आन्दोलन भी देश में जागृति तथा उद्‌बोधन का प्राण फूँक रहा था। अतः १८८६ ई० में लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज की स्थापना हुई जो कि शीघ्र ही उत्तरी भारत का एक प्रमुख कालेज हो गया। सन् १८६८ ई० में श्रीमती ऐनीबेसेंट ने बनारस में सैन्ट्रल हिन्दू कालेज की नींव रखी, जो कि आगे चलकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

आलोचना : इस प्रकार कालेजों के बढ़ने से विद्यार्थियों की संख्या भी बढ़ी किन्तु शिक्षा का स्तर कुछ गिर गया। रुपया तथा अच्छी पुस्तकों का अभाव, अपर्याप्त भवन तथा अनुभवहीन शिक्षक—इन सभी बातों ने मिलकर शिक्षा के मानदण्ड को अवश्य गिरा दिया। साथ ही विद्यार्थियों में केवल पुस्तकीय ज्ञान को प्रधानता देने की प्रवृत्ति का विकास होने लगा और उनकी सूक्ष्म निरीक्षण की मौलिकता जाती रही। कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति लार्ड लैंसडान ने कहा था—

"मुझे भय है कि हमें यह बात नहीं छिपानी चाहिये कि यदि हमारे स्कूल और कालेज वर्तमान रूप से ही भारतीय युवकों को शिक्षा देते रहे तो हमें आज से भी अधिक यह शिकायत सुनने का अवसर आ सकता है कि हम प्रति वर्ष ऐसे युवकों को पैदा कर रहे हैं जिन्हें हमने मानसिक शक्तियों से तो सुसज्जित कर दिया है, जो

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कि स्वयं एक प्रशंसा की बात है, किन्तु व्यवहारतः यह उनके लिये बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि जिन लोगों ने इस प्रकार की शिक्षा पाई है उनके लिये अनुकूल पेशों का देश में पूर्ण अभाव है।"

इस प्रकार यह उच्च शिक्षा अपनी समृद्धि तथा विस्तार के साथ ही साथ देश में एक ऐसे शिक्षित वर्ग को जन्म देती जा रही थी जो कि वाह्याभ्यांतर से एक ही टकसाल के ढले हुए सिक्के के समान थे, जिनमें प्राकृतिक विभिन्नता का तुलनात्मक अभाव था तथा जो स्मृति के यन्त्र की भाँति व्यवहार करते हुए दृष्टिगोचर होते थे। परीक्षा की बुराई इस प्रकार भारतीय शिक्षा-प्रणाली में जड़ पकड़ती जा रही थी कि ऐसा प्रतीत होने लगा था कि विद्यार्थी 'शिक्षा जीवन के लिये' नहीं अपितु 'शिक्षा परीक्षा के लिये' पा रहे हैं। यहाँ तक कि १९०२ ई० में भारतीय विद्यालय कमीशन ने कहा कि "वह महानतम निकृष्ट बुराई जो कि भारतीय विश्वविद्यालयों में पाई जाती है यह है कि शिक्षण परीक्षा के आधीन है न कि परीक्षा शिक्षण के।"

यहाँ एक बात का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। कुछ उच्चकोटि के भारतीय नेताओं की राय में यह आवश्यक था कि शिक्षा केवल उच्च वर्ग के लिये ही न होकर जन-समूह के लिये उपलब्ध हो और साक्षरता-प्रतिशत बढ़ जाय। उनका यह भी अनुमान था कि समय पाकर शिक्षा के मानदण्ड तथा कालेजों की कार्य-क्षमता को बढ़ाया भी जा सकता है। जैसा कि श्री गोपालकृष्ण गोखले का विचार है—"मेरे लिये एक गम्भीर विश्वास की बात है—कि भारत की वर्तमान परिस्थिति में सभी प्रकार की पाश्चात्य शिक्षा अमूल्य तथा लाभदायक है। यदि परिस्थितियों को देखते हुए यह सर्वोत्तम प्रकार की है तो और भी अच्छा। किन्तु यदि यह सर्वोत्तम नहीं भी है तो इस कारण इसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये।" अन्त में हम १९वीं शताब्दि के भारतीय विश्वविद्यालयों के विषय में वसु महोदय के इन शब्दों के साथ समाप्त करते हैं कि—

"यह कहा जा सकता है कि विश्वविद्यालय अपने क्षेत्र में बड़े संकीर्ण थे और उच्चशिक्षा की व्याख्या भी वे बड़े संकीर्ण ढंग से करते थे। उनके विरुद्ध यह भी तर्क दिया जा सकता है कि वे अन्वेषण और मौलिक चिन्तन को प्रोत्साहित करने में असफल रहे और उच्च विद्वान् तथा वैज्ञानिक उत्पन्न न कर सके। किन्तु इस सम्बन्ध में हमें यह न भूल जाना चाहिये कि उनकी स्थापना बिल्कुल भिन्न उद्देश्यों से हुई थी और जो लोग उनके अस्तित्व के उत्तरदायी थे उनकी इच्छा कालान्तर में होने वाले आलोचकों से भिन्न थी।"

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२. माध्यमिक शिक्षा : इस युग में माध्यमिक शिक्षा ने सराहनीय प्रगति की। सन् १८८२ ई० में स्कूलों की संख्या ३,९१६ थी जो कि १९०२ ई० में ५,१२४ हो गई और विद्यार्थियों की संख्या भी २,१४,०७७ से बढ़कर ५,९०,१२९ हो गई। व्यक्तिगत प्रयास को बहुत प्रोत्साहन मिला। कमीशन की राय के प्रतिकूल माध्यमिक शिक्षा पर शिक्षा-विभाग ने पुनः अपने प्रयत्नों को अधिक केन्द्रित रखा; फलतः प्राथमिक शिक्षा की आशातीत व वांछनीय प्रगति में बाधा पड़ी।

माध्यमिक शिक्षालयों में कुछ शिक्षालय तो सरकारी आर्थिक सहायता अनुदान पा रहे थे और कुछ बालकों की फीस तथा थोड़े से चन्दे से ही गुजारा कर रहे थे। इन शिक्षालयों की अवस्था असन्तोष जनक थी। शिक्षा विभाग भी इनमें अधिक हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। कमीशन ने 'ब' कोर्स में कुछ औद्योगिक अथवा व्यापारिक विषयों के पढ़ाने की व्यवस्था की थी, किन्तु १९वीं शताब्दी के अन्त तक भी वह वैकल्पिक-पाठ्यक्रम अधिक सर्वप्रिय न हो सका; और अभी तक माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में 'मैट्रीक्युलेशन' परीक्षा का बोलबाला था। इतना अवश्य है कि प्रायः सभी प्रान्तीय सरकारों ने कुछ न कुछ व्यावहारिक शिक्षा अपने यहाँ पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर दी थी। इसके अतिरिक्त १९०२ ई० तक भारत में छः कॉलेज खुल चुके थे। संयुक्त प्रान्त में इलाहाबाद में शिक्षकों के प्रतिक्षण के लिये एक कॉलेज खोला गया। मद्रास विश्वविद्यालय ने भी एल० टी० परीक्षा की व्यवस्था की।

इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति हो रही थी। किन्तु यह दुख की बात है कि शिक्षा के माध्यम के विषय में कमीशन की नीति ढिलमिल होने के कारण भारत के किसी भी प्रान्त में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम न बनाया जा सका। इससे बड़ी क्षति हुई और प्रान्तीय भाषाओं के विकास को बड़ा आघात लगा। साथी ही माध्यमिक शिक्षालयों में अँग्रेजी का प्रभुत्व जम गया और ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मानों शिक्षा का उद्देश्य केवल अँग्रेजी भाषा सीखना ही है। इससे विद्यार्थियों के स्वाभाविक मानसिक विकास पर भी रोक लग गई, क्योंकि जितना समय उन्हें विषय को बोधगम्य करने में लगता था उससे अधिक समय विदेशी भाषा के समझने में नष्ट हो जाता था; और उसके उपरान्त भी विद्यार्थियों में आत्म-विश्वास उत्पन्न नहीं हो पाता था। इससे उनका स्वाभाविक विकास रुक जाता था।

३. प्राथमिक शिक्षा : प्राथमिक शिक्षा के लिये शिक्षा कमीशन ने इङ्गलैंड की 'काउन्टी काउन्सिलों' के आधार पर भारतीय नगरों में नगर-पालिकाएँ तथा ग्रामों के लिये जिला बोर्डों की स्थापना की सिफारिश की थी और प्राथमिक शिक्षा को उन्हीं

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

के अन्तर्गत रख दिया गया था। इस व्यवस्था से प्राथमिक शिक्षा को कुछ प्रगति अवश्य मिली, किन्तु आशाजनक परिणाम उपलब्ध नहीं हो सके। इन स्थानीय बोर्डों के अधिकार और कर्त्तव्यों को संहितावद्ध कर दिया गया। देशी पाठशालायें जोकि अनन्त-काल से अपनी जर्जरित अवस्था में देश भर में चली आ रही थीं वे भी इन्हीं स्थानीय बोर्डों को दे दी गईं। इतना अवश्य है जहाँ जनता के पिछड़े हुए होने के कारण बोर्डों को यह अधिकार न दिया जा सका वहाँ सरकारी पाठशालायें खोली गईं।

स्थानीय बोर्डों के प्राथमिक शिक्षा के निमित्त व्यय करने के लिये नियम वना दिये गये और उनकी आय को केवल प्राथमिक शिक्षा पर ही व्यय करने की व्यवस्था की गई। शिक्षा-अनुदान के नियमों में भी सभी प्रान्तों ने सुधार करके उन्हें प्राथमिक शिक्षा के अधिक अनुकूल वना दिया।

यहाँ वड़े खेद के साथ यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अँग्रेजों ने भारत में कुछ ऐसी नीति अपनाई जिसने भारत के गाँवों की जड़ों को हिला दिया। उनका सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक ढाँचा टूट गया। जो गाँव अव तक देश में शासन के धरातल थे उनके ऊपर एक नया शासन थोपा गया और भारतीय ग्राम केन्द्रीय और प्रान्तीय शासनों की केवल निर्जीव इकाई मात्र रह गये जिनकी नीति का निर्धारण केन्द्र से होता था। इस ग्रामीण प्रजातन्त्र के नष्ट हो जाने का प्रभाव भारत के देशी शिक्षालयों पर भी पड़ा। शिक्षा अव अधिक से अधिक सरकार द्वारा नियंत्रित हो चुकी थी। १९वीं शताब्दि के समाप्त होते-होते भारत में अनन्तकाल से चला आने वाला देशी शिक्षा का संगठन नष्ट होकर सदा के लिये विलीन हो गया। कुछ स्कूल सरकारी अफसरों की अवहेलना से नष्ट हो गये, कुछ सरकारी स्कूलों में विलीन होकर उनका प्रमुख अंग बन गये और कुछ उनसे स्पर्द्धा में पराजित होकर सदा के लिये नष्ट हो गये। गाँव में इन देशी पाठशालाओं के संरक्षक भी नहीं रह गये। वहाँ की वढ़ती हुई निर्धनता ने लोगों का ध्यान शिक्षा तथा आत्मोन्नति से हटाकर केवल 'अस्तित्व के लिये संघर्ष' तक सीमित कर दिया। "वहुत से मध्यम वर्ग के लोग जो कि व्यापार अथवा कृषि में लगे हुए थे नौकरी के लिये आकर नगरों में वस गये। इस प्रकार देहात उजड़ कर वीरान हो गये, गाँव पाठशालाओं के संरक्षक विलीन हो गये और इस प्रकार देशी शिक्षा-पद्धति टूट कर खंड-खंड हो गई।"

इस प्रकार देश में आधुनिक प्रकार की प्राथमिक शिक्षा-पद्धति की जड़ें जम गईं। स्थानीय बोर्डों ने इस काल में अपना व्यय प्राथमिक शिक्षा पर वढ़ाया। यद्यपि सरकार की नीति व्यवहार में अव भी प्राथमिक शिक्षा की अवहेलना करने की थी और

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उसका व्यय भी प्राथमिक शिक्षा के लिए नहीं बढ़ा अधिकांश में इन बोर्डों की आर्थिक अवस्था भी सोचनीय थी और इनका प्रबन्ध भी बड़ा बुरा था। जहाँ अच्छे निरीक्षण तथा अच्छी शिक्षा के कारण प्राथमिक शिक्षा का मानदण्ड ऊँचा हुआ वहाँ उसके विस्तार में सराहनीय प्रसार नहीं हो सका। सन् १८८६ और १९०२ ई० के बीच में प्राथमिक शिक्षा में विद्यार्थियों की वृद्धि केवल ६,६०,००० थी, जबकि वही वृद्धि १८७१ ई० और १८८६ ई० के मध्य में २० लाख थी। शताब्दि के अन्त में जब कि प्राथमिक शिक्षा का प्रसार सुदूर देहातों में करना पड़ा, उसके प्रसार की गति बड़ी मन्द रही। इस संघर्ष में केवल अच्छे स्कूल जीवित रह सके, इसमें शिक्षा का स्तर तो ऊँचा हो सका किन्तु विकास अवरुद्ध हो गया।

मिशनरी प्रयास :

हन्टर कमीशन की रिपोर्ट के उपरान्त ईसाई मिशनरियों का यह भ्रम दूर हो गया कि व्यक्तिगत प्रयास में शिक्षा-क्षेत्र में उनका प्राधान्य रहेगा और इस प्रकार शिक्षा के द्वारा वह भारतवासियों का धर्म परिवर्तन करने में सफल हो सकेंगे। अत: उन्होंने अपना ध्यान उच्च शिक्षा से हटाकर जनसमूह की ओर लगाया और अपना प्रचार कार्य अधिकांश में आदिवासियों और पहाड़ी जातियों में प्रारम्भ कर दिया। इस ओर उन्हें कुछ सफलता भी मिली है और वास्तव में गत ६० वर्ष में भारत में ईसाई आबादी में आश्चर्य-जनक वृद्धि हुई है। भारतीय ईसाइयों के लिए उन्होंने कुछ अच्छे कॉलेज और हाई स्कूलों को यथावत् बना रहने दिया। इसी काल में उन्होंने कुछ अच्छे कालेज भी स्थापित किए, जैसे इण्डियन क्रिश्चियन कॉलेज, इन्दौर (१८८४ ई०); मुरे कालेज, स्यालकोट (१८८९ ई०); क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर (१८९२ ई०); तथा गौर्डन कॉलेज, रावलपिण्डी (१८९३ ई०)। इस काल में मिशनरी पादरियों को बोध हो गया कि स्कूल में पढ़ाना कोई धर्म-प्रचार का कार्य नहीं है।

(ग) लार्ड कर्जन की शिक्षा नीति :

भूमिका : २०वीं शताब्दी का उषाकाल भारतीय शिक्षा के इतिहास में सर्वदा स्मरण रहेगा। यह वह समय था जबकि देश में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ रही थी। भारतवासियों के हृदयों में अपनी संस्कृति, सभ्यता तथा भाषा और साहित्य के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया था। इस जागृति का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा। भारतीय अनुभव करने लगे कि उनकी शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिये। इसी पृष्ठभूमि के साथ सन् १८९९ ई० में लार्ड कर्जन भारत के वाइसराय नियुक्त हुए। जिस प्रकार लार्ड डलहौजी ने भारतीयों को अप्रसन्न कर दिया था उसी प्रकार लार्ड कर्जन का स्वभाव भी भारतीयों

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

से मेल न खा सका। कर्जन ने आते ही भारत में कुछ सुधार लागू करने चाहे जिनसे भारतवासी सशंक हो उठे। उस समय शिक्षा की अवस्था अच्छी नहीं थी। विद्यार्थियों की वृद्धि बहुत कम थी, स्कूलों की संख्या भी घट गई थी। वह समय आपत्ति—दो भयानक दुर्भिक्ष और एक सर्वव्यापी महामारी—का था।" अत: लार्ड कर्जन ने भारत में आते ही सितम्बर, १९०१ ई० में एक गुप्त कांफ्रेंस शिमला में बुलाई जिसमें केवल प्रान्तीय जन-शिक्षा संचालकों ने भाग लिया। जिसने भारतीय शिक्षा सम्बन्धी प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक सभी समस्याओं पर विचार विनिमय किया और अपनी नई शिक्षा-नीति की योजना बनाई। इस कांफ्रेंस में भारतीय मत को प्रतिनिधित्व नहीं मिला था। अत: भारतीय शिक्षित समाज इसे सन्देह की दृष्टि से देख रहा था। यहाँ तक कि ईसाई मिशनरियों के प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये थे। लार्ड कर्जन ने यद्यपि एक परम्परागत नीति का अनुसरण किया था, किन्तु अब समय बदल चुका था। इस नीति का प्रभाव यह हुआ कि राष्ट्रीय विचारधारा और अधिक जोर पकड़ गई। १९०२ ई० में भारतीय विश्वविद्यालय कमीशन की नियुक्ति हुई और १९०४ ई० में लार्ड किचनर से कुछ राजनैतिक मतभेद हो जाने के कारण लार्ड कर्जन स्वदेश वापिस लौट गये। आगे हम लॉर्ड कर्जन के शिक्षा सुधारों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

भारतीय विश्वविद्यालय कमीशन (१९०२ ई०) :

२७ जनवरी, सन् १९०२ ई० को इस कमीशन की नियुक्ति हुई जिसने उसी वर्ष जून में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। वास्तव में विश्वविद्यालय क्षेत्र में इस समय सुधार की आवश्यकता थी। उनकी स्थापना के उपरान्त उनके सुधार के लिये अब तक कोई प्रयत्न नहीं किये गये। इसी बीच में भारत में कालेजों और माध्यमिक शिक्षालयों की संख्या बढ़ गई थी और विश्वविद्यालयों को उनका भार कठिन प्रतीत होने लगा था। लन्दन विश्वविद्यालय का भी १८९८ ई० में पुनर्संगठन कर दिया गया था अत: यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि भारत में भी विश्वविद्यालयों के संगठन, प्रबन्ध तथा कार्य-प्रणाली में सुधार किया जाय। इसके अतिरिक्त भारत में विश्वविद्यालयों का संगठन लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मान कर हुआ था। किन्तु अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया था कि इस प्रकार के विश्वविद्यालय, जोकि केवल परीक्षा लेने भर के लिये हैं, अधिक उपयोगी नहीं हैं। अत: लन्दन विश्वविद्यालय भी बदला जा चुका था। भारतवर्ष में भी इस बात की आवश्यकता का अनुभव होने लगा कि अब केवल ऐसे विश्वविद्यालय ही नहीं चाहिये जो कि परीक्षाओं का प्रबन्ध करके उपाधि वितरण कर देते हैं। शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी यह बात अनुभव होने लगी कि पुस्तकीय ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। समय की माँग थी कि औद्योगिक व व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध हो जिससे शिक्षा व्यावहारिक जीवन

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

के लिये अधिक उपयुक्त होकर यथेष्ट रूप से हितकर हो सके। अत: इस कमीशन की नियुक्ति "ब्रिटिश भारत में विश्वविद्यालयों की अवस्था तथा भावी उन्नति की जाँच करने के लिये; तथा ऐसे प्रस्तावों पर विचार करने के लिये जो कि उनके विधान तथा कार्य-प्रणाली को सुधारने के लिये बनाये गये हैं अथवा बनाये जा सकते हैं; और गवर्नर-जनरल की परिषद् को उन साधनों के लिये सिफारिश करने के लिये जो कि विश्वविद्यालयों के शिक्षण-स्तर को उठा सकें और विद्या की उन्नति कर सकें" की गई।

यह दुर्भाग्य की बात थी कि शिमला कान्फ्रेंस की भाँति कर्जन ने इस कमीशन में भी कोई भारतीय सम्मिलित नहीं किया। भारतीयों की भावना को इससे बड़ा आघात पहुँचा। उन्होंने अनुभव किया कि सम्भवत: सरकार उनकी उठती हुई राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलने के लिए उनकी प्रगति को रोककर पूर्णत: उनका नियन्त्रण करना चाहती है। अन्त में कुछ समय बाद इस कमीशन में डा० गुरुदास बनर्जी तथा सैयद हसन बिलग्रामी के नाम भी जोड़ दिये गये, किन्तु भारतीय भावना को मनोवैज्ञानिक आघात तो लग हो चुका था।

विश्वविद्यालयों में शिक्षा तथा प्रबन्ध के सुधार के लिए कमीशन ने बहुत से सुझाव रखे। संक्षेप में कमीशन की सिफारिशें निम्नलिखित रूप से रखी जा सकती हैं—

(१) विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध का पुनर्संगठन।
(२) विश्वविद्यालयों द्वारा सम्बन्धित कालेजों का कड़ा निरीक्षण तथा सम्बन्ध के नियमों में कड़ाई।
(३) विद्यार्थियों के रहने के स्थान और अवस्थाओं का समुचित प्रबन्ध।
(४) विश्वविद्यालयों द्वारा निश्चित मर्यादा के अन्तर्गत शिक्षण कार्य प्रारम्भ कर देना।
(५) पाठ्य-क्रम तथा परीक्षा-विधि में महत्वपूर्ण परिवर्तन।

ये ही सिफारिशें भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम १९०४ ई० का आधार थीं, इस प्रकार हम देखते हैं कि इस कमीशन का उद्देश्य वास्तव में कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का नहीं था वरन् वर्तमान प्रणाली को ही पुनर्संगठित करना तथा मजबूत बनाना था। फीस की निम्नतर दर निश्चित करने तथा द्वितीय श्रेणी के इन्टरमीडियेट कालेजों को तोड़ने की सिफारिश करके कमीशन ने कुछ भारतीयों को भी विरुद्ध कर लिया। इतना अवश्य है कि विश्वविद्यालयों के बिखरे हुए तत्वों को संगठित करके उन्हें सुदृढ़ और सुसंगठित बनाने के लिए कमीशन ने अत्यन्त लाभदायक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सिफारिशें कीं और यदि लार्ड कर्जन की नीति से भारतवासियों को मनोवैज्ञानिक असंतोष न हो गया होता तो ये ही सिफारिशें स्वागत के साथ स्वीकार की जातीं।

सरकारी प्रस्ताव और शिक्षा नीति (१९०४ ई०) :

११ मार्च, १९०४ ई० को लार्ड कर्जन ने सरकारी शिक्षा-नीति को प्रस्ताव के रूप में प्रकाशित करा दिया। प्रस्ताव में कहा गया कि परिमाण की दृष्टि से हमारी वर्तमान शिक्षा के दोष सर्वविदित हैं। शिक्षा की उत्तमता की दृष्टि से प्रस्ताव में प्रमुख निम्नलिखित दोष बतलाये गये—

(१) उच्चशिक्षा सरकारी नौकरी पाने के एक मात्र उद्देश्य से ही प्राप्त की जाती है, इस प्रकार शिक्षा का क्षेत्र अकारण संकीर्ण कर दिया जाता है और जो सरकारी नौकरी पाने में असफल रहते हैं, वह दुर्भाग्य से अन्य उद्यम पाने के अयोग्य हो जाते हैं।

(२) परीक्षाओं को आवश्यकता से अधिक प्रभुत्व दे रखा है।

(३) पाठ्यक्रम शुद्ध पुस्तकीय है।

(४) स्कूलों और कालेजों में विद्यार्थियों की बुद्धि का विकास बहुत कम और स्मृति का विकास बहुत अधिक हो जाता है; फलतः गहन विद्वत्ता के स्थान पर केवल यन्त्रवत् पुनरावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

(५) अँग्रेजी को प्रमुखता देने से मातृभाषाओं का विकास रुकता है।

(६) टैक्निकल शिक्षा की अवहेलना हो रही है, किन्तु जो कुछ भी टैक्निकल शिक्षा उपलब्ध है वह केवल उच्च सरकारी पदों के लिए लोगों को दीक्षित करने के लिए है। वास्तव में ऐसी टैक्निकल शिक्षा की आवश्यकता थी जो जन साधारण के लिए उपयोगी हो और जिससे देश का आर्थिक विकास भी हो।

प्रस्ताव में यह भी आवश्यक समझा गया कि अधिक उपयोगी कृषि-कालेज खोले जाँय तथा भारतीय कलाओं और दस्तकारियों की भी उन्नति की जाय। शिक्षकों को अधिक संख्या में दीक्षित करने पर भी जोर दिया गया। स्त्री शिक्षा की ओर भी प्रस्ताव की दृष्टि गई और कहा गया कि सरकार को स्त्री शिक्षा पर अधिक व्यय करना चाहिए तथा अध्यापिकाओं की ट्रेनिङ्ग के लिए अधिक स्कूल तथा बालिकाओं के लिए सरकार की ओर से आदर्श पाठशालायें खुलनी चाहिए। इन पाठशालाओं के निरीक्षण तथा सुप्रबन्ध के लिए निरीक्षकों की संख्या बढ़ाने पर भी जोर दिया गया। इस प्रकार इस प्रस्ताव के द्वारा प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय-शिक्षा का पूर्ण निरीक्षण करने के उपरान्त उनकी उन्नति के लिए सरकारी नीति की घोषणा की गई।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्राथमिक शिक्षा के विषय में प्रस्ताव में स्वीकार किया गया कि यद्यपि इसमें विकास हुआ है किन्तु भारत की जन-संख्या को देखते हुए वह अपर्याप्त है। यह भी स्वीकार किया गया कि सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की तुलना में इसकी अवहेलना की है। प्राथमिक शिक्षा-प्रसार को सरकार का प्रथम कर्तव्य वतलाया गया और उनके सुधार के लिए यह सुझाव रखे कि एक तो स्पष्ट आर्थिक नीति का अनुकरण किया जाय। राजस्व में से प्रथम भाग शिक्षा पर व्यय किया जाय। स्थानीय वोर्डों को अपनी शिक्षा-सम्बन्धी धन राशि केवल प्राथमिक शिक्षा पर ही व्यय करनी चाहिए न कि उच्च शिक्षण विधि को अनुकूल, सरल व उपयोगी वनाया जाय। तीसरे, अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की जाय।

माध्यमिक शिक्षा के विषय में सरकारी प्रस्ताव में कहा गया कि अब तक माध्यमिक शिक्षा में वृद्धि तो संतोषजनक हुई है, किन्तु इसके साथ ही साथ ऐसे स्कूलों की संख्या बढ़ गई है जिनमें न योग्य शिक्षक हैं, न फर्नीचर न अन्य सामान और न पुस्तकालय व भवन इत्यादि की उचित व्यवस्था। शिक्षण-स्तर तथा कार्यक्षमता का भी पतन हुआ है। अतः प्रस्ताव में निरीक्षण, नियन्त्रण और आर्थिक सहायता द्वारा उनके स्तर को उठाने की सिफारिश की गई। स्कूलों को स्वीकृति तथा सहायता-अनुदान देने के नियमों में भी कड़ाई कर दी गई और फीस, विद्यार्थियों की संख्या, क्षात्रावास, विज्ञान का सामान, योग्य शिक्षकों की नियुक्ति इत्यादि सम्बन्धी कुछ नियम वना दिये गये जिनकी अवहेलना करने पर इन स्कूलों के परीक्षार्थियों का विश्वविद्यालय-प्रवेश तथा सरकारी परीक्षाओं में वैठने का निषेध कर दिया गया। इन नियमों की कठोरता की भारतीय मत ने तीव्र आलोचना की और सरकार पर अभियोग लगाया कि वह शिक्षा प्रसार को रोकने तथा उन शिक्षा केन्द्रों को, जो कि राष्ट्रीय आन्दोलन के स्रोत हैं, नष्ट करने की सरकार की चाल है।

माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी सुधार प्रस्तावित किये गये। सबसे महत्व-पूर्ण प्रश्न शिक्षा के माध्यम का उठाया गया। यह कहा गया कि "प्राथमिक शिक्षा में अँग्रेजी का न तो कोई स्थान है और न होना चाहिए। जव तक वालक ने मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा पाकर उसका ज्ञान परिपक्व नहीं कर लिया है तव तक उसे अँग्रेजी पढ़ने की आज्ञा नहीं मिलनी चाहिए।" इस प्रकार यह बात स्वीकार की गई कि लगभग १३ वर्ष की उम्र के उपरान्त ही वालक को अँग्रेजी पढ़नी चाहिए। माध्यमिक शिक्षा के लिए प्रस्ताव में मातृभाषा पर जोर दिया गया।

इसी प्रकार विश्वविद्यालय शिक्षा के दोषों का भी प्रस्ताव में संक्षेप में विवेचन

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

किया गया, क्योंकि यह प्रश्न विश्वविद्यालय कमीशन के अधीन कर दिया गया था तथापि उनकी परीक्षा-विधि, सीनेट का आकार तथा सिंडीकेट के अधिकार इत्यादि पर कुछ प्रकाश डाला।

उपर्युक्त विवरण से प्रकट होता है कि लार्ड कर्जन ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के गुण-दोषों का विवेचन बिल्कुल ठीक ही किया था। "किन्तु दुर्भाग्य से यद्यपि रोग का निदान ठीक था, प्रस्तावित औषधि न तो उचित ही थी और न सामयिक ही। लार्ड कर्जन ने जो बहुत-सी बातें कही उनके कहने में वे सही थीं, किन्तु जिस विधि से वे सुधार कराना चाहते थे उसने शिक्षित भारतीयों के मस्तिष्कों में गम्भीर सन्देह उत्पन्न कर दिया। उन्हें भय हुआ कि यह सुधार-कार्य कुछ राजनैतिक उद्देश्यों को अपनी आड़ में छिपाये हुए है।"

भारतीय विश्व-विद्यालय अधिनियम (१९०४ ई०):

१९०३ ई० में इम्पीरियल लैजिस्लेटिव काउन्सिल में एक विधेयक 'भारतीय विश्वविद्यालय विधेयक' के नाम से प्रस्तुत किया गया जो कि २१ मार्च, १९०४ ई० को कानून बन गया। इस कानून के द्वारा विश्वविद्यालयों के संगठन तथा शासन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गये—

(१) विश्वविद्यालयों के कार्य का विस्तार कर दिया गया और उन्हें प्रोफेसर तथा लैक्चरर नियुक्त करने और अनुसन्धान के लिये सुविधा जुटाने का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

(२) दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन इस अधिनियम ने सीनेट को एक उपयुक्त आकार का बनाने का सुझाव देकर किया। सन् १८५७ ई० के कानून के द्वारा विश्व-विद्यालयों के लिये 'आजीवन-फैलो' सरकार के द्वारा नियुक्त करने का अधिकार था, किन्तु गत ५० वर्षों में इस अधिकार का उपयोग बुद्धिमत्तापूर्ण न होने के कारण सीनेटों का आकार बड़ा विशाल हो गया था। इस अधिनियम के द्वारा यह निश्चित हो गया कि 'फैलो' न ५० से कम न १०० से अधिक होंगे, और इनकी अवधि आजीवन हो कर केवल ५ वर्ष के लिये होगी।

(३) तीसरा परिवर्तन था चुनाव-सिद्धान्त का प्रारम्भ कर देना। इसके अनुसार निश्चय हुआ कि बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयों में २० तथा अन्य में १५ 'फैलो' चुने जायेंगे।

(४) चौथा परिवर्तन था सिन्डीकेटों की कानूनी स्वीकृति तथा विश्वविद्यालय के अध्यापकों का सिन्डीकेट में प्रतिनिधित्व।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(५) पाँचवाँ परिवर्तन इस एक्ट के द्वारा यह किया गया कि विश्वविद्यालयों से कालेजों का सम्बन्ध स्थापित करने के नियम कड़े कर दिये गये और नियमित रूप से सम्बन्धित कालेजों के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये सिन्डीकेटों द्वारा उनके निरीक्षण की व्यवस्था की गई।

(६) छठवाँ परिवर्तन सीनेट के द्वारा बनाये जाने वाले नियमों को सरकार में निहित करने का था। अब तक यह अधिकार केवल सीनेट को ही प्राप्त था, केवल सरकार से स्वीकृति लेने की आवश्यकता होती थी। किन्तु इस एक्ट के द्वारा यह नियम बना दिया गया कि सीनेट के बनाये हुए नियमों की स्वीकृति के अतिरिक्त सरकार आवश्यक होने पर उनमें घटा बढ़ा भी सकती है; और यदि एक निश्चित समय तक सीनेट नियम बनाने में असफल रहती है तो सरकार नियम भी बना सकती है।

(७) अन्त में, गवर्नर जनरल की परिषद को यह अधिकार भी दे दिया गया कि वह भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों की प्रादेशिक क्षेत्र-सीमा को भी निर्धारित कर दे। १८५७ ई० के कानून में यह प्रश्न अनिश्चित रह गया था; जिसका परिणाम यह हुआ कि कुछ अनियमित कार्यवाहियाँ हो गई थीं। उदाहरणत: कुछ कालेज दो विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित हो गये; अथवा कुछ अन्य कालेज किसी विश्वविद्यालय के क्षेत्र में होते हुए, और ही किसी दूसरे से सम्बन्धित हो गये इत्यादि। इस अधिनियम की २७वीं धारा में कहा गया कि 'गवर्नर जनरल-इन-काउन्सिल' अपने साधारण अथवा असाधारण आदेश द्वारा विश्वविद्यालयों की सीमा निर्धारित कर देगा, जिसके अनुसार कालेजों का सम्बन्ध उनसे स्थापित होगा।

भारतीय मत :

'भारतीय विश्वविद्यालय विधेयक' का धारा-परिषद् में प्रचंड विरोध किया गया था। स्व० गोखले, जो कि धारा-परिषद् के सदस्य थे, उन्होंने अपने ऐतिहासिक व्याख्यानों द्वारा भारतीय मत को प्रकट किया। वास्तव में प्रथमत: जब लार्ड कर्जन ने विश्वविद्यालयों के सुधार की घोषणा की थी तो भारत में उसका बड़ा स्वागत हुआ था; किन्तु शिमला कान्फ्रेन्स में भारतवासियों का न लिया जाना और इसके प्रतिकूल ईसाई प्रतिनिधि डा० मिलर, जो कि क्रिश्चियन कालेज मद्रास के प्रिन्सीपल थे, की उपस्थिति तथा कान्फ्रेन्स के निर्णयों का गुप्त रखना इत्यादि ऐसे कार्य थे जिनसे भारतवासी इन शिक्षा-सुधारों को सन्देह दृष्टि से देखने लगे। उन्हें भय होने लगा कि सरकार देश की शिक्षा को योरुपवासियों के हाथ में देना चाहती है। यद्यपि यह सन्देह आगे चलकर निराधार सिद्ध हुआ, क्योंकि प्राय: सभी विश्वविद्यालयों में सीनेट में भारतीयों

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

की संख्या योरुपवासियों से अधिक रही। यही कारण था कि आगे चलकर भारतीयों का विरोध इस बात में कुछ ढीला पड़ गया।

इसके अतिरिक्त कमीशन में भी भारतीयों की अवहेलना और जस्टिस गुरुदास बनर्जी तथा सैयद हसन बिलग्रामी के नामों का बाद में जोड़ा जाना और कमीशन की रिपोर्ट प्रस्तुत करने की जल्दबाजी इत्यादि भी कुछ ऐसी हरकतें थीं जिनसे भारतवासी चौंक उठे। इन सुधारों से जो आशा उन्हें बँधी थी वह छिन्न-भिन्न हो गई। उन्हें प्रतीत हुआ कि इनके उपरान्त भी शिक्षा क्षेत्र में कुछ "विशेषज्ञों का संकीर्ण, तर्कहीन और अल्पव्ययी शासन जीवित रहेगा। साथ ही चुनाव सिद्धान्त का स्वागत हुआ, किन्तु चुने हुए स्थानों की संख्या को अपर्याप्त बतलाया गया। 'फैलो' सदस्यों की संख्या के नियत करने में भी भारतवासियों को यही भय हुआ कि उनके द्वारा सरकार विश्वविद्यालयों की सीनेट में योरुपवासियों का बहुमत करना चाहती है। विश्वविद्यालयों द्वारा कालेजों के सम्बन्ध स्थापित करने के नियमों की कड़ाई का तीव्र विरोध हुआ, क्योंकि लोगों को भय हुआ कि इसके द्वारा उच्च-शिक्षा क्षेत्र में सरकार भारतीयों के व्यक्तिगत प्रयास को कुचलना चाहती है। अन्त में, सबसे अधिक विरोध सरकार की उस नीति का हुआ जिसके द्वारा उसने इस अधिनियम में सीनेट के बनाये हुए नियमों में हस्तक्षेप तथा विश्वविद्यालय के आन्तरिक शासन को अपने हाथ में लेने की साजिश की थी। उन्हें डर हुआ कि सरकार उच्च-शिक्षा पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण करके उसकी प्रगति को रोकना चाहती है। वस्तुतः यह विरोध शिक्षा-क्षेत्र में बहुत दिनों तक चलता रहा जो कि १९२१ ई० में जाकर ही शान्त हुआ।

आलोचना :

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने सम्पूर्ण गुण और दोषों के साथ इन अधिनियम ने वास्तव में भारतीय उच्च-शिक्षा में प्रशंसनीय सुधार किये। विश्वविद्यालयों का शासन अधिक कार्यशील और कुशल बना दिया गया। कुछ विश्वविद्यालयों ने शिक्षण-कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। पुस्तकालयों की स्थापना हो गई। निम्नकोटि के कालेज या तो सुधार करके उच्च स्तर पर आ गये अथवा समाप्त हो गये। सीनेट का आकार नियत कर दिया गया तथा सिंडीकेट को कानूनी स्वीकृति प्रदान कर दी गई। जैसा भय किया गया था कि वैयक्तिक प्रयास को कुछ आघात लगेगा, निराधार सिद्ध हुआ। यद्यपि नियमों की कठोरता के कारण कालेजों की संख्या १९०४ से १९१२ ई० तक कम हो गई; किन्तु उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। १९०२ ई० में विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित कालेजों की संख्या १९२ थी जो कि १९०७ ई० में

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१७४ ही रह गई। किन्तु इससे विद्यार्थियों की संख्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कुल मिलाकर कालेजों की कार्य-क्षमता में वृद्धि हुई और शिक्षा का स्तर ऊँचा उठा।

विश्वविद्यालय अधिनियम के दोषों का उल्लेख इन शब्दों से अच्छा नहीं किया जा सकता "इसने विश्वविद्यालय शिक्षा-प्रणाली को बदलने तथा उसे उचित आधार पर रखने का कोई प्रयास नहीं किया। यद्यपि नए विश्वविद्यालयों की अत्यन्त आवश्यकता थी, किन्तु इनके द्वारा उनका निर्माण नहीं हुआ, और अन्त में, विश्वविद्यालयों के शासन में इसने सरकार के हाथों में इतना नियंत्रण रख दिया कि कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन ने भारतीय विश्वविद्यालयों को 'संसार के सबसे अधिक सरकारी शासित विश्वविद्यालय' कह कर पुकारा है।" (नरूला एवं नायक)

उपसंहार :

इस प्रकार हन्टर कमीशन से लेकर लार्ड कर्जन तक भारतीय शिक्षा ने प्रगति की। इस युग में भारतीय शिक्षा का आधुनिक रूप पर्याप्त निखर गया और अपने अन्तिम स्वरूप में उपस्थित होने लगा। जिस प्रकार हन्टर कमीशन ने केवल प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को प्रधानता दी थी, उसी प्रकार विश्वविद्यालय कमीशन ने प्रधानत: विश्वविद्यालय की शिक्षा के विषय तक ही अपने को सीमित रखा। हन्टर कमीशन का उद्देश्य शिक्षा का विस्तार तथा उसे जन-समूह के लिए सुलभ बनाना था। विश्वविद्यालय कमीशन तथा अधिनियम का उद्देश्य उच्च-शिक्षा का पुनर्संगठन तथा उसको ठोस बनाना था। कर्जन अपनी सद्भावनाओं की अपेक्षाकृत भी भारत में सर्वप्रिय न हो सके। शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण की उनकी नीति का जनमत ने निरादर किया। यदि कर्जन का स्वभाव भारतीय जनता के मनोनुकूल होता और लोग उनके राजनैतिक उद्देश्यों की ओर से सशंक न हो गये होते तो जो कुछ भी शिक्षा क्षेत्र में सुधार हुआ उनका श्रेय उसे अवश्य मिलता। उधर रूस-जापान युद्ध में जापान की विजय ने भारतवासियों के हृयय में राष्ट्रीयता की भावनाओं को और अधिक उभाड़ दिया था। साथ ही कर्जन के द्वारा बंगाल-विभाजन के कार्य ने तो भारत में एक बार को राष्ट्रीयता का झंझावात ही उत्पन्न कर दिया जिसने एक प्रकार से ब्रिटिश शासन की जड़ें ही उखाड़ कर रख दीं। इस प्रकार से उत्पन्न हुए स्वदेशी आन्दोलन की आँधी में भारत को एक नवीन राष्ट्रीय स्फूर्ति का संदेश मिला। यहाँ इतना अवश्य कहेंगे कि लार्ड कर्जन की सुधार योजनाओं ने भारतीय शिक्षा-क्षेत्र में एक नवीन चेतना उत्पन्न कर दी। फलत: भारतीय जनता सरकार की शिक्षा योजनाओं को एक आलोचनात्मक दृष्टि से देखना सीखी। इसके अतिरिक्त लार्ड कर्जन का वह आदेश जिसके द्वारा विद्यार्थियों को राजनैतिक सभाओं में भाग लेने पर कठोर दंड की धमकी दी गई थी, देश में राजनैतिक चेतना उत्पन्न करने में अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१३

स्वदेशी आन्दोलन और शिक्षा-प्रगति

(१६०५—१६२० ई०)

स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव :

लार्ड कर्जन की नीति ने देश के राष्ट्रीय नेताओं को रुष्ट कर दिया। उसके शिक्षा-सुधार निश्चय ही राजनैतिक उद्देश्यों से प्रभावित थे। अत: राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान इधर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। रूस-जापान युद्ध में जापान की विजय ने यह सिद्ध कर दिया था कि एशिया की सभ्यता भी संसार में अपना महत्त्व रखती है। भारत की राष्ट्रीय भावनाओं को इससे बड़ी प्रेरणा मिली। फारस में १६०५ ई० में स्वेच्छाचारी शासन स्थापित हो गया था। तुर्की तथा चीन में भी उत्तरदायी शासन के आन्दोलन सफल हो रहे थे। इसके पूर्व भारत में बंगाल-विभाजन आन्दोलन जोर पकड़ चुका था। इस प्रकार ये सब घटनायें मिलकर 'स्वदेशी आन्दोलन' के रूप में फूट पड़ीं। सर्वप्रथम १६०५ ई० में बंगाल में ही इसका सूत्रपात हुआ और वहाँ से इसकी चिनगारियाँ सम्पूर्ण देश में फैल गई। इस आन्दोलन का मूलभूत विचार था विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार। विदेशी वस्तुओं के स्थान पर स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग ने देश में औद्योगिक शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और उच्च-कोटि के भारतीय नेता देश में एक प्रकार की राष्ट्रीय-शिक्षा के प्रचार की कल्पना व योजना करने लगे। बंगाल में 'राष्ट्रीय-शिक्षा परिषद्' की स्थापना हुई। इस परिषद् ने राष्ट्रीय शिक्षा के लिए एक विस्तृत योजना बनाई। प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा का सुधार इसका उद्देश्य था। थोड़े ही समय में सम्पूर्ण बंगाल में राष्ट्रीय स्कूलों का एक जाल सा बिछ गया। इन स्कूलों में मातृभाषा के माध्यम के द्वारा उपयोगी विषयों में शिक्षा दी जाती थी। देश के अन्य भागों में भी इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित स्कूलों का निर्माण हुआ तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता व संस्कृति का पुनरुत्थान करने के लिए गुरुकुलों की स्थापना भी हुई। वस्तुत: भारतीय शिक्षा-पद्धति को सुधारने के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लिए यह प्रथम आन्दोलन था; शिक्षा-सुधार की यह लहर एक बार को देश के कौने-कौने में फैल गई थी। वृन्दावन और हरिद्वार के गुरुकुलों के वेद मंत्रों की ध्वनियाँ भारत के अतीत का गौरव गान गुञ्जरित करती थीं तो उधर शान्तिनिकेतन के ब्रह्मचारी प्राच्य संस्कृति को विश्व के समक्ष लाने के लिए कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चरणों में बैठे तपस्या कर रहे थे। इधर वाइसराय की परिषद् के गगनचुम्बी भवनों में भारत के महान् नेता श्री गोखले की सिंहगर्जना भारतीय जनवाणी का प्रतिनिधित्व कर रही थी।

उसी समय की एक महत्त्वपूर्ण घटना १९०६ ई० में मुस्लिम लीग की स्थापना है, जिसका भारतीय शिक्षा में एक ऐतिहासिक महत्व है। इसके द्वारा देश में मुसलमान नेताओं ने अपने लिए अलग स्कूल, अलग विद्यालय तथा सरकारी स्कूलों में अपने लिए अलग स्थान नियत कराने का नारा बुलन्द किया। इस प्रकार भारतीय शिक्षा में जातीयवाद के बीच वो दिये गये जो कि आगे जाकर एक भयानक अभिशाप सिद्ध हुए।

गोखले का विधेयक :

सन् १९०४ ई० में सरकारी नीति के कारण देश में प्राथमिक शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हुआ, कि भारत की बढ़ती हुई जन-संख्या के साथ-साथ इनकी माँग भी बढ़ती जा रही थी। स्वदेशी आन्दोलनों तथा राजनैतिक जागृति ने जनसाधारण की शिक्षा की ओर देश में रुचि उत्पन्न कर दी थी। उस समय भारत में केवल ६ प्रतिशत साक्षरता थी और स्कूल जाने योग्य लड़कों के केवल २३·८ प्रतिशत तथा लड़कियों के २·७ प्रतिशत स्कूलों में जाते थे। ऐसी परिस्थितियों में गोखले ने सरकार तथा जनता का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने जनता को यह भी चेतावनी दी थी कि अशिक्षित देश सभ्यता की दौड़ में कभी भी आगे नहीं बढ़ सके। इधर १९०६ ई० में बड़ौदा नरेश ने अपने सम्पूर्ण राज्य में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करदी। अत: भारत के अन्य भागों को भी इस क्रान्तिकारी कदम से प्रेरणा मिली। १९ मार्च, सन् १९१० ई० को स्वर्गीय गोखले ने इम्पीरियल धारा परिषद् में प्रारम्भिक शिक्षा को निशुल्क एवं अनिवार्य बनाने का यह प्रस्ताव रखा कि केवल ६ वर्ष से १० वर्ष तक के लड़कों के लिए ही शिक्षा अनिवार्य की जाय और वह भी उस क्षेत्र में जहाँ पहले ही ३३ प्रतिशत लड़के स्कूलों में शिक्षा पा रहे हों। खर्च के विषय में उन्होंने बताया कि यह स्थानीय संस्थाओं तथा सरकार में १ : २ के अनुपात में बँट जाना चाहिये। शिक्षा के लिए एक अलग सैक्रेटरी नियुक्त करने की भी उन्होंने माँग की तथा बजट में शिक्षा की प्रगति के वर्णन करने का सुझाव रखा। अन्त में सरकार के आश्वासन पर यह प्रस्ताव वापिस ले लिया गया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१९१० ई० में भारत सरकार ने 'शिक्षा विभाग' तो स्थापित कर दिया, किन्तु शिक्षा को पूर्णतः प्रान्तीय सरकार के अन्तर्गत ही रखा। १९१० ई० से पूर्व शिक्षा गृह-विभाग के अन्तर्गत थी। इस नए शिक्षा-विभाग में स्वास्थ्य तथा भूमि को भी सम्मिलित रखा गया था।

प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए सरकार की धीमी प्रगति को देख कर १६ मार्च, १९११ ई० को श्री गोखले ने अपना ऐतिहासिक विधेयक प्रस्तुत किया। प्रथमतः इसके अनुसार स्थानीय बोर्डों के उन क्षेत्रों में जहाँ पहले से ही लड़के-लड़की एक निश्चित प्रतिशत में स्कूल जाते हैं, कानून लागू करना था। इस प्रतिशत को गवर्नर जनरल अपनी परिषद् में नियत करेंगे। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम को लागू करने का अधिकार पूर्णतः स्थानीय बोर्डों पर छोड़ दिया गया। साथ ही यदि स्थानीय बोर्ड इसे अपने क्षेत्र में लागू करना चाहें तो पहिले सरकार की अनुमति लें। स्थानीय बोर्डों को शिक्षा-कर लगाने की अनुमति देने की व्यवस्था भी की गई। ६-१० वर्ष तक के बालकों के अभिभावकों के लिए आवश्यक कर दिया गया कि वे अपने लड़कों को स्कूल भेजें। लड़कियों पर भी इसे कालान्तर में लागू करने की बात कही गई। नियम भंग करने करने पर अभिभावकों के लिए दण्ड-व्यवस्था भी की गई। साथ ही खर्च के लिए स्थानीय बोर्डों को प्रान्तीय सरकारों से अनुदान का उल्लेख भी किया गया। वस्तुतः इस योजना का आर्थिक स्वरूप ही इसको स्वीकार अथवा अस्वीकार किये जाने के लिए अधिकांश में उत्तरदायी था।

इस विधेयक के प्रस्तुत हो जाने पर स्थानीय सरकारी, विश्वविद्यालयों तथा कुछ अन्य व्यक्तिगत संस्थाओं से मत-संग्रह के लिए इसको घुमाया गया। अन्त में १९ मार्च, १९१२ ई० को इसे १३ मतों के विरुद्ध ३८ मतों से गिरा दिया गया। सरकारी सदस्यों के अतिरिक्त जमींदारी सदस्यों ने भी अपने गोरे स्वामियों का साथ देकर राष्ट्र की शिक्षा प्रगति को एक महान् क्षति पहुँचाई। वस्तुतः अस्वीकार करने के तर्क बड़े ही निरर्थक व सारहीन थे। उदाहरण के लिए कहा गया कि यह कदम समय से पूर्व तथा अनावश्यक था। यह भी कहा गया कि जनता अनिवार्यता के सिद्धान्त के प्रतिकूल है तथा अनिवार्यता शिक्षा-शिद्धान्त के प्रतिकूल भी है; प्रान्तीय सरकारें अनिवार्य शिक्षा के पक्ष में नहीं हैं; कुछ भारतीय अल्पसंख्यक शिक्षित वर्ग भी इसके विरुद्ध है और स्थानीय बोर्ड भी इस नवीन योजना के लिए अधिक कर न लगावेंगे तथा प्रबन्ध और संगठन की दृष्टि से इसमें अनेक शासन सम्बन्धी असुविधायें हैं इत्यादि-इत्यादि बहाने सरकार ने लगाकर विधेयक को गिरा दिया।

इस असफलता की अपेक्षाकृत भी बाद में श्री गोखले के विधेयक के सिद्धान्तों

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

को सरकार व्यावहारिक रूप प्रदान करने लगी। अधिकतर शिक्षित भारतवासी अनिवार्य निशुल्क शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करने लगे। केन्द्र में शिक्षा विभाग स्थापित हो गया। १९१२ ई० में सीमाप्रान्त में प्राथमिक शिक्षा निशुल्क कर दी गई। संयुक्त-प्रान्त, पंजाब, आसाम तथा मध्यप्रान्त में भी नाम-मात्र शुल्क पर इसे अधिक विस्तार के साथ चालू कर दिया गया।

भारत सरकार की १९१३ ई० की शिक्षा-नीति :

देश में शिक्षा की माँग के सर्वप्रिय होने के कारण भारत सरकार को अपनी नीति के दुहराने की आवश्यकता अनुभव हुई। श्री गोखले के विधेयक के विरोध करने के कारण सरकार के लिए भी आवश्यक हो गया कि वह अपनी शिक्षा-नीति को स्पष्ट करे। इसके अतिरिक्त १९११ ई० के दिल्ली दरबार के उपरान्त देश में कुछ शासन सम्बन्धी परिवर्तन भी हुए। अत: शिक्षा क्षेत्र का पूर्ण अवलोकन व निरीक्षण करने के लिये २१ फरवरी १९१३ ई० को सरकार ने शिक्षा-नीति पर अपना प्रसिद्ध प्रस्ताव पास किया! इस प्रस्ताव के अनुसार निम्नलिखित शिफारिशें की गईं—

(१) लोअर प्राइमरी स्कूलों का विस्तार किया जाय जहाँ लिखने पढ़ने के अतिरिक्त ड्राइंग, गाँव का नकशा, प्रकृति निरीक्षण तथा शारीरिक व्यायाम की शिक्षा प्रदान की जाय।

(२) उचित स्थानों पर अपर प्राइमरी स्कूलों की स्थापना की जाय और आवश्यकता पड़ने पर लोअर प्राइमरी स्कूलों को अपर प्राइमरी कर दिया जाय।

(३) सहायता प्राप्त व्यक्तिगत स्कूलों के स्थान पर बोर्ड स्कूल खोले जाँय; तथा मकतब और पाठशालाओं को उदारता पूर्वक आर्थिक सहायता दी जाय। व्यक्तिगत स्कूलों का प्रबन्ध तथा निरीक्षण अधिक अच्छा किया जाय।

(४) भारत के बहुत से भागों में इस समय यह संभव नहीं है कि गाँव तथा नगरों के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रम रखा जाय तथापि नगरों में भूगोल पर्यटन इत्यादि के बढ़ाये जाने की संभावना है।

(५) शिक्षक उसी वर्ग के हों जिनके बालक हैं। वह मिडिल पास हों तथा एक साल की ट्रेनिंग लिये हुए हों। छुट्टियों में प्राथमिक शिक्षकों का ज्ञान नवीन करने के लिए उन्हें कोर्स दुहराने की सुविधा प्रदान की जाय।

(६) दीक्षित अध्यापकों को १२) रु० प्रति मास से कम न मिलना चाहिये। उनकी तरक्की तथा पेंशन अथवा प्रौविडैंट फंड की व्यवस्था की जाय।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(७) किसी भी अध्यापक से ५० से अधिक विद्यार्थियों को न पढ़ाया जाय। सामान्यतः उनकी संख्या ३० या ४० हो।

(८) मिडिल तथा माध्यमिक वर्नाक्यूलर स्कूलों की दशा में सुधार किये जाँय तथा उनकी संख्या में वृद्धि की जाय।

(९) स्कूलों के भवन स्वच्छ, विस्तृत तथा अल्पव्ययी हों।

(१०) प्राथमिक क्षिशा के अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा पर इस प्रस्ताव में जोर दिया गया। बालिकाओं के लिये विशेष तथा व्यावहारिक उपयोगिता के पाठ्यक्रम को तैयार करने के सुझाव रखे। प्रस्ताव में यह स्पष्ट कर दिया कि लड़कियों की शिक्षा में परीक्षा का महत्त्व अधिक न वढ़ने पावे। अध्यापिकाओं तथा निरीक्षणकाओं की संख्या बढ़ाई जावे।

(११) माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सरकार के पूर्ण पलायन का प्रस्ताव में विरोध किया गया; साथ ही सरकारी स्कूलों के बढ़ने का भी निषेध कर दिया गया। वर्तमान स्कूलों को आदर्श बना रहने दिया जाय तथा व्यक्तिगत स्कूलों को उचित सहायता-अनुदान द्वारा प्रोत्साहित किया जाय।

(१२) विश्वविद्यालय शिक्षा में और अधिक विस्तार का आयोजन किया गया। इसके अतिरिक्त १९०४ ई० से चले आने वाला वह नियम जिसके अनुसार विश्वविद्यालयों को हाईस्कूलों को स्वीकृति देने का अधिकार प्रदान कर दिया गया था, उसमें कुछ दोष आ जाने के कारण प्रस्ताव में सुझाव रखा कि हाईस्कूल तथा विश्वविद्यालयों में उचित श्रम-विभाजन किया जाय। अतः विश्वविद्यालयों को स्कूलों को स्वीकृति प्रदान करने के उत्तरदायित्व से मुक्त करके उसे प्रान्तीय सरकारों के अधिकार में रखा जायँ। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों में शिक्षण तथा परीक्षा के दो कार्यों को भी अलग-अलग करके शिक्षण करने वाले विश्वविद्यालयों की स्थापना पर जोर दिया। साथ ही उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में औद्योगिक महत्त्व के विषयों का समावेश और इच्छुक विद्यार्थियों के लिये अनुसन्धान की अधिक सुविधायें प्रदान करने की सिफारिश की। विद्यार्थियों के चरित्र तथा क्षात्रावास-जीवन पर भी प्रस्ताव में सुझाव रखे गये।

आलोचना :

माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में ये सुझाव अत्यन्त महत्त्व रखते थे। १९१३ ई० के उपरान्त १९२१ ई० तक भारत में जो सर्वाङ्गीण शिक्षा-विकास हुआ उसका श्रेय इस प्रस्ताव को ही है। इतना अवश्य है कि सन् १९१४ ई० में विश्वयुद्ध की घोषणा तक भारत सरकार के उस युद्ध में भाग लेने के कारण १९१३

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ई० के प्रस्ताव के अधिकतर सुझाव एक पवित्र आशा के रूप में ही रहे। माध्यमिक तथा कालेज शिक्षा में चलने वाला तर्क कि शिक्षा के विस्तार को बढ़ाया जाय अथवा उसी किस्म का सुधार किया जाय, प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी आ गया। इतना अवश्य है जहाँ सरकार शिक्षा की किस्म का सुधार करना चाहती थी वहाँ वह उसके विस्तार के विषय में भी सजग थी। युद्ध के उपरान्त १९१७ ई० में भारत सरकार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की शिक्षा के विषय में जाँच पड़ताल करने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की, जो कि भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

सैडलर कमीशन :

१४ सितम्बर, १९१७ ई० को भारत सरकार ने एक प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसके अनुसार यह कमीशन प्रधानत: कलकत्ता विश्वविद्यालय की अवस्था की जाँच करने तथा उसकी समस्याओं को रचनात्मक विधि से सुलझाने के लिये नियुक्त किया गया था। डा० माइकेल सैडलर, वाइस चांसलर लीड्स विश्वविद्यालय, इसके सभापति नियुक्त हुए। यही कारण है कि इतिहास में यह 'सैडलर कमीशन' के नाम से भी विख्यात है। यद्यपि इस कमीशन की नियुक्ति केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय के लिये ही हुई थी, किन्तु तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से यह भी व्यवस्था करदी गई थी कि कमीशन भारत के अन्य विश्वविद्यालयों की अवस्था का अध्ययन भी कर सकता है। यही कारण है कि इस कमीशन की रिपोर्ट का अखिल भारतवर्षीय महत्त्व है। १९१९ ई० में कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करदी। प्राथमिक शिक्षा को इस रिपोर्ट में स्पर्श नहीं किया गया है, किन्तु माध्यमिक शिक्षा पर, जो कि वस्तुत: उच्च शिक्षा का धरातल है, अच्छी विवेचना की गई है।

सिफारिशें :

कमीशन की राय में विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार करने के लिये माध्यमिक शिक्षा में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता थी। अत: कमीशन ने इसके लिये निम्नलिखित सुझाव रखे।

(१) इन्टरमीडियेट कक्षाओं को विश्वविद्यालयों से अलग कर दिया जाय; और बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के लिये ३ वर्ष के पाठ्यक्रम की व्यवस्था कर दी जाय। विश्वविद्यालय में प्रवेश इन्टर पास करने पर हो न कि मैट्रिक पास करने पर।

(२) प्रथम उद्देश्य के लिये इण्टरमीडियेट कालेजों की स्थापना की जाय, जहाँ

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कला, विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरी, कृषि वाणिज्य तथा अध्यापन की शिक्षा प्रदान की जाय।

(३) हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट बोर्ड की स्थापना प्रत्येक प्रान्त में की जाय, जिसमें सरकार, विश्वविद्यालय, हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट कालेजों के प्रतिनिधि सम्मिलित होकर माध्यमिक शिक्षा का प्रवन्ध करें। माध्यमिक शिक्षा के विषय में इस बोर्ड को अधिकांश में शिक्षा-विभाग के नियन्त्रण से मुक्त रखने की सिफारिश की गई।

इस प्रकार नवीन बोर्ड में निर्माण करने में कमीशन का उद्देश्य यह था कि विश्वविद्यालयों को माध्यमिक शिक्षा के भार से मुक्त करके इस योग्य बना दिया जाय कि वे अपना ध्यान पूर्णतः उच्च शिक्षा पर दे सकें। साथ ही शिक्षा-विभाग और विश्व-विद्यालयों के बीच में पड़ी हुई मतभेद की गाँठ भी टूट जाय। इन इण्टर-कालेजों में कमीशन ने शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रखने पर जोर दिया। इसके उपरान्त कमीशन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की समस्याओं का अध्ययन किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इस विश्वविद्यालय का आकार अत्यन्त बढ़ गया है यहाँ तक कि इससे सम्बन्धित कालेजों तथा उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या इतनी बढ़ गई है कि एक विश्वविद्यालय इनका प्रवन्ध नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में कमीशन ने ३ सुझाव रखे—

(१) ढाका में एक शिक्षा देने वाला स्थानीय विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय।

(६) कलकत्ता नगर के शिक्षा साधनों का पुनर्संगठन इस विधि से किया जाय कि कलकत्ता में भी वास्तविक शिक्षण कार्य करने वाले एक विश्वविद्यालय का निर्माण हो सके।

(३) नगर के आस-पास के कालेजों का विकास इस प्रकार किया जाय कि उच्च शिक्षा के सम्पूर्ण साधनों को एकत्रित करके कुछ थोड़े से स्थानों पर ही विश्वविद्यालय-केन्द्रों के क्रमिक विकास को प्रोत्साहित करने की सम्भावना हो सके।

साधारण रूप से विश्वविद्यालयों के आन्तरिक शासन तथा संगठन पर भी कमीशन ने अपने विचार प्रकट किये। जैसे—

(१) विश्वविद्यालय आवश्यकता से अधिक सरकारी नियन्त्रण में हैं। अतः इससे मुक्त करने के लिये शिक्षकों को विश्वविद्यालयों के विषयों में अधिक अधिकार प्रदान किये जाँय।

(२) विश्वविद्यालयों के शासन नियम सरल कर दिये जाँय।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(३) योग्य विद्यार्थियों के लिये 'पास कोर्स' के अतिरिक्त 'ऑनर्स कोर्स' भी नियत कर दिये जाँय; तथा इण्टर के बाद डिग्री कोर्स ३ वर्ष कर दिया जाय।

(४) आन्तरिक शासन के लिये सीनेट के स्थान पर एक प्रतिनिधि-कोर्ट तथा सिंडीकेट के स्थान पर छोटी सी कार्यकारिणी परिषद् बना दी जाय।

(५) प्रोफेसर तथा रीडरों की नियुक्ति विशेष समितियों द्वारा की जाय जिनमें बाहर के विशेषज्ञ भी सम्मिलित हो सकें।

(६) एकेडैमिक प्रश्नों को सुलझाने के लिये एकडैमिक-परिषद् तथा अध्ययन बोर्ड स्थापित कर दिये जाँय जो कि परीक्षा, पाठ्य-क्रम, उपाधि-वितरण तथा अनुसन्धान इत्यादि के प्रश्नों को सुलझायें।

(७) भिन्न-भिन्न विभागों (Faculties) की स्थापना की जाय।

(८) एक वैतनिक उप कुलपति नियुक्त किया जाय।

(९) मुसलमानों में शिक्षा की पिछड़ी अवस्था को देखते हुए उन्हें हर प्रकार की विशेष सुविधा दी जाय।

(१०) प्रत्येक विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिये स्वास्थ्य शिक्षा-संचालक की नियुक्ति की जाय।

इन सिफारिशों के अतिरिक्त कमीशन ने स्त्री-शिक्षा, अध्यापकों का प्रशिक्षण, औद्योगिक शिक्षा तथा टैक्नोलौजी और विज्ञानों के उचित शिक्षण के विषय में भी जोरदार शिफारिशें कीं। 'शिक्षा' विषय को भी बी० ए० तथा इण्टर कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में सम्मिलित करने तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षा-विभाग खोलने की सिफारिश की। १५ और १६ वर्ष से ऊपर अवस्था वाली पर्दानशीन युवतियों के लिये उचित पर्दा करने की व्यवस्था पर जोर दिया। स्त्री-शिक्षा के लिये कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक 'स्पेशल बोर्ड आव् वीमेन्स एज्यूकेशन' की स्थापना करने तथा उसे स्त्रियों की आवश्यकतानुसार विशेष पाठ्यक्रम नियत करने का अधिकार देने के लिये कहा। विश्वविद्यालयों के पारस्परिक सम्बन्धों में अधिक साम्य तथा सहयोग उत्पन्न करने के लिये एक अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड स्थापित करने की भी सिफारिश की।

आलोचना :

इस प्रकार कमीशन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के सुधार के लिये अपने सुझाव रखे। किन्तु इनका महत्त्व सम्पूर्ण देश की शिक्षा के लिये है। इस कमीशन के सुझावों के फलस्वरूप भारतीय विश्वविद्यालयों में महान् सुधार और एक नवीन जीवन का संचार हुआ। विश्वविद्यालय अब विद्या के केन्द्र बनने लगे। इन सुझावों ने न केवल भावी विश्वविद्यालयों का ही स्वरूप स्थिर किया अपितु पूर्व स्थित विश्वविद्यालयों का

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भी नये दृष्टिकोण से पुनर्संगठन किया। विश्वविद्यालय शिक्षा पर इस कमीशन ने एक नया प्रकाश डाला तथा उसे वास्तविक जीवन के अधिक निकट लाकर रख दिया। मातृभाषाओं की उन्नति हुई तथा अन्वेषण को प्रोत्साहन मिला। विश्वविद्यालयों का आन्तरिक संगठन व शासन पर्याप्त रूप से सुधर गया। वास्तव में यह रिपोर्ट आज भी विश्वविद्यालय शिक्षा पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। उच्च शिक्षा के प्राय: सभी अंगों पर विचार करके कमीशन ने अपने तर्कयुक्त तथा रचनात्मक सुझाव दिये। इतना अवश्य है कि कमीशन के उद्देश्य उच्च होते हुए भी उसकी कुछ सिफारिशें समय से पूर्व ही थी। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के आदर्श पर कलकत्ता विश्वविद्यालय का संगठन उत्तम होते हुए भी उस समय व्यावहारिक नहीं था। माध्यमिक शिक्षा से शिक्षा विभाग का नियन्त्रण हटाकर बोर्ड के अन्तर्गत कर देना भी समय से पूर्व था। इन्टर कालेजों का परीक्षण भी सफल नहीं हुआ। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश में इन्टरमीडियेट कालेजों को तोड़ कर उच्चतर माध्यमिक शिक्षालय बनाने की योजना सरकार ने लागू की है। किन्तु यह सब दोष तुच्छ हैं और रिपोर्ट की महानता को किसी भी प्रकार कम नहीं करते। इसके आधार पर भारत में मैसूर, पटना, बनारस, अलीगढ़, ढाका, लखनऊ तथा हैदराबाद में स्थानीय विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई; तथा उच्च व माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संगठन हुआ। भारतीय शिक्षा के इतिहास में यह रिपोर्ट एक युग-निर्माणक विवरण के रूप में सदा अमर रहेगी।

आन्दोलन के उपरान्त शिक्षा प्रगति :

१. **विश्वविद्यालय शिक्षा** : सन् १९०४ ई० के विश्वविद्यालय कानून ने भारत के पाँच विश्वविद्यालयों का पुनर्संगठन कर दिया। सीनेट तथा सिंडीकेटों की पुन: व्यवस्था करके 'फेलो' सदस्यता को ५ वर्ष तक के लिये कर दिया। विश्वविद्यालयों के आन्तरिक सुधार के अतिरिक्त परीक्षा-विधि, शिक्षण-विधि तथा पाठ्यक्रम में संतोषजनक सुधार किये गये। विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित कालेजों का भी अधिकार उन्हें मिल जाने के कारण इन कालेजों के प्रबन्ध तथा शिक्षा-स्तर में उन्नति हुई। कालेजों में सर्वांगीण उन्नति के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। कालेज शिक्षा को प्राप्त करने का उद्देश्य अब इतना सरकारी नौकरी प्राप्त करना नहीं रह गया था, क्योंकि शिक्षितों की संख्या में अपरिमित वृद्धि हो रही थी। रोज़गार का कोई अन्य साधन या विकल्प न होने के कारण कालेजों में उच्च-शिक्षा के लिये विद्यार्थियों की वृद्धि होने लगी। औद्योगिक शिक्षा के कालेजों के अभाव में भी अधिकतर विद्यार्थी निरुद्देश्य कला व विज्ञान के कालेजों में प्रवेश पाने लगे।

इस युग में कालेजों की आर्थिक अवस्था में सुधार होने लगा। सरकार ने

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अनुदान भी बढ़ा दिया था। कालेजों के विकास के लिये कुछ धनराशि अलग नियत कर दी गई। इधर शुल्क आय में भी आशाजनक वृद्धि होने से आर्थिक अवस्था पर स्वस्थ प्रभाव पड़ा इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ने २७½ लाख का अनुदान भवन निर्माण के लिये विश्वविद्यालयों को दिया।

शिक्षा की उत्तमता तथा पाठ्यक्रम की दृष्टि से भी आशाजनक सुधार हुआ। १९०४ ई० के अधिनियम के अनुसार ही शिक्षण-कार्य की अनुमति विश्वविद्यालयों को मिल चुकी थी। कलकत्ता ने उत्तर-ग्रेजुएट शिक्षण पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। बम्बई में ऑनर्स की व्यवस्था की गई। विदेशों से भी विशेषज्ञों को बुलाकर सामयिक भाषणों का प्रबन्ध विश्वविद्यालयों में हो गया। अध्ययन विषयों में विज्ञान, अर्थशास्त्र तथा प्रयोगात्मक-मनोविज्ञान में अनुसंधान का विशेष आयोजन किया।

१९१३ ई० के उपरान्त १९१५ ई० के कानून के अनुसार बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित किया गया, १९१६ ई० में मैसूर विश्वविद्यालय, १९१७ ई० में पटना, १९१८ ई० में उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, जिसमें उच्च शिक्षा का माध्यम उर्दू रखा गया तथा १९२० ई० में ढाका, लखनऊ तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। इस प्रकार १९१६ ई० से १९२१ ई० तक इनकी संख्या ५ से १२ हो गई। अधिकांश में ये सभी विश्वविद्यालय स्थानीय हैं, जहाँ विद्यार्थियों के निवास व शिक्षण दोनों की उचित व्यवस्था है। इस प्रकार शिक्षण-विश्वविद्यालयों की स्थापना से उच्च शिक्षा में बहुत सुधार हुआ। वास्तव में भारत जैसे विशाल देश के लिये इस प्रकार के विश्वविद्यालयों का बड़ा महत्त्व है, किन्तु धनाभाव के कारण अभी बहुत दिनों तक सम्बन्धक-विश्वविद्यालयों की भी आवश्यकता रहेगी।

२. माध्यमिक शिक्षा : लार्ड कर्जन की शिक्षा नीति के कारण माध्यमिक शिक्षा में सरकारी नियंत्रण अधिक बढ़ गया इस कारण उसकी कुशलता में तो वृद्धि हुई किंतु परिमाण घट गया। सभी प्रकार के व्यक्तिगत तथा राजकीय सहायता प्राप्त शिक्षालयों को सरकार ने स्वीकृति प्रदान करने की व्यवस्था की। शिक्षा-विभाग की स्वीकृति के अतिरिक्त विश्वविद्यालयों द्वार भी उन्हें स्वीकृति मिलती थी यदि मैट्रिक परीक्षा के लिए विद्यार्थी भेजने हों। इस सम्बन्ध के कारण माध्यमिक शिक्षा पर दुहरा नियंत्रण हो जाने से उसके प्रसार में बाधा उपस्थित हुई। शिक्षा-विभाग के द्वारा स्वीकृति मिलने पर माध्यमिक स्कूलों को सहायता अनुदान मिलने लगा, विद्यार्थियों को सरकारी ऐन्ट्रेंस परीक्षा में भेजने का अधिकार मिल गया तथा विद्यार्थियों को सरकारी छात्रवृत्ति मिलने की संभावना हो गई। साथ ही अस्वीकृत शिक्षालयों के विद्यार्थियों को स्वीकृति-शिक्षालयों

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में हस्तान्तरित करने का निषेध कर दिया गया। इस साधन के अस्वीकृत स्कूलों पर भी एक प्रकार से रोक लग गई। लार्ड कर्जन ने शिक्षा-क्षेत्र में चली आने वाली उन्मुक्त-नीति का उन्मूलन करके उसे राज-नियंत्रण में कर दिया। इसका भारतीय मत ने बहुत विरोध किया और इसका सम्बन्ध सरकार की राजनैतिक चालों से जोड़ दिया। राजकीय स्कूलों को अवश्य उदार सहायता दी गई। तथापि इस नीति का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि शिक्षा की उत्तमता व कुशलता बढ़ गई, क्योंकि अस्वीकृत शिक्षालय स्वीकृत होने तथा सरकारी सहायता लेने के लिये अपनी अवस्था में सुधार करने लगे।

१६१३ ई० की शिक्षा नीति के अनुसार स्कूलों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई। विद्यार्थियों की संख्या इस प्रकार बढ़ रही थी कि पूर्व स्थित स्कूलों के द्वारा उनकी पूर्ति असम्भव हो उठी। सन् १६१७ ई० में राजकीय स्कूलों की संख्या २३७, लड़कों के लिए, तथा २० स्कूल लड़कियों के लिए थे। इसी समय यह प्रश्न भी जोर पकड़ गया कि या तो सरकार राजकीय हाई स्कूलों को बन्द करदे अथवा उन्हें व्यक्तिगत प्रबन्धों को सौंप दे जिससे कि एक विशाल धन-राशि इस प्रकार मुक्त होकर व्यक्तिगत रूप से शिक्षा का प्रसार करने में सहायक हो। किन्तु यह माँग आज तक विद्यमान है। प्रत्येक जिले में सरकार की ओर से एक स्कूल आज भी चल रहा है जो कि अब श्रेष्ठता की की दृष्टि से किसी भी प्रकार के विशेषाधिकारों का दावा नहीं कर सकता। यहाँ तक कि बहुत से राज्यों में सरकारों ने राजकीय और व्यक्तिगत विद्यालयों के बीच में एक प्रकार का पक्षपातपूर्ण वर्ताव कर रखा है। माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा के माध्यम का प्रश्न अभी अन्तिम रूप से हल नहीं हो सका था। 'स्कूल फाइनल' परीक्षाओं का प्रचार बढ़ गया था। अतः मैट्रिक-परीक्षा के पाठ्यक्रम के लचीले तथा आवश्यक रूप से वैकल्पिक न होने के कारण भिन्न-भिन्न प्रान्तों ने 'स्कूल फाइनल परीक्षा' की योजनायें बनाई जिसका संचालन शिक्षा-विभाग को सोंपा गया।

३. प्राथमिक शिक्षा : १६०४ ई० में लार्ड कर्जन के प्रस्ताव के अनुसार भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया कि देश में प्राथमिक शिक्षा का क्रियात्मक विस्तार सरकार का प्रथम महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है। अतः स्थानीय बोर्डों में सुधार करके उनके प्रयत्नों को केवल प्राथमिक शिक्षा पर केन्द्रित किया गया। देश में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार होने लगा और असंख्यों अपर प्राइमरी तथा लोअर प्राइरी स्कूलों की स्थापना हुई। भारत सरकार ने शिक्षा अनुदान १६०५ ई० में ४० लाख से बढ़ाकर अब ७५ लाख कर दिया और साथ ही ३५ लाख रुपये का पुनरावर्ती अनुदान भी प्रति वर्ष देना स्वीकार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि १६०२ से लेकर १६१२ ई० तक प्राथमिक स्कूलों की संख्या दुगुनी हो गई। 'परीक्षाफल के अनुसार वेतन' की

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कुप्रथा को १९०६ ई० में भङ्ग कर दिया गया और शिक्षा-अनुदान के नियमों में सुधार कर दिया गया। अब तक सरकारी सहायता कुल व्यय की $\frac{1}{3}$ होती थी, किन्तु लार्ड कर्जन ने उसे $\frac{1}{2}$ कर दिया। इससे प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ उसकी श्रेष्ठता भी बढ़ी। इसके अतिरिक्त लार्ड कर्जन ने पाठ्य-क्रम के सुधार, अध्यापकों का प्रशिक्षण तथा शिक्षणविधि में सुधार इत्यादि पर भी जोर देकर प्राथमिक शिक्षा की उन्नति की। १९०६ ई० में बड़ौदा में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू हो जाने के कारण तथा सम्पूर्ण देश की राजनैतिक चेतना और स्वदेशी आन्दोलन के कारण भी प्राथमिक शिक्षा ने प्रगति की। जनता समझने लगी कि बिना साक्षरता तथा शिक्षा का प्रतिशत बढ़े हुए वह उन्नति नहीं कर सकती। इधर प्रसिद्ध नेता श्री गोपालकृष्ण गोखले के प्रयास और उनके विधेयक इत्यादि ने प्राथमिक शिक्षा का प्रश्न देश के लिये एक महत्वपूर्ण प्रश्न बना दिया था। अतः सरकार ने इसके लिये अब अधिक उदारता पूर्वक सहायता देना प्रारम्भ कर दिया। १९०७ से १९१२ ई० तक बालकों की संख्या ४ से ५ लाख तक हो गई। अब प्राथमिक शिक्षा व्यावहारिक रूप से सभी प्रान्तों में प्रायः निशुल्क हो गई। १९११ ई० में दिल्ली दरबार के समय सम्राट् चार्ज पंचम ने, ५० लाख रुपया राजकोष से प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया। इससे भी प्रगति में सहायता मिली। १९१३ ई० के शिक्षा-प्रस्ताव द्वारा भी सरकार ने लोक-शिक्षा को प्रथमता दी। इसके अनुसार अधिकतर लोअर प्राइमरी स्कूलों को अपर प्राइमरी बना दिया तथा बोर्ड की ओर से प्राथमिक स्कूलों की स्थापना हुई। शिक्षकों की दशा तथा उनकी दीक्षा में सुधार करने की भी व्यवस्था की गई। १९१३ ई० की शिक्षा-नीति का परिणाम यह हुआ कि १९१७ ई० तक प्रायः सभी प्रान्तों में बोर्ड के स्कूल स्थापित हो गये। बालिकाओं के लिए अलग व्यवस्था की गई। बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा मद्रास में इन बोर्ड स्कूलों ने कोई उन्नति नहीं की; वहाँ तो व्यक्तिगत स्कूलों का ही बाहुल्य रहा। बंगाल में सरकार ने 'पंचायती स्कूलों' की स्थापना की योजना बनाई, जिसके अनुसार १०.४ वर्ग मील के क्षेत्र में एक आदर्श स्कूल स्थापित किया गया। यू० पी० में २५ वर्ग मील के क्षेत्र में एक प्राथमिक स्कूल खोला गया।

इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा ने प्रगति तो की किन्तु यह संतोषजनक नहीं थी। १९१७ ई० तक स्कूलों में जाने योग्य बालकों के केवल ३२ प्रतिशत बालक प्राथमिक स्कूलों में जा रहे थे। १९१२ से १९१७ ई० तक के पंचसाला में अनुपात: ८ वर्ग मील के क्षेत्र में केवल १ बालक शिक्षा के लिये जाता था। १९१८ ई० के उपरान्त देश में प्राथमिक शिक्षा ने पुनः प्रगति करना प्रारम्भ कर दिया। विश्वयुद्ध के कारण जो

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अवरोधन उत्पन्न हो गया था वह अब हट गया । १९१८ ई० में 'बम्बई प्राथमिक शिक्षा कानून' पास किया गया जिसके अनुसार कुछ नगरपालिकाओं को ६ से ११ वर्ष तक के बालकों के लिये अनिवार्य शिक्षा प्रारम्भ करने की अनुमति मिल गई । इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी इसी प्रकार के कानून बने । इधर कुछ राजनैतिक हलचलों का भी शिक्षा पर साधारण रूप से तथा प्राथमिक शिक्षा पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा । १९१७ ई० में रूस की राजक्रान्ति के समाचार भारत में भी आने लगे और इसका भारतीय शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा । इधर भारत में १९१९ ई० में रौलट बिल का भारतीय जनता के विरुद्ध पास हो जाना, उसके उपरान्त जनरल ओ० डायर द्वारा जलियानवाला बाग की दुखद घटना, युद्ध के उपरान्त आने वाली मँहगाई और बेकारी तथा सबसे महत्त्वपूर्ण घटना महात्मा गांधी द्वारा संचालित १९१९-२१ ई० का 'असहयोग आन्दोलन' जिसके कारण विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूलों का बहिष्कार कर दिया, इत्यादि ऐसी घटनायें हैं, जिनका भारतीय शिक्षा पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था । इस सबका फल यह हुआ कि १९१९ ई० में मांटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधार हुए ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१४

द्वैध शासन के बाद शिक्षा-प्रगति

(१९२१-३७ ई०)

भूमिका :

१९१९ ई० के अधिनियम के द्वारा भारत के प्रान्तों में दोहरा शासन स्थापित हो गया। इसमें पूर्व केन्द्रीय सरकार ही अखिल-भारतवर्षीय महत्व के सुधारों से सम्बन्ध रखती थी। शिक्षा के क्षेत्र में भी केन्द्रीय सरकार नये सुधारों को लागू करती थी। किन्तु मांट-फोर्ड सुधारों के द्वारा स्थिति वदल गई। प्रान्तीय सरकारें दो भागों में विभाजित हो गईं—सुरक्षित तथा हस्तान्तरित। स्वास्थ्य तथा शिक्षा इत्यादि विषय प्रान्तीय मन्त्रियों को हस्तान्तरित कर दिये गये। ये मन्त्री धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी होते थे। भारतीय जन-प्रिय मन्त्रियों को स्वायत्त-शासन का यह प्रथम पाठ था। प्रान्तीय शिक्षा हस्तान्तरित विषय तो हो गया किन्तु यूरोपियनों की शिक्षा तथा केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्रों की शिक्षा, राजकुमारों के शिक्षालय तथा दिल्ली, अलीगढ़ और बनारस के विश्व-विद्यालय भी केन्द्रीय सरकार के अधीन रहे। मांट-फोर्ड सुधारों से शिक्षा को पर्याप्त प्रगति मिली। भारतीय मन्त्रियों ने उत्साहपूर्वक शिक्षा-प्रसार के कार्य को अपने हाथों में लिया। प्रान्तीय धारासभाओं ने भी शिक्षा-अनुदान की माँगों को सहर्ष स्वीकृत किया और देश में जन-शिक्षा प्रसार के अपने उत्तरदायित्व का अनुभव किया। स्थानीय बोर्डों के उत्तरदायित्व भी बढ़ गये और प्राय: सभी प्रान्तों में प्राथमिक-शिक्षा उन्हें हस्तान्तरित कर दी गई।

मांट-फोर्ड सुधारों से शिक्षा का उत्तरदायित्व भारतीय मन्त्री पर आ तो गया किन्तु आर्थिक प्रश्न सुरक्षित विषय रखा गया था। शिक्षा मन्त्री अपनी शिक्षा योजनाओं पर आवश्यकतानुसार रुपया व्यय नहीं कर सकते थे। इससे उनकी योजनायें भी निरर्थक रहती थीं। दूसरे, केन्द्रीय सरकार ने अब अपने राजस्व का कोई भी भाग शिक्षा पर देना बन्द कर दिया। इससे प्रान्तीय सरकारों को बहुत आर्थिक क्षति उठानी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पड़ी। तीसरे, गवर्नरों के अधिकार आवश्यकता से अधिक थे, और वे अपनी इच्छानुसार किसी भी विकास सम्बन्धी अधिनियम को 'अनावश्यक' कह कर अस्वीकृत कर सकते थे। चौथी कठिनाई यह थी कि शिक्षा-विभाग की भारतीय-शिक्षा-सेवा के उच्च पदाधिकारी भारत मन्त्री के अधिकार में रहते थे। इन उच्च अफसरों की भारतीय जनप्रिय मन्त्रियों से नहीं बनती थी। अतः सभी शिक्षा योजनायें अधिकांश में सफल नहीं हो पाती थीं। इसके अतिरिक्त, देश में राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारण १९१९ ई० के विधान में लोगों का विश्वास नहीं था। परिणामतः शिक्षा मन्त्री के पद पर कभी-कभी जनता का वास्तविक प्रतिनिधि भी नहीं पहुँच पाता था। अतः उसे व्यवस्थापिका का सहयोग नहीं मिल पाता था। साथ ही केन्द्र का नियन्त्रण उठ जाने से अखिल भारतवर्षीय महत्त्व अथवा अन्तर्प्रान्तीय महत्त्व की समस्यायें भी नहीं हल हो पाती थीं और उनके विषय में केन्द्र कोई एकसी नीति निर्धारित नहीं कर पाता था। इस प्रकार इन कठिनाइयों में भारतीय मंत्रियों को विभिन्न प्रान्तों में एक दोहरे शासन के अन्तर्गत रहकर शिक्षा का विकास करना पड़ा। परिणामतः हम इस युग में संतोषजनक प्रगति नहीं कर सके।

युद्ध के उपरान्त अँग्रेजी सरकार ने भारतवासियों को उनकी युद्ध सेवाओं के प्रतिफल स्वरूप जलियानवाला का गोलीकांड, पंजाब का फौजी शासन, देशव्यापी दमन तथा १९१९ ई० का विधान दिया था। इन सब घटनाओं ने देश में राष्ट्रीय आन्दोलन को जन्म दिया। महात्माजी ने १९२१ ई० में 'असहयोग आन्दोलन' प्रारम्भ कर दिया जिसके फलस्वरूप असंख्यों विद्यार्थी स्कूल और कालेजों को छोड़ आये। वे ऐसे स्कूलों में नहीं पढ़ना चाहते थे जहाँ पर विदेशी ज्ञान व संस्कृति अथवा भाषा पढ़ाये जाँय और राष्ट्रीय भावनाओं को कुचला जाय। अतः अँग्रेजी स्कूलों का खुले रूप से बहिष्कार होने लगा। किन्तु ऐसे विद्यार्थियों के लिये समुचित शिक्षा की व्यवस्था करना भी नेताओं का कर्त्तव्य था। अतः अल्पकाल में ही देश भर में राष्ट्रीय विद्यालयों, विद्यापीठ और गुरुकुल इत्यादि का जाल सा बिछ गया। इनमें पूना, अहमदाबाद, लाहौर, पटना, बनारस इत्यादि के विद्यापीठ और जामिया मिलिया इस्लामिया अधिक प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार एक बड़ी संख्या में विद्यार्थियों के सरकारी अथवा सरकार द्वारा स्वीकृत और सहायता प्राप्त शिक्षालयों को छोड़ देने से इनमें विद्यार्थियों की संख्या बहुत घट गई। फीस तथा परीक्षा शुल्क इत्यादि की आर्थिक क्षति भी रही।

इस आन्दोलन से शिक्षा के क्षेत्र में लाभ भी हुआ। एक तो साधारण जनता में एक राष्ट्रीय चेतना आ गई। शिक्षा में लोग अधिक रुचि दिखाने लगे। देश के धनवान लोग शिक्षा प्रचार के लिये आर्थिक सहायता देने के लिये प्रोत्साहित हो गये।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

करांची में १९३१ ई० में निशुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जन साधारण के लिये प्रारम्भिक शिक्षा को सस्ता, व्यावहारिक तथा उपयोगी बनाने के लिये १९३७ ई० में महात्मा गांधी ने वर्धा शिक्षा-योजना को जन्म दिया जिसके अनुसार किसी हस्तकार्य के द्वारा प्राथमिक शिक्षा देने की बात थी। प्रान्तीय शिक्षा मंत्रियों को भी इन हलचलों से प्रेरणा मिली। उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने के लिये कानून पास किये। माध्यमिक स्कूल तथा विश्वविद्यालय खुले। इधर १९१९ ई० के शासन-विधान से उत्पन्न हुई राजनैतिक तथा वैधानिक परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिये १९२७ ई० में 'साइमन कमीशन' की नियुक्ति हुई। भारतीय शिक्षा के विषय में भी कमीशन ने एक सहायक-समिति नियत की, जिसके सभापति सर हर्टाग थे जो कि सैडलर कमीशन के भी सदस्य रह चुके थे और ढाका विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी थे। यह समिति 'हर्टाग समिति' के नाम से विख्यात है।

हर्टाग-समिति की रिपोर्ट :

हर्टाग समिति ने सितम्बर १९२९ ई० में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें तत्कालीन भारतीय शिक्षा की सभी अवस्थाओं का विवाद वर्णन है। समिति ने इस बात को स्वीकार किया था कि १९१७ और १९२७ ई० के दशक में शिक्षा में बहुत उन्नति हुई। शिक्षा की उत्तमता में भी आशाजनक सुधार हुआ। शिक्षा साधारण रूप से राष्ट्रीय महत्त्व की एक प्रथम बात तथा 'राष्ट्र-निर्माण' का एक अनिवार्य साधन समझी जाने लगी है। शिक्षा-विभाग ने जन-प्रिय मंत्री के नियंत्रण में हस्तांतरण हो जाने से जनता में भी शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न हुई है। वे जातियाँ जो शिक्षा में अब तक पिछड़ी हुई थीं; जैसे मुसलमान इत्यादि, अब अपने बच्चों के लिये शिक्षा की आवश्यकता तथा संभावना के प्रति सचेत हो गईं। यह आन्दोलन पिछड़ी हुई जातियों तथा आदिवासियों तक में फैल गया और इसने शिक्षा को अधिकार रूप में माँगने के लिये एक वृहत्तर वर्ग को जागृत कर दिया है।

प्राथमिक शिक्षा : यद्यपि इस प्रकार शिक्षा में प्रगति हो रही थी, तथापि समिति देश में साक्षरता की प्रगति से संतुष्ट नहीं थी। उसकी राय में शिक्षा में पर्याप्त अपव्यय (Waste) और अवरोधन (Stagnation) उत्पन्न हो गया था। प्राथमिक शिक्षा की अवहेलना करके उच्च-शिक्षा को बढ़ावा दिया जा रहा था। ग्रामीण-शिक्षा के मार्ग में कुछ कठिनाइयाँ होने के कारण साक्षरता की गति बड़ी मन्द थी। प्रधानतः ये कठिनाइयाँ थीं—ग्रामीण जनता की निर्धनता, अशिक्षा, आवा-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

गमन के साधनों का अभाव, मौसमी बीमारियाँ, धार्मिक तथा जातीय अन्धविश्वास तथा कृषि-कार्य में बच्चों का समय से पूर्व ही लग जाना इत्यादि। समिति की राय में प्रान्तीय सरकारों द्वारा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिये क्रियात्मक कदम उठाने का अभाव भी एक महत्त्वपूर्ण कारण था जिससे साक्षरता में आशाजनक प्रगति नहीं हो पा रही थी। "जहाँ तक हमें विदित है प्राथमिक स्कूलों की संख्या में जितनी वृद्धि हुई है साक्षरता उसी अनुपात से नहीं बढ़ी है, क्योंकि इन प्राथमिक स्कूलों में बहुत ही थोड़े विद्यार्थी कक्षा ४ तक पहुँचते हैं, जिनमें हम साक्षरता की आशा कर सकें।........ यह स्मरणीय है कि वर्तमान ग्रामीण परिस्थितियों में तथा देशी भाषाओं में उपयुक्त साहित्य के अभाव में स्कूल छोड़ने पर बालक के लिये साक्षरता प्राप्त करने के बहुत कम अवसर रह जाते हैं, और वास्तव में साक्षरों के भी निरक्षर हो जाने की बहुत सम्भावना रहती है।" इस प्रकार साक्षर बनने के लिये समिति की राय में कम से कम चार वर्ष अवश्य लगने चाहिये। किन्तु भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के कारण बालक पहिली या दूसरी कक्षा पास करके बीच में ही पढना छोड़ देते थे। इसके लिये समिति ने वही दो प्रधान कारण 'अपव्यय' तथा 'अवरोधन' बतलाये। 'अपव्यय' से अभिप्राय था प्राथमिक शिक्षा के पूर्ण होने के पूर्व ही बच्चों को पढ़ाने से रोक लेना। समिति के मतानुसार जो रुपया या समय उन पर व्यय हुआ वह नष्ट हो गया, क्योंकि वे साक्षरता भी प्राप्त न कर सके। 'अवरोधन' का अभिप्राय था बच्चे का एक ही कक्षा में १ वर्ष से अधिक रह जाना। लड़कियों की शिक्षा में भी समिति ने अपव्यय की शिकायत की।

समिति की राय में नगरों में तो प्राथमिक शिक्षा की समस्या इतनी उग्र नहीं थी, किन्तु उसने स्वीकार किया कि गाँवों में "स्कूल बहुत छोटे-छोटे हैं; पर्याप्त शिक्षक रखने पर व्यय अधिक होता है। जब तक शिक्षकों को विशेष रूप से प्रशिक्षित किया तथा चुना न जायगा, गाँवों का जीवन उनके लिये आकर्षक नहीं बन सकेगा। अध्यापिकायें गाँवों में तब तक नहीं रह सकतीं जब तक कि स्थिति अनुकूल न हो जाय; शिक्षक अकेले रह जाते हैं तथा प्रशासन, निरीक्षण और देखभाल की कठिनाइयाँ भी बढ़ जाती हैं; और बच्चों की उपस्थिति नियमित रूप से अधिक समय तक रखना अत्यन्त दुस्तर हो जाता है।" ऐसे स्थानों में प्राथमिक शिक्षा की समस्या बड़ी दुरूह थी। और अपव्यय होना अनिवार्य था। समिति के मतानुसार इस दुरुपयोग के प्रमुख कारण थे (१) अपव्यय तथा अवरोधन (२) साक्षरों का बीच में ही पढ़ना छोड़ देने से पुनः निरक्षरता; (३) प्रौढ़शिक्षा के लिये सुविधाओं का अभाव, (४) शिक्षालयों का अनियमित वितरण जिसके कारण ऐसे दीर्घ क्षेत्र विद्यमान थे जहाँ एक भी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

स्कूल नहीं, जबकि कुछ छोटे क्षेत्रों में इतने छोटे-छोटे स्कूल थे जो बच्चों को बुलाने के लिये भयंकर स्पर्द्धा कर रहे थे; (५) ५०० की जनसंख्या के गाँवों में स्कूल न खुल सकने की असुविधा; (६) वतमान, स्कूलों से पर्याप्त लाभ न उठा सकना, अर्थात् बहुत से प्रान्तों में स्कूल तो पर्याप्त थे किन्तु वे अधिक विद्यार्थियों को प्रवेश के लिये आकर्षित नहीं कर सकते थे। इस प्रकार स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या कम होने से धन व प्रयास का बड़ा दुरुपयोग होता था; (७) एक शिक्षक वाले स्कूल—ऐसे स्कूल जहाँ केवल एक ही शिक्षक हो। वह प्रत्येक कक्षा के बच्चों के साथ प्रत्येक विषय में पूर्ण रूप से न्याय नहीं कर सकता, अतः यह सब प्रयत्न व्यर्थ जाता है; (८) उचित शिक्षण का अभाव, (९) निरीक्षण का अभाव; (१०) अनुपयुक्त पाठ्यक्रम जो कि वास्तविक जीवन तथा सच्ची परिस्थितियों में कोई सम्बन्ध नहीं रखता है; (११) तथा ऐसे प्राथमिक स्कूलों की स्थापना जो कि कुछ समय बाद टूट जाते हैं।

प्राथमिक शिक्षा के इन सब दोषों को दूर करने के लिये समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें कीं, जिन्हें संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है—

(१) शिक्षा विस्तार की नीति के स्थान पर शिक्षा के ठोस (Consolidation) करने की नीति का अनुसरण किया जाय।

(२) प्राथमिक शिक्षा की न्यूनतम अवधि ४ वर्ष हो।

(३) प्राथमिक शिक्षकों की सामान्य शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाना चाहिये। उनके लिये प्रशिक्षण तथा 'रिफ्रैशर कोर्स' की उचित सुविधा दी जाय। उनकी ज्ञान-वृद्धि के शिक्षा-सम्मेलन हों तथा उनकी दशा में सुधार करने के लिये उनके वेतन बढ़ाये जाँय और नौकरी की दशाओं में भी सुधार किये जायें।

(४) प्राथमिक स्कूलों का पाठ्यक्रम अधिक उदार व उपयुक्त बनाया जाय। "एक ऐसा स्कूल, जिसमें पर्याप्त विद्यार्थी हों और जो पड़ौस की परिस्थितियों से सीधा सम्पर्क रखता हो, आगे आने वाली पीढ़ी को स्वास्थ्य-रक्षा, शरीर विज्ञान, सफाई, मितव्ययता तथा आत्म निर्भरता के अच्छे पाठ पढ़ा सकता है।"

(५) स्कूल के घन्टे तथा छुट्टी के दिन ऋतु तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप होने चाहिये।

(६) प्राथमिक स्कूलों में निम्नतम कक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिये और जो अवरोधन व अपव्यय वहाँ फैला है उसे दूर करने के लिये दृढ़ प्रयत्न करना चाहिये।

(७) ग्राम-सुधार का कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिये और स्कूल से उसका सम्बन्ध स्थापित कर देना चाहिये।

(८) प्राथमिक शिक्षा के राष्ट्र-व्यापी महत्त्व का विषय होने के कारण भारत

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सरकार को इसके प्रसार का पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिये तथा उसे पूर्णतः स्थानीय बोर्डों को सुपुर्द करके निश्चिन्त न हो जाना चाहिये।

(९) सरकार का निरीक्षण-स्टाफ बढ़ जाना चाहिये।

(१०) शिक्षा को अनिवार्य करने की योजना पर बिना सोचे समझे जल्दबाजी में कदम उठाना हानिकारक है। अतः इस पर पर्याप्त विचार के उपरान्त उसका आधार बना कर ही कार्यान्वित करना चाहिये।

माध्यमिक शिक्षा : माध्यमिक शिक्षा के विषय में हर्टॉग समिति का मत था कि इसने सन्तोषजनक प्रगति की है। "माध्यमिक-शिक्षा के क्षेत्र में कुछ बातों की, जैसे शिक्षकों की दशा, योग्यता, नौकरी की परिस्थितियों तथा प्रशिक्षण में सुधार तथा तथा स्कूल के सामाजिक-जीवन को विस्तृत बनाने में उन्नति हुई है। किन्तु यहाँ भी संगठन सम्बन्धी बड़े दोष हैं। माध्यमिक शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र में आज भी वही विचारधारा प्रबल है कि प्रत्येक लड़का जो माध्यमिक स्कूल में प्रवेश करता है, उसे विश्वविद्यालय में अवश्य पढ़ना चाहिये; और मैट्रीक्यूलेशन तथा विश्वविद्यालय परीक्षाओं में एक बड़ी संख्या में लड़कों का असफल होना एक बड़ा भारी अपव्यय है।" इस दुरुपयोग के दो प्रमुख कारण समिति ने बताये—(१) प्रारम्भिक अवस्थाओं में कक्षाओं में आसानी से तरक्की दे देना, तथा (२) आवश्यकता से अधिक संख्या में अयोग्य विद्यार्थियों का उच्च शिक्षा के लिये जाना।

माध्यमिक शिक्षा के सुधार के लिये भी समिति ने सुझाव रखे कि मिडिल स्कूलों का पाठ्यक्रम अधिक विस्तृत हो जिससे अधिकांश बालकों की आवश्यकतायें यहीं पर पूर्ण हो जाया करें। मिडिल स्कूल के बाद विद्यार्थियों को 'औद्योगिक' तथा 'व्यापारिक' क्षेत्रों में बाँट देना तथा हाईस्कूल में वैकल्पिक विषयों को रख देना चाहिए।

विश्वविद्यालय शिक्षा : विश्वविद्यालय शिक्षा की प्रगति से तो समिति को हर्ष हुआ, किन्तु उसमें भी कुछ दोषों का आभास उसे मिला। "बहुत से विश्वविद्यालय तथा कालेजों की पाठन-विधि तथा मौलिक अनुसंधान में उन्नति हुई है तथा कुछ में पहिले से अधिक सामाजिक-जीवन की शिक्षा प्रदान की जाती है। किन्तु भारतवर्ष में यह विश्वास अब भी प्रचलित है कि विश्वविद्यालयों का मुख्य कार्य परीक्षायें पास कराना है। हमारी इच्छा है कि विश्वविद्यालय सहिष्णु, आत्म-विश्वासी तथा उदार नागरिकों के निर्माण को अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानें। जो विश्वविद्यालयों की शिक्षा से समुचित लाभ उठाने के अयोग्य हैं, ऐसे विद्यार्थियों के उनमें भर जाने से विश्वविद्यालयों के कार्य में बड़ी बाधा पहुँची है।"

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अतः कमेटी ने विश्वविद्यालयों के उत्थान के लिये यह सिफारिशें की विश्वविद्यालयों को शिक्षा का स्तर उँचा रखना चाहिये तथा प्रवेशिका-परीक्षा (Entrance Examination) के विद्यार्थियों के साथ कुछ कड़ाई का व्यवहार करना चाहिये जिससे अयोग्य विद्यार्थी उच्च-शिक्षा को न जा सके। इसके अतिरिक्त समिति ने प्रमुख विश्वविद्यालयों में 'ऑनर्स कोर्स' तथा अच्छे पुस्तकालयों की स्थापना और टयूटोरियल कक्षाओं के प्रारम्भ करने की भी सिफारिशें कीं।

स्त्री-शिक्षा : लड़कियों की शिक्षा के विषय में समिति ने अनुभव किया कि अभी अवस्था बड़ी असंतोषजनक है। गाँवों में उनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं है। लड़कों और लड़कियों की शिक्षा के अनुपातों में आश्चर्यजनक अन्तर है। बालिकाओं की माध्यमिक शिक्षा का क्षेत्र भी बड़ा सीमित है। योग्य व प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का बड़ा अभाव है। इस दिशा में समिति ने सिफारिशें कीं कि लड़कियों का पाठ्यक्रम उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिये। अधिक प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों की आवश्यकता है। अध्यापिकाओं तथा निरीक्षिकाओं की पर्याप्त नियुक्ति होनी चाहिये। धीरे-धीरे लड़कियों की प्राथमिक शिक्षा को भी अनिवार्य बनाया जा सकता है। लड़कियाँ भावी मातायें हैं अतः उन्हें प्रधानता दी जाय। अन्त में हर्टांग समिति ने अनुभव किया कि केन्द्रीय सरकार अपने आप को देश की शिक्षा के उत्तरदायित्व से कभी भी मुक्त नहीं कर सकती। अतः समिति ने दिल्ली में एक केन्द्रीय-शिक्षा-समिति खोलने की सलाह दी। इसके अतिरिक्त उसने प्रान्तीय शिक्षा-संचालकों के कार्यों की सराहना करते हुए उनकी सहायता के लिये प्रान्तीय प्रमुख कार्यालयों में अधिक स्टाफ बढ़ाने तथा अधिक निरीक्षक और उपनिरीक्षक रखने की सलाह दी। केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्रों में शिक्षा-कमिश्नर के स्थान पर शिक्षा-सैक्रेटरी की नियुक्ति तथा संचालकों की नियमित सभायें करने की भी सिफारिशें की गईं।

आलोचना :

हर्टांग समिति की रिपोर्ट भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक प्रमुख महत्त्व रखती है। वस्तुतः इसने तत्कालीन शिक्षा-नीति को एक स्थायी स्वरूप प्रदान किया और शिक्षा को ठोस तथा विस्तृत बनाने का प्रयास किया। सरकारी क्षेत्रों में तो इस रिपोर्ट का बड़ा स्वागत हुआ और इसे 'सरकारी प्रयत्नों की दीपिका' समझा गया। परिणाम की तुलना में शिक्षा की किस्म में सुधार करने के समिति के सुझाव का भी वहाँ बड़ा स्वागत हुआ। वस्तुतः यह रिपोर्ट ही एक प्रकार से सरकारी अधिकारियों की प्रतिनिधि नीति हो गई। अतः भिन्न-भिन्न प्रान्तों में शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने की आड़ में उसके व्यापक प्रसार को रोका गया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

किन्तु गैर-सरकारी क्षेत्रों में इस रिपोर्ट की कटु आलोचना हुई। शिक्षा का प्रसार रोकने के लिये इसे एक सरकार की चाल वतलाया गया। देश में राष्ट्रीय चेतना फैलने से सरकारी नीति पर संदेह किया जाने लगा। देश के प्रमुख नेताओं ने शिक्षा के विस्तार को अधिक प्रमुखता दी और कहा कि यदि विस्तार हो जायगा तो स्तर वाद में उठाया जा सकता है। देश की वास्तविक आवश्यकता तो सर्वव्यापी साक्षरता थी। इसके अतिरिक्त समिति के कुछ आँकड़ों की प्रामाणिकता पर भी संदेह किया गया। इतना निश्चय है कि जो प्रगति १९२२-२७ ई० में हुई थी वह १९२७ ई० के उपरान्त न हो सकी। इसका एक प्रमुख कारण १९३०-३१ ई० का विश्वव्यापी आर्थिक संकट था जिसकी छाया भारतीय वजट पर भी पड़ी। परिणामत: केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों को राष्ट्र-निर्माणक विषयों में निर्दयतापूर्वक कटौती करनी पड़ी किन्तु जहाँ सरकारी व्यय घटता जा रहा था वहाँ व्यक्तिगत जनता का शिक्षा पर व्यय वढ़ता जा रहा था। वास्तव में जनता में अदम्य उत्साह था और वह शिक्षा के लिये सर्वस्व बलिदान करने को उद्यत प्रतीत होती थी। परिणामत: प्राथमिक, माध्यमिक तथा कालेज इत्यादि सभी क्षेत्रों में शिक्षालयों की संख्या में वृद्धि हुई। १९२२ से १९३७ ई० तक विद्यालयों तथा विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी, किन्तु भारत की जनसंख्या और निरक्षरता को देखते हुए यह संख्या अपर्याप्त थी। हर्टाग समिति की भी कुछ महत्त्वपूर्ण सिफारिशों पर ध्यान नहीं दिया गया, जैसे शिक्षकों के वेतन में वृद्धि, निरीक्षकों की नियुक्ति, पाठ्यक्रम में सुधार तथा प्रौढ़-शिक्षा की व्यवस्था आदि केवल पवित्र आशायें ही रहीं।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड :

प्रान्तीय शिक्षा-नीति का सम्वन्ध केन्द्रीय नीति से जोड़ने तथा शिक्षा-सम्वन्धी महत्त्वपूर्ण विषयों पर सलाह देने के लिये १९२१ ई० में 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' की स्थापना हुई। किन्तु आर्थिक संकट के कारण इसे भंग कर दिया गया। हर्टाग समिति की सिफारिश के फलस्वरूप 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार वोर्ड' का १९३५ ई० में पुन: संगठन किया गया। इस बोर्ड में सभी प्रान्तों के सदस्य थे। वोर्ड ने देश की शिक्षा समस्याओं पर विचार किया और शिक्षा में आमूल परिवर्तन करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये। इसने शिक्षा के लिये कक्षाओं का पुन: वर्गीकरण किया और शुद्ध साहित्यिक शिक्षा के स्थान पर व्यावसायिक व औद्योगिक शिक्षा पर जोर दिया। इसके लिये वोर्ड ने निम्नलिखित स्टेजों की सलाह दी।

१. प्रथमिक स्टेज : जिसका उद्देश्य कम से कम स्थायी साक्षरता और कुछ सामान्य शिक्षा प्रदान करना हो।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२. निम्न माध्यमिक स्टेज : इसमें साधारण शिक्षा के लिए एक ऐसा पाठ्य-क्रम हो जो अपने आप में ही पर्याप्त हो। यही शिक्षा उच्च माध्यमिक तथा विशेष व्यवसायिक शिक्षा का आधार हो।

३. उच्चतर माध्यमिक स्टेज : इसमें ऐसे शिक्षालय सम्मिलित होंगे जिनमें अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न 'कोर्स-अवधि' हो। ये शिक्षालय मुख्यत: ५ प्रकार के होंगे—(१) कला तथा विज्ञान में विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयों के लिये तैयार करने वाले शिक्षालय; (२) ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये; (३) कृषि-प्रशिक्षण के लिये; (४) क्लर्कों के प्रशिक्षण के लिए तथा (५) चुने हुए टैक्निकल विषयों में प्रशिक्षण देने के लिये शिक्षालय जो कि प्रबन्धकों के परामर्श से चुने जायेंगे।

इसके अतिरिक्त बोर्ड ने एक प्रस्ताव के द्वारा यह भी सलाह दी कि निम्न-माध्यमिक स्टेज के अन्त में प्रथम सरकारी परीक्षा ली जाय। योजना के निर्माण तथा पुन: संगठन करने के लिये सरकार से कहा गया कि वह इस विषय में शिक्षा विशेषज्ञों की राय ले।

वुड-ऐबट रिपोर्ट :

केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड के अन्तिम प्रस्ताव के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा पर सलाह देने के लिये १९३६ ई० में श्री ऐबट तथा वुड की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया गया, जिसने १९३७ ई० में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। श्री वुड ने भारतीय सामान्य शिक्षा तथा संगठन का अध्ययन किया और अपने सुझाव रखे; तथा श्री ऐबट ने, जो कि व्यावसायिक शिक्षा में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विशेषज्ञ थे, भारतीय अवस्थाओं और साधनों का बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण किया और कुछ व्यावहारिक व मूल्यवान सुझाव रखे।

सामान्य शिक्षा के विषय में श्री वुड ने कहा कि प्राथमिक पाठशालाओं में दीक्षित-अध्यापकों का प्रबन्ध किया जाय तथा बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाय। प्राथमिक स्कूलों के पाठ्य-क्रम में विशेष परिवर्तन की आवश्यकता है। इसमें पुस्तकीय शिक्षा के स्थान पर क्रियात्मक साधन द्वारा शिक्षा दी जाय। इसके अतिरिक्त ग्रामीण मिडिल स्कूलों में पाठ्य-क्रम ग्रामीण आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल हो। साथ ही मातृभाषा शिक्षा का माध्यम हो और मिडिल स्कूलों में यथा-संभव अँग्रेजी न पढ़ाई जाय। माध्यमिक शिक्षालयों में अवश्य अँग्रेजी को आवश्यक विषय कर दिया जाय। आर्ट और क्राफ्ट को प्रोत्साहित किया जाय और उसे प्रारम्भिक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

तथा माध्यमिक पाठ्य-क्रम में सम्मिलित कर दिया जाय। इस विषय के लिये हाईस्कूलों में योग्य शिक्षक रखे जायें। प्राथमिक तथा मिडिल स्कूलों के शिक्षकों के लिये मिडिल पास करने के उपरान्त ३ वर्ष का प्रशिक्षण कोर्स रखा जाय। इस प्रकार श्री वुड ने माध्यमिक शिक्षा के संगठन, नियन्त्रण और पाठ्यक्रम का एक प्रकार से पुनः संगठन करने की सिफारिश की।

श्री ऐबट ने व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा के पुनः संगठन के विषय में लिखते हुए सिफारिश की कि प्रत्येक स्थान की आवश्यकताएँ विभिन्न होती हैं, अतः प्रत्येक प्रान्त में व्यावसायिक शिक्षा का रूप वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार ही स्थिर करना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा कि व्यावसायिक शिक्षा इतनी अधिक न हो जाय कि देश में उद्योगों का तदनुसार विकास न होने पर कहीं बेकारी फैल जाय। व्यावसायिक शिक्षा भी सामान्य शिक्षा के समान ही मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा अध्यात्मिक दशाओं का सुधार करती है। वास्तव में सामान्य शिक्षा व्यावसायिक शिक्षा का अनुरूप है। व्यावसायिक शिक्षा सामान्य शिक्षा के विना अपूर्ण है और जितने भी व्यावसायिक विषय हैं उनका प्रारम्भ सामान्य शिक्षालयों में ही होता है। किन्तु इस समानता की अपेक्षा भी दोनों शिक्षाओं के लक्ष्य व साधन भिन्न-भिन्न हैं। अतः दोनों के स्कूल भी अलग-अलग होने चाहिये। इस दृष्टिकोण से कुछ सामान्य शिक्षा पाने के उपरान्त ही व्यावसायिक शिक्षा प्रारम्भ करनी चाहिये। इस शिक्षा के संगठन के लिये उद्योगतियों को पूर्ण सहयोग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त कुटीर-उद्योग धन्धों तथा कृषि के लिये शिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिये। श्री ऐबट ने बतलाया कि देश में संगठित वृहत्स्तर-उद्योगों में तीन प्रकार के श्रमिकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता है: निर्देशक या प्रबन्धक, निरीक्षक और यंत्र-चालक। इनमें निरीक्षकों की शिक्षा का बड़ा महत्व है और उनके लिये शिक्षालयों की व्यवस्था होनी चाहिये। यंत्र पर कार्य करने वाले व्यक्ति काम से छुट्टी पाने पर अवकाश के घंटों में प्रशिक्षण लें।

साथ ही रिपोर्ट में सिफारिश की गई कि प्रत्येक प्रान्त में व्यावसायिक-शिक्षा सलाहकार-समितियों की स्थापना कर दी जाय जिनके अन्तर्गत इंजिनियरी, कपड़ा व्यवसाय, कृषि, कुटीर-उद्योग तथा वाणिज्य-शिक्षा सम्बन्धी उपसमितियाँ बना दी जायें, जोकि प्रत्येक प्रान्त में व्यावसायिक शिक्षा के संगठन तथा पाठ्यक्रम इत्यादि के लिये पूर्ण रूप से उत्तरदायी हों। व्यावसायिक शिक्षा का आधार सामान्य शिक्षा होना चाहिये। अतः कम से कम मिडिल पास विद्यार्थी ही जूनियर-व्यावसायिक स्कूलों में प्रवेश पा सकें तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पास विद्यार्थी सीनियर-व्यावसायिक स्कूलों में प्रविष्ट किये जायें। इन जूनियर व्यावसायिक स्कूलों के शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी, जोकि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२ वर्ष में अपना पाठ्यक्रम समाप्त करेंगे, उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के समकक्ष माने जायेंगे। जूनियर स्कूल पास विद्यार्थी सीनियर स्कूल में भी प्रविष्ट हो सकेंगे अथवा किसी विशेष उद्योग में विशेष योग्यता प्राप्त कर लेंगे। जो सीनियर व्यावसायिक स्कूलों के पास विद्यार्थी होंगे वे इन्टर कालेज के समकक्ष माने जायेंगे। इनका पाठ्यक्रम भी २ वर्ष का होगा। जो व्यक्ति पहले से ही कुछ व्यवसायों में नौकरी कर रहे हैं उनके लिये अर्धसामयिक (Part time) शिक्षालय खोल देने चाहिये।

कृषि-शिक्षा के लिये रिपोर्ट में कहा गया कि इसके लिये शिक्षालय सीमित हों। प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों में कृषि का विषय वैकल्पिक कर दिया जायं। वाणिज्य भी इसी प्रकार वैकल्पिक विषय किया जा सकता है।

भिन्न-भिन्न उद्योगों के लिये विशिष्ट स्कूलों के खोलने के स्थान पर रिपोर्ट में बहुउद्योगीय (Polytechnic) स्कूल, जहाँ पर एक ही शिक्षालय में बहुत से व्यवसायों की शिक्षा दी जाती हो, खोलने की सिफारिश की।

इनके अतिरिक्त आर्ट और क्राफ्ट की शिक्षा पर भी जोर दिया तथा दिल्ली में एक व्यावसायिक प्रशिक्षण कालेज (Vocational Training College) खोलने की भी सिफारिश की गई।

इस प्रकार देश की परिस्थिति और वास्तविक आवश्यकताओं को देखते हुए भी वुड-ऐबट रिपोर्ट एक विशेष माँग की पूर्ति करती हैं।

अब आगे हम इन रिपोर्टों तथा अन्य परिवर्तन और हलचलों के प्रकाश में हुई देश की शिक्षा-प्रगति का क्रमशः अध्ययन करेंगे।

द्वैध-शासन और शिक्षा-प्रगति

(१) विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा :

अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड : इस काल में विश्वविद्यालय-शिक्षा में संतोषजनक विस्तार व सुधार हुआ। भारत में विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ने पर यह आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि इन सभी विश्वविद्यालयों में पारस्परिक साम्य तथा सहयोग स्थापित करने के लिये किसी संस्था का निर्माण किया जाय जोकि विभिन्न विश्वविद्यालयों के कार्यों को समानता प्रदान करके उनमें एक्य उत्पन्न करे। कलकत्ता कमीशन ने भी इसकी सिफारिश की थी, साथ ही १९२१ ई० में साम्राज्य के अन्तर्गत हुई विश्वविद्यालय काँग्रेस और तदुपरान्त इङ्गलैंड में भारतीय विद्यार्थियों के निमित्त बनी हुई लिटन-समिति ने भी इसकी स्थापना का समर्थन किया। फलतः १९२४ ई०

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में शिमला में अखिल भारतीय विश्वविद्यालय कान्फ्रेंस में इस अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड की स्थापना कर दी गई, जिसका प्रधान कार्यालय बंगलौर में रखा गया। इस बोर्ड में सभी विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। अपनी स्थापना के उपरान्त इसने विश्वविद्यालय शिक्षा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को हल किया। इस बोर्ड के प्रमुख कार्य संक्षेप में इस प्रकार हैं—एक अन्तर्विश्वविद्यालय संगठन तथा सूचना केन्द्र के रूप में कार्य करना; अध्यापकों का आदान-प्रदान; विश्वविद्यालयों में पारस्परिक सहयोग तथा साम्य उत्पन्न करना; भारतीय विद्यार्थियों को विदेशी विश्वविद्यालयों के विषय में परामर्श देना तथा उनकी उपाधियों को मान्य कराना; अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलनों में अपने प्रतिनिधि भेजना तथा विश्वविद्यालयों के हित में अन्य आवश्यक कार्य करना। इतना अवश्य है, जैसा कि सर राधाकृष्णन कमीशन का मत है, बोर्ड ने एक सलाहकारी संस्था की तरह कार्य तो अवश्य किया है, किन्तु इसका प्रभाव इतना शक्तिशाली नहीं रहा है जितना कि होना चाहिये था।

नये विश्वविद्यालयों की स्थापना : प्रत्येक प्रान्त में कम से कम एक विश्वविद्यालय स्थापित करने की नीति तथा शिक्षण-विश्वविद्यालय स्थापित करने की दृष्टि से इस काल में ५ विश्वविद्यालय स्थापित किये गये; यथा :—

१. दिल्ली : दिल्ली विश्वविद्यालय प्रारम्भ में एक सम्बन्धक विश्वविद्यालय (Affiliating University) के रूप में स्थापित हुआ, जिसमें सेन्ट स्टीफैंस कालेज, हिन्दू कालेज तथा रामजस कालेज सम्मिलित थे। १९२७ ई० में एक विशेष समिति द्वारा इस प्रश्न पर विचार किया गया कि इसे सम्बन्धक विश्वविद्यालय बनाया जाय अथवा संघीय (Federal) विश्वविद्यालय। अन्त में १९३४ ई० में भारत सरकार ने निश्चय किया कि यह संघीय (Federal) विश्वविद्यालय रहेगा। किन्तु कुछ कालेजों का सम्बन्ध भी इससे बना रहा।

२. नागपुर : नागपुर विश्वविद्यालय मध्यप्रान्त के लिये स्थापित किया गया था। यद्यपि यह सम्बन्धक विश्वविद्यालय था, किन्तु कालान्तर में इसमें शिक्षण कक्षायें भी खोल दी गईं और लॉ कालेज की स्थापना भी कर दी गई। अभी तक इसका रूप सम्बन्धक ही है।

३. आन्ध्र : मद्रास प्रान्त में उत्तरी भाग के लिये आन्ध्र विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। १९२० ई० में मद्रास विश्वविद्यालय ने भाषा के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र में एक विश्वविद्यालय खोलने के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था। इधर तेलगु भाषा-भाषी लोग निरन्तर रूप से विश्वविद्यालय की माँग कर रहे थे। अत: १९२६ ई०

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में एक स्थानीय विश्वविद्यालय आन्ध्र प्रदेश के लिये खोल दिया गया। इसमें उच्च टैक्निकल शिक्षा की विशेष व्यवस्था है। इसके विधान में यह विशेषता है कि उप-कुलपति चुनाव के द्वारा नियुक्त होगा। मातृभाषा को माध्यम बनाने की विधान में व्यवस्था है, किन्तु अभी तक पूर्णत: ऐसा नहीं हो सका है। इससे स्थिति-स्थान का प्रश्न सदा विवादग्रस्त रहा है। प्रारम्भ में यह विजयवाड़ा में था, १९३१ ई० में यह विशाखापट्टणम् पहुँच गया और तदुपरान्त गुन्टूर में स्थापित किया गया।

४. आगरा : आगरा विश्वविद्यालय की स्थापना १९२७ ई० में की गई। इलाहावाद विश्वविद्यालय का क्षेत्र अधिक विस्तीर्ण हो गया था, अत: उससे सम्बन्धित कालेजों को आगरा से सम्वन्धित कर दिया गया। इससे अजमेर, ग्वालियर, राजपूताना इत्यादि के सभी डिग्री कालेज सम्वन्धित थे। किन्तु अब राजपूताना विश्वविद्यालय बन जाने से इसका क्षेत्र संकुचित हो गया है। आगरा विश्वविद्यालय में उत्तर प्रदेश के सभी डिग्री कालेज (केवल स्थानीय विश्वविद्यालयों के क्षेत्र के कालेजों को छोड़ कर) सम्मिलित हैं। यह एक प्रकार से विशुद्ध सम्वन्धक-विश्वविद्यालय है। इसके क्षेत्र में ऐसे डिग्री कालेज भी हैं जहाँ इन्टर-कक्षायें भी खुली हैं किन्तु इन कक्षाओं का सम्वन्ध इलाहावाद वोर्ड से है।

५. अएणामलै : अएणामलै विश्वविद्यालय दक्षिणी मद्रास में अएणामलै नगर, चिदाम्बरम् में १९२९ ई० में स्थापित किया गया। इसका अस्तित्व प्रधानत: स्वर्गीय राजा सर अएणामलै चैट्टियर की अनुकम्पा से हुआ जिन्होंने अपने तीन कालेज तथा २० लाख रुपया दान में देकर इस नवीन विश्वविद्यालय को जन्म दिया। यह विश्वविद्यालय शिक्षण तथा स्थानीय विश्वविद्यालय है। इसकी विशेषता यह है कि यहाँ प्राच्य विद्याओं, तामिल, संस्कृत, भारतीय इतिहास तथा भारतीय संगीत इत्यादि के उच्च अध्ययन तथा अनुसंधान की व्यवस्था है। 'राजा अएणामलै संगीत कालेज' तथा 'ओरियंटल ट्रेनिंग कालेज' इसके विशेष आकर्षण हैं। १९३४ ई० में यहाँ तामिल में भी अनुसन्धान की व्यवस्था करदी गई। विधान प्राय: अन्य विश्वविद्यालयों की ही भाँति है।

अन्य सुधार तथा प्रगति : नये विश्वविद्यालयों की स्थापना के अतिरिक्त कुछ पूर्वस्थित विश्वविद्यालयों में भी इस काल में सुधार हुए। मद्रास विश्वविद्यालय का विधान १९२३ तथा १९२९ ई० में वदला गया। इसके अनुसार यह एक शिक्षण विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ। अर्थशास्त्र, प्राणिशास्त्र, रसायनशास्त्र, गणित, भारतीय दर्शन तथा इतिहास इत्यादि में अनुसंधान की भी सुविधा कर दी गई और प्राच्य भाषाओं में तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़, संस्कृत, अरबी, फारसी तथा उर्दू

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

के अनुसंधान के लिये प्राच्य अनुसंधानशाला खोल दी गई। बम्बई विश्वविद्यालय का १९२८ ई० में पुनः संगठन हुआ जिसके कारण उच्च-शिक्षा तथा अनुसंधान की सुविधायें अधिक बढ़ गईं। पटना विश्वविद्यालय का एक अधिनियम के द्वारा १९२३ ई० में सुधार हुआ। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद अब पूर्णतः शिक्षण कार्य करने लगा। १९२२ ई० में इसके सुधार का अधिनियम पास कर दिया गया था। कलकत्ता तथा पंजाब विश्वविद्यालयों के विधानों में भी इसी प्रकार संशोधन करके उपयुक्त परिवर्तन तथा सुधार किये गये।

इस काल में कालेजों की भी अभिवृद्धि हुई। विश्वविद्यालयों के विभागों तथा सम्बन्धित कालेजों की संख्या १९२२ ई० में २०७ से बढ़कर १९३७ ई० में ४४६ हो गई तथा विद्यार्थियों की संख्या ६६,२५८ से १२६,२२८ हो गई। अब तक विश्वविद्यालय विद्या के केन्द्र नहीं थे। उनका अस्तित्व केवल परीक्षा लेने तथा डिग्री प्रदान करने के लिये था, किन्तु अब उनका प्रधान-कार्य शिक्षण तथा अनुसन्धान हो गया। विद्यार्थियों को अनुसन्धान की सुविधाओं के लिये वृहत् पुस्तकालयों की व्यवस्था की गई तथा छात्रवृत्ति देकर उन्हें प्रोत्साहित किया गया। अधिकतर विश्वविद्यालय अपने ही विशाल तथा भव्य भवनों में स्थित हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों में पारस्परिक अच्छे सम्बन्धों में भी वृद्धि हुई तथा वहाँ विद्यार्थियों के व्यायाम, खेल कूद क्रीड़ाओं तथा नियमित डाक्टरी परीक्षा की व्यवस्था भी हुई। उनके सामाजिक जीवन में सहयोग तथा आत्मनिर्भरता की भावना लाने के उद्देश्य से विद्यार्थी-यूनियनों तथा अन्य परिषदों की स्थापना हुई। सन् १९२० ई० में 'भारतीय प्रादेशिक सेना अधिनियम' पास होने पर विश्वविद्यालयों में सैनिक शिक्षा (U. O. T. C.) का भी प्रचार जोरों से बढ़ा। इनकी स्थापना प्रत्येक विश्वविद्यालय तथा उनसे सम्बन्धित डिग्री कॉलेजों में की गई जिससे चरित्र तथा स्वास्थ्य का सुधार हुआ।

इस प्रकार उच्चशिक्षा का प्रसार व विकास हुआ। किन्तु इसमें कुछ हानियाँ भी हुईं, जैसे शिक्षा का स्तर बहुत कुछ गिर गया, पुस्तकीय ज्ञान अधिक बढ़ गया और व्यावसायिक शिक्षा तथा रोजगार के अभाव में शिक्षित युवक बेकार घूमने लगे। संख्या में वृद्धि के साथ-साथ शासन की श्रेष्ठता में शिथिलता आ गई। धनाभाव के कारण विश्वविद्यालय विकास की योजनाओं को इच्छानुसार कार्यान्वित नहीं कर सके।

उच्च शिक्षा के अन्य केन्द्र : नियमित विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त भारत में कुछ ऐसे भी विद्याकेन्द्र थे जहाँ भिन्न-भिन्न विषयों की उच्च-शिक्षा का प्रबन्ध था। ये संस्थायें न तो विश्वविद्यालय ही कहलाती थीं और न किसी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ही थीं। इनमें कुछ शुद्ध सरकारी तथा कुछ गैर-सरकारी संस्थायें भी थीं। इनमें से निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय थीं—(१) भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना (१९१७); (२) वोस रिसर्च इंस्टीट्यूट, कलकत्ता (१९१७); (३) हारकोर्ट बटलर टेक्नोलॉजिकल इंस्टीट्यूट, कानपुर (१९२१); (४) इम्पीरियल एग्रीकल्चर रिसर्च इंस्टीट्यूट, न्यू पूस, नई दिल्ली; (५) इंडियन इंस्टीट्यूट ऑव साइन्स, वंगलौर (१९११); (६) इंडियन स्कूल ऑव साइन्स, धनवाद (१९२६); (७) इंडियन वीमैन्स यूनिवर्सिटी, बम्वई (१९१६); (८) विश्वभारती (१९२२); तथा (९) सीरामपुर कालेज (१९१८)।

इनके अतिरिक्त कुछ राष्ट्रीय विश्वविद्यालय भी देश में स्थापित हो गये थे। जनता में राष्ट्रीयता की भावनायें वढ़ रही थीं। इस कारण अंग्रेजी शिक्षालयों का बहिष्कार करके राष्ट्रीय विचारों पर आधारित शिक्षा संस्थायें स्थापित की गईं। इनमें रवीन्द्रनाथ टैगौर की विश्वभारती, सेवाग्राम, पांडुचेरी आश्रम, दारुल उलूम; देवबन्द तथा दिल्ली का जामिया मिलिया इस्लामिया अधिक प्रसिद्ध हैं।

(२) माध्यमिक शिक्षा :

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में इस युग में प्रगति वड़ी सन्तोषजनक रही। शिक्षालयों के साथ ही साथ विद्यार्थियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। सरकारी सहायता तथा व्यय के कम होते हुए भी व्यक्तिगत प्रयासों में पर्याप्त विकास हुआ जिसका कारण राष्ट्रीय-भावनाओं का प्रचार था। सरकारी स्वीकृत माध्यमिक शिक्षालयों की संख्या ब्रिटिश भारत में १९२१-२२ ई० में ७,५३० से बढ़कर १९३६-३७ ई० में १३,३५६ हो गई, तथा उनमें विद्यार्थियों की संख्या ११,०६,८०३ से २२,८७,८७२ हो गई। नगरों के अतिरिक्त कस्वों तथा बड़े गाँवों में भी हाईस्कूल खुलने लगे। कुछ मिडिल स्कूलों को हाईस्कूल तक की स्वीकृति मिल गई। बालिकाओं में भी माध्यमिक शिक्षा का वहुत प्रसार हुआ तथा पिछड़ी हुई जातियाँ भी अपने बच्चों को माध्यमिक शिक्षा का लाभ प्रदान कराने लगीं। माध्यमिक शिक्षालयों के लिये विभिन्न प्रान्तों में व्यक्तिगत दानदाताओं तथा धनिकों ने उदारतापूर्वक दान दिये। कहीं-कहीं प्रतिस्पर्द्धा की भावनाओं से प्रतिद्वन्द्वी स्कूल भी खुले। किन्तु एक बात अत्यन्त खेद की यह है कि जातीय स्कूलों को इस युग में बहुत प्रोत्साहन मिला। भिन्न-भिन्न जातियाँ सामूहिक रूप से चन्दा करके जातीय स्कूल खोलने लगीं। इस प्रकार भारतवर्ष, जो कि पहले से ही जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता में जकड़ा हुआ था, अपनी भावी पीढ़ी को जातीय भेद भाव का पाठ पढ़ाने लगा। दुख की बात तो यह है कि यह भावना आज

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भी झूठी राष्ट्रीय भावना के आवरण में उसी प्रकार पनप रही है। दिन-प्रतिदिन जातीय तथा उपजातीय स्कूलों को सरकार की ओर से मान्यता मिलती जा रही है और इस प्रकार भारत की एकता को शत-शत खंडों में विदीर्ण किया जा रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये कौमी शिक्षा-संस्थायें आज षड़यंत्रों तथा जातीय पक्षपात के अड्डे बनी हुई हैं और लाभ के स्थान पर अत्यन्त हानि कर रही हैं। यह विकृत राष्ट्रीयता का उदाहरण है।

इस काल में गाँवों में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार होने से ग्रामीणों को बहुत सुविधायें हो गईं। पहले उन्हें अत्यन्त कठिनाइयों का सामना करके बच्चों को नगरों में शिक्षा के लिये भेजना पड़ता था, किन्तु अब अंशतः शिक्षा के गाँवों में ही उपलब्ध होने से माध्यमिक शिक्षालयों में ग्रामीण-विद्यार्थियों का अनुपात बढ़ने लगा।

१९३० ई० के बाद यद्यपि भारत आर्थिक संकट में फँसा था, माध्यमिक शिक्षा में उसने संतोषजनक प्रगति की। १९३७ ई० में जाकर वैयक्तिक प्रयास इस प्रकार बढ़ गया, कि माध्यमिक शिक्षा की समस्या वस्तुतः व्यक्तिगत माध्यमिक शिक्षालयों की ही समस्या बन गई।

शिक्षा के माध्यम की दृष्टि से भी यह युग बहुत अच्छा रहा। प्रायः सभी प्रान्तों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी अथवा अन्य प्रान्तीय भाषाओं में कर दिया गया, व्यवहार में यद्यपि कुछ कठिनाई उपस्थित हुई। उसका कारण था कि विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी होने से कुछ लोगों ने समझा कि माध्यमिक शिक्षा तो विश्वविद्यालय शिक्षा का ही अंग है न कि एक स्वतन्त्र इकाई, अतः माध्यमिक स्कूलों में भी अँग्रेजी पढ़ने से विद्यार्थियों को आगे चलकर सुविधा रहती है। किन्तु यह तर्क बड़ा बेहूदा था। इसके अतिरिक्त, अँग्रेजी भाषा के प्रति युवकों और उनके माँ-बाप की रुचि तथा उच्च-पदों के लिये परीक्षाओं का माध्यम अँग्रेजी होने के कारण अँग्रेजी को पक्का (Strong) करने की लालसा ने भी अँग्रेजी माध्यम का ही पक्ष लिया। इनके अतिरिक्त लिपि, वैज्ञानिक-परिभाषिक शब्दों का अभाव तथा प्रारम्भ में अच्छी पुस्तकों का अभाव इत्यादि भी कुछ ऐसे तर्क थे जोकि मातृभाषा को माध्यम बनाने में बाधक होते थे। किन्तु १९३७ ई० तक पहुँचते-पहुँचते प्रायः सभी अभाव दूर हो गये और मातृभाषा ही सिद्धान्ततः व व्यवहारतः प्रयुक्त होने लगी।

शिक्षकों के प्रशिक्षण तथा उनकी नौकरी की अवस्था और वेतन में भी सुधार हुआ। माध्यमिक शिक्षालयों में दीक्षित अध्यापकों की संख्या बहुत कम थी। अतः प्रायः अदीक्षित (Untrained) अध्यापकों को ही रखना पड़ता था। वस्तुतः ट्रेनिंग

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कॉलेजों की संख्या देश में इतनी कम थी कि उनसे आवश्यक मांग की पूर्ति नहीं हो सकती थी। इससे शिक्षा की श्रेष्ठता को बहुत बड़ा आघात पहुँचा। व्यक्तिगत माध्यमिक शिक्षालयों में शिक्षकों की अवस्था भी बड़ी दयनीय थी। प्रबन्ध समितियों की तुच्छ तथा निम्नकोटि की राजनैतिक चालों का बहुधा शिक्षकों को आखेट बनना पड़ता था। उनकी नौकरी स्थाई नहीं थी, वेतन दर भी बहुत निम्न थी एवं वृद्धावस्था के लिये कोई व्यवस्था नहीं थी। बहुधा व्यक्तिगत स्कूलों की आर्थिक अवस्था भी जर्जरित रहती थी इस कारण वह अच्छे व योग्य शिक्षकों के रखने में असमर्थ रहते थे। इससे शिक्षा का स्तर भी गिर गया। इस समस्या ने शीघ्र ही भिन्न-भिन्न प्रान्तों में सरकारों का ध्यान आकर्षित किया और वहाँ इस ओर रचनात्मक कदम उठाये गये। कहने की आवश्यकता नहीं कि शिक्षकों की बहुत सी समस्यायें जो १९३७ ई० में थीं वह आज १९५५ ई० में भी अक्षुण्ण बनी हुई हैं। इतना ही नहीं बहुत से मामलों में तो स्थिति और भी अधिक गंभीर हो गई है। राष्ट्र-निर्माता तथा शिक्षा का आधार शिक्षक आज केवल एक साधारण श्रमिक की भाँति अन्यमनस्क होकर अपने महान् कर्त्तव्य को शुष्कभार की भाँति ढो रहा है।

औद्योगिक शिक्षा की दृष्टि से भी कुछ प्रगति हुई यद्यपि वह अपर्याप्त थी। माध्यमिक शिक्षा भी आवश्यकता से अधिक पुस्तकीय हो गई थी अतः युवकों में बेकारी बढ़ रही थी। शिक्षा के पाठ्य-क्रम में कुछ औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों का रखना अनिवार्य हो गया। परिणामतः बम्बई, मद्रास, बङ्गाल, यू० पी०, पंजाब तथा मध्य-प्रान्त इत्यादि सभी प्रान्तों में कताई, बुनाई आर्ट और क्राफ्ट, पुस्तक कला, कृषि, वाणिज्य, खिलौने बनाना इत्यादि विषय वैकल्पिक पाठ्य-क्रम में सम्मिलित कर दिये गये। उत्तर प्रदेश में लकड़ी तथा कागज और दफ्ती का काम निम्न कक्षाओं में अनिवार्य तथा ९वीं कक्षा में वैकल्पिक कर दिया गया। कृषि का सैद्धान्तिक अध्ययन भी यहाँ हाईस्कूल कक्षाओं में रख दिया गया। वुड-ऐबट रिपोर्ट की सिफारिशो पर भी व्यावसायिक शिक्षा का पहिले से अधिक प्रचार प्रारम्भ कर दिया गया।

(३) प्राथमिक शिक्षा :

१९२१ ई० के उपरान्त प्राथमिक शिक्षा का सन्तोषजनक विकास हुआ किन्तु अन्त में जाकर उसकी प्रगति मन्द पड़ गई। अब तक प्रारम्भिक जन शिक्षा के विषय में सरकारी नीति की सदा आलोचना की जाती थी। १८५४ ई० के घोषणा-पत्र से हर्टाग समिति तक सभी कमीशनों और समितियों ने जन-शिक्षा के व्यापक प्रसार तथा इसके अधिकांश में अनिवार्य करने की सिफारिश की थी, किन्तु अभी तक इस ओर

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कोई सराहनीय कदम नहीं उठाया गया था। १९१७-२७ ई० तक के दशक में आकर ही इस ओर रचनात्मक कदम उठाये गये और विभिन्न प्रान्तों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी कानून पास किये गये। इन कानूनों का पास होना श्री वसु के अनुसार गोखले की पराजय का जवाब था। बम्बई नगरपालिका ने तो १९१८ ई० में ही अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का कानून पास कर दिया था। मांट-फोर्ड सुधारों के उपरान्त इस प्रकार के कानूनों की बाढ़ सी आगई और १९१९ ई० में बंगाल ने नागरिक क्षेत्रों के लिये यह अधिनियम पास किया। दूसरे वर्ष ही बंगाल में इस कानून में सुधार करके ग्रामीण-क्षेत्रों को सम्मिलित करने की भी चेष्टा की गई, किन्तु १९३० ई० में जाकर ही यह आवश्यकता पूर्ण हुई जब 'बंगाल प्राथमिक शिक्षा (ग्रामीण) कानून' पास हो गया। १९१९ ई० में ही पंजाब, संयुक्त-प्रान्त तथा बिहार उड़ीसा ने भी यह कानून पास किये। संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में १९२६ ई० में 'जिला बोर्ड प्राथमिक शिक्षा कानून' पास हुआ। इसी प्रकार १९२० ई० में मद्रास, १९२३ ई० में आसाम ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये कानून बनाये।

इन कानूनों के बन जाने से प्राथमिक शिक्षा पूर्णत: स्थानीय बोर्डों—जिलाबोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्ड के अधिकार व नियन्त्रण में चली गई। प्रत्येक बोर्ड ने अपने क्षेत्र की अवस्थाओं तथा आवश्यकताओं का अध्ययन किया और उन्हीं के अनुसार प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए उपनियम बनाये। प्रत्येक प्रान्त में अनिवार्यता की सीमा निर्धारित करने का दायित्त्व भी स्थानीय बोर्डों पर छोड़ दिया गया। उन्हें शिक्षा-कर लगाने के अधिकार दे दिये गये, यद्यपि इस अधिकार का पूर्ण लाभ नहीं उठाया जा सका। प्रान्तीय सरकारों ने भी शिक्षा व्यय पर अनुदान देना स्वीकार कर लिया। पंजाब तथा बिहार उड़ीसा में अनिवार्यता केवल लड़कों के लिए है। किन्तु अन्य सभी प्रान्तों में लड़कों और लड़कियों दोनों के लिए है।

साधारणतया जहाँ ४ वर्ष का कोर्स है अनिवार्यता की उम्र ६ से १० वर्ष तक है; जहाँ पाँच वर्ष का कोर्स है वहाँ ६ से ११ तक है। पंजाब में ७ से ११ तक है। बालकों को नौकरी में रखने का निषेध कर दिया गया। उनके जो अभिभावक अनिवार्य शिक्षा कानून की अवहेलना करें उनके लिये दण्ड की भी व्यवस्था की गई। अधिकांश में यह शिक्षा निशुल्क अथवा नाममात्र शुल्क पर ही रखी गई।

इस प्रकार प्राय: सभी प्रान्तों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा कानूनों का विषय एकसा ही रहा, इनका प्रमुख आशय यही था कि प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया जाय जिससे निरक्षरता का विनाश हो; और यह उत्तरदायित्व बोर्डों को पूर्णत: दे दिया जाय।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इन कानूनों की प्रतिक्रिया बहुत ही सन्तोषजनक हुई। नये शिक्षा-मन्त्रियों ने अपनी योजनाएँ बनाकर विशाल क्षेत्र पर उन्हें लागू किया। प्रान्तीय सरकारों ने भी मन्त्रियों की माँगों को पूरा करके उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता प्रदान की। परिणामत: १६२१-२२ ई० प्राथमिक स्कूलों की संख्या १,५५,०१६ से बढ़कर १६२६-२७ ई० में १,८४,८२६ हो गई और व्यय ३,६४,६६,०८० रु० से बढ़कर ६,७५,१८,८०२ रु० हो गया। इसी प्रकार बालकों की संख्या में वृद्धि हुई। किन्तु दूसरे पंचशाला में आर्थिक संकट तथा हर्टांग समिति की रिपोर्ट के कारण यह प्रगति बहुत मन्द पड़ गई। श्री हर्टांग ने शिक्षा के विकास का विरोध किया था और उसकी श्रेष्ठता बढ़ाने तथा उसे ठोस करने पर अधिक बल दिया था। शिक्षा अधिकारियों ने हर्टांग की सिफारिशों का अक्षरश: पालन किया। यही कारण है कि प्राथमिक शिक्षा आज तक देश में पूर्णत: अनिवार्य नहीं हो सकी है। जितने प्रान्तीय कानून अनिवार्यता के लिये बने वे भिन्न-भिन्न कारणों से व्यर्थ ही रहे और सच्चे अर्थ में उनका उपयोग कहीं भी नहीं हो सका। वास्तव में यह आन्दोलन ही असफल रहा।

हर्टांग-समिति की रिपोर्ट का प्रभाव बड़ा घातक हुआ। शिक्षा अधिकारियों को इससे अनुचित प्रोत्साहन मिल गया और उन्होंने प्रत्येक प्रान्त में बहुत से स्कूलों को यह कह कर बन्द कर दिया कि उनकी अवस्था बुरी है, धन अथवा भवन नहीं हैं, कार्य-क्षमता गिर गई है और अपव्यय व अवरोधन अधिक हो रहा है इत्यादि। यद्यपि गैर-सरकारी मत इसके बिल्कुल प्रतिकूल था। उसके अनुसार शिक्षा का विकास उसकी श्रेष्ठता से अधिक आवश्यक था, क्योंकि उस समय देश अज्ञान अंधकार में डूबा हुआ था और साक्षरता १८८१ ई० में ३.५ प्रतिशत से १६३१ ई० में केवल ८.० प्रतिशत हो सकी थी, अर्थात् देश की ६२ प्रतिशत जनता अंधकार में टटोल रही थीं। जनता का विचार था कि शिक्षा अमृत की तो अजस्र वर्षा होनी चाहिये न कि इसे बूँद-बूँद करके टपकाया जाये।

इस मतभेद तथा विवाद की अपेक्षाकृत भी १६२७-३७ ई० के दशक में प्रगति बहुत ही असन्तोषजनक रही। हम देखते हैं कि १६२७ ई० और १६३७ ई० के बीच में शिक्षालयों तथा शिक्षार्थियों की संख्या में बहुत हलकी प्रगति है यहाँ तक कि १६३१-३२ ई० की अपेक्षा १६३६-३७ ई० में शिक्षालयों की संख्या ४,४६४ घट गई है।

इस अप्रगति का कारण जहाँ भारत का आर्थिक संकट तथा हर्टांग समिति की रिपोर्ट थी वहाँ अन्य कारण भी थे। वास्तव में स्थानीय बोर्ड शिक्षा प्रसार के विषय में कभी भी गम्भीर न हो सके। ये वह स्थान थे जहाँ पारस्परिक स्पर्द्धा,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दलबन्दी तथा निम्नकोटि की राजनीति का बोलबाला था। आगामी चुनावों में पराजित हो जाने के भय से स्थानीय बोर्डों के सदस्यों ने कभी भी शिक्षा-कर नहीं लगाये, इससे बोर्डों की आर्थिक अवस्था सदा दयनीय रही। बहुधा सदस्य शिक्षा के मर्म को भी समझने में असमर्थ रहते थे। निरीक्षण का अभाव एक ऐसा शक्तिशाली कारण था जिससे प्राथमिक शिक्षा को बड़ी क्षति पहुँचती रही है। वास्तव में निरीक्षक लोग, जोकि गाँवों में प्राथमिक शिक्षालयों का निरीक्षण करने जाते, अपने साथ में एक अफसरी तथा उच्चता का दम्भ लेकर जाते और दुर्बल शिक्षकों के 'मित्र, दार्शनिक तथा प्रदर्शक' होने के स्थान पर बहुधा उनसे बड़ी शुष्कता तथा अभद्रता से व्यवहार करते और दो चार दिन तक गाँवों में निरुद्देश्य वायु-विहार के उपरान्त नगरों में लौट आते। दो चार दिन तक ग्रामीण अध्यापकों में एक प्रकार का आतंक छा जाता था। नगरों में भी इसी प्रकार निरीक्षण का अभाव रहा। उपस्थिति अफसरों (Attendance Officers) के प्रमाद के कारण भी बहुधा नगरों में शिक्षा सच्चे अर्थ में अनिवार्य न हो सकी और आज भी वह हमारे लिए एक स्वप्न बनी हुई है।

इन कारणों के अतिरिक्त प्राथमिक अध्यापकों की दुर्दशा—अल्प वेतन, अल्प शिक्षा और अल्प प्रशिक्षण—भी एक कारण था जिससे प्राथमिक शिक्षा को क्षति पहुँच रही थी। पाठ्क्रम व्यावहारिक जीवन से असम्बद्ध होने के कारण छात्रों में वह कभी प्रेरणा का संचार नहीं कर पाया। उनके कोमल मस्तिष्क पुस्तकों की दुरूहता में जकड़ दिये जाते थे। इस युग के देशव्यापी आर्थिक संकट ने जनता को भी निर्धन कर दिया। अतः निर्धन माँ-बाप जीवित रहने के लिये अपने बच्चों को पाठशाला भेजने की अपेक्षा मजदूरी या खेत में काम करने के लिये भेजना अधिक श्रेयस्कर समझते थे, जहाँ उन्हें कुछ पैसे प्रतिदिन के अनुसार मजदूरी मिल जाती थी। इस प्रवृत्ति का भी विद्यार्थियों की संख्या में कमी करने में एक प्रमुख हाथ रहा है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१५

प्रान्तीय स्वायत्त शासन से वर्तमान तक

(१९३८–१९५८ ई०)

सन् १९३५ ई० के शासन विधान के अनुसार भारत में स्वायत्त शासन की नींव पड़ी और प्रान्तों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना हुई, जिनमें ७ प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रि-मंडल बने। इन मंत्रियों के अधिकार बहुत विशाल थे। अत: उन्हें अपनी इच्छानुसार राष्ट्रहितकारिणी योजनाओं को कार्यान्वित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस महत्त्व-पूर्ण राजनैतिक परिवर्तन के प्रकाश में देश में उत्थान की एक लहर आ गई। कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों को अब अपनी योजनायें लागू करके देश की समस्याओं को हल करना था। अतएव शिक्षा-क्षेत्र में भी एक जागृति युग का अभ्युदय हुआ। साक्षरता आन्दोलन, प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन, अछूतों तथा स्त्रियों की शिक्षा इत्यादि कार्य बड़े जोश व उत्साह के साथ प्रारम्भ हो गये। १९३७ ई० में महात्मा गांधी ने वर्धा में बेसिक शिक्षा की खोज करके देश की प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में नये प्राण फूँक दिये। अब अनिवार्य-निशुल्क-प्राथमिक शिक्षा की भी देश में व्यवस्था होने की आशायें बँध गईं।

इसी बीच १९३९ ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ जाने और अँग्रेजी सरकार के भारत को बिना पूँछे हुए ही युद्ध में झोंक देने की नीति के विरुद्ध कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों ने त्याग-पत्र दे दिये। फलत: देश में शिक्षा-विकास की जो बाढ़ आई थी वह असमय में ही अवरुद्ध हो गई। इसके उपरान्त देश में १९४२ ई० का प्रसिद्ध राजनैतिक आन्दोलन हुआ। ब्रिटिश सरकार ने इसका कठोरता से दमन किया। इस आन्दोलन के फलस्वरूप जन-प्रिय नेताओं की गिरफ्तारी इत्यादि से राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ही साथ शिक्षा के आन्दोलन को क्षति पहुँची। वस्तुत: भारतीय शिक्षा के इतिहास में ये पाँच वर्ष घोर अन्धकार के रहे, जिनमें प्राय: शिक्षा संस्थाओं को केवल जीवितमात्र रखा गया।

युद्ध में मित्र राष्ट्रों की विजय होने के लक्षण प्रतीत होने पर १९४४ ई० के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रारम्भ में युद्धोत्तर विकास की योजनायें बनने लगीं। शिक्षा-क्षेत्र में भी 'सार्जेन्ट-शिक्षा-योजना' के नाम से एक युद्धोत्तर विकास योजना 'केन्द्रीय सलाहकार समिति' की ओर से आई। सार्जेन्ट रिपोर्ट के आधार पर देश की शिक्षा का पुनर्संगठन प्रारम्भ हो गया और १९४५ ई० से आगे शिक्षा कुछ प्रगति करने लगी। १९४५ ई० के उपरान्त केन्द्रीय शिक्षा-विभाग अलग स्थापित कर दिया और इसका उत्तरदायित्व कार्यकारिणी के एक सदस्य को सोंपा गया। १९४६ ई० में 'विश्वविद्यालय अनुदान समिति' की भी स्थापना की गई। इधर देश में राजनैतिक गतिरोध बढ़ता जा रहा था। युद्ध के उपरान्त इंगलैंड के जर्जरित पंजों में भारत को पकड़े रहने की शक्ति नहीं रह गई थी। इधर भारतीय जनता भी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए तड़प रही थी। अन्त में १५ अगस्त १९४७ ई० को देश का विभाजन हुआ और भारत स्वतन्त्र हुआ।

भारत की स्वतन्त्रता के उपरान्त अब देश में शिक्षा-सुधार तथा विकास की योजनाएँ दिन प्रति दिन बनती जा रही हैं। आज सरकार और जनता सभी इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न को हल करने में जुटे हुए हैं। देश की शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान की प्रधानता के दोष को दृष्टिगत रखते हुए अब शिक्षा-क्षेत्र में वैज्ञानिक, टैक्नीकल तथा व्यावसायिक शिक्षा को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। देश में बहुत से वैज्ञानिक व टैक्नीकल शिक्षालय खोल दिये गये हैं। विश्वविद्यालयों, माध्यमिक शिक्षालयों तथा प्राथमिक व बेसिक स्कूलों की संख्या में भी वृद्धि होती जा रही है। इधर भारत सरकार की पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत शिक्षा के प्रायः सभी क्षेत्रों में विकास करने के लिये विभिन्न योजनायें चालू करदी गई है। देश के असंख्य प्रौढ़ों में नागरिकता के गुणों का समावेश करने तथा उन्हें साक्षर बनाने के लिए सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रगति होती जा रही है। साथ ही भारतीय विद्यार्थियों को विदेशों में विशेष प्रशिक्षणों के लिए भेजने और विदेशों के विद्यार्थियों को भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियों का देना भी प्रारम्भ कर दिया है। हरिजनों, कबीलों तथा देश की अन्य पिछड़ी हुई जातियों में शिक्षा का प्रकाश फैलाने एवं शारीरिक व मानसिक दृष्टि से पीड़ित लोगों, जैसे अन्धे, गूंगे बहरे व दुर्बल मस्तिष्क के लोगों के लिए भी विशेष प्रकार की शिक्षा-सुविधायें प्रदान की जा रही हैं।

सभी स्तरों पर शिक्षा का पुनर्संगठन करने के उद्देश्य से भारत सरकार तथा अन्य राज्य सरकारों ने कुछ विशेषज्ञों के आयोग व समितियों की नियुक्ति करके शिक्षा की सम्पूर्ण समस्या का पुनरीक्षण किया है। इसके लिए सन् १९४८ ई० में एक विश्वविद्यालय कमीशन की स्थापना की गई थी। इसकी रिपोर्ट के आधार पर देश की विश्व-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विद्यालय व उच्च शिक्षा के प्रश्न को एक नये ढंग से सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। माध्यमिक शिक्षा के पुनर्संगठन के लिए माध्यमिक शिक्षा कमीशन की नियुक्ति की गई। राज्यों में नियुक्त होने वाली समितियों में हम उत्तर प्रदेश में 'माध्यमिक शिक्षा पुनर्संगठन समिति' १९५३ तथा 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय जाँच समिति' तथा १९५८ में होने वाली 'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय जाँच समिति' की रिपोर्टों का विशेषत: उल्लेख कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त बेसिक शिक्षा को प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर देश के लिये स्वीकार किया जा चुका है। इसके लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से देश में बहुत से बेसिक ट्रेनिंग कालेज खोले जा चुके हैं। शिक्षा के माध्यम की दृष्टि से भी भारतीय संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया गया है और प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तरों पर क्रमश: इसे १९६५ ई० तक पूर्णत: लागू करने का प्रयास किया जा रहा है। विभिन्न राज्यों में प्रान्तीय भाषाएँ ही प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर शिक्षा का माध्यम रहेंगी।

जहाँ तक शिक्षा के संगठन व प्रशासन का प्रश्न है, हम देखते हैं कि १९४७ ई० में केन्द्र में शिक्षा-विभाग एक पूर्णाङ्ग मन्त्रालय के रूप में विकसित हो चुका है। शिक्षा के विषय में राज्य पूर्णत: स्वतन्त्र है और वहाँ की जनता को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है। केन्द्र शिक्षा के राष्ट्रीय-पक्ष की रक्षा करता है और अखिल भारतीय महत्त्व की शिक्षा समस्याओं को हल करने का प्रयास करता है। केन्द्र का यह कर्तव्य है कि यह देखे कि सभी राज्यों में विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का मानदण्ड समस्तर पर है। साथ ही भारत सरकार 'ग' और 'घ' श्रेणी के राज्यों में शिक्षा के लिये प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है। शिक्षा के नियन्त्रण का अधिकार प्रत्येक राज्य में आंशिक रूप में विश्वविद्यालयों, माध्यमिक शिक्षा बोर्डों तथा जिला बोर्ड, नगरपालिका और छावनी बोर्ड इत्यादि स्थानीय संस्थाओं और अन्य लोक हितकारी, धार्मिक व वैयक्तिक संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया है।

केन्द्र में शिक्षा मन्त्रालय दो भागों में बँट गया है। एक शिक्षा मंत्रालय तथा दूसरा वैज्ञानिक अनुसंधान व सांस्कृतिक सम्बन्ध मंत्रालय। शिक्षा मंत्री की सहायता के लिये एक शिक्षा-सलाहकार, दो उप-सलाहकार तथा कुछ सहायक शिक्षा-सलाहकार नियुक्त किये जाते हैं जो कि शिक्षा की विभिन्न शाखाओं के लिए उत्तरदायी हैं। इनके अतिरिक्त शिक्षा-सचिव व उप-सचिव भी होते हैं जोकि राजकीय नीतियों का वहन करते हैं। 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' अखिल भारतीय महत्वपूर्ण विषयों पर

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सलाह देने वाली प्रमुख संस्था है, जिसमें सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। विभिन्न राज्यों में शिक्षा के समन्वय तथा एक देशव्यापी शिक्षानीति को ढालने में इस संस्था ने सराहनीय कार्य किया है। इसके अतिरिक्त एक 'केन्द्रीय शिक्षा व्यूरो' भी है जो देश भर से शिक्षा सम्बन्धी आँकड़े इकट्ठे करके प्रति वर्ष उनका प्रकाशन करता है। भारतीय विद्यार्थियों के विदेशों में जाकर शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाओं के लिये केन्द्र ने एक विदेश-सूचना व्यूरो (Overseas Information Bureau) भी स्थापित कर दिया है, जो कि प्रत्येक राज्य के विश्वविद्यालयों को लाभदायक सूचनाएँ भेजता है। राज्यों में शिक्षा-मन्त्री के अतिरिक्त शिक्षा-संचालक, उप-संचालक तथा निरीक्षक इत्यादि होते हैं। राज्य-सरकार के कार्य को वहन करने के लिये शिक्षा-सचिव तथा उप-सचिव होते हैं।

इस प्रकार भारतवर्ष में शिक्षा प्रगति के पथ पर है। देश की जनसंख्या को शिक्षा प्राप्त करने के सुअवसर देने के लिये सरकार भरसक प्रयत्न कर रही है। किन्तु इन प्रयत्नों की अपेक्षाकृत भी हम देखते हैं कि समस्या इतनी विशाल और दुरूह है कि इसे सरलता से हल नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में जो कुछ भी प्रयत्न इस दिशा में किये जारहे हैं वे कदापि पर्याप्त नहीं कहे जा सकते। आज हम भारत में प्रायः सभी प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों तथा बड़े राजनैतिक नेताओं को यह कहते हुए पाते हैं कि देश की शिक्षा-प्रणाली दूषित तथा देश और काल के अनुपयुक्त है। निस्सन्देह यह मत आंशिक रूप से सत्य भी माना जा सकता है। किन्तु आज तो भारत स्वतन्त्र है और हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली को अपने मनोनुकूल ढालने के सभी अधिकार और सुअवसर प्राप्त हैं। तो फिर क्यों नहीं हमारे शिक्षा-शास्त्री अथवा सरकार इस 'दोषपूर्ण' शिक्षा-प्रणाली का सुधार करते ? वास्तव में हम यह वात स्पष्ट रूप से और निर्भय होकर स्वीकार कर सकते हैं कि अभी तक स्वयं हमारे शिक्षा-शास्त्रियों के सम्मुख कोई ऐसा स्पष्ट चित्र देश की भावी शिक्षा-प्रणाली के लिये नहीं है जिसे वे देश के समक्ष रख सकें। अँग्रेजी काल से चली आने वाली शिक्षा-प्रणाली अथवा परम्पराओं का ही निर्वाह किया जा रहा है और अधिकांश में उसी पद्धति को आगे बढ़ाया जा रहा है। इसके लिये निश्चय ही शिक्षा के सम्पूर्ण चित्र को पुनः खींच कर उसमें नये रंग भरने होंगे। यह बिना किसी पूर्व-नियोजन के सम्भव नहीं है। इसके लिये पाठ्य-क्रम में आमूल परिवर्तन करके देश की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना; प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा को पर्याप्त महत्व देकर शिक्षण-विधि को वैज्ञानिक वनाना; विश्व-विद्यालय शिक्षा में लोकोपयोगी विषयों का समावेश करके उसे जीवन व देश के अधिक उपयुक्त वना देना; टैक्निकल व व्यावसायिक शिक्षा पर अधिक बल देना; स्त्री-शिक्षा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

को विशेष सुविधायें उपलब्ध करना; सामाजिक शिक्षा के लिये विशेष विद्यालयों की स्थापना करना तथा अन्त में सब से महत्वपूर्ण कार्य सभी स्तरों पर शिक्षण की दशाओं में सुधार और शिक्षक को पर्याप्त साहित्यिक-स्वतन्त्रता (Academic Autonomy) तथा अनुसन्धान और अध्ययन की सुविधाएँ प्रदान करना इत्यादि कुछ ऐसे सुझाव हो सकते हैं जो कि भारत में शिक्षा के मौलिक दोषों को दूर करके उसे अन्य देशों के समकक्ष ला सकेंगे।

वर्धा योजना (बेसिक शिक्षा) :

१६३७ ई० में प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की स्थापना के उपरान्त भारतीय शिक्षा के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण घटना हुई 'वर्धा योजना' का प्रादुर्भाव। वास्तव में महात्मा गांधी 'हरिजन' के द्वारा क्षिक्षा के विषय में अपने विचार बहुत दिनों से प्रकट कर रहे थे। २२, २३ अक्टूबर, सन् १६३७ ई० को हुए 'वर्धा शिक्षा-सम्मेलन' में उन्होंने अपने विचारों को एक शिक्षा-योजना के रूप में प्रस्तुत किया। सम्मेलन में सभापति पद से महात्मा जी ने अपनी योजना प्रस्तुत की। उन्होंने कहा कि—

"जो प्रस्ताव मैं आपके सम्मुख रख रहा हूँ वे प्राथमिक और कालेज शिक्षा दोनों से ही सम्बन्धित हैं, किन्तु प्राथमिक शिक्षा पर हमें विशेष ध्यान देना होगा। माध्यमिक शिक्षा को मैंने प्राथमिक शिक्षा में ही सम्मिलित कर दिया है, क्योंकि प्राथमिक शिक्षा ही एक मात्र वह तथाकथित शिक्षा है जो कि ग्रामीणों के एक अल्पांश को उपलब्ध है जिसे मैंने १६१५ ई० से अपने भ्रमणों में देखा है।........"

"मेरा विश्वास है कि यदि हम गाँवों की दशा में सुधार चाहते हैं तो हमें प्राथमिक शिक्षा के साथ ही माध्यमिक शिक्षा को मिला देना चाहिये। अत: जो शिक्षा योजना हम रखने जा रहे हैं वह प्रधानत: ग्रामीण होनी चाहिये।...........यदि इस समय हम प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या को हल कर लेते हैं तो कालेज की उच्च शिक्षा-समस्या आसानी से हल की जा सकती है।"

"मेरा पूर्ण विश्वास है कि वर्तमान प्राथमिक शिक्षा-पद्धति न केवल अपव्यय-पूर्ण है, वरन् हानिप्रद भी है। अधिकतर वालक न तो अपने माँ-बाप के काम के रहते हैं और न उस पेशे के जो कि उनका जन्मजात पेशा है। वे शहरों की गन्दी आदतों को सीख लेते हैं और जो अर्द्धज्ञान प्राप्त करते हैं उसे शिक्षा के अतिरिक्त चाहे जो कुछ कह लीजिये, किन्तु शिक्षा नहीं। तो फिर प्राथमिक शिक्षा का रूप क्या होना चाहिये ? मेरी राय में इसकी एक मात्र औषधि है : व्यवसायों अथवा हस्तकलाओं द्वारा शिक्षा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

देना। मुझे टालस्टाय फार्म में अपने पुत्रों तथा अन्य बच्चों को लकड़ी तथा चमड़े के काम के द्वारा पढ़ाने का अनुभव है।............',

"मेरी योजना का उद्देश्य तथाकथित उदार शिक्षा के साथ-साथ केवल कुछ हस्तकलायें ही सिखाना है। मैं चाहता हूँ कि सम्पूर्ण शिक्षा किसी हस्तकला अथवा उद्योग के माध्यम से दी जाय। यह कहा जा सकता है कि मध्ययुग में विद्यार्थियों को केवल हस्त-कार्य ही सिखाये जाते थे; किन्तु उन दिनों में व्यावसायिक प्रशिक्षण का उद्देश्य शिक्षा-सम्बन्धी नहीं था। हस्त-कार्य केवल उद्यम के लिये सिखाये जाते थे और बुद्धि के विकसित करने का कोई प्रयास नहीं किया जाता था।................"

"प्रायोगिक शिक्षा द्वारा किसी उद्यम की कला तथा विज्ञान को सिखाने और उसी के द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा देने से ही सुधार होगा। उदाहरणतः तकली से कताई सिखाने में कपासों की किस्में, उनके लिए उपयुक्त भारतीय प्रान्तों में भूमि, इस उद्योग के ह्रास का इतिहास, इसके राजनैतिक कारण जिसमें भारत में अँग्रेजी शासन भी सम्मिलित होगा, तथा गणित इत्यादि पढ़ाये जाने चाहिये। यही परीक्षण मैं अपने प्रपौत्र पर कर रहा हूँ जो कि यह अनुभव भी नहीं कर पाता कि इसे पढ़ाया जा रहा है अथवा नहीं। मैं तकली का विशेष उल्लेख कर रहा हूँ, क्योंकि मैं इसकी शक्ति तथा इसके 'रोमांस' का अनुभव कर रहा हूँ। कपड़ा बनाने में इसका उपयोग भी भारतवर्ष में किया जा सकता है। साथ ही तकली बड़ी सस्ती है। देश की दयनीय आर्थिक स्थिति को देखते हुए तकली ही एकमात्र हमारी समस्या का व्यावहारिक हल है।"

"तकली के द्वारा उत्पादन भी संभव होगा, क्योंकि बच्चों के द्वारा बने हुए कपड़ों की मांग भी बहुत होगी। मैंने एक ७ वर्ष के 'कोर्स' का अनुमान लगाया है, जिसका उद्देश्य कातना, बुनना, रंगना तथा डिजायन बनाने का व्यावहारिक ज्ञान सिखाना होगा।"

"शिक्षक का खर्च निकालने का भी मुझे ध्यान है। इसका साधन बच्चों की बनाई हुई वस्तुओं को बेच कर ही निकाला जा सकता है। अन्यथा करोड़ों बच्चों की शिक्षा का कोई अन्य साधन नहीं है।.........इस प्राथमिक शिक्षा में सफाई, स्वास्थ्य रक्षा, भोजन इत्यादि के साधारण नियमों के ज्ञान के साथ-साथ स्वावलम्बन तथा माँ-बाप की सहायता करने का सिद्धान्त भी निहित है। वर्तमान पीढ़ी के बच्चे स्वच्छता आत्म-निर्भरता से परिचित नहीं है और शारीरिक रूप से भी दुर्बल हैं। अतः मैं संगीत-ड्रिल के साथ-साथ उन्हें अनिवार्य शिक्षा देने के पक्ष में हूँ।"

"मेरी योजना के आलोचकों का कथन है कि मैं साहित्यिक शिक्षा का विरोधी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हूँ। यह बात नहीं है। मैं तो ऐसी शिक्षा देने का मार्ग प्रशस्त कर रहा हूँ। यह भी कहा जाता है कि जब हमें करोड़ों रुपये शिक्षा पर व्यय करने चाहिये, तब हम उल्टे बच्चों का शोषण करने जा रहे हैं। यह भी भय किया जा रहा है कि इस योजना में बहुत अपव्यय होगा। किन्तु अनुभव इन सब भयों को व्यर्थ सिद्ध कर देता है। जहाँ तक शोषण और बच्चों पर भार डालने का प्रश्न है, मैं पूछता हूँ कि क्या सर्वनाश से बचाना उन पर भार डालता है? तकली एक अच्छा खिलौना है, उत्पादक होने से क्या यह खिलौना नहीं रहता? आज भी कुछ सीमा तक बच्चे अपने माँ-बाप की सहायता करते ही हैं।.........इस प्रकार जब बच्चे को सूत कातना अथवा माँ-बाप की खेती में सहायता करना सिखाया जायगा तो उसमें यह भावना भी आ जायगी कि वह अपने मां-बाप का ही नहीं अपितु गाँव तथा देश का भी है और उसे उनका भी ऋण चुकाना चाहिये। यही एक मात्र मार्ग है। मैं मंत्रियों से कहूँगा कि बच्चों को शिक्षा में सहायता देना तो उन्हें अपंगु बना देना है। यदि बच्चे अपनी शिक्षा का व्यय स्वयं कमाते हैं तो वे स्वावलम्बी तथा वीर बनेंगे। हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई सभी के लिये यही शिक्षा है। लोग पूँछते हैं कि मैं धार्मिक शिक्षा पर बल क्यों नहीं देता? क्योंकि मैं उन्हें स्वावलम्ब का व्यावहारिक धर्म सिखा रहा हूँ।"

इसके उपरान्त गांधीजी ने शिक्षकों की भर्ती के विषय में बोलते हुए कहा कि शिक्षकों को स्वेच्छा से अपनी सेवायें अर्पित करनी चाहिये।

अन्त में अपने भाषण को समाप्त करते हुए महात्माजी ने कहा कि "यदि हम साम्प्रदायिक विद्वेष तथा अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को मिटाना चाहते हैं, तो हमें नींव सुदृढ़ तथा शुद्ध रखनी चाहिये और उसके लिये नई पीढ़ी को मेरी योजना के अनुसार शिक्षा मिलनी चाहिये। इस योजना का श्रोत अहिंसा है।.........हमें अपने बच्चों को अपनी संस्कृति, सभ्यता तथा राष्ट्रीय प्रतिभा का वास्तविक प्रतिनिधि बनाना है। जब तक हम उन्हें स्वावलम्बन पर आधारित प्राथमिक शिक्षा नहीं देंगे, तो ऐसा करना असम्भव है। यूरोप हमारा आदर्श नहीं हो सकता, क्योंकि इसकी योजनायें हिंसा पर आधारित हैं।...... यदि भारत ने हिंसा दूर रहने की प्रतिज्ञा की है तो यह शिक्षा-पद्धति ही उसके प्राप्त करने का प्रमुख साधन हो सकती है। हमसे कहा जाता है कि इंगलैंड और अमेरिका में शिक्षा पर करोड़ों रुपये व्यय किये जाते हैं; किन्तु हम यह भूल जाते हैं कि यह सब धनराशि शोषण द्वारा प्राप्त की जाती है। वहाँ शोषण कला ने विज्ञान का रूप धारण कर लिया है। हम न तो शोषण की बात सोच सकते हैं और न सोचेंगे ही। अतः अहिंसा पर आश्रित शिक्षा के अतिरिक्त हमारे समक्ष कोई अन्य विकल्प नहीं।"

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भाषण के उपरान्त विद्वानों ने इस योजना की समालोचना की। गांधीजी ने सभी आलोचकों को संतोषजनक उत्तर दिया। अन्त में ये चार प्रस्ताव निम्नलिखित रूप में पास हुए—

प्रस्ताव :

(१) समस्त देश ने ७ वर्ष तक सभी बालक और बालिकाओं को निशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा दी जाय।

(२) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

(३) शिक्षा किसी उत्पादक हस्तकार्य को ही केन्द्र मान कर दी जावे, और इसके अतिरिक्त अन्य गुणों का विकास करने के लिये अथवा कोई प्रशिक्षण देने के लिये, यथासम्भव कोई ऐसा हस्तकार्य चुना जाय जिसका कि बालक के वातावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध हो।

(४) सम्मेलन को आशा है कि शिक्षा के इस संगठन के अनुसार धीरे-धीरे अध्यापकों का वेतन निकलने लगेगा।

जाकिर हुसैन समिति :

उपर्युक्त प्रस्तावों के पास होने के उपरान्त गांधीजी की योजना को व्यावहारिक रूप देने तथा एक विस्तृत पाठ्यक्रम बनाने के उद्देश्य से एक समिति बनाई गई जिसके सभापति 'जामिया मिलिया, दिल्ली' के तत्कालीन प्रिंसिपल श्री जाकिर हुसैन नियुक्त हुए। १९३७ ई० तथा १९३८ ई० को समिति ने अपने दो प्रतिवेदन प्रस्तुत किये। प्रथम प्रतिवेदन में प्रचलित शिक्षा प्रणाली, योजना के उद्देश्य, बेसिक शिक्षा के ७ वर्ष के पाठ्य-क्रम की संक्षिप्त रूप-रेखा, अध्यापकों का प्रशिक्षण, निरीक्षण तथा परीक्षा-नियम इत्यादि तथा शिक्षा के प्रशासन व संगठन की रूपरेखा तक का वर्णन है। अन्त में प्रमुख हस्तकार्य 'कताई व बुनाई' का विस्तृत पाठ्यक्रम दिया गया है। दूसरे प्रतिवेदन में समिति ने अन्य बुनियादी हस्तकार्यों जैसे कृषि धातुकार्य व लकड़ी का कार्य इत्यादि को भी सम्मिलित करके विधि तथा पाठ्क्रम का पूर्ण विवरण दिया है, तथा इन बुनियादी हस्तकार्यों का अन्य विषयों से सम्बन्ध स्थापित करने की विधि (Correlation) की भी व्यवस्था की है। पूर्ण रूप से मँजने के उपरान्त बेसिक शिक्षा-योजना यू० पी०, मध्यप्रान्त, बिहार, उड़ीसा तथा बम्बई प्रान्तों में लागू करदी गई। किन्तु कांग्रेस मंत्रिमंडलों के १९३९ ई० में त्याग-पत्र दे देने पर यह योजना भी अधूरी ही रह गई। बाद में सरकारी अफसरों ने इसे हानिकारक व अव्यावहारिक बता कर हटा दिया। बिहार में अवश्य चम्पारन जिले में लगभग २७ केन्द्रों में यह जारी रही।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वर्धा योजना की विशेषतायें :

वर्धा योजना के फलस्वरूप देश में एक नवीन शिक्षा पद्धति 'बेसिक शिक्षा' का प्रारम्भ हुआ। प्रथमत: इस शिक्षा को 'बेसिक' इसलिये कहा गया है कि यह हमारी राष्ट्रीय संस्कृति तथा सभ्यता का आधार होगी। प्रत्येक वर्ग का बालक इसे बिना भेद-भाव के अपना सकेगा और उसके लिये यह अनिवार्य होगी। दूसरे, यह 'बेसिक' इसलिये होगी कि इसका माध्यम कोई 'बेसिक क्राफ्ट' होगा, अर्थात् कोई ऐसी हस्तकला जोकि भारतीय जीवन का आधार हो। इसके अतिरिक्त बालक की मूलभूत-क्रियात्मक भावनाओं के लिये व्यवस्था भी इस शिक्षा का आधार है। अत: एक प्रकार से बेसिक शिक्षा जीवन की आधारीय आवश्यकताओं—सामाजिक, व्यक्तिगत आर्थिक तथा मानसिक सभी की पूर्ति करेगी। वस्तुत: यह जीवन का वह दृढ़ धरातल प्रदान करेगी जिस पर हमारे बालकों, समाज तथा राष्ट्र का अस्तित्व निर्भर होगा। अब यहाँ संक्षेप में बेसिक शिक्षा के प्रमुख तत्वों को देना आवश्यक है।

१. शिक्षा का माध्यम बेसिक क्राफ्ट : बेसिक शिक्षा की विशेषता यह है कि यह किसी लाभदायक बुनियादी हस्तकार्य के माध्यम से दी जाती है। वर्तमान युग में आज सभी शिक्षा-शास्त्री इस सिद्धान्त को मानने लगे हैं कि बालकों को किसी उचित उत्पादक कार्य के द्वारा शिक्षा दी जाय। इस प्रकार शिक्षा का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। जहाँ इस क्राफ्ट के द्वारा उद्यम की समस्या हल होगी वहाँ बालक के व्यक्तित्व का भी विकास होगा और उसकी रचनात्मक तथा उत्पादक कार्य करने की आन्तरिक भावनाओं को भी पोषण मिलेगा। सामाजिक क्षेत्र में इस शिक्षा से समाज के ऊँच-नीच के भेद-भाव मिट जायेंगे और मानसिक-श्रमिक तथा शारीरिक श्रमिक के बीच की खाई पट जायगी। इससे बालक श्रम का महत्त्व भी समझेंगे। आर्थिक दृष्टिकोण से यदि बुद्धिमत्ता-पूर्वक शिक्षा प्राप्त की जाय तो यह बालक को स्वावलम्बी बना देगी और शिक्षा भी स्वत: पूर्ण हो जायगी।

अत: बेसिक शिक्षा का केन्द्र क्राफ्ट होगा। किन्तु "इस नई शिक्षा-पद्धति का प्रधान उद्देश्य यह नहीं है कि ऐसे कारीगर उत्पन्न कर दिये जायेंगे जो यन्त्रवत् कोई कार्य करते रहें, अपितु इसका उद्देश्य तो क्राफ्ट में निहित साधनों का शिक्षा के लिये उपयोग करना है।" इसके लिये दो शर्तें होनी चाहिए "प्रथमत: जो क्राफ्ट या उत्पादक-कार्य चुना जाय वह शिक्षा विज्ञान की सम्भावनाओं से सम्पन्न हो; और द्वितीय, जीवन की महत्त्वपूर्ण क्रियाओं तथा रुचियों से सम्बन्ध स्थापित करने का इस क्राफ्ट के अन्दर प्राकृतिक गुण हों और उसमें स्कूल पाठ्यक्रम के सम्पूर्ण अंगों का समावेश हो सके।"

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इस प्रकार क्राफ्ट केवल एक स्वतन्त्र विषय की भाँति ही नहीं पढ़ाया जायगा। यह तो अन्य विषयों का भी केन्द्र होगा और उनसे सम्बन्धित कर दिया जायगा। यदि कताई-बुनाई जैसे हस्त-कार्यों को अन्य विषयों की भाँति पढ़ाया जायगा तो सम्पूर्ण योजना की आत्मा का ही हनन हो जायगा। किन्तु किसी भी एक क्राफ्ट को सम्पूर्ण शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जा सकता। प्रत्येक क्राफ्ट की सीमायें होती हैं। अतः क्राफ्ट के अतिरिक्त सामाजिक वातावरण तथा प्राकृतिक वातावरण को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इस प्रकार "जो विषय क्राफ्ट से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता है वह बालक की प्राकृतिक अथवा सामाजिक परिस्थितियों से सम्बन्धित कर दिया जायगा जिनमें बालक उतनी ही रुचि रखता हो जितनी कि क्राफ्ट में।"

२. नागरिकता के गुणों का विकास : आजकल के युग में एक नागरिक को समाज की एक लाभदायक व उत्पादक इकाई होना चाहिये। गांधीजी ने यह अनुभव कर लिया था कि देश की प्रचलित शिक्षा-पद्धति ऐसे शोषकों का निर्माण करती जा रही है जो कि दूसरों के ऊपर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। अतः आवश्यक है कि एक ऐसी शिक्षा-पद्धति का विकास किया जाय जिसमें बालक शारीरिक श्रम के गौरव को समझें और अपने ऊपर निर्भर रह सकें। बेसिक शिक्षा इस उद्देश्य की पूर्ति करती है। इसमें प्रत्येक बालक अनिवार्य रूप से कुछ हस्त-कार्य करता है। कक्षा में सभी वर्गों के बालक सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। इस प्रकार उनमें स्वावलम्बन तथा श्रम-गौरव की भावनाओं के साथ ही साथ सहकारिता की भावनाओं का भी संचार होता है। उन्हें देश तथा जाति के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है और समाज-सेवा की भावना से प्रेरित होकर वे एक सामूहिक जीवन का पदार्थ-पाठ पढ़ते हैं। अतः जो चरित्र का विकास बाल्यावस्था अथवा किशोरावस्था में होता है, वह बड़े होने पर व्यावहारिक जीवन में भी स्पष्टतः झलकता है।

३. योजना में आत्म-निर्भरता की भावना : वास्तव में बेसिक शिक्षा का यह वह पक्ष है जिसकी कि देश में बड़ी आलोचना हुई। प्रौफेसर के० टी० शाह ने कहा कि क्राफ्ट की शिक्षा देकर हम बालक को 'दास' बना डालेंगे और आर्थिक उद्देश्य को समक्ष रख कर बालक का शोषण करेंगे। बालक शिक्षा के महान् उद्देश्यों को भूलकर किसी पेशेवर कारीगर की भाँति यन्त्रवत् तथा भावनाशून्य होकर कार्य करेगा। यह भी कहा गया कि यह शिक्षा स्कूलों को 'फैक्टरी' बना देगी जहाँ बालक से यह आशा की जायगी कि उसके उत्पादन से शिक्षक का वेतन चुकाया जाय। अतः शिक्षक भी आर्थिक लाभ के लिए बालक से अधिक कार्य लेगा। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों ने यह भी सन्देह किया कि बालकों की बनाई हुई वस्तुएँ इतनी भद्दी होंगी कि वे बिक न सकेंगी तथा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रारम्भ में कच्चा माल वहुत बिगड़ेगा। फिर बच्चों को राज्य से शिक्षा पाने का अधिकार स्वयं है, वे उत्पादन करके क्यों पढ़ें ? इत्यादि इत्यादि।

यदि आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि ये सभी संदेह और आलोचनायें निर्मूल व निराशावादी हैं। वास्तव में इनके विषय में बड़ी भ्रान्ति है। योजना के स्वावलम्बी अथवा आत्म-निर्भर होने का प्रयोजन यह है कि एक तो विद्यालयों के श्रम से ही आंशिक रूप से शिक्षक का वेतन निकल आवे; दूसरे, शिक्षा के समाप्त होने पर विद्यार्थी को जीवन-निर्वाह के लिए कोई उत्पादक साधन उपलब्ध हो सके। योजना का अभिप्राय यह नहीं है कि एक मात्र कारीगर उत्पन्न किये जायें। जहाँ तक उपर्युक्त आलोचनाओं के उत्तर का प्रश्न है, गान्धीजी ने समय-समय पर 'हरिजन' में अपने लेखों द्वारा उन्हें स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने लिखा था कि शिक्षकों का वेतन तथा बेसिक क्राफ्ट का व्यय बालकों के सात वर्ष के कार्य से अवश्य निकल आवेगा। प्रारम्भ में कच्चे माल का थोड़ा अपव्यय ही भले हो जाय, किन्तु आगे जाकर नहीं होगा। यह स्वाभाविक है और योग्य शिक्षक द्वारा इसे बचाया भी जा सकता है। बच्चों द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तुओं को राज्य खरीदेगा। नागरिक भी बच्चों के द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तुओं की अधिक कीमत देकर भी उन्हें खरीदने में आनन्द तथा गौरव का अनुभव करेंगे। जहाँ तक बाजार में स्पर्धा का प्रश्न है, स्कूलों में प्राय: ऐसी वस्तुऐं उत्पन्न करने का प्रयास किया जायगा जिनमें स्पर्धा न हो, जैसे; खादी, देशी कागज, खजूर का गुड़ इत्यादि। इसी प्रकार गांधीजी ने अन्य अलोचनाओं का भी उत्तर दिया है। उनका विचार था कि सात वर्ष में किसी भी उद्यम को पूर्णतया सिखाया जा सकता है। इस प्रकार बेकारी भी मिट जावेगी और बालकों में राष्ट्र-निर्माण तथा आत्म निर्भरता के गुणों का भी प्रादुर्भाव होगा।

गांधीजी का यह भी विश्वास था कि देश में प्राथमिक शिक्षा का विकास शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिए और इसके लिये हम अधिक दिन तक सरकारी सहायता की प्रतीक्षा नहीं कर सकते, अत: आवश्यक है कि शिक्षा को स्वयं आत्म-निर्भर बना दिया जाय। जहां तक इन बेसिक स्कूलों को 'फैक्ट्री' कहने का प्रश्न है वहाँ गांधीजी ने बताया है कि ऐसा कहना वास्तविकता की ओर से आँख बन्द कर लेना है क्योंकि फैक्टरी का उद्देश्य है शोषण; वहाँ शिक्षा के तत्वों पर ध्यान नहीं दिया जाता, किन्तु बेसिक स्कूल का उद्देश्य तो एक मात्र शिक्षा देना होगा। हस्तकार्य तो केवल शिक्षा का माध्यम होगा न कि उद्देश्य।

४ बालक शिक्षा का केन्द्र : यद्यपि बेसिक शिक्षा में शिक्षक का बड़ा महत्व होता है और बिना उसके पथ-प्रदर्शन के बालक क्रियाशील नहीं हो सकता,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

तथापि क्रिया का केन्द्र बालक ही रहता है। स्कूल में शिक्षा क्रिया-मूलक रहती है और जो कुछ भी बालक करता है वही उसकी शिक्षा होती है। अतः जब तक बालक क्रियात्मक नहीं रहेगा, उसकी शिक्षा आगे नहीं बढ़ सकेगी। बेसिक शिक्षा-प्रणाली बालक को एक 'शैक्षिक उपभोक्ता' समझती है अतएव उसकी आवश्यकताओं को अध्ययन करना और समझना पड़ता है और उनकी पूर्ति करनी पड़ती है।

बेसिक-प्रणाली वास्तव में कोई नई रीति नहीं है। सम्पूर्ण संसार में आज शिक्षा-क्षेत्रों में ऐसे स्कूलों की स्थापना का आन्दोलन चल रहा है, जहाँ बालक के व्यक्तित्व के विकास पर अधिक बल दिया जा रहा है; और जहाँ शिक्षा का केन्द्र बालक ही समझा जाता है। १९वीं शताब्दी में पाश्चात्य देशों में भी रूसो, पेस्तालॉजी, फ्राबेल तथा हरबार्ट इत्यादि शिक्षा-शास्त्रियों ने शिक्षा का 'मनोवैज्ञानीकरण' करके शिक्षा में 'क्रिया' को महत्व प्रदान किया और इस प्रकार बालक के व्यक्तित्व को समझने और विकसित करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि बालक का 'वर्तमान' अधिक महत्वपूर्ण है, अतः उसके भावी जीवन की सम्भावनाओं पर विचार न करके उसके 'वर्तमान' को ही दृष्टिगत रखना होगा। आधुनिक युग में भी इन्हीं विचारों का प्रतिपादन प्रसिद्ध अमरीकी शिक्षा-शास्त्री जॉन डिवी ने भी किया है। उसने कहा है कि स्कूल में बालक के व्यक्तित्व का उतना ही आदर होना चाहिये जितना कि प्रौढ़ का समाज में होता है।

बेसिक शिक्षा प्रणाली भी बालक को क्रिया का केन्द्र मान कर चलती है और उसके व्यक्तित्व का विकास करती है। इस प्रणाली के कुछ आलोचकों का तर्क है कि यह 'बाल-केन्द्रित' न होकर 'हस्तकला-केन्द्रित' है। जब प्रत्येक विषय हस्तकला के माध्यम से पढ़ाया जाता है और उनके बनाये हुए पदार्थों से स्कूल का व्यय निकालने की बात सोची जाती है तो, इन आलोचकों के मतानुसार, बालक की रुचियों और उसके नैसर्गिक गुणों का उत्पादन की किस्म व मात्रा बढ़ाने में शोषण किया जायगा। किन्तु इस आलोचना का उत्तर स्वयं महात्मा गांधी और डा० जाकिर हुसैन ने भली-भाँति दे दिया है। वस्तुतः हस्तकला एक कार्य के रूप में न होकर एक शिक्षा-साधन व माध्यम के रूप में रहेगी और इसके लिये ऐसी हस्तकला का ही प्रयोग किया जायगा जो कि शिक्षा-सम्भावनाओं से परिपूर्ण होगी। इसका मानव-जीवन की क्रियाओं से साम्य होगा। बेसिक प्रणाली एक शिक्षा है न कि उत्पादन-विधि। इसका उद्देश्य हस्तकला में निहित शिक्षा-साधनों का उपयोग बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिये करना है न कि १४ वर्ष की आयु पर कारीगर उत्पन्न करना।

भारत में जहाँ शिक्षा 'परीक्षा' के लिये होती है और सम्पूर्ण शिक्षा-पद्धति

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में विषय और पाठ्य-पुस्तकों का प्राधान्य है, बेसिक प्रणाली अपना विशेष महत्त्व रखती है। सामान्य शिक्षा-पद्धति के अनुसार बालक एक निष्क्रिय श्रोता के रूप में शिक्षक व पुस्तक से उन ज्ञान व घटनाओं की सूचना प्राप्त करते हैं, जिनका सम्भवत: भावी जीवन से सम्बन्ध समझा जाता है। जो कुछ बालक सीखता है उसी को पलट कर सुना देने की उससे आशा की जाती है। शिक्षक और बालक दोनों ही परीक्षा के भय से निरन्तर आतङ्कित रहते हैं। ऐसी स्थिति में बालक के व्यक्तित्व के विकास की कल्पना कैसे की जा सकती है ? किन्तु बेसिक प्रणाली के अन्तर्गत उपर्युक्त सभी दोष बहुत कुछ दूर हो जाते हैं। यहाँ शिक्षक के पथ-प्रदर्शन के अन्तर्गत बालक किसी उपयोगी क्रिया के द्वारा स्वयं आगे बढ़ता है। शिक्षक को प्रत्येक बालक का कार्य और उसकी मूलभूत शक्तियों को देखने का पर्याप्त सुअवसर मिलता है। अत: हम कह सकते हैं कि इस प्रणाली में 'बालक' ही शिक्षा का केन्द्र है।

५. ज्ञान एक सम्बद्ध व पूर्ण इकाई : सामान्य शिक्षा पद्धति के अनुसार स्कूलों में बालकों को विभिन्न विषयों का अध्ययन कराया जाता है जो कि बहुधा एक दूसरे से असम्बद्ध होते हैं। अत: बालक सम्पूर्ण ज्ञान-समूह को एक सुसम्बद्ध व पूर्ण इकाई के रूप में न समझ कर उसे बिखरी हुई घटनाओं का एक संग्रह समझता है। विभिन्न विषयों को अलग-अलग पढ़ाये जाने के कारण वह एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता। शिक्षक निरन्तर रूप से विद्यार्थी के इच्छुक या अनिच्छुक मस्तिष्क में एक विषय को उड़ेलता चला जाता है। विद्यार्थी भी रट-रटा कर उस ज्ञान को तब तक मस्तिष्क में संभाल कर रखने का प्रयास करता रहता है जब तक कि उसे परीक्षा भवन में बाहर उड़ेलने का अवसर नहीं मिल जाता। उस ज्ञान से बालक की मूलभूत शक्तियों और प्रवृत्तियों का विकास होता है अथवा नहीं और यह ज्ञान उसके भावी जीवन में कोई सम्बन्ध रखता है अथवा नहीं, इस बात से शिक्षक और स्कूल को कोई मतलब नहीं।

बेसिक-प्रणाली के अन्तर्गत बालक को न तो प्लास्टिक की मूर्ति ही समझा जाता है जिसे चाहो उसी प्रकार मोड़ लो, और न उसे एक खाली बर्तन ही समझा जाता है जिसे विभिन्न विषयों के तथ्यों से भर दिया जाय। वस्तुत: यहाँ शिक्षा का माध्यम क्राफ्ट रहने से सभी विषय यथासम्भव उसके माध्यम से पढ़ाये जाते हैं। सभी का सम्बन्ध उसी क्राफ्ट से जोड़ने का प्रयास किया जाता है। अत: सभी विषय एक सम्बद्ध ज्ञान-इकाई के रूप में बालक के समक्ष आते हैं। यहाँ पाठ्य-क्रम का अर्थ विषयों अथवा पाठ्य-पुस्तकों की सूची-मात्र ही नहीं है, अपितु उसका अर्थ उन सभी क्रियाओं और अनुभवों की सम्पूर्ण शृङ्खला के समान होता है जिनमें स्कूल के अन्तर्गत बालक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अपने को व्यस्त रखता है। यहाँ पाठ्यक्रम जटिल न होकर पर्याप्ततः लचीला होता है और बालक की अभिवृद्धि व विकास के साथ ही साथ उत्तरोत्तर विकसित होता जाता है। 'विषय' का प्राधान्य न होकर 'क्रिया' का प्राधान्य होने से बालक उससे प्राप्त हुए अनुभव व ज्ञान को आत्मसात् कर लेता है। उदाहरण के लिये तकली पर कातना सिखाते समय बालक को कपास, उसके लिये मिट्टी व पानी, सूती उद्योग का विकास और इसी सम्बन्ध में अँग्रेजों का भारत में आना, सूत के मूल्यों का निर्धारण करना इत्यादि सरलता से पढ़ाये जा सकते हैं और इस प्रकार सूत कातने के साथ ही साथ वह भूगोल, रसायन शास्त्र, इतिहास व गणित इत्यादि का ज्ञान सरलता से प्राप्त कर सकता है। यही कारण है कि बेसिक शिक्षा के अन्तर्गत सम्पूर्ण ज्ञान या पाठ्य-क्रम को सम्बद्ध व पूर्ण इकाई माना जाता है।

६. शिक्षक व बालक को कार्य करने की अधिक स्वतन्त्रता : बेसिक प्रणाली के अन्तर्गत शिक्षक और बालक को कार्य करने की अधिक स्वतन्त्रता रहती है। वर्तमान प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत, जहाँ रटने तथा तथ्यों को कंठस्थ करके एक सीमित समय में ही परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ता है, वहाँ बालक से आत्म-अभिव्यक्ति तथा रचनात्मक-क्रिया की आशा नहीं की जा सकती। इसके प्रतिकूल बेसिक स्कूल का उद्देश्य बालक को उपयोगी कार्य के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने तथा अपने कार्य में पूर्ण रुचि दिखाने का पर्याप्त सुअवसर दिया जाता है। यहाँ उसकी व्यक्तिगत कठिनाइयों व आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाता है और उसे यह अनुभव कराया जाता है कि स्कूल उसी के लिये स्थित है व कार्य करता है। इसी प्रकार बेसिक स्कूल में शिक्षक भी तुलनात्मक दृष्टि से अधिक स्वतन्त्रता का अनुभव करता है। यहाँ उसे किसी ऐसे जटिल पाठ्यक्रम का अनुसरण नहीं करना पड़ता जिसमें आवश्यकतानुसार वह कोई परिवर्तन न कर सके। न उसे परीक्षा के लिये बच्चों का कोर्स शीघ्र ही समाप्त कराने की धुन ही रहती है। वस्तुतः वह स्वयं सोच सकता है, अपने परीक्षण कर सकता है और किसी ऐसी सुविधाजनक व अधिक उपयोगी शिक्षण-विधि का अनुसरण कर सकता है जो कि बालक के लिये अधिक लाभदायक हो तथा स्कूल की परिस्थितियों के अनुकूल हो। अपने पूर्व अनुभव के आधार पर वह पाठों में तथा कार्यों में यत्र-तत्र परिवर्तन भी कर सकता है। वह उन लोगों के हाथ में अपने आपको एक असहाय अस्त्र नहीं समझता जो कि पाठ्यक्रम बनाते हैं, पाठ्य-पुस्तकें निर्धारित करते हैं, टाइम-टेबिल बनाते तथा परीक्षायें लेते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि बेसिक शिक्षा में कोई पाठ्यक्रम अथवा निश्चित पुस्तकें नहीं होती। किन्तु अन्तर यह है कि इस पद्धति में अधिक लोच होती है और शिक्षक को अपने कार्यों में परिवर्तन करने तथा अपनी व्यक्तिगत अभिरुचि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

को कार्यान्वित करने का पर्याप्त अधिकार रहता है। यदि कक्षा-भवन में अपनी बुद्धि तथा विधि का परीक्षण करने की शिक्षक को स्वतन्त्रता रहती है तो निश्चय ही वह उनका सदुपयोग बालक के हित में कर सकता है। इसके प्रतिकूल यदि शिक्षक भयभीत, दबा हुआ तथा आज्ञाकारी दास की भाँति बना रहता है तो कभी भी उसके शिष्यों में साहस, आत्म-विश्वास तथा मौलिकता इत्यादि गुणों का समावेश नहीं हो सकता। एक स्वतन्त्र व निर्भय शिक्षक ही विद्यार्थियों में सोचने, नियोजन करने, कार्य करने तथा उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के गुणों की उत्पत्ति कर सकता है। बेसिक शिक्षा में इसके लिये पर्याप्त सुअवसर हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बेसिक शिक्षा-प्रणाली में प्रायः वे सभी शिक्षा-सम्भावनायें निहित है जिनके द्वारा बालक के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा का पूर्ण विकास हो सकता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण हम बेसिक शिक्षा प्रणाली को पाश्चात्य देशों की प्रमुख आधुनिक शिक्षा-प्रणालियों जैसे, 'प्रोजैक्ट मैथड', 'किंडर गार्टन', 'मान्टेसरी प्रणाली' तथा 'क्रिया द्वारा शिक्षा-प्रणाली' इत्यादि के समकक्ष रख सकते हैं।

पाठ्यक्रम :

बेसिक शिक्षालयों का पाठ्यक्रम ७ वर्ष का होगा, अर्थात् ७ वर्ष से १४ वर्ष तक की अवस्था के लड़के और लड़कियाँ इनमें अध्ययन करेंगे। पाँचवीं कक्षा तक सह-शिक्षा रहेगी। इसके उपरान्त यद्यपि लड़के और लड़की दोनों के लिए एक सा पाठ्यक्रम होते हुए भी केवल इतना अन्तर कर दिया जायगा कि बालिकाओं को सामान्य-विज्ञान के स्थान पर गृह-विज्ञान पढ़ाया जायगा।

संक्षेप में पाठ्यक्रम की रूपरेखा इस प्रकार है—

१. बेसिक क्राफ्ट—(क) कताई-बुनाई, (ख) लकड़ी का काम, (ग) कृषि, (घ) फल तथा वनस्पति की उद्यान-कला, (ङ) चर्म कार्य, (च) मिट्टी के खिलौने व बर्तन बनाना, (छ) मत्स्य-पालन, (ज) लड़कियों के लिये गृह-कला, (झ) भौगोलिक तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार कोई अन्य हस्त-कला।

२. मातृ भाषा।

३. गणित।

४. सामाजिक विज्ञान—इतिहास, भूगोल और नागरिक-शास्त्र।

५. सामान्य विज्ञान—प्रकृति निरीक्षण, वनस्पति शास्त्र, प्राणि शास्त्र, भौतिक शास्त्र, स्वास्थ्यरक्षा तथा रसायन शास्त्र। स्वास्थ्य रक्षा के साथ व्यायाम भी सम्मिलित किया गया है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

६. कला, ड्राइंग तथा संगीत इत्यादि।
७. खेल-कूद व्यायाम।
८. हिन्दी (जहाँ यह मातृ-भाषा नहीं है)।

बेसिक शिक्षा में अंग्रेजी भाषा को कोई स्थान नहीं दिया गया है। इसके स्थान पर हिन्दी भाषा का शिक्षण किया जायगा। प्रमुख भाषा के स्थान पर भिन्न-भिन्न प्रांतों में वहाँ की स्थानीय मातृ-भाषा सिखाई जायगी। ऐसे स्थानों में ५वीं या ६वीं वर्ष में जाकर हिन्दी पढ़ाई जायगी। हिन्दी का केवल लिखने पढ़ने का ज्ञान ही पर्याप्त समझा गया है। गांधीजी के अनुसार यह बेसिक पाठ्यक्रम अंग्रेजी को छोड़कर प्रचलित हाईस्कूल के बराबर होगा। यद्यपि इस पर कुछ लोगों को सन्देह है, तथापि यह परीक्षण का विषय है। धार्मिक शिक्षा को इस पाठ्यक्रम में कोई स्थान नहीं दिया गया है, क्योंकि आज जिन धर्मों की शिक्षा दी जाती है अथवा जिनका पालन करना होता है वे मेल के स्थान पर झगड़े उत्पन्न कराते हैं।

बेसिक शिक्षा प्रणाणी में शिक्षक का पर्याप्त महत्त्व है। उसके व्यक्तित्व पर ही इसकी सफलता और असफलता निर्भर है। अतः अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए योजना में दो प्रकार के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की गई है—दीर्घकालीन तथा अल्प-कालीन। शिक्षकों को केवल साधारण विषय ही नहीं पढ़ाने पड़ते अपितु वे क्राफ्ट भी पढ़ाते हैं। अतः उन्हें उन क्राफ्टों का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है।

शिक्षण विधि :

बेसिक शिक्षा में प्रत्येक विषय एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में नहीं पढ़ाया जाता, अपितु एक ऐसी विकसित क्रिया को केन्द्र बनाकर पढ़ाया जाता है जिसका सम्बन्ध अन्य विषयों से स्थापित हो सके। अतः शिक्षकों द्वारा सम्बन्धित विषयों की पूर्व-योजना बना ली जाती है, और इस प्रकार 'जीवन, ज्ञान और क्रिया' का सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाता है।

बेसिक शिक्षा में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को ७ क्रमिक कक्षाओं में विभाजित कर दिया जाता है। प्रथम कक्षा में बालक मातृ-भाषा का मौखिक ज्ञान, फिर पढ़ना और अन्त में लिखना सीखने के साथ ही साथ कुछ बुनियादी हस्तकला सीखता है। इस प्रकार प्रत्येक कक्षा में वह बढ़ता चलता है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है, उसके बुनियादी क्राफ्ट का सम्बन्ध अन्य विषयों जैसे, गणित, भाषा, कला, इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान इत्यादि से स्थापित होता जाता है। यह बुनियादी हस्तकला वस्तुतः अन्य विषयों के पढ़ाने का माध्यम रहती है। इस प्रकार ७ वर्ष के अन्त में उस विशेष हस्तकला में सिद्धहस्त होने के साथ ही साथ विद्यार्थी अन्य आवश्यक साहित्यिक विषयों का भी ज्ञान

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण विधि का आधार मनोविज्ञान पर आधारित वही क्रियात्मक व उत्पादक-हस्तकला रहती है।

प्राकृतिक परिस्थिति, सामाजिक परिस्थिति तथा क्राफ्ट—यही तीन साधन हैं जिनके द्वारा प्रत्येक विषय एक दूसरे से सम्बन्धित किया जा सकता है; तथा बालक को इस योग्य बनाया जा सकता है कि वह बुद्धिमत्तापूर्वक तथा क्रियात्मक विधि से अपने वातावरण के अनुकूल अपने को ढाल सके। इस प्रकार सम्पूर्ण पाठ्य-क्रम 'कार्य-केन्द्रित' न होकर 'बाल-केन्द्रित' हो जाता है।

इस प्रकार विद्यार्थी हाथ से कार्य करता है और साथ ही अपनी बुद्धि व कल्पना शक्ति का भी प्रयोग करता है। बालकों में एक स्वाभाविक सृजनात्मक भावना होती है, वह इस शिक्षा-विधि में पर्याप्त रूप से पोषित हो जाती है। उसके ज्ञान व शरीर के विकास के साथ उसके चरित्र व व्यक्तित्व का भी विकास होता है और वह अपने आपको समाज व राष्ट्र का एक महत्पूर्ण अंग मानने लगता है।

बेसिक शिक्षा में बालक एक निष्क्रिय श्रोता नहीं रह सकता जैसा कि साधारण शिक्षा में होता। बेसिक स्कूल वे कार्य क्षेत्र हैं, तथा परीक्षण व अनुसंधान के वे स्थान हैं जहाँ बालक सदा जागरूक रहता है। उसके कौतूहल तथा विजय व सफलता की आशा उसे आगे बढ़ा ले जाती है। इस पद्धति में 'काम करते हुए शिक्षा प्राप्त करने' अर्थात् (Learning by Doing) का सिद्धान्त भी समक्ष रखा जाता है। हस्त-कार्य को बालक खेल ही खेल में सीख जाता है और उनसे सम्बन्धित अन्य विषयों का ज्ञान भी उने बिना किसी शुष्कता तथा भार के अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

बेसिक शिक्षा-पद्धति में शिक्षण के समान ही निरीक्षण-कार्य भी महत्व बतलाया गया है। इसके लिये योग्य व अनुभवी व्यक्तियों का रखा जाना आवश्यक है जो कि केवल निरीक्षण ही नहीं करें, अपितु पथ-प्रदर्शन भी करें।

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली अत्यन्त दोप पूर्ण है जो कि बालक के व्यक्तित्व के विकास में एक बाधा के रूप में उपस्थित है। बेसिक शिक्षा के अन्तर्गत प्रचलित परीक्षा विधि में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके उसे पूर्ण वैज्ञानिक रूप दे दिया गया है। इस परीक्षा-विधि में शिक्षक का विशेष महत्व है।

योजना के अनुसार प्रगति :

हरीपुरा कांग्रेस में इस योजना को अधिकृत रूप से स्वीकार किया ही जा चुका था। कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इसका इसका परीक्षण किया। 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ' की स्थापना हो जाने के उपरान्त इसकी गति और भी बढ़ी।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१६३८ के उपरान्त मध्यप्रान्त, यू० पी०, बम्बई तथा बिहार, उड़ीसा में इसे सरकारी संरक्षण प्राप्त हुआ। नये ट्रेनिंग कालेज तथा स्कूल खुलने लगे तथा अध्यापकों को प्रशिक्षण के लिये भेजा जाने लगा। मध्यभारत सरकार ने इसमें विशेष रुचि दिखलाई। वर्धा-नार्मल स्कूल को विद्या मंदिर ट्रेनिंग स्कूल बना दिया गया और ६८ अन्य विद्या मंदिर स्कूल खोले गये। उसी प्रकार उत्तर प्रदेश में भी इस योजना का शीघ्र प्रचार हुआ। नये शिक्षा-मंत्री ने इस योजना को संरक्षण दिया और बेसिक शिक्षा के लिये एक विशेष अधिकारी नियुक्त कर दिया तथा एक बेसिक ट्रेनिंग कालेज खोला। बिहार में इस पद्धति के अनुसार सराहनीय कार्य हुआ। १६४० ई० में राजनैतिक कारणों से इसे बहुत आघात पहुँचा।

१६३८ ई० तथा १६४० ई० में 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने बेसिक शिक्षा के विषय में दो समितियों की स्थापना की। समिति ने निम्नलिखित प्रमुख सिफारिशें कीं—

(१) बेसिक शिक्षा-योजना सर्व प्रथम ग्रामीण क्षेत्रों में प्रारम्भ की जाय।

(२) बालकों की अनिवार्य-आयु ६ वर्ष से १४ वर्ष तक हो, किन्तु ५ वर्ष की आयु के बच्चे भी बेसिक स्कूलों में प्रविष्ट हो सकेंगे।

(३) बेसिक स्कूलों से अन्य स्कूलों में जाने की अनुमति बालकों को ५वीं कक्षा अथवा ११ + की आयु के उपरान्त ही दी जाय।

(४) शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा ही हो।

(५) भारत के लिये एक सामान्य भाषा की भी आवश्यकता है। यह भाषा हिन्दुस्तानी हो सकती है जिसमें हिन्दी और उर्दू दोनों ही लिपियों का प्रयोग हो सकता है। बच्चों को लिपि चुनने का अधिकार हो और उसी लिपि के द्वारा पढ़ाने की उनके लिये स्कूल में सुविधा होनी चाहिये। प्रत्येक शिक्षक के लिये दोनों ही लिपियों का जानना आवश्यक है।

(६) किसी बाहरी परीक्षा की आवश्यकता नहीं है। बेसिक पाठ्यक्रम के अन्त में आन्तरिक-परीक्षा के आधार पर एक 'स्कूल लीविङ्ग सार्टीफिकेट' दे दिया जाना चाहिये।

१६४४ की 'सार्जेन्ट रिपोर्ट' में इन सुझावों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया।

१६४५ ई० के प्रारम्भ में 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ' की बैठक वर्धा में पुनः हुई। इस बैठक में भी बेसिक शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया और गांधीजी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

के सिद्धान्तों पर आधारित करके इसका नाम 'नई तालीम' रख दिया। यह नई तालीम चार भागों में विभक्त की गई, यथा:—पूर्व-वेसिक, वेसिक, उत्तर-वेसिक तथा प्रौढ़ शिक्षा। पूर्व-वेसिक शिक्षा ३ से ६ वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिये थी; तथा उत्तर-वेसिक में उच्च शिक्षा को सम्मिलित किया गया।

१९४७ ई० में 'हिन्दुस्तानी तालीम संघ, वर्धा' ने एक विस्तृत पाठ्यक्रम तैयार किया जो कि प्राय: सभी प्रान्तों ने लागू कर दिया है। इस योजना में 'उत्तर-बेसिक' माध्यमिक शिक्षा पर वहुत कम ध्यान दिया गया। इस 'उत्तर-वेसिक' माध्यमिक स्कूलों के प्रधान माध्यम क्राफ्ट, कृषि, डेरी, भवन-निर्माण, लोहारी, वढ़ईगीरी तथा बुनाई, इत्यादि हैं, जिनके द्वारा ग्रामों के पुनर्निर्माण की वात कही जाती है। इन 'उत्तर-बेसिक' कालेजों का निर्माण स्कैंडीनेविया के 'पीपुल्स कालेजों' के आधार पर होने की सम्भावना है, जैसा कि राधाकृष्णन कमीशन की सिफारिश है।

प्राय: सभी राज्यों ने अपने आन्दोलन बेसिक शिक्षा के प्रसार के लिये प्रारम्भ कर दिये हैं। भारत की स्वतन्त्रता तथा शिक्षा की वढ़ती हुई माँग ने इस आन्दोलन को सभी स्थानों पर सर्वप्रिय वना दिया है। इस क्षेत्र में दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ हमें देखने को मिलती हैं। एक तो सम्पूर्ण देश में नि:शुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करना; और दूसरी, प्रचलित प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों का रूप देना। देश की स्वतन्त्रता ने लोगों के हृदयों में अपने वालकों को प्राथमिक शिक्षा देने के लिए एक नई लालसा जगा दी है। अब लोग जानते हैं कि यह उनका मौलिक मानव अधिकार है। यहाँ तक कि यह लालसा उन क्षेत्रों में भी दिखाई देती है जहाँ १९४७ से पूर्व शिक्षा की कोई सुविधायें नहीं थीं, जैसे उत्तर पूर्वी सीमा एजेन्सी के आदिम जातियों के इलाकों में १९४७ से पूर्व एक भी स्कूल नहीं था, किन्तु अब प्रतिवर्ष नये स्कूल खुलते जा रहे हैं।

जहाँ तक प्रचलित प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों का रूप देने का प्रश्न है, इसमें भी प्रगति हुई है। किन्तु प्रशिक्षित शिक्षकों, उपयुक्त भवनों तथा धन के अभाव के कारण आशाजनक उन्नति नहीं हो सकी है। शिक्षा की किस्म में सुधार करने की दृष्टि से भी कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं हुआ है। इसका प्रमुख कारण योग्य व सन्तुष्ट शिक्षकों के मिलने की कठिनाई है। बेसिक शिक्षा जहाँ बालक के लिये सरल व आकर्षक होती है, तो शिक्षक के लिये अधिक कठिन होती है। जहाँ कहीं भी शिक्षकों ने इस पद्धति को कठिन श्रम से निष्ठापूर्वक चलाया है, वहाँ परिणाम भी अच्छे निकले हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जब बेसिक शिक्षा देश में प्रारम्भ हुई थी तो शिक्षा के माध्यम के लिए कताई-बुनाई अथवा कृषि को ही बेसिक क्राफ्ट के रूप में रखा जाता था। किन्तु वे अपर्याप्त हैं। विभिन्न प्रान्तों में अपने-अपने स्थानीय क्राफ्ट प्रचलित हैं। इन सभी क्राफ्टों में हम शिक्षा सम्भावनाओं को खोज सकते हैं। उदाहरणत: काश्मीर सदा से जरी के कार्य तथा लकड़ी के कार्य के लिए प्रसिद्ध रहा है। आसाम में रेशम की कताई-बुनाई प्राय: प्रत्येक घर में होती है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक राज्य में स्थानीय हस्त-कलाओं को अपनाया जा सकता है। हाँ, इधर उत्तरोत्तर नई हस्तकलाएँ बेसिक शिक्षा में प्रवेश पा रही हैं।

देश की स्वतन्त्रता के उपरान्त अनेकों राजनैतिक, आर्थिक व नैसर्गिक आपत्तियों का भारत को सामना करना पड़ा। देश के विभाजन, जनसंख्या के परिवर्तन, खाद्यान्नों के अभाव तथा बाढ़ इत्यादि आपत्तियों की अपेक्षाकृत भी भारत ने अपने शिक्षा-प्रयत्नों को जारी रखा और शिक्षा में प्रगति की। यह प्रगति आँकड़ों से जानी जा सकती है। ३१ मार्च, १९४८ को देश के 'क' राज्यों में १,४०,१२१ प्राथमिक स्कूल थे और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या १,१०,००,९६४ थी। सम्पूर्ण भारत में १९५६ ई० में २,७८,०५६ प्राथमिक स्कूल थे और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या २,८५,१८,००० होगई। इधर १९५७ व १९५८ में आकार में और भी वृद्धि हुई है।

जहाँ तक बेसिक स्कूलों के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण देने का प्रश्न है, हम पीछे लिख चुके हैं कि बेसिक शिक्षा की सफल प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है। इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए भी देश में प्रयास किये जा रहे हैं। कुछ संस्थाएँ इस दिशा में अच्छा कार्य कर रही हैं। इनमें से प्रमुख ये हैं—

नई तालीम भवन, सेवाग्राम; जामिया मिलिया स्लामिया टीचर्स ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट, दिल्ली; श्री रामकृष्ण मिशन विद्यालय टीचर्स बेसिक सैन्टर, कोयम्बटूर—(इसके अन्तर्गत गांधी बेसिक ट्रेनिंग स्कूल तथा विद्यालय टीचर्स कालेज सम्मिलित हैं और सराहनीय कार्य कर रहे हैं); ग्रेजुएट बेसिक ट्रेनिंग सेन्टर, ढावका (बम्बई); विद्या भवन शान्तिनिकेतन; विद्याभवन उदयपुर तथा सर्वोदय महाविद्यालय तर्की (विहार) अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त भी लगभग प्रत्येक राज्य में प्रशिक्षण संस्थाएँ हैं जो कि बेसिक शिक्षकों को प्रशिक्षण देती हैं।

इधर बेसिक शिक्षा प्रणाली को प्राथमिक स्तर के आगे माध्यमिक व उच्च स्तरों तक ले जाने के परीक्षण भी देश में होने लगे हैं। इस दृष्टिकोण से बिहार सभी राज्यों

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में अग्रगामी है। वहाँ चुने हुए क्षेत्रों में सामाजिक शिक्षा को बेसिक प्रणाली के आधार पर प्रारम्भ किया जा रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वोदय महाविद्यालय बेसिक ट्रेनिंग कालेज, १९ बेसिक ट्रेनिंग स्कूलों तथा १३ उत्तर-बेसिक स्कूलों ने सामाजिक शिक्षा के प्रसार के लिए एक योजना को कार्यान्वित किया है। किन्तु निस्वार्थ कार्य-कर्त्ताओं व शिक्षकों और धन के अभाव में योजना में अच्छी सफलता नहीं मिल सकी है। जौलाई १९५४ में बिहार बेसिक शिक्षा बोर्ड की कार्यकारिणी ने निश्चय किया था कि राज्य में ऐसे विद्यार्थियों के लिये, जिन्होंने उत्तर-बेसिक स्कूल परीक्षा पास कर ली है, लगभग ६ उत्तर-बेसिक कालेज खोले जाँय। इस बोर्ड ने एक प्रस्ताव पास करके बिहार सरकार से यह भी माँग की थी कि तर्की (मुजफ्फरपुर) में एक समाज कालेज (Community College) खोला जाय। फलतः इस कालेज की स्थापना करदी गई। इसी प्रकार एक कालेज नालन्दा में, एक नगरपाड़ा (भागलपुर) में, एक कोल-हन्त पटोरी (दरभंगा) तथा एक वाखरी (मुजफ्फरपुर) में खोलने की भी योजना कार्यान्वित की गई है। इन ग्रामीण बेसिक कालेजों की स्थापना का उद्देश्य यह भी है कि लगभग तीन वर्ष के भीतर वहाँ एक ग्राम्य विश्वविद्यालय की स्थापना की जा सके।

इसके अतिरिक्त बिहार में सरकारी सर्वोदय स्कूलों के साथ ही साथ वैयक्तिक सर्वोदय स्कूल भी स्वीकृत किये जा चुके हैं। इससे पूर्व सर्वोदय स्कूलों का संचालन केवल सरकार ही करती थी। बेसिक शिक्षा बोर्ड ने बिहार में बेसिक शिक्षा में सुधार, सामाजिक शिक्षा का प्रसार तथा बेसिक शिक्षकों की दशा में सुधार करने का भी निर्णय किया है। इसी प्रकार पंजाब में भी बेसिक शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा के स्तर से उठा कर माध्यमिक स्तर तक ले जाने का निर्णय किया गया है। इसके लिये चंडीगढ़ में एक सीनियर बेसिक कालेज की १९५४ में स्थापना की गई थी। इसमें केवल ग्रेजुएटों का ही प्रवेश होता है। आसाम में गुरू ट्रेनिंग केन्द्रों को बेसिक ट्रेनिंग केन्द्रों में परिवर्तित कर दिया गया है। इसी प्रकार बम्बई, केरल, मद्रास, बंगाल व उत्तर प्रदेश में भी बेसिक शिक्षकों के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है और प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों में बदला जा रहा है।

वास्तव में बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम पंचवर्षीय आयोजन से पूर्व अधिक प्रयास नहीं हुए थे। प्रथम आयोजन काल में इधर अधिक ध्यान दिया गया। इस काल में लगभग १३,६०८ बेसिक स्कूलों की स्थापना की गई, जिनमें नव-स्थापित बेसिक स्कूल तथा साधारण प्राथमिक पाठशालाओं से बेसिक रूप में परिवर्तित स्कूल सम्मिलित हैं। द्वितीय आयोजन काल में भी बेसिक शिक्षा के विकास की नीति को अपनाया गया है। इसके लक्ष्य इस प्रकार हैं—

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(१) जूनियर बेसिक स्कूलों की संख्या ८,३६० से बढ़ाकर ३३,८०० कर दी जायगी।

(२) सीनियर बेसिक स्कूलों की संख्या १,६४५ से बढ़ाकर ४,५७१ कर दी जायगी।

(३) बेसिक स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या ११ लाख के स्थान पर ४२,२४,००० कर दी जायगी।

द्वितीय आयोजन के प्रथम वर्ष १९५६-५७ में देश में ९६४ नये बेसिक स्कूल विभिन्न राज्यों में खोले गये तथा ७७२ प्राथमिक स्कूल बेसिक स्कूलों में परिवर्तित किये गये। किन्तु यह प्रगति सभी राज्यों में एकसी नहीं रही। उदाहरण के लिये इस वर्ष आन्ध्र, आसाम, बिहार, केरल, मद्रास, राजस्थान, त्रिपुरा, दिल्ली तथा हिमाचल प्रदेश में कोई भी नये बेसिक स्कूल नहीं खोले गये। हाँ ३,४६४ अ-बेसिक स्कूलों की स्थापना अवश्य हुई।

ऐसे विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा के लिये जोकि सीनियर बेसिक स्कूलों से उत्तीर्ण होकर आगे पढ़ना चाहते हैं, उत्तर-बेसिक स्कूलों की स्थापना की गई है। प्रथम पंच-वर्षीय आयोजन काल में ऐसे २८ स्कूलों की स्थापना हुई थी। वास्तव में सम्पूर्ण देश की विशालता को देखते हुए यह संख्या तुच्छ है। इससे यह प्रकट होता है कि विद्यार्थियों में उच्च बेसिक शिक्षा प्राप्त करने की मांग नहीं है। द्वितीय आयोजन में उत्तर-बेसिक स्कूलों की स्थापना पर अधिक बल दिया जा रहा है और इस उद्देश्य के लिये सरकार ने अधिक धन की व्यवस्था की है। इसके लिये एक प्रथम योजना बना करके भी राज्य सरकारों के पास भेजी गई है जिसके अनुसार केन्द्रीय सरकार सम्पूर्ण आवर्त्तक व अनावर्त्तक व्यय का ६० प्रतिशत अनुदान देगी। १९५७-५८ के वर्ष में ८ लाख रुपये की व्यवस्था उत्तर-बेसिक स्कूलों के खोलने के लिए की गई है।

बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में उच्च अनुसंधान तथा शिक्षकों व प्रशासकों को प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से सन् १९५६ ई० में नई दिल्ली में एक 'बेसिक शिक्षा राष्ट्रीय संस्था'[1] की स्थापना की गई थी। इस संस्था ने कुछ हस्तकलाओं तथा अन्य बेसिक शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर कुछ अनुसन्धान किया है।

बेसिक शिक्षा की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिये तथा उसके विकास के लिए उपाय बताने के उद्देश्य से भारत सरकार ने सन् १९५५ ई० में श्री जी० रामचन्द्रन

1. National Institute of Basic Education.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

की अध्यक्षता में एक मूल्यांकन समिति की नियुक्त की थी। मूल्यांकन समिति ने बेसिक शिक्षा के सुधार तथा प्रसार के लिये मूल्यवान सुझाव दिये हैं।

अगस्त सन् १९५७ में केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड स्थायी समिति ने सुझाव दिया था कि उत्तर-बेसिक शिक्षा का माध्यमिक शिक्षा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाय। इसके लिये भी एक समिति नई नियुक्ति कर दी गई है।

बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों का प्रचार करने तथा इस सम्बन्ध में लोगों के ज्ञान वर्द्धन के उद्देश्य से देश के विभिन्न क्षेत्रों में गोष्ठियों, सम्मेलनों तथा प्रदर्शिनियों का आयोजन किया जाता है। इस सम्बन्ध में उपयुक्त साहित्य-सृजन को भी प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

सरकारी रिपोर्टों के आधार पर कहा जा सकता है कि राज्यों में विशेषतः बिहार और बम्बई में, बेसिक शिक्षा सन्तोषजनक प्रगति कर रही है। इन स्कूलों का रूप यह है कि कई बेसिक स्कूलों के समूह को, जो निकटवर्ती गाँवों में स्थित होते हैं, एक ठोस इकाई के रूप में संगठित कर लिया जाता है। एक 'जनता कालेज', जिसमें ग्रामीण छात्रों के रहने की भी व्यवस्था होती है और जिसमें हस्तकलायें, स्वास्थ्यरक्षा तथा समाजिक जीवन के मौलिक तत्वों की शिक्षा दी जाती है, एक बेसिक ट्रेनिंग कालेज जिससे बेसिक स्कूल सम्बन्धित कर दिये जाते हैं तथा एक पुस्तकालय जिसमें दृश्य-साधनों (Visual Aids) की भी व्यवस्था होती है—यही संस्थायें उस बेसिक परीक्षण-इकाई में सम्मिलित की जाती हैं। यद्यपि यह कार्य दिल्ली में भी बड़े उत्साह के साथ प्रारम्भ किया गया था, किन्तु इसमें अधिक सफलता नहीं मिल सकी है। इस परीक्षण का उद्देश्य बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों से लोगों को परिचित कराना तथा कुछ कार्यकर्त्ताओं को तैयार करना है।

देश में बेसिक शिक्षा का अधिक प्रसार करने के उद्देश्य से केन्द्रीय सरकार ने राज्यों को उस व्यय का ३० प्र० श० देना स्वीकार किया है जो कि नये बेसिक स्कूलों के खोलने तथा समान्य प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित करने में राज्य सरकारों को पड़ता है।

पंचवर्षीय योजना के आधार पर राज्यों में बेसिक स्कूल में खोलने के जो लक्ष्य बना लिये गये हैं उनमें प्रचलित प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूल में बदलने की एक प्रमुख योजना सम्मिलित है। कहीं-कहीं पर सामान्य प्रकार के प्राथमिक स्कूल ही खोले जा रहे हैं और बेसिक स्कूलों की स्थापना को यह कह कर टाला जा रहा है। कि उनका प्रारम्भिक व्यय अधिक होता है। वस्तुतः अच्छे व प्रशिक्षित

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शिक्षकों के अभाव तथा बेसिक शिक्षण की एक सर्वमान्य पद्धति व ऐसे उपयुक्त साहित्य के अभाव में जोकि शिक्षकों का पथ-प्रदर्शन कर सके, प्राथमिक बेसिक स्कूलों की प्रगति अत्यन्त ही मन्द है। इन अभावों की पूर्ति करने के लिये पंचवर्षीय योजनाओं में एक अग्रिम-योजना (Pilot Project) को प्रत्येक राज्य में कार्यान्वित करने की नीति को अपनाया गया है। इन अग्रिम-योजनाओं के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा से लेकर उत्तर-स्नातक प्रशिक्षण (Post Graduate Training) के स्तर तक बेसिक शिक्षा के सम्पूर्ण रूप को एक सुनिश्चित, ठोस तथा वास्तविक रूप में कार्यान्वित किया जायगा और इस परीक्षण के द्वारा एक उपयुक्त टैकनीक का विकास किया जायगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बेसिक शिक्षा वस्तुत: भारतीय शिक्षा प्रणाली का ही नहीं अपितु राष्ट्रीय जीवन तथा प्रेरणा का आधार बनती जा रही है। आशा की जाती है कि भविष्य में इसका रूप और भी अधिक व्यापक हो जायगा। ऐसा होने पर ही इस योजना के प्रणेता महात्मा गांधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को एक मूर्त्त रूप मिल सकेगा।

बेसिक शिक्षा के विषय में अभी कोई स्पष्ट चित्र देश के समक्ष नहीं उभरा है। भिन्न-भिन्न लोगों में विभिन्न प्रकार की भ्रान्तियाँ इसके विषय में फैली हुई हैं। कुछ आलोचकों की धारणा है कि यह पद्धति केवल ग्रामीण बालकों के लिये ही है। कुछ लोगों का कथन है कि जब से बेसिक शिक्षा आरम्भ हुई है प्राथमिक शिक्षा का मानदण्ड गिर गया है। कुछ इसे बालकों के शोषण का साधन मानते हैं। वास्तव में ये सभी धारणायें भ्रान्तिमूलक हैं और बेसिक शिक्षा के तत्व को पूर्ण रूप से न समझने के कारण ही उत्पन्न होती हैं।

साथ ही कुछ वास्तविक कठिनाइयाँ भी हैं जिनके कारण बेसिक शिक्षा का विकास प्रर्याप्त नहीं हो रहा है। प्रथम कठिनाई है वित्त की। पर्याप्त वित्त के अभाव में स्कूलों में उचित सज्जा की व्यवस्था नहीं हो पाती। बिना प्रर्याप्त सज्जा व अन्य आवश्यक सामग्री के बेसिक शिक्षा आगे नहीं बढ़ सकती। यह आश्चर्य व खेद की बात है कि जो सरकार उच्च शिक्षा पर इतना व्यय कर सकती है, व प्राथमिक व बेसिक शिक्षा के लिये प्रर्याप्त वित्त नहीं जुटा सकती।

दूसरी बात है शिक्षकों की आर्थिक दशा के सुधार के सम्बन्ध में। यह बात सर्वविदित है कि भारतवर्ष में प्राथमिक शिक्षक का वेतन अत्यन्त अल्प है। इस कारण वह हर समय आर्थिक चिन्ताओं में निमग्न रहता हुआ एक अत्यन्त ही दीन व अभाव-पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। सरकार भी उसे दीन व शक्तिहीन समझ कर सुविधापूर्वक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उसकी अवहेलना कर देती है। प्राथमिक शिक्षक की तुलना में विश्वविद्यालयों के शिक्षक, जो कि अपनी बातों को उच्च अधिकारियों तक शीघ्र पहुँचा देते हैं और अपने अधिकारों की रक्षा के लिये सरकार से मोर्चा लेने की भी क्षमता रखते हैं, उनकी बातों को सरकार शीघ्र सुन लेती है; और वेचारा प्राथमिक शिक्षक एक साधारण मजदूर की भाँति शिक्षण का 'पेशा' करता है। जब तक देश की प्राथमिक शिक्षा का सुधार नहीं होगा, देश की शिक्षा की आधारशिला दुर्बल रहेगी, और जब तक प्राथमिक शिक्षक की आर्थिक दशा तथा कार्य-दशाओं में सुधार नहीं होगा, हम देश की प्राथमिक शिक्षा के सुधार की कल्पना नहीं कर सकते। सामान्य शिक्षकों की तुलना में बेसिक शिक्षकों को और भी अधिक कठिनाइयाँ हैं। इनके प्रशिक्षण का समय और व्यय अधिक होता है तथा अध्यापन कार्य भी अधिक श्रमपूर्ण होता है। अतः यह स्वाभाविक है कि उनके वेतन स्तर और भी अधिक ऊँचे होने चाहिये। इस दृष्टि से मद्रास में अवश्य कुछ किया जा रहा है, अन्यथा शेष राज्यों ने इस प्रश्न पर दृष्टिपात तक नहीं किया है।

प्राथमिक तथा बेसिक शिक्षा की एक अन्य समस्या है स्कूल भवनों का अभाव। देश के प्रत्येक क्षेत्र में प्रायः प्राथमिक स्कूलों पर अपने स्वयं के अच्छे भवन नहीं हैं। गाँवों में कहीं कच्चे व फूटे खंडहरों में बच्चे पढ़ते हैं तो कहीं वर्षा, धूप व जाड़े में पेड़ों के नीचे प्रकृति की निर्दयता को सहन करते रहते हैं। वास्तव में प्राथमिक स्कूलों के पास भवन न होना एक अत्यन्त ही दुरूह समस्या है। यह कितनी दया की बात है कि देश के असंख्य भावी नागरिकों को हम स्थान की इतनी भी सुविधा न दे सकें जहाँ बैठकर वे अपने जीवन के प्रथम पाठ पढ़ सकें।

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त अन्य कठिनाइयों का भी प्राथमिक शिक्षा के विषय में उल्लेख किया जा सकता है। अनिवार्यता के सिद्धान्त को सम्पूर्ण देश में लागू करने में सरकार की असफलता, अच्छी पाठ्य-पुस्तकों का अभाव, अध्ययन सामग्री का अभाव, पाठ्यक्रम सम्बन्धी दोष, शिक्षकों के प्रशिक्षण सम्बन्धी असुविधायें, निरीक्षण की अपर्याप्तता व अक्षमता, स्थानीय बोर्डों में निम्नकोटि की राजनीति और इन बोर्डों के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा का निर्दय बलिदान तथा जन-समूहों में व्याप्त निर्धनता इत्यादि अन्य कारण हैं जो कि देश की प्राथमिक व बेसिक शिक्षा की तीव्र प्रगति में रोड़े अटकाये हुए हैं। लोकसभा द्वारा स्थापित की गई अनुमान-समिति ने अपने १९५७-५८ ई० के चतुर्थ प्रतिवेदन में बेसिक शिक्षा के सुधार के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये हैं:[1]

1. Estimates Committee Fourth Report, 1957-58, pp. 37-38.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(१) इस भ्रान्ति का उन्मूलन होना चाहिये कि बेसिक शिक्षा ग्रामों के लिये तथा परम्परागत शिक्षा नगरों के लिये है।

(२) इस बात का विश्वास उत्पन्न कर देना चाहिये कि बेसिक शिक्षा का मानदण्ड (क्राफ्ट प्रशिक्षिण के अतिरिक्त) सामान्य शिक्षा से नीचा नहीं है।

(३) नगरों में स्थित साधारण व परम्परागत प्राथमिक स्कूलों को अधिक से अधिक संख्या में बेसिक स्कूलों में परिवर्तित करना चाहिये।

(४) यह परिवर्तन का कार्य बहुत तेजी से चलना चाहिये और यथासम्भव द्वितीय आयोजन काल में पूर्ण हो जाना चाहिये।

(५) शिक्षा मंत्रालय को चाहिये कि बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में उसकी वैज्ञानिक व्याख्या व विश्लेषण करे तथा चरित्र-निर्माण व शारीरिक श्रम के प्रति आस्था उत्पन्न करे।

(६) बेसिक स्कूलों की सज्जा तथा उत्पादन क्षमता में वृद्धि की जाय तथा इन स्कूलों के लिये पर्याप्त कच्चे माल की पूर्ति की व्यवस्था की जाय।

(७) बेसिक स्कूलों के मानदण्ड को ऊँचा उठाने के सभी प्रयत्न किये जाने चाहिये तथा प्रसार के साथ ही साथ शिक्षा को ठोस भी बनाना चाहिये।

(८) देश के उन नेताओं तथा प्रशासकों को, जो कि बेसिक शिक्षा में विश्वास रखते हैं, चाहिये कि अपने बच्चों की प्राथमिक शिक्षा के लिये वे उन्हें इन्हीं बेसिक स्कूलों में भेजें।

उपर्युक्त सभी प्रयासों के करने एवं दोषों के निवारण करने से हमें विश्वास है कि देश की प्राथमिक व बेसिक शिक्षा का उचित विकास किया जा सकेगा।

सार्जेन्ट रिपोर्ट (युद्धोत्तर-शिक्षा विकास योजना) :

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर भारत के सम्मुख एक नवीन शिक्षा योजना आई जिसे 'सार्जेन्ट योजना' के नाम से पुकारा जाता है। जॉन सार्जेन्ट को, जोकि भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा-सलाहकार थे, एक ऐसा स्मृति-पत्र बनाने का आदेश हुआ जिसमें युद्धोत्तर शिक्षा विकास के लिये योजना की रूप रेखा हो। 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने इस स्मृतिपत्र को स्वीकार कर लिया, जो उन अनेक रिपोर्टों पर आधारित था जो कि बोर्ड द्वारा शिक्षा के भिन्न-भिन्न अंगों के लिये नियुक्त की गई उपसमितियों ने उस समय प्रकाशित की थीं। अतः जॉन सार्जेन्ट के नाम पर ही इस योजना का नामकरण हुआ। 'सार्जेन्ट रिपोर्ट' में सम्पूर्ण शिक्षा को १२ अध्यायों में विभाजित करके प्रत्येक अंग पर अलग-अलग विचार किया गया है। हम संक्षेप में उसे इस प्रकार लिख सकते हैं—

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(१) ५ और ६ वर्ष से १४ वर्ष तक के लड़के लड़कियों को साक्षरता तथा नागरिकता के लिये सर्वव्यापी, अनिवार्य तथा निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था। यह शिक्षा दो भागों में विभक्त होगी। जूनियर बेसिक (६–११) तथा सीनियर बेसिक (११–१४) वर्ष। प्रथम प्रकार के स्कूल सबके लिये अनिवार्य होंगे और दूसरे प्रकार के स्कूल केवल उन्हीं बालकों के लिये होंगे जोकि हाईस्कूल में अपनी शिक्षा जारी नहीं रखेंगे।

(२) ३ वर्ष से ६ वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिये पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था इस शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सामान्य शिक्षा देना नहीं, अपितु सामाजिक अनुभव तथा शिष्टाचार सिखाना है।

(३) ११ वर्ष से १७ वर्ष तक के चुने हुए विद्यार्थियों के लिए ६ वर्ष की हाई-स्कूल शिक्षा की व्यवस्था। इन स्कूलों में केवल वही विद्यार्थी प्रवेश पा सकेंगे जो कि आगे शिक्षा के लिए अपनी विशेष रुचि दिखलाते हैं। इन हाईस्कूलों को दो भागों में विभाजित कर दिया जायगा : (१) साहित्यिक (एकेडैमिक) हाईस्कूल और (२) व्यावसायिक (टैकनिकल) हाईस्कूल। प्रथम प्रकार के स्कूलों में कला तथा विज्ञान के विषय पढ़ाये जायेंगे। दूसरे प्रकार के स्कूलों में व्यावहारिक विज्ञान (Applied Sciences) तथा औद्योगिक और व्यापारिक विषय पढ़ाये जायेंगे। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगा तथा अँग्रेजी अनिवार्य द्वितीय भाषा होगी। लड़कियों के स्कूलों में सामान्य विज्ञान के स्थान पर गृह-विज्ञान पढ़ाया जायगा। हाईस्कूलों में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की अवस्था ११ + होगी जबकि उनका जूनियर बेसिक कोर्स समाप्त हो चुका होगा। उनमें प्रत्येक विद्यार्थी १४ + वर्ष की उम्र तक रहेगा। ५० प्रतिशत विद्यार्थी निःशुल्क रहेंगे। योग्य विद्यार्थियों को उच्च अध्ययन की विशेष सुविधायें दी जावेंगी।

(४) चुने हुए विद्यार्थियों के लिये प्रचलित इन्टरमीडियेट कक्षाओं के उपरान्त विश्वविद्यालय शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। इन्टर कक्षाओं का उन्मूलन करके उनकी प्रथम वर्ष हाईस्कूल तथा द्वितीय वर्ष डिग्री कक्षा में मिला दी जाय। रिपोर्ट में वर्तमान विश्वविद्याल शिक्षा के दोषों पर भी प्रकाश डाला गया है। प्रवेश पर नियन्त्रण कर दिया गया है। हाईस्कूल छोड़ने वाले १५ विद्यार्थियों में से १ को प्रवेश दिया जाय। शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में व्यक्तिगत सम्पर्क बढ़ाना चाहिए। शिक्षकों की दशा, कार्य करने की अवस्थाओं तथा वेतन में सुधार किया जाय। भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में साम्य तथा ऐक्य उत्पन्न करने के लिए भारतीय 'विश्वविद्यालय अनुदान-समिति' की स्थापना की जाय।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(५) टैक्निकल, वाणिज्य तथा कला-शिक्षा की व्यवस्था की जाय जिसमें पर्याप्त संख्या में पूर्ण सामयिक अर्धसामयिक (Full time & Part time) विद्यार्थी प्रविष्ट किये जायें। इन उद्योगों के लिए चार श्रेणी के कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होगी (१) उच्चतम श्रेणी—इस श्रेणी के विद्यार्थी औद्योगिक हाईस्कूल में शिक्षा पाकर विश्वविद्यालयों के टैक्नोलोजिकल विभागों में प्रवेश करायेंगे। इनके प्रवेश में नियन्त्रण से काम लिया जायगा। (२) निम्न श्रेणी—इसमें फोरमैन, चार्जहैंड इत्यादि शामिल होंगे। औद्योगिक हाईस्कूलों में पास विद्यार्थी इस कार्य को करेंगे। (३) कुशल कारीगर—ये विद्यार्थी सीनियर हाई स्कूल पास करने पर अथवा औद्योगिक हाईस्कूलों में से लिए जायेंगे। (४) अकुशल कारीगर—ये लोग सीनियर बेसिक (मिडिल) स्कूलों में से सीधे भर्ती किये जायेंगे जहाँ उन्होंने कुछ क्राफ्ट का काम सीख लिया हो। पर्याप्त अनुभव के उपरान्त इन्हें कुशल कारीगरों में सम्मिलित किया जा सकता है।

(६) १० वर्ष से ४० वर्ष तक की अवस्था वाले प्रौढ़ों के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था की जाय। यह शिक्षा व्यावसायिक और सामान्य दोनों ही प्रकार की होनी चाहिए। लड़कों और वृद्धों के लिए अलग-अलग कक्षायें हों। स्त्री-प्रौढ़-शिक्षा की समस्या पर भी उचित ध्यान दिया जाय। प्रौढ़ शिक्षा को रुचिप्रद तथा अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए चित्रों, मैजिक लैनटर्न, सिनेमा, ग्रामोफून, रेडियो, लोकनृत्य, संगीत तथा अभिनय का उपयोग करना चाहिये इसके अतिरिक्त 'जन पुस्तकालयों' (Public Libraries) का आयोजन भी होना चाहिये।

(७) इस शिक्षा-योजना को आगे बढ़ाने के लिये शिक्षकों के प्रशिक्षण की उचित व पूर्ण व्यवस्था की जाय। योजना में बताया गया है कि पूर्व-बेसिक तथा जूनियर बेसिक स्कूलों में प्रति ३० बालकों के लिये १ शिक्षक; सीनियर बेसिक स्कूलों में प्रति २५ बालकों के लिए १ शिक्षक तथा हाईस्कूलों में प्रति २० बालकों के लिये १ शिक्षक की आवश्यकता होगी। इस प्रकार सम्पूर्ण योजना के लिये २२,१७,७३३ शिक्षकों, अर्थात् २० लाख अ-ग्रेजुएटों और १,८१,३२० ग्रेजुएटों—की आवश्यकता होगी। ग्रेजुएटों को ट्रेनिंग-कालेजों में प्रशिक्षण दिया जायगा और अ-ग्रेजुएटों को तीन प्रकार के प्रशिक्षण दिये जायेंगे—पूर्व प्राथमिक शिक्षक, बेसिक शिक्षक तथा हाईस्कूलों के अ-ग्रेजुएट शिक्षक। प्रशिक्षित शिक्षकों के लिए समय-समय पर अभिनवन-पाठ्यक्रम (रिफ्रेशर कोर्स) की भी व्यवस्था आवश्यक है। टेकनिकल तथा कॉमर्शियल शिक्षकों के लिए विशेष ट्रेनिंग कालेजों की आवश्यकता नहीं, क्योंकि ये अपना प्रशिक्षण उद्योगों तथा टैक्निकल संस्थाओं में प्राप्त करेंगे। योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करने के उद्देश्य से शिक्षकों के वेतन-क्रम में वृद्धि हो।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(८) विद्यार्थियों को स्वस्थ रखने के लिए अनिवार्य शारीरिक शिक्षा तथा उचित डाक्टरी जाँच और आवश्यकतानुसार चिकित्सा की व्यवस्था होनी चाहिए। विद्यार्थियों को भोजन, स्वच्छता तथा व्यायाम आदि पर पुस्तकें मिलनी चाहिए। स्कूल में बैठने के कमरों में स्वच्छता, प्रकाश तथा फर्नीचर इत्यादि की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(९) मानसिक तथा शारीरिक बाधाओं से पीड़ित बालकों के लिए विशेष शिक्षालयों की व्यवस्था होनी चाहिए। इन दोनों श्रेणियों में मूढ़ तथा अन्धे, गूँगे, बहरे अथवा अन्य शारीरिक हीनता रखने वाले विद्यार्थी आ जाते हैं।

(१०) रोजगार कार्यालय खोलना चाहिए।

(११) शिक्षालयों में विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियाओं की व्यवस्था की जाय।

(१२) प्रान्तों तथा केन्द्र में एक सुसंगठित शिक्षा विभाग का संगठन करना चाहिये। इस प्रकार शिक्षा को उन विशेषज्ञों के अधिकार में रखना चाहिये जोकि उसके मर्म को समझते हैं। विश्वविद्यालयों को छोड़कर सम्पूर्ण शिक्षा का संगठन प्रान्तों के हाथ में हो। विश्वविद्यालयों के कार्यों का संगठन अखिल भारतीय आधार पर हो।

आलोचना :

गुण : युद्ध उपरान्त भारत में शिक्षा-विकास की योजना के रूप में इस योजना का बड़ा महत्त्व है। अब तक बनने वाली सभी योजनाओं से इस योजना का रूप अधिक व्यापक रहा है। शिक्षा-सम्बन्धी प्रायः सभी पक्षों का इसमें विश्लेषणात्मक विवेचन हमें देखने को मिलता है। शिक्षा में अनिवार्यता इत्यादि प्रश्नों को इसने निर्णयात्मक रूप से हल करने का प्रयत्न किया है। बालक के सर्वाङ्गीण तथा स्वतन्त्र विकास के लिये इस योजना में पर्याप्त क्षेत्र है। इस योजना के प्रणेताओं ने भली-भाँति समझ लिया था कि सम्पूर्ण शिक्षा आन्दोलनों का केन्द्र 'शिक्षक' होता है। कोई भी योजना कितनी ही आकर्षक व लाभदायक क्यों न हो यदि उसे कार्यान्वित करने के लिये हमारे पास योग्य, शिक्षित तथा संतुष्ट शिक्षक नहीं हैं तो वह कभी भी सफल नहीं हो सकती। इसी सिद्धान्त को दृष्टिगत रखते हुए इस योजना में सभी श्रेणियों—प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय—के शिक्षकों के वेतन-क्रम तथा उनकी दशा में सुधार करने पर विशेष जोर दिया है। इस रिपोर्ट ने वर्तमान भारतीय शिक्षा के प्रमुख दोषों को भी ऊपर लाकर रख दिया है। योजना में यह स्वीकार किया गया है कि परीक्षाओं पर आवश्यकता

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

से अधिक ध्यान दिया जाता है। इससे विद्यार्थियों में पुस्तकीय संकीर्णता आ जाती है, हाईस्कूल शिक्षा को आज तक विश्वविद्यालय शिक्षा का पूरक माना जाता है, साथ ही विश्वविद्यालयों में भी शिक्षा में योजना का अभाव है, शिक्षकों के प्रशिक्षण की उचित व पर्याप्त व्यवस्था नहीं है, इत्यादि।

दोष : किन्तु साथ ही हम देखते हैं कि यह योजना भी दोषयुक्त नहीं है। इसमें यह कल्पना की गई है कि यदि ४० वर्ष तक इसे कार्यान्वित किया जाय तो भारत में शिक्षा वर्तमान इंगलैंड के स्तर तक आ सकती है। किन्तु इसमें यह भुला दिया गया है कि इन ४० वर्षों में इंगलैंड कितना आगे निकल जायगा, और ऐसी अवस्था में भारत उससे लगभग आधी शताब्दि पिछड़ा रहेगा। साथ ही ४० वर्ष का समय भी बहुत होता है। भारत अपने शिक्षा के पुनर्निर्माण के लिये इतनी दीर्घ प्रतीक्षा करने की स्थिति में नहीं है और फिर योजना का परीक्षण एक-एक क्षेत्र के बाद किया जायगा। इसके अतिरिक्त इस योजना में ३१३ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष लगेगा जिसका २७७ करोड़ जनता-कोष से आवेगा। ऐसी स्थित में भारत के लिये यह योजना अधिक खर्चीली है। योजना में ग्रामीण शिक्षा, स्त्री शिक्षा तथा हमारे शिक्षा-संगठन में धार्मिक शिक्षा का स्थान इत्यादि प्रश्नों पर भी उचित प्रकाश नहीं डाला गया है और न उनकी उचित व्यवस्था की गई है। विद्यार्थियों के चयन का ढंग भी अवांछनीय है; इससे प्रत्येक विद्यार्थी को उच्च-शिक्षा का सुअवसर नहीं मिलता है। वर्धा योजना के स्वावलम्बन वाले पक्ष का पूर्ण बहिष्कार कर दिया गया है साथ ही शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये उचित व दृढ़ सरकारी मशीनरी का कोई आयोजन नहीं किया गया है। शिक्षा के मानदण्ड के लिये पूर्णतः इंगलैंड को आदर्श मानना भी अवांछनीय है।

योजना की प्रगति :

इस प्रकार सार्जेन्ट योजना के गुण और दोषों का विवेचन करने पर प्रतीत होता है कि इसमें दोष होते हुए भी यह योजना एक महान् युग-निर्माणक योजना है। केन्द्रीय सरकार ने इसकी अधिकांश सिफारिशों को मान लिया है और १९५४ ई० में केन्द्रीय शिक्षा विभाग को अलग कर दिया। १९४४ ई० में केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय सरकारों को सार्जेन्ट योजना के आधार पर अपने पंचसाला कार्यक्रम बनाने का आदेश दिया; अतः १९४७-५२ ई० के पंचसाला में ऐसी योजनायें बनाई गई। इस योजना पर कार्य तो १९४६ ई० में ही प्रारम्भ हो गया था। केन्द्र ने आर्थिक सहायता के रूप में १९४७-४८ ई० में ४० करोड़ रुपया देना स्वीकार कर लिया। इन प्रान्तीय पंचसाला-योजनाओं में शिक्षकों की वेतन-दर में सुधार, निःशुल्क अनिवार्य बेसिक शिक्षा जोकि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

६-११ वर्ष के बच्चों पर लागू होगी और आगे चलकर ११-१४ तक बढ़ा दी जायगी, विश्वविद्यालय शिक्षा का सुधार, टैकनिकल तथा प्रौढ़-शिक्षा के लिये विशेष सुविधा तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये विशेष आयोजना, इत्यादि सम्मिलित हैं। साथ ही ४० वर्ष का समय भी घटा कर १६ वर्ष कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त इस रिपोर्ट के आधार पर 'अखिल-भारतीय टैकनिकल शिक्षा समिति' का निर्माण हो चुका है और भारत की राजधानी में एक 'पोलीटैकनिक कालेज' भी खुल गया है। १९४५ ई० में शिक्षा व्यूरो तथा १९४६ ई० में 'विश्वविद्यालय अनुदान समिति' का निर्माण हो चुका है। भारतीय विद्यार्थियों की विदेशों में शिक्षा का प्रश्न केन्द्रीय शिक्षा विभाग के अन्तर्गत आ गया है।

माध्यमिक शिक्षा कमीशन १९५३ ई०:

नियुक्ति : केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने देश में माध्यमिक शिक्षा की प्रचलित पद्धति की जाँच करके उसके सुधार तथा पुनर्सङ्गठन के लिये एक कमीशन स्थापित करने की सिफारिश की थी। माध्यमिक शिक्षा के महत्व को सरकार ने भी स्वीकार किया। प्राथमिक, विश्वविद्यालय तथा औद्योगिक शिक्षा के क्षेत्र में गत वर्षों में पर्याप्त पर्यवेक्षण हो चुका था, किन्तु इस प्रकार कोई प्रयत्न अखिल भारतीय स्तर पर माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में नहीं हुआ था। वस्तुतः यह एक ऐसी स्टेज है जिस पर आकर देश के अधिकांश विद्यार्थी अपनी शिक्षा को समाप्त कर देते हैं। साथ ही हाई-स्कूल पास विद्यार्थी ही प्राथमिक स्कूलों के शिक्षक बनते हैं अथवा विश्वविद्यालयों में जाकर विद्याध्ययन करते हैं। ऐसी स्थिति में माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक एवं विश्व-विद्यालय दोनों स्तरों पर शिक्षा के मानदण्ड को प्रभावित करती है। इन्हीं बातों को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार ने २३ सितम्बर, १९५२ को 'माध्यमिक शिक्षा कमीशन' की नियुक्त की। इस कमीशन के अध्यक्ष मद्रास विश्व-विद्यालय के उपकुलपति डा० लक्ष्मणस्वामी मुदलियार नियुक्त किये गये। यही कारण है कि इसे 'मुदलियार कमीशन' के नाम से भी पुकारा जाता है। इस कमीशन ने सारे देश का भ्रमण किया और प्रत्येक स्थान पर शिक्षा समस्याओं का अध्ययन करने के उपरान्त २९ अगस्त, १९५३ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट पर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने विचार किया। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा कमीशन की सिफारिशों को भारत सरकार ने यथावत् मान लिया है।

कमीशन की प्रमुख सिफारिशें : (१) माध्यमिक स्तर की शिक्षा चार या पाँच वर्ष की प्राथमिक या जूनियर बेसिक शिक्षा के उपरान्त प्रारम्भ होनी चाहिए। इसमें सभी विभिन्न पाठ्यक्रम, जैसे, भाषा, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान तथा हस्तकला

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सम्मिलित होने चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों का चयन एक शक्तिशाली समिति को सौंप देना चाहिए। विद्यार्थियों को अपने विषयों के चुनने के लिए पथ-प्रदर्शन व उचित सलाह प्राप्त करने का सुअवसर प्रदान करना चाहिए।

(२) शिक्षा का माध्यम मातृभाषायें हों, साथ ही राष्ट्रभाषा तथा एक विदेशी भाषा भी मिडिल स्कूल स्तर पर पढ़ाई जानी चाहिये।

(३) वर्ष में २०० से कम कार्य-दिवस न होने चाहिये। प्रति सप्ताह प्रत्येक घन्टा ४५ मिनट के हिसाब से ३५ घन्टे अध्ययन होना चाहिए।

(४) परीक्षा में उत्तीर्ण करने तथा ऊपर की कक्षा में विद्यार्थी को चढ़ाने के लिए वर्ष भर कक्षा में किए गए कार्य पर भी विचार करना चाहिए।

(५) टैक्नीकल शिक्षा को नीचे स्तर पर ही प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से बहु-उद्देशीय (Multipurpose) स्कूलों की स्थापना की जाय।

(६) माध्यमिक शिक्षकों तथा ग्रेजुएट शिक्षकों की ट्रेनिंग होनी चाहिए। शारीरिक-शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

(७) माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण बोर्ड तथा राज्य शिक्षा सलाहकार बोर्डों की स्थापना होनी चाहिए। प्रशासन को अधिक कार्यक्षम बनाने के लिए केन्द्रीय तथा राज्य समितियों की संयुक्त बैठकें होनी चाहिए और इस प्रकार उनके कार्यक्रमों के समन्वय स्थापित होना चाहिए; तथा शिक्षा संचालन विभाग में अत्यन्त योग्य व विशेषज्ञ व्यक्तियों की ही नियुक्ति होनी चाहिए।

(८) प्रत्येक स्कूल में एक प्रबन्धक बोर्ड हो जो कि 'कम्पनी अधिनियम' के अन्तर्गत रजिस्टर्ड होना चाहिए। प्रत्येक स्कूल का प्रधानाध्यापक इस बोर्ड का पदेन (Ex-officio) सदस्य होना चाहिए।

(९) स्कूल का भवन पर्याप्तत: स्वच्छ व हवादार हो जिसमें अच्छे क्रीड़ास्थल भी हों।

(१०) कृषि, उद्योग, व्यापार तथा नागरिकता में प्रशिक्षण देने के हित में केन्द्रीय सरकार को चाहिए कि वह माध्यमिक शिक्षा के वित्त के लिए साधन उपलब्ध करावे।

इन सिफारिशों के अतिरिक्त कमीशन ने पुस्तकालयों की स्थापना, विद्यार्थियों में फैली हुई अनुशासनहीनता को रोकने, स्वेच्छा या माँ-बाप की आज्ञा से आंशिक रूप से धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने, विद्यार्थियों के स्वास्थ्य में सुधार करने तथा उनमें आत्म-निर्भरता व नागरिकता के गुणों के समावेश करने, परीक्षा-प्रणाली में सुधार करने, शिक्षकों की दशा में सुधार करने, स्कूलों की आर्थिक दशा तथा प्रबन्ध व संगठन इत्यादि में सुधार करने के उद्देश्य से भी बड़े रचनात्मक व व्यावहारिक सुझाव रखे।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

आलोचना :

माध्यमिक शिक्षा कमीशन की सिफारिशों को देखने से प्रतीत होता है कि रिपोर्ट के अन्तर्गत माध्यमिक शिक्षा की प्राय: सभी मौलिक समस्याओं पर विचार करके उन्हें हल करने का प्रयास किया गया है। अब तक नियुक्त होने वाले सभी कमीशनों से भी अधिक वास्तविक व व्यावहारिक सुझाव हमें इसमें देखने को मिलते हैं। माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत चले जाने वाले प्रमुख दोषों : जैसे; पुस्तकीय व साहित्यिक ज्ञान का प्राधान्य, व्यावसायिक व औद्योगिक शिक्षा का अभाव, परीक्षा-प्रणाली के दोष, प्रबन्ध समितियों तथा संगठन सम्बन्धी दोष एवं शिक्षकों की उपेक्षा व उनके प्रशिक्षण सम्बन्धी कठिनाइयाँ इत्यादि को कमीशन ने भली-भाँति सुलझाने का प्रयास किया है। कमीशन के मतानुसार हमारे माध्यमिक स्कूलों को 'एक मार्गीय' (Single-track) स्कूल नहीं होना चाहिये, वरन् उन्हें विभिन्न प्रकार की प्रतिभा, विभिन्न रुचियों तथा विभिन्न आकांक्षाओं वाले विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बहु-उद्देशीय स्कूल होना चाहिये। कृषि तथा उद्योगों का विकास भारत की एक प्रमुख समस्या है। ऐसी स्थिति में माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में इनके शिक्षण पर बल देकर कमीशन ने सराहनीय कार्य किया है। परीक्षा पद्धति के सुधार करने के विषय में कमीशन का मत है कि, "यदि परीक्षाओं का कुछ वास्तविक लाभ है तो उन्हें नवीन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए विद्यार्थियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की परीक्षा लेनी होगी।" वर्तमान परीक्षा विधि से तो परीक्षार्थियों की मानसिक परीक्षा भी नहीं ली जा सकती। यह परीक्षा पद्धति परीक्षक की इच्छा पर इतना अधिक उत्तरदायित्व छोड़ देती है कि वह पूर्णांश में विश्वस्त नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति में वर्ष भर में किये गये विद्यार्थी के कक्षा-कार्य पर बल देना अत्यन्त ही उचित व आवश्यक सिफारिश है। कमीशन के मतानुसार वाह्य-परीक्षायें अधिक नहीं होनी चाहिये। निबन्धात्मक प्रकार की परीक्षाओं की बुराई को अधिक से अधिक मिटा देना चाहिये। इसके लिये मूर्त-परीक्षाओं (Objective Tests) की सिफारिश की गई है। परीक्षाओं में प्रश्न ऐसे होने चाहिये जो कि विद्यार्थियों में रटने की प्रवृत्ति को महत्व न दें। इसी प्रकार की सिफारिशें आन्तरिक परीक्षाओं के सुधारने की भी की गई हैं।

शिक्षकों की दशा में सुधार करने की दृष्टि से कमीशन ने स्वीकार किया है कि "शिक्षा के प्रस्तावित पुनर्संगठन के लिये सबसे महत्वपूर्ण साधन है शिक्षक—उसके व्यक्तिगत गुण, उसकी शैक्षिक योग्यतायें, उसका व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा वह स्थान जोकि स्कूल या समाज में उसे मिला हुआ है।" ऐसी स्थिति में कमीशन का मत है

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कि, "यदि शिक्षकों के वर्तमान क्षोभ तथा निराशा की भावना को हटाना है तथा शिक्षा को एक वास्तविक राष्ट्र-निर्माणक कार्य बनाना है तो यह नितान्त आवश्यक है कि उनकी दशा में सुधार किया जाय और नौकरी की दशा सुधारी जाय।" इन दशाओं में सुधार करने लिये कमीशन ने व्यावहारिक सुझाव दिये हैं। अन्त में स्कूलों के पुनर्संगठन तथा प्रबन्ध समितियों के सुधार के लिये भी कमीशन के सुझाव बड़े लाभदायक हैं। यदि उपर्युक्त सुझावों के आधार पर भारत में माध्यमिक शिक्षा का पुनर्निर्माण किया जाता है, तो निःसंदेह उसके बहुमत में दोषों के दूर हो जाने की सम्भावना है।

इन गुणों के अतिरिक्त कमीशन की सिफारिशों में कुछ दोष भी रह गये हैं, जिन पर संक्षेप में दृष्टि डाल देना समीचीन होगा। वास्तव में इस कमीशन ने पूर्व-स्थित माध्यमिक शिक्षा का ही सुधार करके उसे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने की चेष्टा की है। किन्तु इस क्षेत्र में तो क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता थी। परीक्षा-प्रणाली में सुधार, पाठ्यक्रम के बहुउद्देशीय बनाने, शिक्षकों की दशा में सुधार करने तथा व्यक्तिगत प्रबन्ध समितियों के सुधार के सम्बन्ध में कमीशन के सुझाव परम्परागत ही हैं। उनके द्वारा इन क्षेत्रों के मौलिक दोषों का उन्मूलन नहीं हो सकेगा। शिक्षा के नियन्त्रण के विषय में दी हुई कमीशन की सिफारिशें बड़ी निर्जीव व परम्परागत हैं। वास्तव में माध्यमिक शिक्षा अविलम्ब ही राज्य के नियन्त्रण में आनी चाहिये। यह बात निर्विवाद है कि प्रबन्ध समितियों के अन्तर्गत फैली हुई अनियमितताओं के कारण आज माध्यमिक शिक्षा को बड़ी क्षति पहुँच रही है। इनको दूर करने का एक मात्र उपाय है माध्यमिक शिक्षा का राष्ट्रीयकरण। इनके अतिरिक्त कमीशन ने स्त्री-शिक्षा को पर्याप्त महत्व नहीं दिया है। शिक्षकों के प्रशिक्षण सम्बन्धी सुझाव भी अधिक मौलिक नहीं है। अन्त में केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को माध्यमिक शिक्षा के सुधार के लिये दिये जाने वाले आर्थिक व वित्तीय अनुदानों के विषय में भी कमीशन के सुझाव बड़े अपर्याप्त हैं। इन सब दोषों की अपेक्षाकृत भी हम देखते हैं कि कमीशन के कुछ सुझाव अत्यन्त लाभकारी हैं और भारत में माध्यमिक शिक्षा के सुधार तथा पुनर्संगठन के लिये अपना महान् महत्त्व रखते हैं।

माध्यमिक शिक्षा की प्रगति :

देश में प्राथमिक शिक्षा के विकास होने से माध्यमिक शिक्षा का आकार भी बढ़ने लगा है। इसका अनुमान इस क्षेत्र में स्कूलों तथा विद्यार्थियों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या से लगाया जा सकता है। सन् १९४८ में भारत के प्रमुख राज्यों में हाईस्कूल तथा मिडिल स्कूलों की संख्या कुल १२,६९३ थी। आठ वर्ष उपरान्त १९५६ में कुल

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

माध्यमिक स्कूलों की संख्या २५,६२७ होगई, अर्थात् इसमें १०२ प्र० श० की वृद्धि हुई। सम्पूर्ण भारत में ३१ मार्च १९५६ में २१,७३० मिडिल स्कूल तथा १०,८३८ हाई स्कूल थे। इनमें से क्रमशः २,२३७ तथा १,५८३ स्कूल बालिकाओं के लिये थे। मिडिल स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या उसी वर्ष ३८ लाख १३ हजार थी, तथा हाईस्कूलों में पढ़ने वाले बालक-बालिकाओं की संख्या लगभग ४७ लाख १४ हजार थी।

माध्यमिक शिक्षा के प्रसार के साथ ही साथ सरकार का ध्यान शिक्षा के मान दण्ड के ऊंचा करने की ओर भी गया है। वास्तव में इधर कई वर्षों से प्रायः सभी क्षेत्रों में देश की माध्यमिक शिक्षा के मानदण्ड के गिरने की आलोचना की जा रही है। अधिकांश में यह आलोचना उचित है। माध्यमिक शिक्षा कमीशन तथा उत्तर प्रदेश की नरेन्द्रदेव समिति ने इस समस्या पर गंभीर चिन्तन करने के उपरान्त अपने विचार प्रस्तुत किये हैं जिनका उल्लेख अन्यत्र किया गया है।

सन् १९५५ में भारत सरकार ने अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना की थी। इस परिषद् के प्रमुख कर्त्तव्य हैं देश में माध्यमिक शिक्षा की प्रगति का निरीक्षण करना तथा राज्य व केन्द्र सरकारों को माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में भी सलाह देकर शिक्षा का विकास करना। अपनी स्थापना के उपरान्त इस परिषद् ने माध्यमिक शिक्षा का गहन अध्ययन किया है। फोर्डफांउडेशन के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में देश के विभिन्न भागों में शिक्षकों की क्षेत्रीय गोष्ठियों तथा प्रधानाध्यापकों की गोष्ठियों का आयोजन किया है, जहाँ समस्याओं पर विचार-विनिमय होता है। १९५७ तक ऐसी १९ गोष्ठियों का आयोजन किया जा चुका था। इनके अतिरिक्त परिषद् ने अखिल भारतीय स्तर पर ११ गोष्ठियों का आयोजन मार्च १९५७ तक किया था जिनमें परीक्षा-प्रणाली विज्ञानों की शिक्षा, शिक्षा-प्रबन्ध, तथा सामाजिक अध्ययन इत्यादि विषयों पर विचार विमर्श किया गया। इनके अतिरिक्त परिषद् ने शिकागो विश्वविद्यालय के प्रमुख शिक्षा-शास्त्री तथा वहाँ के 'बोर्ड ऑव एक्जामिनर्स' के अध्यक्ष डा० वी० एस० ब्लूम के निरीक्षण में परीक्षाओं के सम्बन्ध में सात 'वर्कशाप' का संगठन किया।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजन काल में देश में माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ परीक्षण किये गये हैं। माध्यमिक कमीशन की सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार ने एक योजना तैयार की थी उसमें निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया गया है :

(१) ५०० बहुधंधी स्कूलों की स्थापना, जिनमें विज्ञान, टैकनिकल पाठ्यक्रम, कृषि, वाणिज्य, ललित कलायें और गृह-विज्ञान का शिक्षण होगा।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(२) ३०० अतिरिक्त स्कूलों में विज्ञान की पढ़ाई के लिए और अधिक सुविधायें प्रदान करना।

(३) २ हजार स्कूल-पुस्तकालयों का विकास जिनमें ५०० बहुधन्धी तथा १५०० सामान्य स्कूल होंगे।

(४) २ हजार मिडिल स्कूलों में क्राफ्ट का प्रारम्भ।

(५) अध्यापकों का प्रशिक्षण, तथा

(६) गोष्ठियों का संगठन।

उपर्युक्त सभी योजनायें प्रथम आयोजन काल में ही पूर्ण नहीं हो सकीं। केवल २५० बहुधंधी स्कूलों की स्थापना हो सकी।

इधर केन्द्रीय सरकार ने माध्यमिक स्कूलों में पाठ्य-पुस्तकों के ऊपर अनुसन्धान करने के लिए केन्द्रीय पाठ्य-पुस्तक-अनुसन्धान ब्यूरो (Central Bureau of Textbook Research) की स्थापना १९५४ में ही करदी थी। यह संस्था पाठ्य-पुस्तकों के वर्तमान दोषों को दूर करके उचित प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित कराने के लिए राज्य सरकारों को सलाह देती है। शैक्षिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन के लिए भी केन्द्रीय सरकार ने एक ब्यूरो (Central Bureau of Educational and Vocational Guidance) की स्थापना अक्टूबर १९५४ में की थी। स्थापना के उपरान्त ही इस ब्यूरो ने कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा मध्यप्रदेश इत्यादि राज्यों ने अपने यहाँ राज्य-ब्यूरो भी खोल दिये हैं।

द्वितीय आयोजन को पूर्ण करने के लिए देश में असंख्य कुशल कारीगरों, टैक्नीशियनों तथा विशेषज्ञों की आवश्यकता है; अतः माध्यमिक स्कूलों को अधिक से अधिक बहुधन्धी स्कूलों में परिवर्तित करने की आवश्यकता है। द्वितीय पंच-वर्षीय आयोजन में माध्यमिक शिक्षा के पुनर्संगठन के लिये ५१ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। प्रथम आयोजन में इस कार्य के लिए २२ करोड़ रुपये की व्यवस्था थी। माध्यमिक स्कूलों को बहुधन्धी स्कूलों में परिवर्तित करने का कार्य आगे बढ़ता जा रहा है। परन्तु इसकी प्रगति बहुत मन्द है। माध्यमिक शिक्षा के पुनर्निर्माण के लिए २·६९ करोड़ रुपया १९५८-५९ के चालू वर्ष में राज्य सरकारों को दिया गया है। यह रुपया अधिकांश में शिक्षकों के वेतन-क्रम में सुधार करने में व्यय होगा। इसके अतिरिक्त ४.८ करोड़ रुपये की व्यवस्था १९५८-५९ में माध्यमिक शिक्षा की अन्य योजनाओं को पूर्ण करने के लिए की गई है। द्वितीय आयोजन में माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में होने वाली प्रगति का वर्णन अन्यत्र किया जायगा।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

माध्यमिक शिक्षा की कुछ समस्यायें :

१. उद्देश्य : भारत में अँग्रेजी स्कूलों की स्थापना का उद्देश्य प्रारम्भ से ही शासन संचालन के लिये शिक्षित अफसर व लेखक तैयार करना रहा था, दुर्भाग्य से थोड़ा बहुत आज भी यह उद्देश्य यथावत् बना हुआ है। वस्तुत: माध्यमिक शिक्षा आज भी भारत में उच्च उद्देश्य विहीन है। इसका एक मात्र उद्देश्य या तो विश्वविद्यालय में प्रवेश कराना अथवा क्लर्क बना देना हो गया है। यही कारण है कि आज हम भारत में कालेजों को प्राय: ऐसे विद्यार्थियों से भरा हुआ पाते हैं जो कि अधिकांश में यह भी नहीं जानते कि वे क्यों शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं अथवा किस उद्यम के लिये अपने को तैयार कर रहे हैं। वे केवल इसलिये स्कूल पहुँच जाते हैं क्योंकि उन्हें घरों से पढ़ने के लिये भेजा जाता है। स्कूलों में या तो अपनी सुविधानुसार अथवा साथियों की राय से वे कुछ ऐसे सरल विषयों को चुन लेते हैं, जिनमें थोड़ा बहुत पढ़ने से ही वे कम से कम परीक्षा में तो सफल हो ही सकें। इस सफलता का क्या उद्देश्य होगा और उनके भावी-जीवन में उसका क्या स्थान होगा, इसकी ओर सम्भवत: वे कभी नहीं देख पाते। वास्तव में माध्यमिक शिक्षा विश्वविद्यालय की पूरक न होकर एक स्वत:पूर्ण स्वतन्त्र इकाई होनी चाहिये; इसके अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी यह आत्मविश्वास अनुभव करे कि वह एक मंजिल पर पहुँच गया है और तुलनात्मक दृष्टि से कुछ स्वतन्त्र कार्य करने को भी समर्थ है। उसे जीवन के लिये अपने आप को तैयार समझना चाहिये न कि विश्वविद्यालय के लिये। इस प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों ही प्रकार का होना चाहिये।"

किसी व्यक्ति के जीवन निर्माण में उसकी किशोरावस्था का क्या महत्त्व है इसे शिक्षा-विशारद भली भाँति जानते हैं। ११ वर्ष से १८ वर्ष तक का समय विद्यार्थी के जीवन-निर्माण का युग है और यही समय उसके माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने का है। अत: हमारी माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य बालक के शरीर, मस्तिष्क तथा चरित्र का पूर्ण विकास ही है जिससे उसके अन्दर नेतृत्व की भावना का विकास हो सके और वह देश का भावी नेता बन कर आत्मविश्वास के साथ प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सके। "एक प्रकार से हाईस्कूल राष्ट्र की शिक्षा-पद्धति की रीढ़ है। अत: नेताओं तथा जीवन के विभिन्न अंगों के लिये विशेषज्ञों को तैयार करने की शिक्षा के लिये देश को इन्हीं हाईस्कूलों की ओर देखना चाहिये।"

आज भारत स्वतन्त्र है और यहाँ धर्म निरपेक्ष जनतन्त्र की स्थापना हो चुकी है। नये भारत के समक्ष आज विभिन्न प्रकार की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सांस्कृतिक समस्यायें हैं। ऐसी स्थिति में भारत में माध्यमिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य हैं—छात्रों के चरित्र का निर्माण जिससे एक उत्तरदायी स्वतन्त्र नागरिक के रूप में जनतन्त्रीय सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करने के लिये वे क्रियात्मक रूप से सहयोग प्रदान कर सकें। दूसरे, उनकी व्यावहारिक तथा व्यवसायिक क्षमता में वृद्धि करना जिससे वे देश का आर्थिक निर्माण करके उसे समृद्धिशाली बना सकें। तीसरे, उनके व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास; अर्थात् उनकी साहित्यिक, कलात्मक तथा सांस्कृतिक अभिरुचियों का विकास जो कि आत्माभिव्यंजना तथा व्यक्तित्व के पूर्ण-विकास के लिये आवश्यक है। अन्त में इसका उद्देश्य है नेतृत्व के गुणों का विकास। दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे वर्तमान माध्यमिक शिक्षालय इन उद्देश्यों की पूर्ति बहुत कम कर रहे हैं। अतः आवश्यक यह है कि हम न केवल विद्यार्थियों को ही, वरन् उनके शिक्षकों तथा अभिभावकों को भी इसके उद्देश्य के विषय में पर्याप्ततः अवगत करा दें।

२. **पाठ्यक्रम** : हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को देखने से विदित होता है कि सम्भवतः एक शताब्दि से इस समस्या पर कोई मौलिक चिन्तन और तदनुसार कार्य नहीं किया गया हैं। पाठ्यक्रम का वास्तविक व व्यावहारिक जीवन तथा बालक के वातावरण से कोई सम्बन्ध ही नहीं प्रतीत होता। वह एक पूर्व-निर्धारित पाठ्यक्रम को बिना जिज्ञासा, बिना कौतूहल और बिना समझे अथवा सराहना किये हुए यन्त्रवत् पढ़ता है, क्योंकि उसका लक्ष्य परीक्षा में सफल होकर एफ० ए० या बी०ए० में प्रवेश करना अथवा शीघ्र ही इस योग्य बन जाना है कि वह किसी कार्यालय में लेखक बन सके; कहने की आवश्यकता नहीं कि पाठ्यक्रम की अनुपयुक्तता के कारण हमारे देश में मानव-शक्ति का वृहत् क्षय हो रहा है। बिना उपयुक्त व विभिन्न विषयों की शिक्षा के हम फैक्टरी निर्मित पदार्थों की भाँति एक ही प्रकार के युवक उत्पन्न करते जा रहे हैं, जिनमें मौलिकता अथवा आविष्कारक बुद्धि का अभाव है। माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त बालक जब व्यावहारिक संसार में आता है तो अपने आपको एक ऐसा अजनबी पाता है जो कि अपने वातावरण के अनुकूल नहीं बैठता।

आवश्यकता इस बात की है कि माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम बहुत विभिन्न व विशाल हो और विशेषज्ञों द्वारा बालक की रुचियों का पता लगाने के उपरान्त उसे उसमें से मनोनुकूल व उपयोगी विषय लेने के लिये प्रोत्साहित व दीक्षित किया जाय। लगभग ८५ प्रतिशत भारतीय जनता गाँवों में निवास करती है। अतः हमारा पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये जो कि प्रमुख ग्रामीण उद्योगों जैसे; कृषि, डेरी, पशु-पालन तथा अन्य घरेलू उद्योगों से सम्बन्ध रखे। इसके साथ ही आधुनिक उद्योगों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिये। उदार साहित्यिक शिक्षा की भी हम अवहेलना नहीं कर

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सकते । वास्तव में जो पाठ्यक्रम उत्तर-बेसिक-शिक्षा के लिए निश्चित किया गया है, वही वर्तमान अवस्था में एक उपयुक्त पाठ्यक्रम है।

३. अनुशासन : अनुशासन की समस्या आज केवल माध्यमिक शिक्षा क्षेत्र में ही नहीं, अपितु अखिल विद्यार्थी वर्ग की एक देशव्यापी समस्या बन चुकी है। विद्यार्थियों में इस बढ़ती हुई अनुशासनहीनता के क्या कारण हैं? एक तो विद्यार्थी पर सम्पूर्ण समाज की छाया पड़ रही है, हमारे देश में ही आज नैतिक स्तर गिर जाने से जीवन के उच्च मूल्यों का अभाव है। हमारे अधिकांश विद्यार्थी, शिक्षक तथा अभिभावक सभी कुछ सीमा तक उच्च उद्देश्यों को भूलकर उच्छृङ्खल तथा उत्तरदायित्वविहीन हो बैठे हैं। दूसरे, गत कई दशकों में होने वाली देश की राजनैतिक-क्रान्ति ने भी विद्यार्थियों को कुछ सीमा तक अनुशासनविहीन बनाया है। स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करते समय प्राय: देश के राजनैतिक नेता विद्यार्थियों से हड़ताल करने तथा राजनैतिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने के लिए उनका आह्वान करते थे। अब देश स्वतन्त्र होने पर भी वही संस्कार और प्रवृत्तियाँ विद्यार्थियों में कार्यशील हैं। तीसरा कारण है वर्तमान दूषित परीक्षा-प्रणाली। आज देश के विद्यार्थी परीक्षा में सफल होने के अनुचित साधन अपनाने में भी नहीं हिचकते जो अति उग्र रूप ले चुके हैं। यहाँ तक इस सम्बन्ध में हत्या जैसे जघन्य अपराधों पर भी उतर आते हैं। परीक्षा भवन में किताबें ले जाना, नकल करना तथा कुछ पतित-शिक्षकों से बेधड़क होकर सहायता लेना इत्यादि बातें तो आज एक साधारण घटना बनती जाती हैं। चौथा कारण है शिक्षकों की दयनीय आर्थिक दशा और परिणामत: उनमें उत्तरदायित्व तथा नैतिकता का ह्रास। खेद का विषय है कि आर्थिक विषमताओं के भयङ्कर थपेड़ों से व्यथित आज का शिक्षक कुछ सीमा तक कर्त्तव्यपथ से च्युत हो चुका है। स्कूलों में होने वाली घटनाओं तथा विद्यार्थियों में बढ़ने वाले असंयम के प्रति वह उदासीन सा प्रतीत होता है। यहाँ तक कि विद्यार्थियों में सद्भावनाओं का संचार करने अथवा उनके समक्ष संयम का आदर्श रखने में भी वह असमर्थ रहता है; कोई कारण नहीं कि शिक्षकों के सच्चे प्रयत्न करने पर विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता बनी रहे। इनके अतिरिक्त अभिभावकों की अपने बालकों के चरित्र तथा व्यवहार के सम्बन्ध में अवहेलना, सिनेमा, राजनीतिज्ञ-शिक्षक, कुछ ऐसी संस्थाओं का प्रादुर्भाव जो कि बालकों की कोमल भावनाओं का अपने स्वार्थ के लिए शोषण करती हैं, अतिरिक्त पाठ्य-कार्यक्रमों (Extra-curricular activities) तथा सामाजिक जीवन का अभाव एवं जातीय पक्षपात इत्यादि अन्य कारण हैं जो कि विद्यार्थी-वर्ग में अनुशासनहीनता के लिए उत्तरदायी हैं।

समय-समय पर देश के विद्वानों तथा शिक्षा-विशेषज्ञों ने इस पर प्रकाश डाला

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

है और चेतावनी दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि यदि समय रहते हमने इस समस्या को हल नहीं किया तो हमारी शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य ही नष्ट हो जायगा। माध्यमिक शिक्षा वह धरातल है जिस पर हम जीवन का भावी-भवन निर्माण करते हैं। अनुशासन तथा चरित्र सम्बन्धी अन्य गुणों का विकास बालक की किशोरावस्था में ही हो जाता है। अतः हमें उसके अन्दर उच्चगुणों का विकास करके विनय तथा अनुशासन की की भावना का संचार करना चाहिये।

४ व्यक्तिगत प्रबन्ध तथा प्रशासन : माध्यमिक शिक्षालयों का प्रबन्ध सरकार; कहीं-कहीं स्थानीय संस्थाओं (जैसे जिला बोर्ड और नगर-पालिकाओं) तथा व्यक्तिगत प्रबन्ध समितियों द्वारा होता है। जहाँ तक व्यक्तिगत प्रबन्ध का प्रश्न है, स्थिति बड़ी असन्तोषजनक है। प्रायः इन स्कूलों की आर्थिक दशा बड़ी दयनीय होती है। न उनके पास भवन है; न पर्याप्त सज्जा, फर्नीचर तथा पुस्तकालय इत्यादि ही। ऐसे स्कूलों में शिक्षकों की स्थिति भी हर्षप्रद नहीं है। शिक्षकों को कम वेतन देना, अथवा थोड़े वेतन पर अदीक्षित शिक्षक रख लेना, अथवा किसी भी शिक्षक को व्यक्तिगत ईर्ष्या या अप्रसन्नता से चाहे जब निकाल देना, इत्यादि कुछ ऐसे दोष हैं जिनसे हमारे माध्यमिक शिक्षालयों की प्रगति में बाधा पहुँच रही है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों अथवा जातियों के नाम पर स्थापित हुए शिक्षालय तो राष्ट्र के लिए लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक कर रहे हैं। ऐसी थोड़ी ही संस्थाएँ हो सकती हैं जहाँ जातीयवाद का ताण्डव नृत्य न हो रहा हो। कुछ वैयक्तिक संस्थाएँ देश में ऐसी भी हैं जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा सराहनीय कार्य किया है; किन्तु कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उनके कार्य अधिकांश में असन्तोषजनक रहे हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत प्रबन्ध-समितियों के सदस्यों में अधिकांश लोग ऐसे होते हैं जिन्हें शिक्षा अथवा शिक्षा-समस्याओं से कोई रुचि नहीं है। गाँवों में तो स्थिति और भी अधिक भयानक है, जहाँ स्थानीय-राजनीति के दलदल में फँसे हुए कुछ अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित ग्रामीण स्कूलों को व्यक्तिगत प्रभाव व प्रतिष्ठा का प्रतीक समझकर भिन्न-भिन्न प्रकार से उनका शोषण करके शिक्षाहित को आघात पहुँचा रहे हैं। ऐसी अवस्था में यदि शिक्षकों की नौकरी की सुरक्षा न होने अथवा उन्हें अन्य प्रकार का असन्तोष होने के कारण शिक्षा का मानदंड गिरता जा रहा है तो आश्चर्य ही क्या है? स्कूलों में शिक्षक-राजनीतिज्ञों का भी भय बढ़ता जा रहा है, जिन्हें प्रबन्ध-समितियों से कभी-कभी पोषण मिलता है।

शिक्षा के प्रशासन के विषय में यहाँ एक बात और कहना आवश्यक होगा। प्रायः देखा गया है कि राजकीय शिक्षा-विभाग के कर्मचारियों, प्रधानतः निरीक्षण विभाग की अक्षमता से भी प्रबन्ध में बड़ी शिथिलता आ गई है। वस्तुतः निरीक्षण-विभाग की

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उपेक्षा के कारण व्यक्तिगत संस्थाओं का प्रवन्ध बहुत भ्रष्ट होता जा रहा है। कहीं-कहीं पर तो यहाँ तक देखा जाता है कि इन्सपैक्टर लोग स्कूलों के प्रवन्धकों से मिलकर अनियमित कार्य करवाते हैं।

अतः उपर्युक्त दोषों को दूर करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि माध्यमिक शिक्षा-क्षेत्र में सरकार को अपने उत्तरदायित्व को अधिक समझना चाहिए। यदि इस समय माध्यमिक शिक्षा का राष्ट्रीयकरण व्यावहारिक नहीं प्रतीत होता तो कम से कम प्रवन्ध को सुधारा तो अवश्य जा सकता है। उत्तर-प्रदेश में प्रवन्ध-समितियों के सुधार के लिए सरकार ने एक समिति स्थापित की थी जो कि 'रघुकुलतिलक समिति' के नाम से विख्यात है। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की थी कि प्रवन्ध-समितियों के सुधार के लिए आवश्यक है कि उनमें शिक्षकों का एक प्रतिनिधि तथा ३ सदस्य शिक्षा-विभाग द्वारा मनोनीत किये जायें। किन्तु व्यक्तिगत प्रवन्ध-समितियों के विरोध के फलस्वरूप यह रिपोर्ट आज तक केवल एक पवित्र आशा मात्र बनी हुई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि माध्यमिक शिक्षा के लिए एक वहुत बड़ा खतरा लेकर ही इस सुधार को टाला जा सकता है। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रवन्ध तथा शासन की समस्या एक बुनियादी समस्या है।

५. शिक्षा का मानदंड : आज यह बात प्रायः साधारण तौर से सुनाई पड़ती है कि जहाँ शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में मानदंड गिर गया है, वहाँ माध्यम शिक्षा में भी पतन हुआ है। निस्संदेह सरकार की नीति प्रसार की रही है, किन्तु इस प्रसार से शिक्षा का मानदंड भी प्रभावित हुआ है। मानदंड के गिरने के अन्य कारणों में शिक्षकों का अल्प वेतन, अधिकांश शिक्षकों का अदीक्षित (Untrained) होना, शिक्षकों में अपने पेशे के प्रति असन्तोष, कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या सीमा से अधिक बढ़ जाना, स्कूलों में आवश्यक सामग्री व सज्जा का अभाव, प्रवन्ध समितियों की अकुशलता तथा कहीं-कहीं पर अनुचित हस्तक्षेप, शिक्षा निरीक्षकों की अक्षमता तथा कर्त्तव्य अवहेलना, स्कूलों की गिरी हुई आर्थिक अवस्था, विद्यार्थियों के लिये सिनेमा इत्यादि अन्य आकर्षणों का प्राचुर्य, कलुषित तथा अवैज्ञानिक परीक्षा-प्रणाली, शिक्षकों में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ उत्तरदायित्व का अभाव तथा कर्त्तव्य की अवहेलना, पाठ्य-पुस्तकों की अनुपयुक्तता और शिक्षा-समस्याओं के प्रति विद्यार्थियों के अभिभावकों तथा जनता की उदासीनता तथा अनभिज्ञता इत्यादि प्रमुख हैं। देश की वर्तमान पिछड़ी हुई अवस्था में सुधार करने के लिए शिक्षा के विस्तार की आवश्यकता अवश्य है; किन्तु विस्तार के साथ ही साथ हमें उसके मानदंड का भी ध्यान रखना पड़ेगा। पूर्व इसके कि यह समस्या संकट-विंदु पर पहुँचे, इसका हल आवश्यक है। तभी हम ऐसे युवक उत्पन्न कर सकेंगे जो कि सर्वांश

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में देश के समर्थ भावी नागरिक हो सकें और विश्व के अन्य राष्ट्रों के युवकों के समक्ष अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर सकें।

६. परीक्षा प्रणाली : भारत की साम्प्रदायकवादी सामाजिक तथा राजनैतिक प्रणाली से भी बुरी उसकी परीक्षा-प्रधान शिक्षा-पद्धति है। वास्तव में, मैट्रिक परीक्षा हमारी सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा पर शासन कर रही है। एक स्कूल की प्रतिष्ठा हाई-स्कूल के परीक्षाफल पर अधिक निर्भर है अपेक्षाकृत उस संस्था की वास्तविक शिक्षा श्रेष्ठता के। वास्तव में इस परीक्षा-वेदी पर ही आज बालक के सम्पूर्ण गुणों और शिक्षक के सम्पूर्ण प्रयत्नों का बलिदान किया जा रहा है। शिक्षा के अन्य लाभों की ओर से आँख मूंद कर बालक अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ परीक्षा में सफल होने में लगा देता है। इससे रटने की अमनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है और बालक बिना समझे हुए यंत्रवत् रटते चले जाते हैं। जो कुछ भी अपने मस्तिष्क में वे ठूँसते हैं, परीक्षा भवन में उसे उड़ेलने के बाद रिक्त-मस्तिष्क संसार में निकलते हैं। इस प्रकार वे व्यावहारिक संसार के लिये अनुपयुक्त हो जाते हैं। अतः बालकों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। वर्तमान परीक्षा-प्रणाली का प्रभाव शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की नैतिकता पर भी पड़ा है। ऐसी घटनायें आज साधारण रूप से सुनी जाती हैं कि परीक्षा भवन में विद्यार्थी अनुचित साधन अपनाते हैं। वर्ष भर तक न पढ़ने वाला विद्यार्थी परीक्षा-भवन में नकल के सहारे उत्तीर्ण हो जाता है। इसी प्रकार शिक्षकों में भी कुछ ऐसे तत्व पनप रहे हैं जिनके कारण वे परीक्षा में अनुचित पक्षपात करते अथवा उत्कोच तक लेते देखे जाते हैं। वास्तव में यह स्थिति लज्जानक होने के साथ ही साथ घोर आपत्तिजनक व गंभीर भी है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि इस परीक्षा-पद्धति के स्थान पर कोई वैज्ञानिक पद्धति रखी जाय जिससे वर्तमान दोषों के आवरण के हटने से शिक्षा का मुख उज्ज्वल हो सके। इस दिशा में पेप्सू राज्य के परीक्षण का उल्लेख किया जा सकता है जिसके अनुसार विद्यार्थी की आयु तथा कक्षा-कार्य के आधार पर प्राथमिक स्कूलों में बच्चों को तरक्की दी जाया करेगी।

संक्षेप में ये हमारी माध्यमिक शिक्षा के दोष हैं। अतः यह आवश्यक है कि देश को उन्नत करने तथा उसे सभ्य देशों की दौड़ में आगे रखने के लिये माध्यमिक शिक्षा का महत्त्व समझा जाय, क्योंकि वास्तव में आज भारतीय माध्यमिक शिक्षा हमारा 'सबसे दुर्बल संस्थान' (Weak Spot) है। बिना इसके सुधार के विश्वविद्यालय शिक्षा में किये गये सभी सुधार व्यर्थ हैं, वस्तुतः राष्ट्र की प्रगति ही असम्भव है। किसी भी देश की शिक्षा-प्रणाली में माध्यमिक शिक्षा अपना विशेष महत्त्व रखती है। प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक की शृङ्खला की यह बीच की कड़ी है। इसके

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दोषों के प्रभाव से अन्य दोनों शिक्षायें ही कलुषित हो जाती हैं, क्योंकि हाईस्कूल पास विद्यार्थी प्राथमिक स्कूलों में जाकर शिक्षक बनते हैं। यदि एक दोषपूर्ण शिक्षा को प्राप्त करके ये विद्यार्थी भविष्य में जाकर शिक्षक बनेंगे तो निस्संदेह उन्हीं दोषों को अपने विद्यार्थियों में हस्तान्तरित कर देंगे। इसके अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त ही विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में जाकर प्रवेश लेते हैं। अतः उनके माध्यमिक शिक्षाकाल के दोष उनके साथ विश्वविद्यालयों में भी चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में माध्यमिक शिक्षा के दोषों का उन्मूलन करना अत्यन्त आवश्यक है।

विश्वविद्यालय शिक्षा :

सन् १९३७ के उपरान्त विश्वविद्यालय शिक्षा में पर्याप्त विकास हुआ है। माध्यमिक शिक्षा का प्रसार होने के कारण विद्यार्थियों की संख्या विश्वविद्यालयों में भी बढ़ने लगी। सभी वर्ग के स्त्री व पुरुषों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ने से भी इसका विकास हुआ। साथ ही देश की राजनैतिक व आर्थिक स्थिति के कारण भारत के तरुणों में जीवन-पथ पर आगे बढ़ कर उन्नति तथा राष्ट्र-सेवा करने की भावनाओं में वृद्धि होने से विश्वविद्यालयों की संख्या में भी वृद्धि होने लगी। युद्धकाल में भारत के व्यापारियों ने बड़े-बड़े मुनाफे कमाये थे। अतः उन्होंने देश में उच्च शिक्षा के प्रसार के लिये उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी। सरकार को भी युद्ध के कारण कुशल तथा प्रशिक्षित व्यक्तियों की अधिक आवश्यकता पड़ने लगी और उसने विश्वविद्यालयों के अनुदानों में वृद्धि कर दी। युद्धोत्तरकाल में भी उपर्युक्त सभी कारण लगभग यथावत् बने रहे। इन सब बातों का परिणाम यह निकला कि भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा में अभूतपूर्व अभिवृद्धि होने लगी है। विभाजन से पूर्व भारत में कुल २१ विश्वविद्यालय थे। १९४८ में केवल १९ विश्वविद्यालय रह गये थे। सन् १९५८ में इनकी संख्या ३७ हो गई है। इनमें से अकेले उत्तर प्रदेश में ८ विश्वविद्यालय हैं। यह संख्या सभी राज्यों से अधिक है। दिसम्बर १९५८ में उत्तर प्रदेश विधान सभा ने एक कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये विधान पास किया है। निकट भविष्य में मेरठ तथा कानपुर नामक नगरों में भी नये विश्वविद्यालय खुलने की योजना विचाराधीन है।

भारत में गत दशाब्दि में विश्वविद्यालय शिक्षा के आकार में बहुत वृद्धि हुई है। सन् १९४८ में भारत के प्रमुख राज्यों में १ लाख ७९ हजार विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा पाते थे। सन् १९५६ के अन्त तक इनकी संख्या ४ लाख ६६ हजार से भी ऊपर हो गई; अर्थात् ८ वर्षों में ७३ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इधर संख्या

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में और भी अधिक वृद्धि हुई है। इसी प्रकार टेक्नीकल व व्यावसायिक शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या भी ४४ हजार से बढ़कर लगभग १½ लाख हो गई है।

सन् १९५६ में सम्पूर्ण भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कला तथा विज्ञान के ७३६ कालेज जिनमें ३५ अनुसंधानशालायें भी सम्मिलित थीं। टैक्नीकल तथा व्यावसायिक कालेजों की संख्या ३४६ थी। उसी वर्ष विश्वविद्यालय स्तर पर सामान्य शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या पौने ६ लाख के लगभग तथा टक्नीकल व व्यावसायिक शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या १½ के लगभग थी।

जहाँ तक उच्च शिक्षा पर व्यय का सम्वन्ध है सन् १९४८ में भारत के प्रमुख राज्यों में विश्वविद्यालयों तथा कालेजों पर सामान्य शिक्षा पर ५.८ करोड़ रुपया से बढ़कर १९५६ में १७.३ करोड़ रुपया तक हो गया। व्यावसायिक कालेजों के व्यय में तो आश्चर्यजनक अभिवृद्धि हुई, अर्थात् १९४८ ई० में १.८२ करोड़ के स्थान पर १९५६ में ५.५ करोड़ रुपया हो गया। सम्पूर्ण भारत में मार्च १९५६ के सामान्य तथा व्यावसायिक उच्च शिक्षा पर क्रमशः २२.१७ करोड़ तथा ६.९९ करोड़ रुपया व्यय किया गया। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन काल में विश्वविद्यालय शिक्षा पर ५७ करोड़ रुपया व्यय किया जा रहा है जो कि शिक्षा पर द्वितीय आयोजन में किये जाने वाले ३०७ करोड़ रुपया का १८.६ प्रतिशत है। प्रथम आयोजन में विश्वविद्यालय शिक्षा पर केवल १५ करोड़ रुपया व्यय किया गया था। इस ५७ करोड़ रुपये में से २२.५ करोड़ रुपया राज्य सरकारों द्वारा तथा ३४.५ करोड़ केन्द्र द्वारा व्यय किया जायगा। केन्द्र द्वारा व्यय की जाने वाली धनराशि में से २७ करोड़ रुपया विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन के द्वारा व्यय होगा। इस रुपये के अतिरिक्त ५७.६ करोड़ रुपया टेक्नीकल, वैज्ञानिक, कृषि तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी उच्च विश्वविद्यालय स्तरीय शिक्षा पर व्यय होगा।

भारत में अधिकांश विश्वविद्यालय भाषावार क्षेत्रों के आधार पर स्थापित किये गये हैं। सन् १९४८ ई० में (पूर्व) पंजाब विश्वविद्यालय खुला। सन् १९४८ में ३ विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई : गोहाटी (आसाम) जम्मू व काश्मीर तथा रुड़की इंजीनियरी विश्वविद्यालय (उत्तर प्रदेश)। इनमें गोहाटी विश्वविद्यालय सम्बन्धक स्थानीय व शिक्षण (Affiliating, Residential and Teaching) प्रकार का है। जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय में उच्च-शिक्षा पूर्णत: निशुल्क दी जाती है। सन् १९४९ में पूना व बड़ौदा विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। बड़ौदा विश्वविद्यालय की विशेषता यह है कि यहाँ ललित कलाओं, गृह-विज्ञान, भारतीय संगीत तथा सामाजिक सेवाओं का विशेष अध्ययन कराया जाता है १९५० में बम्बई राज्य में गुजरात तथा कर्नाटक में दो सम्बन्धक विश्वविद्यालय और खुल गये। सन् १९५१ में बिहार में पटना

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विश्वविद्यालय को दो भागों में विभाजित करके एक पटना तथा दूसरा विहार विश्वविद्यालय बना दिया गया है। सन् १९५१-५२ में बम्वई में स्त्री शिक्षा के लिये एक पूर्व-स्थित संस्था 'श्रीमती नाथेवाई दामोदर थैकर्से भारतीय महिला विद्यालय (S. N. D. T.) को एक विश्वविद्यालय की पदवी दे दीगई। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण संस्था है और अपना अखिल भारतीय महत्त्व रखती है। सन् १९५१ में भारत सरकार ने विश्व-भारती को भी अपने अन्तर्गत ले लिया। यह विश्वविद्यालय १९२९ में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने स्थापित किया था। केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में वनारस, अलीगढ़ तथा दिल्ली तीन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त यह चौथा विश्वविद्यालय है। ललितकलायें, शिक्षा, दर्शन तथा कला व विज्ञान का शिक्षण इस विश्वविद्यालय की विशेषता है। देश के ३१वें विश्वविद्यालय की स्थापना आन्ध्र राज्य में ३ सितम्बर, १९५५ को तिरूपथी में हुई। इस विश्वविद्यालय का नाम श्री बैंकटेश्वर विश्वविद्यालय है। इसके उपरान्त सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ आनन्द, गोरखपुर, जबलपुर, कुरुक्षेत्र; विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन; संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी इत्यादि विश्वविद्यालयों की स्थापना आगामी तीन वर्षों में हो गई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में क्रमश: उन्नति होती जा रही है। प्रतिवर्ष उच्च शिक्षा के नये विषय तथा विश्वविद्यालयों में नवीन विभाग खुलते जा रहे हैं। अनुसन्धानों के आकार व श्रेष्ठता में भी पर्याप्त सुधार हुआ है। पाठ्यक्रमों में नवीन विषयों के समावेश से आधुनिक भारत की अधिक से अधिक शिक्षा सम्वन्धी आवश्यकताओं व महत्त्वकांक्षाओं को पोषण मिल रहा है।

देश की स्वतन्त्रता के उपरान्त विश्वविद्यालयों में शिक्षण के माध्यम का प्रश्न बड़ा विवादग्रस्त बना रहा। भाषावार प्रान्तों के आधार पर नये विश्वविद्यालयों की स्थापना होने से यह विवाद और भी अधिक वल पकड़ गया। बहुत से विश्वविद्यालयों की यह स्वाभाविक इच्छा थी कि भारतीय भाषाओं को ही शिक्षण का माध्यम बनाया जाय। सरकार का भी मत यह था कि यद्यपि शिक्षण के माध्यम को बदलना आवश्यक है, तथापि यह परिवर्तन क्रमश: धीरे-धीरे ही करना चाहिये, ताकि अध्यापकों और विद्यार्थियों को अनावश्यक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े। इस प्रश्न पर विचार करने के उद्देश्य से मई, १९४८ में सभी विश्वविद्यालयों के उप-कुलपतियों का एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन ने बड़े मूल्यवान् सुझाव दिये, जिनमें से अधिकांश सुझाव भारतीय विद्यालय कमीशन ने अपनी सिफारिशों में सम्मिलित कर लिये हैं। विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन, राज्य भाषा कमीशन तथा कुँजरू समिति ने भी क्रमश: १९४९, १९५६ व १९५७ में माध्यम पर विचार किया और निर्णय किया कि यद्यपि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अन्ततोगत्वा हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषायें ही शिक्षण का माध्यम होंगी, तथापि अभी शीघ्रता न की जाय।

विश्वविद्यालय शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह मत रहा है कि प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा की तुलना में देश में विश्वविद्यालय शिक्षा का आकार बढ़ता जा रहा है। साथ ही वहाँ जो शिक्षा दी जाती है वह अधिकांश में शहरी है जिसमें व्यावसायिक व टैक्नीकल शिक्षा का अभाव है। 'अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड' तथा 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद' ने भी इन्हीं विचारों का समर्थन किया। जनवरी, १९४८ में एक 'अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन' भी हुआ, जिसमें इस बात की सिफारिश की गई कि उच्च शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र का पुनरीक्षण करने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की जाय। अतः भारत सरकार ने डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में इस कमीशन की १९४८ ई० में नियुक्ति की, भारत सरकार ने कमीशन की सभी सिफारिशों को सामान्यतः मान कर उन्हें देश में विश्वविद्यालय शिक्षा के विकास के लिए एक आधार मान लिया है। विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन ने एक महत्वपूर्ण सिफारिश की थी कि ब्रिटेन की 'यूनीवर्सिटी ग्रान्ट्स कमेटी' के आधार पर भारत में भी एक इसी प्रकार की समिति की स्थापना की जाय, जोकि विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षा की अन्य संस्थाओं को अनुदान देने के विषय में सरकार को सलाह दे। इस सुझाव के आधार पर भारत सरकार ने एक 'विश्वविद्यालय अनुदान समिति' की स्थापना की। इधर एक महत्वपूर्ण कदम सरकार ने मानव-विज्ञानों (Humanities) में अनुसन्धान को प्रोत्साहन देने के लिए भी उठाया है। वास्तव में ऊँची कक्षाओं तक पहुँचने पर बहुत से विद्यार्थी कला-विषयों को छोड़कर विज्ञान सम्बन्धी विषयों में आ जाते हैं, क्योंकि विज्ञानों में उन्हें अनुसन्धान की अधिक सम्भावनाएँ निहित हुई प्रतीत होती हैं। यही कारण है भारत सरकार १०० छात्रवृत्तियाँ मानव-विज्ञानों में एम० ए० पास करने के उपरान्त अनुसन्धान करने के लिए विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष देती है।

विश्वविद्यालय शिक्षा के सम्बन्ध में बहुत से शिक्षा-विशारदों तथा राजनैतिक नेताओं का यह मत है कि यह आवश्यकता से अधिक हो गई है और देश में अब उच्च शिक्षा को और अधिक प्रोत्साहन देना हानिकारक है। उनका यह भी कहना है कि विश्वविद्यालय शिक्षा को प्रोत्साहन देने से प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की अवहेलना हो जाती है। वास्तव में यह मत भ्रान्तिपूर्ण है। निस्संदेह देश में प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा हमारी आवश्यकताओं से बहुत कम हैं; किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि विश्वविद्यालय शिक्षा प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा की बलि देकर स्वयं आगे बढ़ रही है। वास्तव में यदि हम भारत की विश्वविद्यालय शिक्षा की स्थिति की अन्य देशों की

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उसी स्तर की शिक्षा की स्थिति से तुलना करें तो प्रतीत होगा कि विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रसार देश की आवश्यकताओं से अधिक नहीं हो पाया है। अन्य उन्नत देशों के स्तर पर आने के लिए अभी भारत को बहुत प्रयत्न करना है।

भारत में विश्वविद्यालयों में ३ वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम का प्रश्न लगभग गत ४० वर्ष से अनिर्णीत अवस्था में पड़ा हुआ है। सन् १९१७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन ने ३ वर्ष के डिग्री पाठ्यक्रम की सिफारिश की थी। सन् १९४१ ई० में दिल्ली विश्वविद्यालय ने अपने यहाँ इसे लागू भी कर दिया। किन्तु अन्य विश्वविद्यालयों ने इस पर विचार तक नहीं किया। इसके उपरान्त १९४४ ई० में सार्जेन्ट कमेटी व केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने स्पष्ट शब्दों में इस सिफारिश को दोहराया। १९४९ ई० में विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन ने भी यही सिफारिश की। इनके अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षा कमीशन तथा अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड ने भी ३ वर्ष के डिग्री कोर्स की सिफारिश की। सन् १९५६ ई० में शिक्षा मंत्री सम्मेलन ने इस प्रश्न पर पुनः विचार किया और विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन के अध्यक्ष श्री देशमुख की अध्यक्षता में इस योजना के "देश के सभी विश्वविद्यालयों तथा सम्बन्धित कालेजों में कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में खर्चे का अनुमान लगाने तथा तत्सम्बन्धी अन्य समस्याओं पर विचार करने" के उद्देश्य से एक समिति की स्थापना करदी। सन् १९५७ ई० में शिक्षा मंत्री सम्मेलन ने इस समिति की सभी सिफारिशों को मान लिया। समिति ने सिफारिश की है कि इस योजना का व्यय एक ओर तो केन्द्रीय सरकार तथा विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन को उठाना चाहिये और दूसरी ओर राज्य सरकारों तथा वैयक्तिक शिक्षा प्रेमियों को। सन् १९५८ ई० तक देश के लगभग ३० विश्वविद्यालयों ने या तो ३ वर्ष के डिग्री पाठ्यक्रम को अपने यहाँ कार्यान्वित कर दिया है अथवा सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया है।

इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में अन्य घटना है सामान्य शिक्षा (General Education) का सूत्रपात। गत वर्षों में यह बात सभी क्षेत्रों में स्वीकार करली गई है कि उच्च शिक्षा का आधार अधिक विस्तीर्ण होना चाहिये। विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन ने तो इस समस्या का बहुत ही विशद अध्ययन करके अपने सुझाव रखे हैं। सन् १९५५ ई० में उप-कुलपतियों की एक समिति ने इस सम्बन्ध में कुछ सिफारिशें प्रस्तुत कीं जिनके फलस्वरूप भारत सरकार ने सामान्य शिक्षा के अध्ययन करने के लिये इंगलैंड व अमरीका इत्यादि देशों में एक शिष्ट मण्डल भेजा जिसने अगस्त १९५६ ई० में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। उसके उपरान्त विभिन्न विश्वविद्यालयों ने हैदराबाद, बड़ौदा, अलीगढ़, दिल्ली तथा कलकत्ता में क्षेत्रीय सम्मेलनों

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में इस प्रश्न पर विचार करके शिष्ट मण्डल के सुझावों को स्वीकार कर लिया है और अब प्राय: सभी विश्वविद्यालयों ने अपने ३ वर्ष के डिग्री पाठ्यक्रम में इस विषय को स्थान देना सिद्धान्तत: स्वीकृत कर लिया है और कुछ ने इस दिशा में उचित व आवश्यक परिवर्तन के साथ सूत्रपात भी कर दिया है।

ग्रामीण उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से देश में १० ग्रामीण उच्च शिक्षा कालेजों की स्थापना कर दी गई है जहाँ कृषि, इंजिनियरी तथा सामान्य शिक्षा दी जाती है।

विश्वविद्यालयों में अनुसंधान : भारतीय विश्वविद्यालयों में २०वीं शताब्दि के दूसरे दशक से कुछ अनुसन्धान व गवेषणा का कार्य प्रारम्भ हो गया था। किन्तु प्रगति बड़ी धीमी रही। जब तक हमारे विश्वविद्यालय सम्बन्धक (Affiliating) प्रकार के थे, कुछ कालेजों में थोड़ा बहुत अनुसन्धान हुआ। निस्सन्देह कुछ कार्य तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का हुआ, जिसके प्रणेताओं में सर भंडारकर (पूना), सर गंगानाथ (इलाहाबाद), प्रो० कुप्पूस्वामी शास्त्री (मद्रास), सर जगदीशचन्द्र बोस तथा सर पी० सी० रे (कलकत्ता), प्रो० काश्यप (लाहौर) तथा सर सी० वी० रमन (बंगलौर) इत्यादि प्रमुख हैं। ये अनुसन्धान अधिकांश में विज्ञानों में हुए। सर आसुतोष मुकर्जी के प्रयत्नों से कलकत्ता विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम व्यवस्थित अनुसन्धान का कार्य १९१४ ई० में प्रारम्भ हुआ था। तब से प्राय: सभी विश्वविद्यालयों में विज्ञान तथा कलाओं में अनुसन्धान हो रहे हैं। विश्वविद्यालयों के योग्य शिक्षकों ने अधिकतर इस ओर ध्यान दिया है और अनुसन्धान क्षेत्र में नेतृत्व भी किया है। अनुसन्धान करने वाले विद्यार्थियों के लिये पी-एच० डी० (Ph. D.), डी० लिट् (D. Litt.) तथा डी० एस-सी० (D. Sc.) इत्यादि की उपाधियाँ प्रारम्भ की गईं। सरकार ने भी इस ओर ध्यान दिया और विश्वविद्यालयों को अनुसन्धान के लिए विशेष अनुदान तथा विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान कीं। कुछ विद्यार्थी विदेशों में इङ्गलैंड, अमेरिका, जर्मनी, जापान तथा फ्रांस इत्यादि में भी भेजे गये। इस प्रकार इस दिशा में कुछ प्रगति हुई है। इतना अवश्य है भारत जैसे विशाल देश में यह प्रगति नगण्य है। जहाँ पर हम चाहते हैं कि अनुसन्धान करने वालों की संख्या में वृद्धि हो, वहाँ आवश्यक यह भी है कि उनके द्वारा उत्पन्न किया हुआ कार्य उच्चकोटि का हो, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रखा जा सके।

भारत में अनुसंधान क्षेत्र में धीमी प्रगति के निम्नलिखित कारण हैं। एक तो विश्वविद्यालयों में वेतनक्रम अपर्याप्त होने के कारण योग्य शिक्षक तथा विद्यार्थी अन्य

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सरकारी उच्च पदों पर चले जाते हैं। दूसरे, विश्वविद्यालयों में पर्याप्त सजा व सामग्री का अभाव है। तीसरे, ऐसे योग्य तथा अनुभवी शिक्षकों का अभाव है जिनके अन्तर्गत अनुसंधान किया जाय। जो शिक्षक अनुसंधान कराते हैं उन्हें शिक्षण कार्य भी पूरा-पूरा करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उनके पास अधिक समय या शक्ति अनुसंधान कराने की नहीं रहती। इसके अतिरिक्त बहुधा उन शिक्षकों को अनुसंधान कार्य के लिए कुछ वेतन इत्यादि भी नहीं दिया जाता अथवा अत्यन्त अल्प दिया जाता है। इसके अतिरिक्त हमारे विद्यार्थियों में भी साधारणत: अनुसंधान करने के लिए पर्याप्त मानसिक व नैतिक सामर्थ्य का अभाव है। अधिकांश विद्यार्थी आर्थिक कठिनाइयों के कारण भी अनुसंधान नहीं कर सकते। अन्त में देश के उद्योग-पतियों के सहयोग का भी इस क्षेत्र में अभाव है। किन्तु हर्ष का विषय है कि स्थिति में सुधार बड़ी तेजी से हो रहा है और सरकार तथा उद्योग-पति दोनों ही इसमें रुचि दिखला रहे हैं। पंच वर्षीय आयोजनों में अनुसन्धान पर पर्याप्त बल दिया गया है।

विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन (१९४९) :

नियुक्ति : भारतीय विश्वविद्यालयों के विकास के लिए कुछ योजनायें बनाने से पूर्व यह उचित समझा गया था कि उनकी आर्थिक तथा शिक्षण-सम्बन्धी अवस्था का दिग्दर्शन कर लिया जाय। अत: अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड तथा केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने भारत सरकार से भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा पर रिपोर्ट करने तथा देश की वर्तमान व भावी आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए सुधार तथा विकास के लिए सुझाव रखने के लिए, हंटर कमीशन के आधार पर एक कमीशन नियुक्त करने की सिफारिश की, जिसे सरकार ने स्वीकार कर लिया। और नवम्बर, १९४८ ई० में डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में एक विश्वविद्यालय कमीशन की नियुक्ति की। कमीशन का जाँच क्षेत्र (Terms of Reference) बहुत व्यापक था। उच्च शिक्षा सम्बन्धी किसी भी प्रश्न को ऐसा नहीं छोड़ा गया है जिस पर कुछ विचार न किया गया हो। अब तक नियुक्त किये जाने वाले सभी कमीशनों में इस विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन की रिपोर्ट अधिक पूर्ण, व्यापक तथा श्रेष्ठ है, तथा इसकी सिफारिशें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

१. शिक्षकों की समस्यायें : कमीशन ने विश्वविद्यालय शिक्षकों का चार श्रेणियों में वर्गीकरण कर दिया है : प्रोफेसर, रीडर, लैक्चरर तथा इंस्ट्रक्टर। इनके अतिरिक्त अनुसंधान अभिसदस्यों (Research Fellows) की नियुक्ति की सिफारिश भी की गई है। एक श्रेणी से दूसरी उच्च श्रेणी के लिए शिक्षकों की तरक्की केवल योग्यता के आधार पर होनी चाहिये। जूनियर तथा सीनियर पदों के स्थानों में २ : १

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

का अनुपात होना चाहिये। सेवा-निवृत (Retire) होने की उम्र ६० वर्ष होनी चाहिये, किन्तु प्रोफेसरों को ६४ वर्ष तक की आज्ञा दी जा सकती है। इनके अतिरिक्त कमीशन ने विश्वविद्यालय शिक्षकों के लिये प्रॉवीडैन्ट फन्ड, छुट्टी तथा काम करने के घंटे इत्यादि की मर्यादायें भी स्थिर करदी हैं और उनके लिये नवीन वेतन-क्रम भी नियत कर दिये हैं।

२. **शिक्षण मानदण्ड :** विश्वविद्यालयों में शिक्षण स्तर उठाने के लिये कमीशन ने प्रवेश की सीमा इन्टरमीडियेट पास होने के उपरान्त ही रखी, और सिफारिश की कि प्रत्येक राज्य तथा प्रान्त में उच्चकोटि के इन्टर कालेज स्थापित किये जायें। १० या १२ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त विद्यार्थियों का ध्यान विभिन्न उद्यमों की ओर आकर्षित करने के लिए, एक बड़ी संख्या में व्यावसायिक स्कूल खुलने चाहिए। हाईस्कूल तथा कालेज शिक्षकों के लिये 'रिफ्रेशर कोर्स' सङ्गठित करने चाहिए। विश्वविद्यालयों में कला तथा विज्ञान विभागों में ३,००० तथा सम्बन्धित कालेजों में १,५०० से अधिक विद्यार्थी न रखे जायें। ट्यूटोरियल-पद्धति को पूर्णत: संगठित करके नियमित रूप से चालू कर दिया जाय। विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों तथा प्रयोगशालाओं को आधुनिकतम साधनों से प्रचुर मात्रा में सज्जित कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिक्षकों द्वारा शिक्षण-विधि के सुधार पर भी जोर दिया गया।

३. **पाठ्यक्रम :** (कला तथा विज्ञान)—मास्टर डिग्री 'आॅनर्स' के एक वर्ष बाद तथा 'उत्तीर्ण-परीक्षा' (Pass Examination) के दो वर्ष बाद प्रदान की जानी चाहिए। विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक शिक्षालयों को साधारण-शिक्षा (General Education) के सिद्धान्तों तथा व्यावहारिक-ज्ञान (Theory and Practice) का अध्ययन प्रारम्भ कर देना चाहिये; तथा पाठ्य-क्रम और पाठ्य-वस्तु को शीघ्र ही तैयार करके उन्हें इन्टर तथा डिग्री कक्षाओं में प्रारम्भ कर देना चाहिये। प्रत्येक क्षेत्र में साधारण तथा विशिष्ट-शिक्षा का सम्बन्ध ज्ञात कर लेना चाहिये; तथा विभिन्न व्यवसायों के लिये विद्यार्थियों की रुचि ज्ञात करके उनके व्यक्तित्व के विकास की ओर ध्यान देना चाहिये।

४ **उत्तर-ग्रेजुएट-प्रशिक्षण तथा अनुसंधान (Post Graduate Training and Research) (कला व विज्ञान) :** कमीशन ने इस क्षेत्र में वर्तमान गिरी हुई अवस्था पर दुख प्रकट किया और कहा कि हमारे देश में अनुसंधान क्षेत्र में बहुत ही विशाल सुअवसर विद्यमान है अतएव विद्यार्थियों को हर प्रकार की सुविधायें प्रदान करके उन्हें अनुसंधान के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। एम० ए०

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

तथा एम-एस सी० कक्षाओं में प्रवेश अखिल भारतीय स्तर पर होना चाहिये तथा विद्यार्थियों और शिक्षकों में निकटतम सम्पर्क होना चाहिये। पी-एच० डी० (Ph. D.) के अध्ययन में कम से कम २ वर्ष का अनुसंधान-कार्य होना चाहिये। इसमें एक थीसिस के अतिरिक्त विद्यार्थियों के साधारण ज्ञान तथा विषय पर उनके अधिकार की जाँच करने के लिए एक मौखिक परीक्षा (Viva voce) भी होनी चाहिये। पी-एच० डी० में भी प्रवेश अखिल भारतीय आधार पर होना चाहिये। योग्य विद्यार्थियों के लिये अनुसंधान काल में अभिवृत्ति (Research Fellowships) मिलनी चाहिये। एम० एस-सी० तथा पी-एच० डी० के विद्यार्थियों को शिक्षा मन्त्रालय की ओर से छात्रवृत्तियाँ तथा निशुल्क स्थान मिलने चाहिये। विज्ञान विभागों में अतिरिक्त तथा योग्य शिक्षकों की नियुक्ति करनी चाहिये जो कि शिक्षण-कार्य मुक्त हों और केवल अनुसन्धान कार्य ही करावें। इनके अतिरिक्त ५ समुद्रीय बाइलोजिकल स्टेशनों की स्थापना की भी सिफारिश की गई; तथा बायोकैमिस्ट्री व बायोफिजिक्स इत्यादि में मौलिक अनुसंधान की आवश्यकता पर जोर दिया गया।

५. **व्यावसायिक शिक्षा : कृषि शिक्षा** के विषय में कमीशन की राय में कृषि-शिक्षा को एक राष्ट्रीय प्रश्न मान लेना चाहिये तथा प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षाक्रम में इसे प्रमुख स्थान देना चाहिये। कृषि-कालेजों में व्यावहारिक शिक्षा तथा अनुसन्धान पर विशेष जोर देना चाहिये। कृषि-कालेजों को नवीन ग्राम्य-विश्वविद्यालयों की स्थापना करके उनसे सम्बन्धित कर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त एक दीर्घ संख्या में प्रयोगात्मक फार्म तथा उच्चशिक्षा में अनुसन्धान और प्रयोगशालाओं को विस्तीर्ण करके उन्हें अधिक आर्थिक सहायता देनी चाहिये।

वाणिज्य की शिक्षा के लिये कमीशन ने सिफारिशें कीं कि अध्ययन में वाणिज्य के विद्यार्थियों को तीन या चार फर्मों या दुकानों में व्यावहारिक कार्य करने का सुअवसर मिलना चाहिये। ग्रेजुऐट होने के उपरान्त कुछ विद्यार्थी वाणिज्य की किसी एक शाखा में विशेषज्ञ बनने चाहिये। एम० कॉम० के विद्यार्थियों को भी पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित न रह कर व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

शिक्षा-विज्ञान के क्षेत्र में कमीशन ने अत्यन्त ही उपयोगी तथा वास्तविक सिफारिशें की हैं। कमीशन के अनुसार पाठ्यक्रमों में सुधार होना चाहिये तथा स्कूल-प्रैक्टिस को अधिक समय देना चाहिये। प्रैक्टिस के लिये उपयुक्त स्कूल का चुनाव होना चाहिये। ट्रेनिङ्ग कालेज के अधिकांश शिक्षक ऐसे वर्ग में से लेने चाहिये जिन्हें स्कूलों में शिक्षण का पर्याप्त अनुभव हो। शिक्षा सिद्धान्तों के पाठ्यक्रम (Courses of

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

Education Theory) लचीले हों और स्थानीय परिस्थितियों से मेल खाते हों शिक्षा में मास्टर डिग्री (M. Ed.) के लिये केवल ऐसे विद्यार्थियों को ही आज्ञा दी जाय जिन्हें कुछ वर्षों के षिक्षण-कार्य का अनुभव हो। प्रोफेसेरों और अन्य शिक्षकों की मौलिक रचनायें अखिल-भारतीय स्तर की होनी चाहिये।

इंजिनियरी तथा टैक्नोलाजी की शिक्षा के सम्वन्ध में कमीशन ने वर्तमान शिक्षालयों के सुधार तथा उच्चशिक्षा के अन्य स्कूलों के स्थापित करने की सिफारिश की पुस्तकीय ज्ञान के साथ ही साथ विद्यार्थियों को कारखानों (Workshops) में व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने की सुविधायें भी दी जाती चाहिये। देश तथा काल की माँग के अनुसार पाठ्यक्रम में उचित सुधार होना चाहिये। अनुसन्धान तथा उच्चशिक्षा के लिए केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त इंजिनियरी के कालेजों की पुनर्स्थापना तथा संगठन के विषय में भी कमीशन ने विशेष सुझाव रखे।

कानून के कालेजों के विषय में कमीशन ने कहा कि इनका पूर्ण पुनर्संगठन होना चाहिये। प्रवेश के लिये ३ वर्ष का डिग्री शिक्षा का अध्ययन अनिवार्य है। कानून की व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था भी होनी चाहिये। शिक्षकों की नियुक्ति पूर्ण-कालीन और अंशकालीन दोनों ही प्रकार की हो सकती है। कानून पढ़ने वाले विद्यार्थियों का दूसरा पाठ्यक्रम लेने की आज्ञा केवल विशेष परिस्थिति में तथा अतियोग्य विद्यार्थी को ही मिलनी चाहिये। संवैधानिक-कानून अन्तर्राष्ट्रीय-कानून, न्यायशास्त्र तथा हिन्दू और मुसलमानी कानूनों में अनुसंधान को प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

चिकित्सा-विज्ञान की शिक्षा के विषय में कमीशन ने कहा कि एक मेडिकल कालेज में १०० से अधिक विद्यार्थी भर्ती न किये जायें। ग्रामीण केन्द्रों में प्रशिक्षण की सुविधायें प्रदान की जायें। प्राचीन भारतीय चिकित्सा-पद्धति को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जाय। 'पब्लिक इंजिनियरिंग' तथा 'नर्सिंग' में पोस्ट-ग्रेजुएट शिक्षा की व्यवस्था के लिये भी कमीशन ने सिफारिश की।

इन व्यवसायों में शिक्षा प्राप्त करने के अतिरिक्त कमीशन ने व्यापार-शासन (Business Administration), जन-प्रशासन (Public Administration) तथा औद्योगिक-सम्बन्धों (Industrial Relations) में भी विशेष शिक्षा प्रदान करने की सिफारिशें की हैं।

६. धार्मिक शिक्षा : धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में कमीशन ने इसका इतिहास बतलाते हुए भारत की वर्तमान राजनैतिक अवस्था की ओर संकेत किया है और अन्त में एक धर्म निरपेक्ष राज्य के लिये धार्मिक शिक्षा सम्वन्धी कुछ सुझाव रखे हैं। प्रत्येक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शिक्षा संस्था में दैनिक-कार्य कुछ मिनटों के मौन चिन्तन के साथ प्रारम्भ हो जिसमें प्रत्येक व्यक्ति आत्मदर्शन का प्रयास करे, क्योंकि "व्यक्ति एक आत्मा है और शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को इस सत्य के प्रति जागरूक करना है, जिससे कि वह अपनी आत्मा को पहिचान सके और अन्तरात्मा के प्रकाश में वह अपने जीवन-कार्यों को समुचित रूप से ढाल सके।" दूसरा सुझाव यह है कि डिग्री पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष में महान् धार्मिक गुरुओं के जीवन-चरित्र पढ़ाने चाहिये; तथा द्वितीय वर्ष में विश्व-साहित्य में से सार्वभौमिक महत्त्व के प्रमुख अंशों का और तृतीय वर्ष में धर्मदर्शन के मूलभूत तत्वों का अध्ययन कराना चाहिये।

७. शिक्षा का माध्यम : विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के लिये कमीशन की स्थानीय भाषाओं का प्रयोग करने की सिफारिशें की हैं; साथ ही विद्यार्थी यदि चाहें तो राष्ट्रभाषा हिन्दी (देवनागरी लिपि) का भी प्रयोग कर सकते हैं। माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तरों पर विद्यार्थियों को कम से कम तीन भाषाओं का ज्ञान होना चाहिये : मातृभाषा, राष्ट्रभाषा तथा अँग्रेजी। राष्ट्रभाषा तथा स्थानीय भाषाओं के शीघ्र विकास के लिये कमीशन ने सिफारिशें कीं कि वैज्ञानिकों तथा भाषा-विशेषज्ञों का एक 'बोर्ड' बनाया जाय, जोकि सम्पूर्ण देश के लिये वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करे तथा अखिल भारतीय महत्त्व की पुस्तकें तैयार करे। दूसरे, प्रान्तीय सरकारों को चाहिये कि वे विभिन्न प्रान्तों में माध्यमिक शिक्षा में, डिग्री कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में सभी कक्षाओं में राष्ट्रभाषा हिन्दी का शिक्षण अनिवार्य करदें। नवीन ज्ञानधारा से सम्पर्क बनाये रखने के लिये हाईस्कूलों तथा विश्वविद्यालयों में अँग्रेजी भी एक विषय के रूप में पढ़ाई जानी चाहिये।

८. परीक्षा प्रणाली : भारतीय शिक्षा-क्षेत्र में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली की कमीशन ने पर्याप्त भर्त्सना की है कि भारत की भाँति अन्य देशों में भी परीक्षाओं के प्रति इतना घोर असन्तोष फैला हुआ है कि वहाँ के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्रियों तथा महत्त्वशाली शिक्षा संगठन ने इसके पूर्ण उन्मूलन की राय दी है। किन्तु कमीशन का विश्वास है कि यदि परीक्षाओं को ठीक प्रकार से तथा बुद्धिमत्तापूर्वक प्रयोग किया जाय तो शिक्षा-प्रणाली में यह लाभदायक प्रमाणित हो सकती है।

कमीशन ने सुझाव रखा कि ऑबजैक्टिव परीक्षाओं (Objective Tests) के साथ-साथ निबन्धक प्रकार की परीक्षाओं को मिला देने से अधिक लाभ हो सकता है। वर्ष के दौरान में कक्षा में किये गये कार्य का भी ध्यान रखा जाना चाहिये और इसके लिये $\frac{1}{3}$ अङ्क सुरक्षित रखने चाहिये। डिग्री कक्षाओं के तीन वर्ष के पाठ्यक्रम में प्रत्येक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वर्ष के अन्त में विश्वविद्यालय परीक्षा होनी चाहिये, न कि केवल तीन वर्ष उपरान्त एक ही परीक्षा ली जाय। प्रत्येक वर्ष के लिये स्वत: पूर्ण (Self-contained) तैयार कर लिये जाने चाहिये। परीक्षकों का चुनाव ठीक प्रकार होना चाहिये तथा उनके लिये ३ वर्ष का समय निश्चित कर देना चाहिये। ७० प्रतिशत तथा अधिक अङ्क पाने वाले विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में, ५५ से ६९% पाने वाले द्वितीय और ४०% से ५४% तक अंक पाने वाले विद्यार्थी तृतीय श्रेणी में रखे जाने चाहिये। विद्यार्थियों के साधारण ज्ञान की जाँच के लिये मौखिक परीक्षा (Viva Voce) भी लेना चाहिये—विशेष रूप से व्यावसायिक शिक्षाओं में।

९. विद्यार्थी, उनके कार्य तथा कल्याण : सर्वप्रथम विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिये योग्य विद्यार्थियों की छाँट करने पर जोर दिया गया। तत्पश्चात् योग्य विद्यार्थियों को परीक्षा के आधार पर छात्रवृत्तियों की सिफारिश की है। विद्यार्थियों के स्वास्थ्य पर कमीशन ने सबसे अधिक सुझाव रखे हैं। उनके लिये नियमित डाक्टरी-जाँच, कालेजों और विश्वविद्यालयों में चिकित्सालयों की व्यवस्था, छात्रावासों तथा भोजन व पानी की उचित व्यवस्था, निवास स्थान की सफाई, 'डाइरैक्टर ऑव फिजिकल एज्यूकेशन' की नियुक्ति, खेलों की उचित व्यवस्था तथा अनिवार्य शारीरिक शिक्षा इत्यादि के लिये कमीशन ने अपने सुझाव रखे हैं। 'नैशनल केडिट कोर' (N. C. C.) के प्रशिक्षण पर भी कमीशन ने जोर दिया है। तत्पश्चात् विद्यार्थियों को समाज सेवा में प्रशिक्षित करने के लिये कुछ सुझाव रखे हैं। उनके मतानुसार विद्यार्थी यूनियनों का संगठन विद्यार्थियों की मानसिक तथा नैतिक उन्नति के लिये होना चाहिये न कि निम्नकोटि की राजनैतिक भावनाओं का प्रचार करने के लिये। विद्यार्थियों को सलाह देने के लिये एक 'विद्यार्थी हितकारी सलाहकार बोर्ड' (Advisory Board of Student Welfare) का संगठन करना चाहिये।

१०. स्त्री शिक्षा : कमीशन का मत है कि पुरुषों के कालेजों में स्त्रियों को सभी सामान्य सुविधायें तथा जीवन के सामान्य शिष्टाचार की अवस्थायें प्रदान करनी चाहिए। इनके शिक्षा प्राप्त करने के अवसर भी बढ़ाने चाहिए। कमीशन ने स्त्रियों के पाठ्यक्रम के विषय में स्पष्ट कहा है कि उन्हें पुरुषों की नकल नहीं करनी चाहिये और नारी की हैसियत से उन्हें नारी की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा उसी प्रकार होनी चाहिये जैसे कि पुरुषों को अपने उपयुक्त शिक्षा प्राप्त करने की होती है। स्त्रियों और पुरुषों की शिक्षा में बहुत सी बातें तो समान होनी ही चाहिए, किन्तु सामान्यत: वह पूर्णत: एक सी ही नहीं होनी चाहिए, जैसे कि आजकल होता है। इसके लिये उन्हें पर्याप्त पथ-प्रदर्शन व सलाह प्राप्त करने की सुविधायें प्रदान की जानी चाहिये। पुरुषों को सह-शिक्षा वाले

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कालेजों में स्त्रियों के साथ भद्रता का व्यवहार करना चाहिये। ऐसे कालेजों में स्त्रियों की जीवन-आवश्यकताओं पर भी उतना ही ध्यान दिया जाय जितना पुरुषों की आवश्यकताओं पर समान कार्य के लिये अध्यापिकाओं के वेतन क्रम भी अध्यापकों के बराबर ही हों। सह-शिक्षा के विषय में कमीशन का मत है कि माध्यमिक स्तर पर किशोरियों के लिये पृथक् शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए और बेसिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर सह-शिक्षा होनी चाहिये।

११. अन्य : इन सिफारिशों के अतिरिक्त कमीशन ने विश्वविद्यालय शिक्षा के संगठन और नियन्त्रण, वित्त (Finance), केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अन्य विश्वविद्यालय तथा ग्राम्य विश्वविद्यालयों के विषय में भी विभिन्न लाभदायक सुझाव रखे हैं। वित्त के विषय में कमीशन ने कहा है कि सरकार को उच्चशिक्षा के अपने उत्तरदायित्व का पालन करना चाहिये और लगभग १० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष अतिरिक्त व्यय करना चाहिये। दानियों को प्रोत्साहित करने के लिये आय-कर नियमों में संशोधन किया जा सकता है। अन्य नये विद्यालयों की स्थापना के विषय में कमीशन ने कहा है कि इनकी स्थापना 'विश्वविद्यालय अनुदान-समिति' की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र की आज्ञा से ही होनी चाहिये। देश की सम्पूर्ण शिक्षा-आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए नगरों तथा ग्रामों में उनका उचित वितरण होना चाहिये।

संगठन के विषय में कमीशन ने बड़े मौलिक सुझाव रखे हैं। उसका मत है कि विश्वविद्यालय शिक्षा को केन्द्र की समीपवर्ती सूची (Concurrent List) में सम्मिलित कर देना चाहिये। केन्द्र को उनके वित्त तथा विशेष विषयों को अखिल भारतीय स्तर पर समन्वित करना चाहिये। अनुदान देने के प्रश्न का निराकरण करने के लिये सरकार को शीघ्र ही विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन की स्थापना करनी चाहिये। कोई भी विश्वविद्यालय ऐसा न रहे जो केवल शुद्ध सम्बन्धक प्रकार का ही हो। एक विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कालेजों की संख्या समिति होनी चाहिये। सम्बन्धित कालेजों का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वे क्रमशः एक संघीय विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हो जायें। उपकुलपति एक वैतनिक तथा पूर्णकालीन व्यक्ति होना चाहिये। अन्त में कमीशन ने यह अनुभव किया कि भारत प्रमुखतः गाँवों का देश है और कृषि यहाँ का प्रमुख उद्यम है। अतः यहाँ ग्राम्य विश्वविद्यालय भी खुलने चाहिये।

आलोचना :

भारतीय शिक्षा के इतिहास में यह प्रथम युग-निर्माणक रिपोर्ट है जिसने देश के सम्पूर्ण उच्च-शिक्षा-क्षेत्र को ढक लिया है। रिपोर्ट में प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सामंजस्य का प्रयास किया गया है, किन्तु शिक्षा की आत्मा भारतीय ही रखी गई है। यद्यपि कमीशन ने स्वीकार किया है कि वर्तमान युग में विभिन्न विज्ञानों के शास्त्रीय व प्रयोगात्मक प्रशिक्षण की देश को आवश्यकता है, किन्तु साथ ही उसने चेतावनी भी दी है कि यदि विज्ञानों तथा उद्योगों पर अधिक ध्यान देकर मानवशास्त्रों (Humanities) की अवहेलना की गई तो देश में एक 'राक्षस राज्य' उत्पन्न हो जायगा जिसमें मानव केवल भौतिक उन्नति की बात ही सोचेगा और इस प्रकार अपनी आत्मा की क्षुधा को अतृप्त ही रखेगा। वास्तव में यह विचारधारा अखिल विश्व के लिये एक चक्षु-उन्मीलक चेतावनी है, जो कि भारतीय आत्मा की परम्परा के अनुकूल है। गिरते हुए शिक्षण-स्तर, शुष्क व जटिल पाठ्यक्रम, प्रेरणा-विहीन शिक्षालय, दयनीय व निरीह शिक्षक, पथ-भ्रमित विद्यार्थी, कलुषित परीक्षा-विधि, तुच्छ राजनीति व षड़यंत्र और दलवन्दियों के अड्डे विश्वविद्यालयों के शासन प्रबन्ध तथा अतीत काल से निराद्रित ग्रामीण-शिक्षा इत्यादि पर अपने पुष्ट व परिपक्व विचार प्रकट किये हैं; तथा उनके परिष्करण के लिये व्यावहारिक व उपयुक्त सुझाव भी रखे हैं। सभी सुझाव वड़े ठोस और प्रत्यक्ष वास्तविकताओं पर आधारित हैं। विश्वविद्यालयों में शिक्षण-विधि तथा अनुसंधान पर विशेष जोर दिया गया है, जिसकी देश को आवश्यकता है। आन्तरिक शासन प्रबन्ध को ठीक करने के लिये तथा 'विश्वविद्यालय अनुदान-समिति' का पुनर्निर्माण करके उसमें वैतनिक अधिकारियों की नियुक्ति के लिये सिफारिशें अत्यन्त व्यावहारिक तथा वांछनीय है। ग्रामीण विश्वविद्यालयों की सूझ एक क्रान्तिकारी सुझाव है।

किन्तु इतना अवश्य है कि कमीशन ने धार्मिक-शिक्षा के विषय में अपने विचारों को बड़ा अस्पष्ट तथा रहस्यमय रखा है। शिक्षा के माध्यम के विषय में भी निर्णयात्मक मत नहीं दिया गया है। स्त्री-शिक्षा तथा प्राच्य-शिक्षाओं और ललित-कलाओं को भी उचित प्रोत्साहन नहीं दिया गया है।

२३ अप्रेल, १९५० ई० को केन्द्रीय-सलाहकार बोर्ड ने कमीशन की प्रमुख सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और कहीं-कहीं पर आवश्यकतानुसार कुछ संशोधन भी कर दिये। केवल विश्वविद्यालयों को केन्द्रीय सरकार की सूची में रखने की बात ही अस्वीकार करदी गई।

विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन :

इसकी नियुक्ति दिसम्बर, १९५३ में हुई थी। सन् १९५६ ई० में एक अधिनियम पास करके उसे स्थायी बना दिया गया। संक्षेप में इस कमीशन के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं :

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(१) केन्द्रीय सरकार को शिक्षा की सुविधाओं का समन्वय करने तथा विश्वविद्यालय शिक्षा के मानदण्ड को ऊँचा उठाने के लिये सुझाव देना;

(२) विश्वविद्यालयों की वित्तीय आवश्यकताओं की जाँच करके केन्द्रीय सरकार को उन्हें सहायता-अनुदान देने के विषय में सलाह देना;

(३) विभिन्न विश्वविद्यालयों को दी जाने वाली धन-राशि का निराकरण करना तथा जो धनराशि इस कार्य के लिये कमीशन के पास है, उसका वितरण करना;

(४) किसी नये विश्वविद्यालय की स्थापना अथवा पूर्व-स्थित विश्वविद्यालय के प्रसार की सम्भावनाओं के विषय में सलाह देना;

(५) किसी विश्वविद्यालय द्वारा दी गई डिग्री को नौकरी के लिये अथवा किसी अन्य कार्य के लिये मान्यता देने या न देने के प्रश्न पर सरकार को सलाह देना;

(६) विश्वविद्यालयों को विश्वविद्यालय शिक्षा के सुधार के लिये उपाय बताना; तथा

(७) अन्य ऐसे कार्य करना जिन्हें भारत सरकार उच्च शिक्षा के हित में आवश्यक समझती है, अथवा कोई ऐसा कार्य करना जोकि उपर्युक्त कर्त्तव्यों के पालन में किसी भी प्रकार से सहायक हो सकता है।

विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन का उपर्युक्त क्षेत्र बहुत व्यापक है। वस्तुतः उच्च शिक्षा के विकास का एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व इस संस्था पर आ पड़ा है। प्रथम तथा द्वितीय आयोजनों में सरकार ने एक बड़ी धन-राशि इस कमीशन के आधीन रखदी थी। यह धन विभिन्न योजनाओं को कार्यान्वित करने में व्यय किया जा रहा है। इन योजनाओं में प्रमुख हैं: मानव-विज्ञानों का विकास, उच्च वैज्ञानिक शिक्षा तथा अनुसन्धान, इंजिनियरी तथा टैक्नीकल शिक्षा का विकास, छात्रावासों का निर्माण, प्रयोगशालाओं तथा पुस्तकालयों की स्थापना व उन्हें आर्थिक सहायता तथा सम्बन्धित कालेजों व विश्वविद्यालयों के शिक्षकों के वेतन-क्रम में सुधार इत्यादि।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१६

भारतीय शिक्षा में नियोजन

नियोजन का उद्देश्य :

किसी भी देश के विकास में शिक्षा का एक बुनियादी महत्त्व है। "एक जन-तन्त्रीय प्रणाली में शिक्षा का कार्य बड़ा महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि जनतन्त्र तभी सफल हो सकता है जबकि वहाँ के जन-समूह देश के मामलों में बुद्धिमत्ता पूर्वक भाग लें।"[1] इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये भारत सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय आयोजन में प्रत्येक स्तर पर शिक्षा के प्रसार तथा पुनर्संगठन के लिये व्यवस्था की है। योजना कमीशन का मत है कि नागरिकता के गुणों का विकास करने तथा लोगों की सांस्कृतिक व सृजनात्मक प्रवृत्तियों का परिष्कार व पोषण करने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें अधिक से अधिक शिक्षा प्राप्त करने की सुविधायें प्रदान की जाँय।

देश की जनसंख्या के आकार का ध्यान रखते हुए इस समय भारत में शिक्षा सुविधायें बहुत अपर्याप्त हैं। अर्थात् ६–११ वर्ष की आयु के ४०% बालक, ११–१७ वर्ष की आयु के १०% विद्यार्थी तथा १७–२३ वर्ष के आयु के केवल ६% विद्यार्थियों को शिक्षा की सुविधायें उपलब्ध हैं। ये प्रतिशत फ्रांस, अमरीका, इंगलैंड तथा रूस इत्यादि देशों की तुलना में कितने कम हैं जहाँ स्कूल जाने योग्य आयु वाले बालकों के ८०% से लेकर १००% तक बालक शिक्षा प्राप्त करते हैं। भारत जैसे देश में जहाँ सम्पूर्ण जनसंख्या का प्रतिशत केवल १७·२% है, वहाँ शिक्षा में नियोजन तथा प्रसार की कितनी आवश्यकता है, यह बात सहज ही जानी जा सकती है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना

योजना कमीशन का मत है कि योजनाकाल में प्राथमिक शिक्षा पर अधिक बल देना है। इसका परिणाम यह भी होगा कि इसके प्रसार से माध्यमिक शिक्षा

1 Planning Commission : *The First Five Year Plan*, p. 525.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

का भी स्वयं ही प्रसार होगा। विश्वविद्यालय शिक्षा में प्रसार की इतनी आवश्यकता नहीं जितनी कि उसके ठोस करने की। इसी प्रकार शिक्षकों के प्रशिक्षण; उनकी दशा में सुधार; विभिन्न राज्यों में शिक्षा का समन्वय; नगरों तथा गाँवों में शिक्षा-सुविधाओं का उचित वितरण; समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों में शिक्षा सुविधाओं का उचित वितरण; प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा का पर्याप्त समन्वय; शिक्षा में अपव्यय रोकने के उपाय; पर्याप्त टेक्नीकल व व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार; शिक्षा प्रणाली—विशेषत: विश्वविद्यालय शिक्षा के अधिक खर्चीले-पन को रोकने के उपाय; परीक्षाओं को आवश्यकता से अधिक महत्त्व न देना; तथा अन्त में, सांस्कृतिक उत्थान इत्यादि बातों पर योजना कमीशन ने विचार किया है और इस प्रकार वर्तमान भारत की संक्षेप में निम्नलिखित शिक्षा आवश्यकतायें बतलाई हैं।[1]

(१) शिक्षा-प्रणाली का पुनर्गठन तथा इसकी विभिन्न शाखाओं में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना;

(२) विभिन्न क्षेत्रों, प्रमुखत: बेसिक तथा सामाजिक शिक्षा के क्षेत्रों में विस्तार करना, तथा माध्यमिक, टेकनीकल व व्यावसायिक शिक्षा को एक नया रूप देना;

(३) वर्तमान माध्यमिक व विश्वविद्यालय शिक्षा को ठोस करना तथा देश में उच्च शिक्षा की ऐसी पद्धति का प्रचलन करने का प्रयास करना जो ग्रामीण क्षेत्रों के उपयुक्त हो;

(४) स्त्री शिक्षा का विशेषत: ग्रामों में, प्रसार करना;

(५) शिक्षकों के प्रशिक्षण, विशेषत: स्त्रियों और बेसिक शिक्षकों के लिये व्यवस्था करना, तथा उनके वेतन-क्रमों व कार्य-दशाओं में सुधार करना; तथा

(६) शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों को अधिक अनुदान देकर वहाँ शिक्षा का प्रसार करना।

साधन :

भारत सरकार ने देश में शिक्षा-विकास के लिये धन जुटाने के लिये साधन बताने वाली जिस समिति[2] की स्थापना की थी, उसके अनुसार भारत की शिक्षा पर प्रतिवर्ष इस समय कम से कम ४०० करोड़ रुपया व्यय होना चाहिये। इस धन-राशि के अतिरिक्त २०० करोड़ रुपया बेसिक तथा हाईस्कूलों के लिये, २७ लाख शिक्षकों

1. *The Five Year Plan, p. 529.*
2. The Committee of the Ways and Means of Financing Educational Development in India.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

को प्रशिक्षण देने तथा २७२ करोड़ रुपया इन स्कूलों के लिये भवन-निर्माण को चाहिये; किन्तु सरकार के पास इतना धन शिक्षा के लिये इस समय कहाँ है ? ऐसी स्थिति में अपेक्षाकृत बहुत कम धन-राशि के लिये प्रथम पंचवर्षीय आयोजन में व्यवस्था की गई थी।

योजना के अन्तर्गत कमीशन ने कुल १५१·६६ करोड़ रुपये की व्यवस्था की थी। इसमें ३९·०२ करोड़ केन्द्र तथा ११२·६४ करोड़ राज्यों के लिये था। इसका अभिप्राय यह है कि ३०·३३ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष व्यय होगा। साथ ही यह भी अनुभव किया गया कि इस धन-राशि के अपर्याप्त होने के कारण जनता तथा व्यक्तिगत व स्थानीय संस्थायें भी शिक्षा के लिये आर्थिक सहायता प्रदान करेंगी। इसमें से ८७०२·८ लाख रुपया प्राथमिक शिक्षा, ८३०·४ लाख माध्यमिक शिक्षा, ११७२·१ लाख विश्व-विद्यालय शिक्षा, २१४५·४ लाख टेक्नीकल व व्यावसायिक शिक्षा, १५१०·० लाख सामाजिक शिक्षा तथा शेष अन्य योजनाओं पर व्यय किया जायगा।

योजना के शिक्षा-लक्ष्य :

कमीशन का अनुमान है कि योजनाकाल की समाप्ति पर सन् १९५६ तक निम्नलिखित लक्ष्यों की प्राप्ति हो जायगी:—

(१) ६ से ११ वर्ष की आयु से कम से कम ६०% बच्चों के लिये स्कूल जाने की सुविधायें उपलब्ध करना। सन् १९५०-५१ में यह प्रतिशत ४४·५ था।

(२) माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्रों में ११ से १७ वर्ष तक की आयु के बालकों के प्रतिशत को १९५०-५१ में ११% से बढ़ाकर पाँच वर्ष में १५% तक करना।

(३) सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में १४ वर्ष से ४० वर्ष तक की आयु वाले कम से कम ३०% व्यक्तियों को एक व्यापक सामाजिक-शिक्षा की सुविधायें उपलब्ध कराना।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि करने के लक्ष्य अगले पृष्ठ की तालिका से ज्ञात हो सकते हैं :

विश्वविद्यालय शिक्षा के लिये इस प्रकार के कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किये गये हैं, क्योंकि इस क्षेत्र में इतनी प्रसार की आवश्यकता नहीं समझी गई जितनी कि पूर्व-स्थित शिक्षा को संगठित करने की है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विद्यार्थियों की संख्या	१९५०-५१	१९५५-५६
प्राथमिक स्कूलों में (लाख)	१५१·१	१८७·९
जूनियर वेसिक स्कूलों में (लाख)	२९·०	५२·८
माध्यमिक स्कूलों में (लाख)	४३·९	५७·८
औद्योगिक स्कूलों में (हजार)	१४·८	२१·८
अन्य टैक्नीकल व व्यावसायिक प्रशिक्षण स्कूलों में (हजार)	२६·७	४३·६

योजना का कार्यक्रम :

इस योजना के अन्तर्गत शिक्षा-प्रसार के कार्य को केन्द्र तथा राज्य सरकारों के अन्तर्गत पृथक्-पृथक् विभाजित कर दिया गया था। अधिकांश में केन्द्र के अन्तर्गत वे सभी योजनायें रखी गई हैं जिनका देशव्यापी महत्त्व है। अन्य राज्य सरकारों के अन्तर्गत विभिन्न प्रान्तीय शिक्षा-योजनायें हैं।

(क) **केन्द्रीय योजनायें** : केन्द्रीय योजनाओं को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया गया है :

(१) बेसिक शिक्षा की एक पूर्ण इकाई की स्थापना जिसमें पूर्व-बेसिक से लेकर उत्तर-ग्रेजुएट वेसिक ट्रेनिंग कालेज तक सम्मिलित होगा। ऐसी इकाई कम से कम एक राज्य में एक तो स्थापित हो ही जानी चाहिये।

(२) प्रत्येक राज्य में सामाजिक शिक्षा के लिये कम से कम एक 'जनता कालेज' तथा एक 'स्कूल व सामाजिक शिक्षा केन्द्र' की स्थापना होनी चाहिये।

(३) प्रत्येक राज्य में कम से कम एक बहुउद्देश्यीय स्कूल की स्थापना के साथ ही साथ १४ वर्ष से १८ वर्ष की आयु के युवकों के लिये व्यावसायिक स्कूलों की व्यवस्था, माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं पर अनुसन्धान करने के लिये अनुसन्धानशाला (Research Bureau) तथा निर्धन विद्यार्थियों को पब्लिक स्कूलों में अध्ययन करने के लिये छात्रवृत्तियों की व्यवस्था होनी चाहिये।

(४) केन्द्रीय शिक्षा संस्था (Central Institute of Education)

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में श्रुत-द्रश्य शिक्षा सामग्री (Audio-Visual Aids) के उत्पादन के लिये एक इकाई की स्थापना तथा अन्य प्रकाशकों की सहायता के द्वारा ऐसी सामग्री के उत्पादन में वृद्धि करनी चाहिये ।

(५) बच्चों एवं बेसिक शिक्षा तथा सामाजिक शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के लिये उचित साहित्य की रचना को प्रोत्साहन देना चाहिये ।

(६) भारतीय भाषाओं तथा राष्ट्र-भाषा का विकास तथा मौलिक ग्रन्थों की रचना व उनके अनुवादों को प्रोत्साहन देना चाहिये । साथ ही शब्दकोष व विश्वकोषों तथा अन्य उद्धरण-ग्रन्थों (Reference Books) का निर्माण होना चाहिये ।

(७) शारीरिक दोषों से पीड़ित बालकों की शिक्षा-व्यवस्था की जानी चाहिये ।

(८) व्यावसायिक-शिक्षा के लिये विद्यार्थियों को सलाह देने वाले केन्द्रों की स्थापना होनी चाहिये ।

(९) 'इण्डियन इन्स्टीटयूट ऑव साइन्स' बँगलौर, का विकास होना चाहिये तथा १४ इंजिनियरी संस्थाओं की स्थापना एवं कुछ विशेष व्यावसायिक विषयों के शिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये ।

(१०) विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों को सहायता तथा अनुसन्धान व प्रशिक्षण के लिये विश्वविद्यालयों में छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जानी जाहिये ।

(ख) राज्य सरकारों के कार्य-क्रम : इसी प्रकार से योजना में राज्यों के अन्तर्गत प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय शिक्षा तथा टैक्नीकल व व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिये व्यवस्था की गई थी । संक्षेप में इन योजनाओं को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :—

(१) प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में नये स्कूलों की स्थापना, पुराने स्कूलों का सुधार तथा साधारण प्राथमिक स्कूलों को क्रमश: वेसिक स्कूलों में परिवर्तन करना ।

(२) माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में नये स्कूलों की स्थापना, पुरानों का सुधार, पाठ्यक्रम में शारीरिक शिक्षा, सैनिक प्रशिक्षण, उद्यानकला, कृषि व संगीत इत्यादि विषयों को सम्मिलित करना तथा आदर्श स्कूलों की हिफाजत इत्यादि करना ।

(३) विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में नये विश्वविद्यालय व कालेजों की स्थापना तथा पुरानों में सुधार व विस्तार करना ।

(४) सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में पुस्तकालयों की स्थापना, शारीरिक-शिक्षा, नवयुवकों के कार्यक्रम, श्रुत-द्रश्य-शिक्षा की व्यवस्था, साक्षरता तथा प्रौढ़-शिक्षा केन्द्रों की स्थापना ।

(५) टैक्नीकल तथा व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में हस्तकलाओं के लिये नये

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

स्कूलों की स्थापना, क्राफ्ट स्कूलों को जूनियर टैकनीकल हाईस्कूलों में परिवर्तित करना, जूनियर बहुउद्योगीय स्कूल खोलना, सामान्य माध्यमिक स्कूलों को टैक्नीकल हाईस्कूलों में परिवर्तित करना, डिप्लोमा कोर्स खोलना, औद्योगिक स्कूल खोलना, शिक्षा में कृषि को स्थान देना, वाणिज्य तथा टैक्नीकल स्कूलों का विकास करके उन्हें कालेज बना देना तथा विदेशों में प्रशिक्षण के लिये छात्र-वृत्तियाँ देना इत्यादि ।

(६) नौकरी पेशा वाले लोगों की उच्चशिक्षा की व्यवस्था, प्रान्तीय भाषाओं और साहित्य का विकास, शारीरिक दोषों से पीड़ित (Handicapped) लोगों की शिक्षा, कालेजों में 'नेशनल कैडिट कोर' (N. C C.) की स्थापना, तथा प्राच्य-शिक्षा व सांख्यशास्त्र जैसे विशेष विषयों के क्षेत्र में सुधार इत्यादि करना भी राज्य सरकारों के शिक्षा प्रयत्नों में सम्मिलित किये गए हैं ।

आलोचना :

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ सीमा तक प्रथम पंचवर्षीय आयोजन के अन्तर्गत शिक्षा के समस्त क्षेत्र को ढक लिया गया है । योजना के लागू होते ही इस दिशा में कार्य प्रारम्भ कर दिया गया था । यद्यपि प्रथम योजना समाप्त हो गई किन्तु जो लक्ष्य इसमें निर्धारित किये गये थे उनमें अधिक प्रगति नहीं हुई है । अभी तक न तो प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों से बदला जा सका, न राज्यों में 'जनता कालेजों' और 'बहु-उद्देश्यीय' हाईस्कूलों की स्थापना हुई । स्कूल जाने योग्य ६ से १४ वर्ष की आयु के बच्चों के ६० प्रतिशत बच्चों का लक्ष्य अभी प्राप्ति से बहुत दूर है । यही बात विश्वविद्यालय तथा टैक्नीकल शिक्षा के क्षेत्र में भी कही जा सकती है ।

इसका अभिप्राय हमें यह न समझना चाहिये कि योजना में प्रगति हुई ही नहीं है । वास्तव में केन्द्र और राज्यों ने अपना विकास कार्य प्रारम्भ तो कर दिया था किन्तु प्रगति मन्द रही है ।

इस योजना की आलोचना भी की गई है । उदाहरण के लिए कहा गया था कि योजना अधिक क्रान्तिकारी नहीं है । योजना का उद्देश्य शिक्षा के पूर्वस्थित दोषों का उन्मूलन न करके केवल शिक्षा का आंशिक रूप से प्रसार करना है । जब तक भारतीय शिक्षा प्रणाली को आमूल परिवर्तित न किया जायगा और पूर्वस्थित प्रणाली का ही विकास किया जाता रहेगा, तो पुराने दोषों के पनपते रहने की सम्भावना है । इसके अतिरिक्त दूसरा अभियोग यह लगाया जाता है कि पूर्व-प्राथमिक (Pre-Primary) शिक्षा की जो कि देश के भावी नागरिकों के विकास में अपना महान् महत्त्व रखती है, अपेक्षाकृत योजना के अन्दर पूरी तरह से अवहेलना सी करदी गई है । इसके

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अतिरिक्त शिक्षकों की दुर्दशा का अनुभव करते हुए भी योजना कारों ने उनकी दशा को सुधारने के लिए जो व्यवस्था की है वह अत्यन्त ही अल्प है। कोई भी शिक्षा विकास-योजना बिना शिक्षक की सहानुभूति व उसके क्रियात्मक सहयोग के सफल नहीं हो सकती। इस दृष्टि से पंचवर्षीय योजना बुरी तरह से अपर्याप्त है। इसके अतिरिक्त विभिन्न शिक्षा-योजनाओं के लिए जो धन की व्यवस्था की गई है वह अत्यन्त अल्प व अपर्याप्त है। देश की जनसंख्या की विशालता तथा शिक्षा समस्याओं की दुरूहताओं को देखते हुए १५५·६६ करोड़ की धन-राशि अत्यन्त थोड़ी है। अन्त में एक बड़ा अभियोग इस योजना पर यह भी लगाया गया है कि इसके अन्तर्गत व्यय का नियोजन ठीक प्रकार से नहीं हो पाया है। देश में अधिकांश जानकार लोगों की धारणा बढ़ती जा रही है कि पंचवर्षीय योजना के नाम पर लाखों रुपयों का दुरुपयोग हो रहा है। जो कार्यक्रम इसके अन्तर्गत अपनाये गये हैं, वे इतने हितकारी नहीं हैं कि भारतीय शिक्षा में मौलिक सुधार करते हों। कुछ योजनायें प्रारम्भ करके बन्द करदी जाती हैं, इससे अपार धन और शक्ति का विनाश होता है। अत: इस बात की आवश्यकता है कि इस दुरुपयोग को रोका जाय और उस धन-राशि का, जोकि पहले से ही अल्प व अपर्याप्त है, पूर्ण सदुपयोग किया जाय। अन्त में हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि भारतीय शिक्षा के इतिहास में प्रथम-बार शिक्षा नियोजन के अन्तर्गत आई है। यह एक प्रथम राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम है। ऐसी स्थिति में कुछ त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक ही है। आशा है कि आगामी विकास योजनाओं में, ज्यों-ज्यों भारत का अनुभव बढ़ता जायगा, प्रथम योजना के दोषों को क्रमश: दूर कर दिया जायगा। अगस्त, १९५४ में नई दिल्ली में जो 'अखिल भारतीय शिक्षा-मन्त्री सम्मेलन' हुआ था, उसमें पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निहित दोषों पर विचार करने के उपरान्त द्वितीय पंचवर्षीय शिक्षा योजना की एक रूपरेखा तैयार की गई थी। यह योजना अब देश के समक्ष प्रस्तुत है।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन में शिक्षा :

भारतवर्ष में आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसके अनुरूप शिक्षा का नियोजन भी किया जाय। कोई भी आर्थिक नियोजन तभी सफल हो सकता है जबकि उसका संचालन करने के लिए उपयुक्त व प्रशिक्षित मानव सामग्री हो और यह सामग्री हमें शिक्षा के द्वारा ही मिलती है। यही कारण है कि भारतवर्ष में द्वितीय आयोजन में प्रथम की भाँति शिक्षा के प्रश्न को महत्त्वपूर्ण समझा गया है।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन में बेसिक प्राथमिक शिक्षा के विकास, माध्यमिक शिक्षा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

को बहुमुखी करने, कालेज तथा विश्वविद्यालय शिक्षा के मानदण्ड का उत्थान करने, औद्योगिक व व्यावसायिक शिक्षा के लिये पर्याप्त व्यवस्था करने तथा सामाजिक और सांस्कृतिक शिक्षा कार्यक्रम को कार्यान्वित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। प्रथम आयोजन की तुलना में शिक्षा पर व्यय की जाने वाली द्वितीय आयोजन की धन-राशि को निम्नांकित तालिका से जाना जा सकता है।[1]

शिक्षा का स्तर	प्रथम आयोजन १९५१-५६	द्वितीय आयोजन १९५६-६१
प्राथमिक शिक्षा	९३ करोड़	८९ करोड़
माध्यमिक शिक्षा	२२ ,,	५१ ,,
विश्वविद्यालय शिक्षा	१५ ,,	५७ ,,
टैक्नीकल व व्यावसायिक शिक्षा	२३ ,,	४८ ,,
सामाजिक शिक्षा	५ ,,	५ ,,
प्रशासन तथा अन्य व्यय	११ ,,	५७ ,,
योग	१६९ करोड़	३०७ करोड़

३०७ करोड़ रुपये की इस धन-राशि में से ९५ करोड़ केन्द्र तथा शेष २१२ करोड़ रुपये राज्य सरकारों की ओर से व्यय किये जायेंगे। इस धन राशि के अतिरिक्त देश में चलने वाली सामुदायिक विकास योजनाओं तथा राष्ट्रीय प्रसार-सेवा योजनाओं के अन्तर्गत योजना-काल में क्रमशः १२ करोड़ रुपये सामान्य शिक्षा तथा १० करोड़ रुपये सामाजिक शिक्षा पर व्यय किये जायेंगे। साथ ही विकास के अन्य क्षेत्रों जैसे कृषि, स्वास्थ्य, पिछड़ी जातियों के कल्याण कार्य तथा विस्थापितों का पुनर्स्थापन इत्यादि में भी शिक्षा के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जायगा।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजन में होने वाली प्रगति तथा द्वितीय आयोजन-काल में

1. Planning Commission : *Second Five Year Plan, 1956, p. 500.*

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शिक्षा के लक्ष्यों को निम्नलिखित तालिका से जाना जा सकता है। इसमें शिक्षा संस्थाओं की संख्या दी गई है।

शिक्षा संस्थायें	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१
१. प्राथमिक व जूनियर बेसिक	२,०९,६७१	२,७४,०३८	३,२६,८००
२. जूनियर बेसिक	१,४००	८,३६०	३३,८००
३. मिडिल या सीनियर बेसिक	१३,५९६	१९,२७०	२२,७२५
४. सीनियर बेसिक	३५१	१,६४५	४,५७१
५. उच्चतर माध्यमिक	७,२८८	१०,६००	१२,१२५
६. बहुधन्धी स्कूल	....	२५०	१,१८७
७. माध्यमिक स्कूल जिन्हें उच्चतर माध्यमिक बनाया जायगा	....	४७	१,१९७
८. विश्वविद्यालय	२६	३१	३८
९. इंजीनियरी—			
(क) डिग्री स्तर	४१	४५	५४
(ख) डिप्लोमा स्तर	६४	८३	१०४
१०. टैक्नोलॉजी—			
(क) डिग्री स्तर	२५	२५	२८
(ख) डिप्लोमा स्तर	३६	३६	३७

उपर्युक्त आँकड़े यद्यपि विशाल प्रतीत होते हैं किन्तु जब हम इनका विश्लेषण भारत की शिक्षा-समस्या की दुरूहता व गुरुता की पृष्ठ-भूमि में करते हैं तो प्रतीत होता है कि अभी इनमें वृद्धि के लिये अत्यन्त गुञ्जायश है। उदाहरणतः भारतीय संविधान के अनुसार १९६१ ई० तक १४ वर्ष तक की आयु के तथा स्कूल जाने योग्य सभी बालकों की अनिवार्य व निशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जायगी। किन्तु प्रथम पंचवर्षीय आयोजन काल में इसका प्रतिशत केवल ३२ से ४० तक किया जा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सका और द्वितीय आयोजन काल में यह ४९% हो सकेगा जबकि उस वर्ष तक इसे १०० प्रतिशत होना चाहिए।

प्राथमिक शिक्षा : आयोजन कमीशन के मतानुसार इस स्तर पर दो प्रकार की समस्याओं का निवारण करना है : प्रथमतः वर्तमान शिक्षा-सुविधाओं का विस्तार करना तथा शिक्षा प्रणाली की बेसिक शिक्षा के अनुरूप प्रस्थापना करना। जहाँ तक विस्तार का प्रश्न है प्रथम आयोजन काल में हमें अधिक सफलता नहीं मिली है। ६–११ आयु-वर्ग के बालकों की अपेक्षा ११–१४ आयु वर्ग में तो प्रगति बहुत ही मन्द रही है। कमीशन के मत में इस मन्द प्रगति का प्रमुख कारण प्राथमिक शिक्षा में व्याप्त दो पुराने रोग 'अपव्यय' (wastage) व 'अवरोधन' (stagnation) हैं। इस प्रकार प्रथम कक्षा में प्रवेश लेने वाले १०० बालकों में से कक्षा ४ तक पहुँचते-पहुँचते ५० बालक रह जाते हैं। कन्याओं के सम्बन्ध में तो यह अपव्यय और भी अधिक बढ़ा हुआ है।

इन सभी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए आयोजन कमीशन ने कुछ सिफारिशें की हैं। अपव्यय रोकने के लिये शिक्षा में अनिवार्यता के सिद्धान्त को कड़ाई से लागू करने तथा अवरोधन रोकने के लिए शिक्षकों की श्रेष्ठता में तथा शिक्षण-टैक्नीक में सुधार करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

बालिकाओं की शिक्षा के लिये योग्य व प्रशिक्षित अध्यापिकाओं की व्यवस्था तथा स्कूलों में एक शिफ्ट-सिस्टम को प्रचलित करने की सिफारिश की गई है जिनमें एक-एक शिफ्ट में क्रमशः बालक और बालिकायें पढ़ सकें। अध्यापिकाओं के गाँवों में रहने के लिए गृह-निर्माण का सुझाव दिया गया है। स्कूल भवनों तथा अन्य पाठ्य-सामग्री के अभाव की पूर्ति करने के लिए कमीशन ने शिफ्ट-सिस्टम को अनिवार्य माना है। यही उपाय केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने भी १९५६ ई० में स्वीकार किया था। यह प्रणाली अभी भारत में त्रिवांकुर-कोचीन तथा बम्बई राज्यों को छोड़कर अन्यत्र कहीं सफल होते नहीं देखी गई तथापि कमीशन का मत है कि भली-भाँति नियोजन करने से इसमें सफलता मिलेगी।

स्कूल भवनों के अभाव की पूर्ति के लिए कमीशन का दूसरा सुझाव है कि भारतीय प्राचीन परम्परा के अनुसार बालकों को खुली हवा में पेड़ों के नीचे पढ़ाया जाय और शीघ्रता में थोड़े-बहुत भवन-अंश को बनाने की आवश्यकता प्रतीत हो तो जनता से चन्दा करके वह अंश बनवा दिया जाय अथवा उन्हें सार्वजनिक स्थानों जैसे गाँव का मन्दिर तथा पंचायत घर इत्यादि में पढ़ाया जाय। "एक बार यदि पाठशाला

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

चालू हो जायं, भवन तो समय आने पर फिर भी बन सकता है जब कि इसके लिये परिस्थितियों में सुधार होता है।"[1]

संविधान के अनुसार १४ वर्ष तक के सभी बालकों के लिये प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये विशाल धन-राशि की आवश्यकता होगी। कमीशन की राय में इस कार्य की पूर्ति राज्य-सरकारों द्वारा जनता पर शिक्षा-उपकर (Educational cess) लगा कर की जा सकती है। यह उपकर मालगुजारी अथवा सम्पत्ति कर के साथ जनता से वसूल किया जा सकता है, जिससे समाज के सभी अंगों से कुछ न कुछ कर वसूल किया जा सके।

वेसिक शिक्षा : भारत में वेसिक शिक्षा को एक उपयुक्त शिक्षा-प्रणाली के रूप में सिद्धान्ततः स्वीकार किया जा चुका है। प्रथम आयोजन काल में हुई वेसिक शिक्षा प्रगति तथा द्वितीय आयोजनों के लक्ष्यों को निम्नलिखित तालिका से जाना जा सकता है[2]

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१
स्कूल	१,७५१	१०,०००	३८,४००
विद्यार्थी	१,८५,०००	११,००,०००	४२,२४,०००
ट्रेनिंग स्कूल	११४	४४६	७२६

वेसिक शिक्षा की सफलता के लिये कमीशन ने शिक्षकों के प्रशिक्षण पर बहुत बल दिया है। इसके लिये सेमीनार तथा रिफ्रेशर पाठ्यक्रमों का संगठन तथा नौकरी में रहते हुए प्रशिक्षण (In-service Training) की योजना की भी सिफारिश की गई है। उत्तर-वेसिक कालेजों को विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित कर देना चाहिये जिससे उनमें प्रशिक्षण पाने वाले व्यक्ति उच्च प्रशिक्षण पा सकें। प्रशासन में सुधार, उपयुक्त वेसिक साहित्य का सृजन तथा वेसिक शिक्षा समस्याओं में अनुसन्धान इत्यादि अन्य प्रश्न हैं, जिनका हल राष्ट्रीय वेसिक-शिक्षा संस्था (National Institute of Basic Education), जिसकी अभी हाल में स्थापना हुई है, करेगी।

वेसिक शिक्षा के उत्पादन-सम्बन्धी पक्ष का समर्थन कमीशन ने किया है।[3]

1. Second Five Year Plan, (1956), p. 505.
2. Second Five Year Plan, 1956, p. 506.
3. "The productive aspect of Basic Education, consistant with the requirements of education has to be recognised and encouraged as an essential part of the scheme of basic education."—Second Five Year Plan, p. 507.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इसके लिए ८ कक्षाओं के सम्पूर्ण बेसिक स्कूल खोलने चाहिए अथवा ५वीं कक्षा तक प्रारम्भिक बेसिक शिक्षा देकर ३ वर्ष का कोर्स करने के लिए अलग स्कूल होना चाहिए। इस समय प्रायः अधिकतर राज्यों में कक्षा ५ तक के बेसिक स्कूल हैं, जो व्यर्थ हैं।

बेसिक शिक्षा को कृषि, ग्रामीण उद्योग, सहकारिता, सामुदायिक विकास योजनायें इत्यादि के विकास कार्यों से सम्बन्धित करने की भी कमीशन से सिफारिश की है। तभी बेसिक शिक्षा का जन-जीवन से साम्य स्थापित किया जा सकेगा। बेसिक स्कूलों को जन-जीवन का एक केन्द्र के रूप में विकसित किया जाना चाहिए, जहाँ से ग्रामीण जनता प्रेरणा ले सके। कमीशन की यह भी धारणा है कि माध्यमिक शिक्षा परिषद की भाँति एक 'प्राथमिक व बेसिक शिक्षा परिषद' की भी स्थापना होनी चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा : माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए देश में माध्यमिक शिक्षा कमीशन की सिफारिशों को ही मूर्त्त रूप देना द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन का आधार है। यह अनुभव किया गया है कि ऐसी सुदृढ़ माध्यमिक शिक्षा जो कि जीवन में विभिन्न प्रकार के उद्यमों के लिए द्वार उन्मुक्त करती है, आधुनिक आधार पर देश के आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य है।

द्वितीय आयोजन काल में विभिन्न विकास कार्यक्रमों को क्रियाविन्त करने के लिए ऐसे नवयुवकों की आवश्यकता होगी जो कि प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के साथ कुछ औद्योगिक व टैक्नीकल शिक्षा भी प्राप्त किये हुए हों। ये नवयुवक १४-१७ आयु-वर्ग में ही उपलब्ध हो सकेंगे। इस आयु वर्ग के विद्यार्थियों में इस समय पर्याप्त रूप से अनिश्चिता फैली हुई है। अधिकांश की शिक्षा साहित्यिक प्रकार की है और देश की वर्तमान् औद्योगिक व आर्थिक योजनाओं को कार्यान्वित करने में सहयोग नहीं दे सकता है। अतः द्वितीय आयोजन में इस बात का भरसक प्रत्यन किया जायगा कि माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को बहुमुखी (diversified) कर दिया जाय जिससे विद्यार्थियों को विभिन्न उद्यमों में प्रशिक्षण प्रदान किया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति पाठ्यक्रम में बहुत से क्राफ्ट, विज्ञान के विषय, टैक्नीकल तथा औद्योगिक विषयों के लिये सुविधायें प्रदान करके तथा बहुधन्धी स्कूल और जूनियर टैक्नीकल स्कूलों के खोलने से की जायगी।

माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशों को प्रथम आयोजन में ही व्यावहारिक रूप देना प्रारम्भ होगया था और उसके लिए २२ करोड़ रुपये की व्यवस्था थी। द्वितीय आयोजन में माध्यमिक शिक्षा पुनर्संगठन के लिये ५१ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई। इसके लिये वर्तमान माध्यमिक स्कूलों को बहुधन्धी स्कूलों में परिवर्तित किया

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जायगा। प्रथम आयोजन काल में २५० ऐसे स्कूल स्थापित किये गये थे। द्वितीय आयोजन में ऐसे १,१८७ स्कूल स्थापित किये जाँयगे। सामान्य माध्यमिक व मिडिल स्कूलों की संख्या १०,६०० से वढ़ाकर १२००० करदी जायगी। ११५० हाईस्कूलों को उच्चतर माध्यमिक स्तर में वदल दिया जायगा। इस प्रकार कुल उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की संख्या लगभग २,८०० तक की कर दी जायगी। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि-शिक्षा के विकास के लिये २०० अतिरिक्त ग्रामीण माध्यमिक स्कूलों में कृषि शिक्षा की व्यवस्था की जायगी। द्वितीय आयोजन काल में विद्यार्थियों की संख्या २३ लाख से वढ़ाकर ३१ लाख कर दी जायगी।

हाईस्कूल पास करने के उपरान्त विद्यार्थियों को किसी विशेष उद्यम में प्रवेश करने के लिये योग्य वनाने के लिये ६० जूनियर टैकनीकल स्कूल खोले जाँयगे। इन स्कूलों में १४-१७ आयु-वर्ग के लड़कों को ३ वर्ष तक सामान्य व टैक्नीकल शिक्षा तथा वर्कशॉप-ट्रेनिंग प्रदान की जायगी। माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण पर भी कमीशन का ध्यान गया है। प्रथम आयोजन काल के अन्त तक देश में ६०% माध्यमिक शिक्षक ट्रेनिंग पाये हुए थे। यह प्रतिशत अव ६८ हो जायगा। औद्योगिक व व्यावसायिक विषयों के पढ़ने के लिये वहुत से प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता होगी अत: इसके लिये विशेष सुविधायें द्वितीय-आयोजन में प्रदान की जाँयगी। इसके लिये केन्द्र की ओर से बहुधन्धी तथा जूनियर टैक्नीकल स्कूलों के लिये ५०० डिग्री शिक्षक तथा ३००० डिप्लोमा शिक्षक तैयार किये जाँयगे। राज्य सरकारों ने भी माध्यमिक शिक्षा की पुनर्स्थापना, माध्यमिक स्कूलों को उच्चतर माध्यिमक में वदलने, विज्ञानशालाओं व पुस्तकालयों के विकास, शिक्षकों के प्रशिक्षण व उनके वेतन-क्रमों के सुधार तथा शिक्षा व व्यावसायिक मार्ग-दर्शन (Educational and Vocational Guidance) के लिये ४६ करोड़ रुपये की धनराशि द्वितीय आयोजन काल के लिये स्वीकृत की हैं।

कमीशन ने वालिकाओं की शिक्षा के विकास की भी व्यवस्था की है। इस समय २३ लाख माध्यमिक विद्यार्थियों में केवल ३% वालिकायें माध्यमिक शिक्षा पाती हैं। इसके लिये द्वितीय आयोजन में राज्य सरकारों की ओर से कोई सराहनीय योजना नहीं रखी गई है। केवल स्कूलों की संख्या १५०० से वढ़ाकर १७०० कर दी जायगी। वालिकाओं को विशेष उद्यम में शिक्षा देने के लिये (जैसे ग्राम-सेविकायें, नर्स, हैल्थ विज़िटर तथा अध्यापिकायें इत्यादि) भी विशेष छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाँयगी।

इसके अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षा की एक विशेष समस्या, जिसके अध्ययन करने के लिये इस समय केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने एक समिति बनाई है, वह यह है

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कि माध्यमिक स्तर पर बेसिक शिक्षा का समन्वय किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। वर्तमान प्राथमिक स्कूलों को तो शीघ्र ही बेसिक स्कूलों में परिवर्तित करने की योजना है। इसके उपरान्त मिडिल स्कूलों को भी सीनियर बेसिक स्कूलों में क्रमशः परिवर्तित किया जायगा। इसके उपरान्त यह सोचा जा रहा है कि सीनियर बेसिक के उपरान्त उत्तर-बेसिक शिक्षा का विकास किया जायगा। इस समय ऐसे स्कूलों की संख्या नगण्य है। केन्द्रीय मन्त्रालय ने द्वितीय आयोजन में ऐसे स्कूलों को खोलने की व्यवस्था की है। राज्यों में भी ज्यों-ज्यों माध्यमिक शिक्षा की पुनर्स्थापना की जायगी, माध्यमिक शिक्षा के साथ उत्तर-बेसिक शिक्षा का समन्वय स्थापित किया जायगा। अन्त में हिन्दी के अध्ययन की व्यवस्था इस अवधि के अन्तर्गत अधिकाधिक की जायगी।

विश्वविद्यालय शिक्षा : प्रथम आयोजन ने विश्वविद्यालय शिक्षा पर इतना बल नहीं दिया था जितना प्राथमिक और माध्यमिक पर। द्वितीय आयोजन में विश्वविद्यालय शिक्षा को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। जबकि प्रथम आयोजन में सम्पूर्ण शिक्षा-व्यय का ८·८ % विश्वविद्यालय शिक्षा पर व्यय किया गया था तो द्वितीय आयोजन में वही धनराशि १८·६ % करदी गई है। विश्वविद्यालय पर जो धनराशि प्रथम-आयोजन में व्यय की गई थी उसकी लगभग ४ गुनी धनराशि द्वितीय आयोजन में व्यय की जायगी अर्थात् यह १५ करोड़ से बढ़ाकर ५७ करोड़ कर दी गई है। इस धनराशि में से २२·५ करोड़ रु० राज्य सरकारों की ओर से तथा ३४·४ करोड़ केन्द्रीय सरकार की योजनाओं में व्यय किये जाँयगे। केन्द्रीय सरकार की धनराशि में से २७ करोड़ रुपये विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन को सोंप दिये जाँयगे। सम्पूर्ण धनराशि का अधिकांश भाग विश्वविद्यालयों में टैक्नीकल व वैज्ञानिक शिक्षा के उत्थान व प्रसार पर व्यय किया जायगा। इतना ही नहीं टैक्नीकल शिक्षा के अन्तर्गत १३ करोड़ रुपये इंजीनियरी टैक्नोलाजी तथा १० करोड़ रुपये उच्च शिक्षा में छात्रवृत्तियों पर अतिरिक्त व्यय किये जाँयगे। साथ ही ४·६ करोड़ की धन-राशि कृषि शिक्षा, १० करोड़ की स्वास्थ्य शिक्षा तथा २० करोड़ की औद्योगिक व वैज्ञानिक अनुसन्धान पर विश्वविद्यालयों तथा अन्य उच्च-शिक्षा केन्द्रों में अतिरिक्त रूप से व्यय की जायगी। अन्तिम धनराशि के व्यय करने का अधिकार वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् (Council of Scientific and Industrial Research) को है।

विश्वविद्यालय शिक्षा के विकास के लिये विभिन्न कार्यक्रमों को अपनाया जायगा। इसमें ३ वर्ष का डिग्री-पाठ्यक्रम करना, ट्यूटोरियल कक्षायें प्रारम्भ करना, सेमीनार व गोष्ठियों का संगठन, भवन, पुस्तकालय व विज्ञान शालाओं का विकास, छात्रावासों को अधिक सुविधायें, योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ, अनुसन्धान-छात्रों को

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विशेष सुविधायें तथा विश्वविद्यालय शिक्षकों के वेतन-क्रमों में सुधार इत्यादि सम्मिलित हैं। द्वितीय आयोजन काल में ७ नये विश्वविद्यालय और खोले जा रहे हैं।

कमीशन की धारणा है कि माध्यमिक स्कूलों में बहुमुखी पाठ्यक्रम के प्रारम्भ कर देने से विश्वविद्यालयों तथा डिग्री कालेजों में कला के विद्यार्थियों की संख्या पर नियन्त्रण करने में सहायता मिलेगी। केन्द्रीय सरकार एक विशेष समिनि की सहायता से यह भी ज्ञात करने की चेष्टा कर रही है कि उच्च सार्वजनिक सेवाओं के लिये डिग्री शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है अथवा नहीं।

टैक्नीकल शिक्षा : भारत में आयोजन काल में प्राय: प्रत्येक विकास क्षेत्र के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है। अतएव द्वितीय आयोजन काल में टैक्नीकल शिक्षा को बहुत महत्त्व दिया गया है। प्रथम आयोजन काल में भी इस शिक्षा को बहुत महत्व दिया गया था। इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑव टैक्नोलॉजी, खड़गपुर की स्थापना तथा 'इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑव साइन्स' बँगलौर, का विकास युग-निर्माणक घटनायें हैं। प्रथम आयोजन काल के अन्त तक सन् १९४७ की अपेक्षा विद्यार्थियों की संख्या में ३ गुनी वृद्धि हो गई है।

द्वितीय आयोजन में टैक्नीकल शिक्षा के लिए ४८ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। इस धनराशि का एक अंश तो उन योजनाओं पर व्यय किया जायगा जो कि प्रथम आयोजन के अन्तर्गत प्रारम्भ की गई थीं, शेष नवीन संस्थायें तथा पाठ्यक्रमों की स्थापना में व्यय किया जायगा। द्वितीय आयोजन काल में खड़गपुर संस्था को अंडर ग्रेजुएट तथा पोस्ट ग्रेजुएट अध्ययन के लिये पूर्णत: विकसित कर दिया जायगा। साथ ही अन्य केन्द्रों में भी पोस्ट-ग्रेजुएट पाठ्यक्रम एवं अनुसन्धान का विकास किया जायगा। प्रथम डिग्री तथा डिप्लोमा कोर्स के जितने भी स्कूल इस समय मौजूद हैं उन्हें आगामी ५ वर्ष में पूरा कर दिया जायगा।

इनके अतिरिक्त द्वितीय आयोजन में देश के पश्चिमी, उत्तरी तथा दक्षिणी क्षेत्रों में खड़गपुर की भाँति टैक्नोलॉजीकल संस्थायें स्थापित कर दी जायेंगी। इनमें से एक बम्बई, एक कानपुर तथा तीसरी किसी अन्य ऐसे स्थान पर निर्मित की जायगी जो अभी निश्चित नहीं हो पाया है। पूर्ण होने पर इनमें से प्रत्येक संस्था में १२०० विद्यार्थी अंडर-ग्रेजुएट तथा ६०० पोस्ट-ग्रेजुएट पाठ्यक्रम तथा अनुसन्धान के लिए प्रविष्ट हो सकेंगे।

इंजीनियरी तथा टैक्नोलॉजी की शिक्षा के लिए देहली पोलिटैक्निक संस्था का और भी अधिक विकास किया जायगा। साथ ही देश के विभिन्न भागों में ९ संस्थायें

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

डिग्री पाठ्यक्रम तथा २१ संस्थायें डिप्लोमा पाठ्यक्रम के लिए और खुलेंगी। टैक्नीकल शिक्षा की मात्रा में विकास के साथ ही साथ उसकी उत्तमता में भी वृद्धि की जायगी। छात्रवृत्तियों की संख्या ६३३ से बढ़ाकर ८०० करदी जायगी तथा १६,३०० टैक्नीकल विद्यार्थियों के लिए छात्रावास की व्यवस्था की जायगी। इनके अतिरिक्त श्रम, रेलवे, लोहा व इस्पात इत्यादि मंत्रालयों के अन्तर्गत भी शिक्षण और प्रशिक्षण की नवीन व्यवस्थायें की जा रही हैं। इन सभी प्रयत्नों के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों की संख्या में ग्रेजुएटों की संख्या में दुगुनी अर्थात् ५,७०० तथा डिप्लोमा विद्यार्थियों की संख्या में तिगुनी अर्थात् ६,८०० की अभिवृद्धि आगामी पाँच वर्षों में हो जायगी। निम्नलिखित तालिका से स्थिति और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है।

पाठ्यक्रम	अनुमानित विद्यार्थियों की संख्या (१९६०-६१)
१. पोस्ट ग्रेजुएट पाठ्यक्रम तथा अनुसन्धान	५७०
२. प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम	७,५५०
३. डिप्लोमा पाठ्यक्रम	११,३००
४. जूनियर टैक्नीकल स्कूल	५,४००

अन्य योजनायें: उपर्युक्त कार्यक्रम के अतिरिक्त द्वितीय आयोजन में शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में विकास के लिए भी व्यवस्था की गई है। इनमें सामाजिक शिक्षा, उच्च ग्रामीण शिक्षा, शिक्षकों का प्रशिक्षण व उनकी दशा में सुधार, सांस्कृतिक कार्यक्रम व यूनेस्को से सम्पर्क तथा देश विदेश में अध्ययन करने के लिए कुछ विशेष छात्रवृत्तियाँ इत्यादि प्रमुख हैं।

सामाजिक शिक्षा के लिए साक्षरता कक्षायें खोलना, नवीन साहित्य की रचना कराना, श्रव्य-दृश्य-शिक्षा का प्रचार तथा जनता कालेजों की स्थापना करना है। इस कार्य के लिए कुल १५ करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे। अशिक्षितों के लिये शिक्षा प्रयत्नों को केवल साक्षरता तक ही सीमित नहीं रखा जायगा अपितु, उन्हें एक उत्तरदायी नागरिक बनाने के लिए स्वास्थ्य व सफाई, मनोरंजन, आर्थिक समस्यायें तथा नागरिकता के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अन्य उपकरणों की शिक्षा दी जायगी। १० करोड़ रुपया सामाजिक शिक्षा के लिए सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत भी रखा गया है।

उच्च ग्रामीण शिक्षा में आयोजन कमीशन ने बहुत रुचि दिखलाई है। अभी हाल में जो उच्चतर ग्रामीण शिक्षा समिति (Higher Rural Education Committee) स्थापित की गई थी उसने ग्रामीण शिक्षा के प्रश्न को नये सिरे से अध्ययन किया है। ग्रामीण इंस्टीट्यूट स्थापित करने की सिफारिश की है। द्वितीय आयोजन काल में ऐसे १० इंस्टीट्यूट स्थापित किये जायेंगे। इसके लिये २ करोड़ रुपये की अलग व्यवस्था की गई है।

शिक्षकों के प्रशिक्षण तथा उनकी दशा में सुधार के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कमीशन ने सारगर्भित सिफारिशें की हैं।[1] प्रशिक्षण के लिये १७ करोड़ रुपये की व्यवस्था है। इस काल में २१३ ट्रेनिंग स्कूल तथा ३० ट्रेनिंग कालेज स्थापित किये जायेंगे। द्वितीय आयोजन काल के अन्त तक आशा की जाती है कि माध्यमिक तथा प्राथमिक स्कूलों में क्रमशः ६८ व ७९% शिक्षक प्रशिक्षित होंगे। बेसिक शिक्षा के लिए ट्रेनिंग स्कूलों की संख्या ४४९ से बढ़ाकर ७२९ तथा बेसिक ट्रेनिंग कालेजों की संख्या ३३ से ७१ कर दी जायगी। एक राष्ट्रीय बेसिक शिक्षा संस्था (The National Institute of Basic Education) भी स्थापित किया जा रहा है जहाँ अनुसन्धान कार्य होगा।

शिक्षकों के वेतन क्रम में सुधार करने के लिये कमीशन ने सिफारिश की है कि प्राथमिक शिक्षकों के वेतन बढ़ाये जाने की स्थिति में कुछ समय तक केन्द्र राज्य सरकारों को कुछ अतिरिक्त व्यय का ५०% दे सकता है।

सांस्कृतिक उत्थान के हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं का विकास, संस्कृत भाषा का पुनरुद्धार, साहित्य अकादमी, संगीत-नाटक अकादमी तथा ललित कला अकादमी का विकास, जिनकी स्थापना प्रथम आयोजन काल में हो चुकी है तथा यूनेस्को के सम्पर्क से अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जायगा।

---

1. "At all times the teacher is the pivot in the system of education. This is specially the case in a period of basic change and reorientation. There is general agreement that the teaching profession fails to attract a sufficient number of persons who adopt teaching as a vocation and that far too many persons work as teachers for short periods and then move on to other occupations. Improvement in the conditions of teachers, therefore, is an important desideratum of progress in education." Second Five Year Plan, 1956, p. 518.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

आलोचना : संक्षेप में यह है द्वितीय पंचवर्षीय का आयोजन। इसके अध्ययन से स्पष्ट है कि सरकार इस बात के लिये चिन्तित प्रतीत होती है कि देश की बदलती हुई आर्थिक, औद्योगिक तथा सामाजिक स्थिति के अनुरूप ही देश की शिक्षा को भी ढाला जाय। भारत में आज आर्थिक आयोजन किया जा रहा है। इस आयोजन को मूर्त रूप देने के लिये नवदीक्षित कारीगरों तथा अधिकारियों की आवश्यकता होगी। अत: यह उचित ही है कि टैकनीकल शिक्षा पर आयोजन में बहुत बल दिया गया है। इससे भारतीय शिक्षा के उस दोष के दूर होने में भी सहायता मिलेगी जिसके कारण यहाँ की शिक्षा केवल साहित्यिक प्रकार की ही थी। प्रथम आयोजन की तुलना में धनराशि में भी लगभग दुगुनी वृद्धि शिक्षा के लिए करदी गई है। नये स्कूल व कालेज खोलना, छात्रावासों का निर्माण, छात्रवृत्तियों की सुविधा तथा शिक्षा के सांस्कृतिक महत्त्व को स्वीकार करना आयोजन की अन्य विशेषता हैं।

किन्तु कुल मिलाकर देखने से प्रतीत होता है कि यह आयोजन बड़ा निराशाजनक है। एक प्रकार से आयोजन का जो अभिप्राय रूस, चीन, अमरीका तथा अन्य देशों में समझा जाता है, वह दुर्भाग्य से भारत में नहीं समझा गया। आयोजनहीनता ही इस आयोजन की विशेषता कही जा सकती है। कुछ और नये स्कूल खोल देना, कुछ नये भवनों का निर्माण करा देना, छात्रवृत्तियों की संख्या में कुछ वृद्धि कर देना तथा पूर्व-स्थित कुछ अन्य ऐसी ही बातों में और वृद्धि कर देना ही यहाँ आयोजन माना गया है। इससे शिक्षा में पूर्वस्थित ढाँचे के ऊपर ही दो-चार ईंटें और रख दी गईं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आयोजकों ने इस बात पर गौर नहीं किया कि क्या भारत की शिक्षा-पद्धति में किसी मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है या नहीं; या पहिले की अपेक्षा कुछ अधिक रुपया व्यय कर देने से ही शिक्षा में 'प्लानिंग' को पूर्ण मान लिया जायगा। वस्तुत: यह बात निर्विवाद कही जा सकती है कि जिस वस्तु की भारत को आवश्यकता है वह है शिक्षा का देश व काल की परिवर्तित अवस्थाओं के अनुरूप आमूल परिवर्तन। पूर्व स्थिति को अक्षुण्ण बनाये रखना और देश की नवीन उमंगों व आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त व्यवस्था न करना आयोजन कर सकने की अयोग्यता को स्वीकार न करने के समान है।

दूसरे, इस आयोजन में प्राथमिक शिक्षा व माध्यमिक शिक्षा का विश्वविद्यालय व उच्च शिक्षा के लिये निर्दय बलिदान कर दिया गया है। इधर तो सरकार देश में समाजवादी ढाँचे की स्थापना करना चाहती है। उधर प्राथमिक शिक्षा पर व्यय ९३ करोड़ से घटा कर ८९ करोड़ कर दिया गया है। प्रथम आयोजन में शिक्षा पर की जाने वाली सम्पूर्ण धन राशि का ५५% प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किया गया था

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ज़बकि द्वितीय आयोजन में यह २९% कर दिया गया। इसी प्रकार माध्यमिक शिक्षा क्षेत्र में भी यह १३% से बढ़ाकर १६.५% किया गया है जबकि विश्वविद्यालय के क्षेत्र में यह ८% से बढ़ाकर १८% कर दिया गया है। सबसे अधिक आश्चर्य व खेद की बात है कि प्रशासन पर यह खर्च पहिले आयोजन की अपेक्षा तिगुना कर दिया गया है। जहाँ प्रथम आयोजन में इस कार्य के लिये ११ करोड़ रुपया रखा गया था, द्वितीय आयोजन में ५७ करोड़ रखा गया है; अर्थात् कुल राशि में ६% से १८% तक वृद्धि की गई है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि पंचवर्षीय आयोजन में प्रशासन के नाम पर जनता का वह धन जो कि प्राथमिक व माध्यमिक एवं सामाजिक शिक्षा पर व्यय होना चाहिये था बड़े-बड़े उच्च अधिकारियों की जेबों में चला जायगा।

प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से जब कि भारतीय संविधान तो चाहता है कि १९६१ तक १००% बालकों को प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य रूप से मिलने लगे, किन्तु हमारे योजनाकार केवल ४९% तक ही पहुँच सकेंगे! इधर उन्होंने प्राथमिक शिक्षा पर व्यय ५५% से घटा कर २९% कर दिया है। इसे ईमानदारी से न तो आयोजन ही कहा जा सकता है और न 'समाजवादी समाज' की स्थापना का प्रारूप ही।

शिक्षकों की दशा के सुधार तथा शिक्षा के प्रवन्ध के विषय में कमीशन के विचार अत्यन्त ही संकीर्ण हैं। प्राथमिक शिक्षकों को कुछ अस्थायी सहायता के अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षकों के वेतन के विषय में कमीशन मौन रह गया है, जबकि माध्यमिक शिक्षा आयोग ने इस दिशा में शीघ्र ही कदम उठाये जाने की सिफारिश की है। शिक्षकों की दशा में सुधार तथा प्रबन्ध समितियों के सुधार के विषय में कमीशन ने कोई मौलिक योजना नहीं अपनाई।

सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार जहाँ देश में केवल १६.६% साक्षरता है वहाँ इस आयोजन में सामाजिक शिक्षा पर केवल ५ करोड़ रुपया अर्थात् कुल व्यय का १.६% व्यय किया जायगा जब कि यही प्रतिशत प्रथम आयोजन में लगभग ३% था। जिस देश में घोर अज्ञान व निरक्षरता का साम्राज्य हो; जहाँ ३६ करोड़ व्यक्तियों में ३० करोड़ अशिक्षा व अन्धकार में टटोल रहे हों, वहाँ जनतन्त्र का एक महान् परीक्षण करने की बात सोचना न केवल हास्यास्पद ही है अपितु खतरनाक भी है। इस पृष्ठ भूमि को समक्ष रखते हुए सामाजिक अथवा प्रौढ़ शिक्षा के लिये ५ करोड़ की धन राशि अत्यन्त तुच्छ है।

केवल टैक्नीकल व विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्रों को छोड़कर शिक्षा के अन्य

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अंगों के विषय में जो योजनायें व धनराशियाँ रखी गई हैं वे अत्यन्त ही अल्प हैं। आयोजन के नाम पर पूर्व स्थिति को ही अक्षुण्ण बनाये रखने की कोशिश की गई है। केवल यही संतोष की बात है कि किसी भी प्रकार शिक्षा में आयोजन प्रारम्भ तो हुआ और देश शिक्षा के विकास की बात सोचने लगा अन्यथा द्वितीय शिक्षा आयोजन को हम एक अत्यन्त निराशाजनक दस्तावेज कह सकते हैं।

कुछ अन्य केन्द्रीय शिक्षा परीक्षण : राज्यों में शिक्षा का विकास राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व है, तथापि भारत सरकार ने भी इस दिशा में अपने कर्त्तव्य का अनुभव किया है और राज्य सरकारों के सहयोग से कुछ योजनायें शिक्षा के विकास व उत्थान के लिये कार्यान्वित की हैं। राष्ट्र की बदली हुई सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक तथा वैज्ञानिक आवश्यकताओं को देखते हुए यह अनिवार्य प्रतीत होता है कि देश में एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति का विकास किया जाय। किन्तु देश में शिक्षा के विकास के लिए यह आवश्यक नहीं है कि किसी ऐसी नीति के विकसित होने तक शिक्षा के विकास को स्थगित रखा जाय। निदान इस बात को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा के विकास के साथ ही साथ उसकी उत्तमता में वृद्धि करने के लिये भी भारत सरकार ने राज्य सरकारों के सहयोग से प्रथम पंचवर्षीय आयोजन के अन्तर्गत कुछ योजनायें चालू की थीं। देश में शिक्षा का विकास हो रहा है किन्तु उसका स्तर गिरता जा रहा है। आकार में वृद्धि होने के साथ ही साथ गहराई में कमी आती जा रही है, अतः गहराई को बढ़ाने की भी आवश्यकता है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कुछ चुनी हुई शिक्षा संस्थाओं को ले लिया जाता है और इनमें पूर्व चिन्तत व नियोजित शिक्षा-आयोजनों (Projects) को लागू किया जाता है जिससे शिक्षा की श्रेष्ठता बढ़ सके। योजना कमीशन ने भी इस स्थिति को स्वीकार कर लिया है।[1]

प्रथम आयोजन काल में राज्य सरकारों के सहयोग से केन्द्र ने १४ आयोजन प्रारम्भ किये थे जो इस प्रकार हैं—

1. "The Central Government's approach has, therefore, to be selective Besides actively supporting Higher and Technical education and research, it can and should assist pilot projects, experiments in improved educational methods in different fields, production of suitable literature, training of selected personnel, translation of important works into Indian languages, promotion of the Federal language, etc. it can also assist in providing the educational base of projects for the intensive development of selected areas."—Planning Commission.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१. चुने हुए क्षेत्रों में शिक्षा का सघन-विकास;
२. (क) माध्यमिक शिक्षा में अनुसन्धान प्रायोजनों का उत्थान;
(ख) पब्लिक स्कूलों में योग्यता छात्रवृत्तियाँ;
३. (क) श्रव्य-द्रश्य शिक्षा के लिये विशेषज्ञों का प्रशिक्षण;
(ख) बालकों तथा प्रौढ़ों के लिये उपयुक्त साहित्य की सृष्टि;
(ग) अ-हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार;
४. चुने हुए शिक्षा प्रयोग;
५. बाल अपराधियों के लिये अग्रिम-केन्द्र[1] स्थापित करना;
६. आयोजन स्वेच्छा संगठनों[2] को अनुदान;
७. युवक कल्याण;
८. अन्तर्राज्य विचारधारा की अभिवृद्धि;
९. राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय;
१०. राष्ट्रीय आधारीय शिक्षा केन्द्र;
११. केन्द्रीय पाठ्य पुस्तक अनुसन्धान व्यूरो;
१२. व्यावसायिक व शैक्षिक मार्गदर्शन[3]
१३. प्रौढ़ अन्धों के लिये केन्द्र; तथा
१४. विभिन्न योजनायें।

इन सभी योजनाओं में प्रगति जारी है। इनमें से प्रमुख का उल्लेख अन्यत्र भी किया जा चुका है। प्रथम आयोजन काल में केन्द्र की ओर से जो अनुदान राज्य सरकारों को इन योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये दिये हैं वे द्वितीय आयोजन काल में भी जारी रखे जाँयगे और उनमें यथासम्भव वृद्धि भी की जायगी।

भारतीय राष्ट्रीय कमीशन :

भारत सरकार सन् १९४६ से ही 'यूनेस्को'[४] की सदस्य है। यूनेस्को के विधान के अनुसार प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र को यूनेस्को की योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये एक राष्ट्रीय कमीशन की स्थापना करनी होती है। यह कमीशन सरकार को देश में यूनेस्को की रूपरेखा के आधार पर शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति के उत्थान के लिये सलाह देता हैं।

---

1. Pilot Centre for Juvenile Delinquency.
2. Voluntary Educational Organisation.
3. Vocational and Educational Guidance.
4. United Nations Educational Scientific and Cultural Organisation.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भारत सरकार ने मार्च, १९४९ में एक अन्तरिम कमीशन की स्थापना करदी थी। १९५३ में इस कमीशन को स्थायी बना दिया गया ?[1] इसमें ११ सदस्य हैं। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री इसके अध्यक्ष हैं।

इस स्थायी 'भारतीय राष्ट्रीय कमीशन' का प्रथम सम्मेलन नई दिल्ली में ९ जनवरी से १४ जनवरी १९५४ को हुआ था। इस सम्मेलन में अफगानिस्तान, लंका, मिश्र, इन्डोनेशिया, ईरान, ईराक, जापान, लेबनान, नेपाल, सीरिया, तथा तुर्की के राष्ट्रीय कमीशनों के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया था। इस समेलन में एशिया तथा अफ्रीका की शिक्षा तथा संस्कृति सम्बन्धी समस्याओं पर कई मूल्यवान व महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये गये थे।

इस कमीशन के शिक्षा प्रयत्नों के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि इसने प्रारम्भ से ही बड़े उत्साह से कार्य प्रारम्भ कर दिया है। यूनेस्को के द्वारा माँगी गई सभी शिक्षा सम्बन्धी सूचनाओं को भेजा गया है। भारत सरकार शीघ्र ही एक "मौलिक शिक्षा का राष्ट्रीय केन्द्र"[2] स्थापित करने जारही है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये भारत सरकार मैसूर की राज्य सरकार के साथ मिल कर यूनेस्को के अन्तर्गत मैसूर में 'मौलिक शिक्षा' (Fundamental Education) में विशेषज्ञों को प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से एक केन्द्र खोल रही है। राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों तथा मानव-अधिकार के मौलिक सिद्धान्तों का देश में प्रचार करने का कार्य भी इसी कमीशन के अन्तर्गत है। साथ ही इस कमीशन के अन्तर्गत काका कालेलकर की अध्यक्षता में नियुक्त हुए 'शिक्षा-उप-कमीशन' ने भी गान्धी जी के विचारों का विश्व में प्रचार करने की दृष्टि से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

उपसंहार :

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में आज शिक्षा उत्तरोत्तर प्रगति करती जा रही है। केन्द्र तथा राज्यों के अपने-अपने कार्यक्रम हैं। पूर्व बेसिक, जूनियर-बेसिक, सीनियर बेसिक या माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय सभी प्रकार की शिक्षा भारत की आधुनिक आवश्यकता के अनुरूप ढलती जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रवृत्तियाँ

---

1. "......the main purpose of setting up the National Commission was, on the one hand, to make Unesco conscious of the people's needs, and on the other, to make the people conscious of Unesco's functions and purposes." *Report of the Proceeding of the First Conference* of the Indian National Commission for Co-operation with Unesco, p. 2. (1954).

2. National Centre for Fundamental Education.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कार्यशील हैं वे अवश्य ही भावी भारत के निर्माण की दिशा में शुभ लक्षण हैं। इससे हमें यह न समझ लेना चाहिये कि हमारी शिक्षा निष्कलंक है। वस्तुत: शिक्षा-प्रणाली में जो प्रमुख दोष हैं, हमने पहले ही यथास्थान उन पर प्रकाश डाल दिया है। . . . .

. . शिक्षा का अधिकांश में पुस्तकीय होना; परीक्षाओं का प्रभुत्व; प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के नियन्त्रण का प्रश्न; विभिन्न स्तरों पर शिक्षा में समन्वय का अभाव; योग्य व प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव; शिक्षण-प्रणाली का अधिकांश में प्रभावहीन व अमनोवैज्ञानिक होना; पाठ्यक्रम का विद्यार्थी जीवन से सम्बन्ध न होना; अनाकर्षक व अपर्याप्त विद्यालय-भवन; अनुपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें और अन्त में शिक्षकों की दुर्दशा इत्यादि भारतीय शिक्षा-प्रणाली के प्रमुख दोष हैं। अत: इन दोषों का निराकरण शीघ्रातिशीघ्र आवश्यक है। आज भारत में एक ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो कि व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का उन्मुक्त विकास करने के साथ ही साथ उसे देश की आर्थिक सम्पत्ति में अभिवृद्धि करने के भी उपयुक्त बनादे। उसकी शिक्षा जीवन के लिये, राष्ट्र के लिये एवं मानवता के भौतिक व अभौतिक कल्याण के लिये होनी चाहिये। भारतीय शिक्षा का भविष्य ही भारत का भविष्य है। यदि हमें देश में एक जनतन्त्र को सफल बनाना है और वर्गहीन व शोषण-विहीन समाजवादी समाज की स्थापना करनी है तो निस्संदेह इन सिद्धान्तों को हमें भारत की शिक्षा-प्रणाली में लागू करना होगा। जब तक प्राथमिक-शिक्षक और विश्वविद्यालय शिक्षक के बीच में इतनी चौड़ी खाई रहेगी, हम समाज में से भी ऊँच और नीच का वर्गभेद नहीं मिटा सकते। जब तक हमारे शिक्षक का शोषण होगा और वह दरिद्रता व अपमान का जीवन वितायेगा, हम देश में न तो शोषण-हीन समाज की स्थापना कर सकते हैं और न राष्ट्र के भावी नागरिकों में आत्म-सम्मान व साहस की भावनाओं का संचार ही कर सकते हैं। "आज अधिकांश व्यक्ति इस बात से सहमत हैं कि हमारी वर्तमान शिक्षा इस प्रकार से ढाली जाय कि भारत का भावी नागरिक शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक रूप से एक सुदृढ़ व्यक्ति हो, जो कि एक स्वतन्त्र, जनतन्त्रीय तथा आत्म-निर्भर भारत का निर्माण कर सके और उसकी प्रतिभाओं का इस प्रकार विकास हो कि वह आधुनिक विश्व-क्रम में अपने महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य का पालन कर सके।"[1]

1. Munshi, K. M., on *Future of Education in India* p. 24, Publications Division (1954).

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१७

उत्तर प्रदेश में शिक्षा-प्रगति

(१९३७-५८ ई०)

प्राथमिक तथा बेसिक शिक्षा :

१९३७ ई० में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल की स्थापना के साथ ही 'वर्धा शिक्षा योजना' को लागू कर दिया गया, जिसके अनुसार प्राथमिक स्कूलों में बेसिक शिक्षा प्रारम्भ कर दी गई। अगस्त, १९३८ में ग्रेजुएट शिक्षकों को बेसिक शिक्षा-प्रणाली में प्रशिक्षण देने के लिए एक बेसिक ट्रेनिंग कालेज की स्थापना की गई। उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा के स्वावलम्बन वाले पक्ष को नहीं अपनाया गया यद्यपि विद्यार्थियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री द्वारा कुछ आय की कल्पना अवश्य की गई थी। साथ ही कला तथा उसके प्रयोगात्मक अंग को विशेष महत्त्व दिया गया और विषयों का समन्वय केवल हस्त-कलाओं तक ही सीमित न रख कर विद्यार्थियों के सामाजिक वातावरण तक विस्तृत कर दिया गया। साथ ही नगरपालिकाओं तथा जिला बोर्डों द्वारा संचालित सभी प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों को तथा शिक्षा-विभाग के निरीक्षण-अधिकारियों के लिए बेसिक शिक्षा में प्रशिक्षण के लिये रिफ्रेशर कोर्स की व्यवस्था की। १९३९ ई० में आचार्य नरेन्द्रदेव समिति ने जो सिफारिशें प्राथमिक शिक्षा की पुनर्व्यवस्था तथा सुधार के लिये की थीं, उनको सरकार ने कार्यान्वित करना प्रारम्भ किया ही था कि लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल ने त्याग-पत्र दे दिया; उसके उपरान्त युद्ध की कठिनाइयों के कारण सरकार ने शिक्षा-प्रसार पर अधिक ध्यान नहीं दिया। फलतः प्राथमिक शिक्षा के विकास को इससे बड़ा आघात लगा। बेसिक-प्रणाली की भी ऐसी स्थिति में अधिक प्रगति नहीं हो सकी।

सन् १९४४ ई० में प्राथमिक स्कूलों के लिये सार्जेन्ट योजना में भी बेसिक पद्धति को अपनाने की बात कही गई थी, किन्तु उसके उपरान्त १९४७ में भारत की स्वतन्त्रता के उपरान्त प्राथमिक शिक्षा में और भी अधिक प्रगति हुई। सन् १९४७ में प्रदेश में स्कूल जाने योग्य बालकों की संख्या लगभग ५८ लाख थी जिनमें से केवल १५ लाख के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लिये ही शिक्षा-व्यवस्था उपलब्ध थी। शेष ४३ लाख की प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध करना था। ऐसी स्थिति में राज्य सरकार ने राज्य के प्रत्येक गाँव में एक प्राथमिक स्कूल खोलने की योजना बनाई। राज्य सरकार ने शिक्षा-विकास का एक पंचवर्षीय कार्य-क्रम अपनाया। इसके अन्तर्गत उन्होंने ५ वर्ष के अन्तर्गत ही सम्पूर्ण स्कूलों के खोलने का निश्चय किया और तदनुसार प्रतिवर्ष ४,४०० स्कूल की योजना बनाई। किन्तु आर्थिक संकट तथा उचित नियोजन के अभाव में यह योजना केवल एक पवित्र आशा मात्र ही बनी रही। सन् १९४६ से १९५२ तक प्रदेश में केवल १५,००० हजार स्कूल खुल सके। उत्तर प्रदेशीय सरकार ने स्थानीय बोर्डों के नियन्त्रण के अन्तर्गत स्कूल खोलने के अतिरिक्त लगभग ११,५५० राजकीय स्कूल भी खोले थे, किन्तु इन्हें भी स्थानीय बोर्डों को हस्तान्तरित कर दिया। इस हस्तान्तरण का कारण आर्थिक तथा प्रशासन सम्बन्धी कठिनाइयाँ थीं। सन् १९५७-५८ में उत्तर प्रदेश में ३१ हजार से भी अधिक प्राथमिक स्कूल होगये जिनमें लगभग २८ लाख बालक शिक्षा पाते थे। इन स्कूलों में ६ से ११ वर्ष तक के बच्चों के लिये ५ वर्ष तक शिक्षा की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेशीय सरकार ने इस वर्ष प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क कर दिया है जिससे लगभग २८ लाख बच्चे कक्षा ५ तक बिना फीस के शिक्षा पाने लगे हैं। किन्तु दुर्भाग्य का विषय यह है कि अभी तक यह शिक्षा अनिवार्य नहीं हो सकी है। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन काल के अन्त तक सभी नगरपालिकाओं में इसे अनिवार्य करने का लक्ष्य है।

प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में इस राज्य में एक बड़ी विचित्र बात यह है कि राज्य सरकार ने यह मान लिया है कि सभी प्राथमिक स्कूल बेसिक स्कूल हैं। वास्तव में नामकरण से ही इन पाठशालाओं को हम बेसिक नहीं मान सकते। बेसिक शिक्षा-पद्धति एक विशिष्ट पद्धति है और जब तक पूरे रूप में उसके सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप नहीं दिया जाता तथा शिक्षा किसी उपयोगी हस्तकला को माध्यम मान कर नहीं दी जाती तो केवल नाम बदलने से ही हम स्कूलों को बेसिक स्कूल नहीं मान सकते। यह स्थिति हास्यास्पद है।

इधर सरकार ने स्कूलों के लिये भवन-निर्माण के लिए भी अनुदान देना प्रारम्भ कर दिया है। जिन गांवों में नये स्कूलों की स्थापना की जाती है वहाँ के निवासियों को सर्वप्रथम एक स्वीकृत आकार का एक पाठशाला भवन निर्माण करना पड़ता है। राज्य की ओर से ऐसे प्रत्येक स्कूल के लिये १,०००) रु० सहायता-अनुदान मिलता है। ग्रामीण जनता ने भी इस कार्य में श्रम इत्यादि के द्वारा कुछ सहयोग दिया है। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत भी पाठशालाओं का निर्माण किया जा रहा है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इन स्कूलों में अध्यापन कार्य करने के लिये शिक्षकों की आवश्यकता थी। अतः क्रमशः नार्मल स्कूलों की संख्या में वृद्धि करदी गई है। सन् १९४९ तक प्रत्येक जिले में एक नार्मल स्कूल स्थापित कर दिया गया था। प्रशिक्षित शिक्षकों के लिये माँग की पूर्ति करने के लिये सरकार ने एक 'चल शिक्षक दल' भी प्रारम्भ किया। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक जिले में एक दल की स्थापना करदी गई। इस दल में बेसिक शिक्षा प्राप्त ग्रेजुएट तथा बेसिक हस्तकला में दक्ष दो बी० टी० सी० सहायक अध्यापक होते थे। यह दल गाँव के अध्यापकों को मनोविज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, कला व हस्तकला, शारीरिक व्यायाम व अन्य सांस्कृतिक कार्यों का प्रशिक्षण देता था। कुछ दिन तक तो यह योजना चली, किन्तु सफल न हो सकी। अतः अब इसे समाप्त कर दिया गया है।

राज्य में इस समय प्राथमिक अध्यापकों की कुल संख्या ७७ हजार से भी अधिक है जिनमें लगभग ६ हजार महिलायें हैं। इनके ज्ञानवर्धन तथा प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की गई है। प्रशिक्षण काल १ वर्ष से बढ़ाकर २ वर्ष का कर दिया गया है। विभिन्न समस्याओं का समाधान करने के लिये केन्द्रीय अध्ययन विज्ञानशाला, प्रयाग तथा राजकीय बेसिक ट्रेनिंग कालेज लखनऊ में बेसिक शिक्षा पर कुछ अनुसन्धान भी किया जाता है। विभिन्न जिलों में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में समय-समय पर गोष्ठियों का भी आयोजन किया जाता है।

शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना :

भारत एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ सम्पूर्ण ६९·४% जनसंख्या केवल कृषि के द्वारा ही जीविका उत्पन्न करती है। अतः देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली, जिसमें बालकों के पुस्तकीय ज्ञान तथा मानसिक उन्नति पर ही अधिक बल दिया जाता है, प्रायः देश के अधिकांश बालकों के लिये अनुपयुक्त रहती है। जो कुछ भी ज्ञान बालक स्कूल में प्राप्त करता है वह उसके जीवन की वास्तविकताओं से मेल नहीं खाता। किसी भी प्रकार के औद्योगिक आधार के अभाव में उसकी शिक्षा नितान्त अनुत्पादक रहती है। शिक्षितों में देशव्यापी बेकारी होने में हमारी इस पुस्तक-प्रधान शिक्षा-पद्धति का बहुत हाथ है। ऐसी स्थिति में शिक्षा-पद्धति में प्रत्यक्ष रूप से कृषि या उद्योगों व हस्तकलाओं का शिक्षण एक विशेष महत्व रखता है। इसके अतिरिक्त प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा में अधिक साम्य उत्पन्न करने तथा प्राथमिक स्तर पर प्राप्त की हुई शिक्षा के आधारभूत तत्वों को आगे भी जारी रखने के लिये यह आवश्यक है कि जूनियर हाईस्कूल स्तर पर भी ऐसी ही शिक्षा-पद्धति को जारी रखा जाय। जब कि देश के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये विशाल विकास योजनाओं को कार्यान्वित किया

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जा रहा है तो यह नितान्त आवश्यक है कि हमारे युवकों को ऐसी ही शिक्षा दी जाय जो कि उनके सर्वाङ्गीण विकास के साथ ही साथ देश के आर्थिक पुनर्निर्माण में भी सहायक हो। इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित होकर उत्तर प्रदेश सरकार ने शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना को लागू किया है। क्योंकि कृषि ग्रामीण-जीवन का आधार है, अतः बालक की शिक्षा का केन्द्र कृषि ही रखा गया है। शिक्षा पुनर्व्यवस्था की यह योजना यद्यपि वर्तमान में जूनियर हाईस्कूलों में ही लागू की गई है, तथापि वह प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक सभी स्तरों पर लागू की जायगी। बेसिक शिक्षा के अन्तर्गत कक्षा ५ तक तो प्रदेश के बालक ६-११ की आयु तक किसी हस्तकला को केन्द्र मान कर शिक्षा प्राप्त करते ही हैं। अतः अब इस योजना को ११ वर्ष की आयु के उपरान्त किशोरों की शिक्षा-आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये लागू किया जा रहा है। एक प्रकार से यह बेसिक शिक्षा को ही आगे बढ़ाने का एक कदम है।

इस योजना के अन्तर्गत प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक जूनियर हाईस्कूल अथवा हायर सैकिंडरी स्कूल को ५ से १० एकड़ तक का एक फार्म बनाना होगा। यह भूमि इन स्कूलों ने गाँव वालों से दान में प्राप्त की है। जहाँ यह भूमि उपलब्ध न हो सकेगी अथवा जहाँ कृषि की अपेक्षा लोग हस्तकला या किसी अन्य कुटीर उद्योग को करते हों और वह उनका प्रमुख उद्योग हो, तो वहाँ स्थानीय आवश्यकताओं और विशेषताओं के अनुसार वह हस्तकला या उद्योग ही शिक्षा का आधार होगा। स्कूल का फार्म शिक्षक की सहायता तथा पथ-प्रदर्शन में स्कूल के लड़कों द्वारा निर्मित किया जायगा। प्रत्येक बालक दिन में दो घंटे खेत पर कार्य करेगा। स्कूल ही विद्यार्थियों के लिए एक प्रमुख क्रिया-क्षेत्र होगा जहाँ वे शारीरिक श्रम, सामाजिक जीवन तथा स्वावलम्बन का पदार्थ-पाठ पढ़ेंगे। इन फार्मों पर कृषि की आधुनिक विधियों का परीक्षण करके कृषि की जायगी; और गाँव के अन्य कृषकों को भी इन फार्मों पर प्रदर्शन करके आधुनिक कृषि-विधियों को काम में लाने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकेगा। गाँव के बालक भी, जो कि आगे चल कर प्रायः कृषि करके जीविकोपार्जन करते हैं, प्रारम्भ से ही कृषि की उन्नत विधियों में प्रशिक्षण पा लेंगे।

प्रत्येक स्कूल निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों के लिए सामाजिक जीवन का एक केन्द्र होगा। यहाँ प्रत्येक वस्तु का प्रबन्ध शिक्षक व विद्यार्थियों के पारस्परिक सहयोग के द्वारा किया जायगा। प्रत्यक्ष रूप से कृषि करने के अतिरिक्त विद्यार्थी स्कूल के चारों ओर उद्यान लगाने तथा उसे आकर्षक व स्वच्छ बनाने का कार्य भी अपने हाथों से करेंगे। कृषि में प्रयोग होने वाले औजारों की मरम्मत इत्यादि के लिये एक छोटा सा कारखाना

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(Workshop) भी स्कूल में स्थित कर दिया जायगा। इसमें लकड़ी, लोहा तथा अन्य इसी प्रकार के कार्यों को भी विद्यार्थी सीख सकेंगे।

इस योजना का उद्देश्य केवल यह ही नहीं है कि विद्यार्थियों को कुशल कृषक बना दिया जाय, अपितु उनके सांस्कृतिक व सामाजिक जीवन को विकसित करने के लिए भी स्कूल में व्यवस्था होगी। विद्यार्थियों के लिये पुस्तकालय, वाचनालय, क्रीड़ा-स्थल तथा रंगमंच इत्यादि की भी व्यवस्था होगी। यहाँ लोक-गीत, लोक-नृत्य, अभिनय तथा स्थानीय विशेषताओं के अनुसार मनोरंजन के अन्य साधनों के द्वारा विद्यार्थी न केवल अपना ही मनोरंजन करेंगे, अपितु अन्य ग्रामीणों को भी इसमें भाग लेने की सुविधा उपलब्ध करके उनका सांस्कृतिक उत्थान करने में सहायक होंगे। इस प्रकार विद्यार्थी और ग्रामीण एक दूसरे के पारस्परिक सम्पर्क में भली भाँति आ सकेंगे।

इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व करने के गुणों का विकास करने के लिये प्रत्येक गाँव में एक 'युवक दल' की स्थापना की जायगी। इस दल का नेता विद्यार्थियों द्वारा चुना जायगा। शिक्षक उनका सलाहकार होगा। किसी ग्रामीण व्यक्ति को भी दल में सलाहकार की हैसियत से सम्मिलित किया जा सकता है। इस दल की सदस्यता के लिये केवल वे ही विद्यार्थी अधिकारी होंगे जो कि कुछ वैयक्तिक कार्य जैसे कताई, सफाई, एक वृक्ष का आपोरण व रक्षा, एक पशु की अथवा मधुमक्खियों के एक छत्ते की देखभाल इत्यादि कर सकेंगे। वैयक्तिक कार्य के अतिरिक्त दल के कुछ सामूहिक कार्यक्रम भी होंगे। यह आवश्यक होगा कि एक दल वर्ष में कम से कम चार ऐसे कार्यक्रमों को पूर्ण कर दे। इन कार्यक्रमों में गाँव की नाली बनाना, सड़क बनाना और उस पर वृक्षों की पंक्ति लगाना, एक अभिनय खेलना अथवा अन्य इसी प्रकार के कुछ कार्य सम्मिलित होंगे। अन्य फार्मों की सैर अथवा खुली वायु में वायु-विहार के लिये जाना भी इस दल के कार्यक्रमों में सम्मिलित होगा। इस दल का उद्देश्य सामाजिक हित के कार्य करना, जैसे कहीं आग लगने पर बुझाने जाना, टिड्डियों को नष्ट करना अथवा खेतों में फसलों में लगने वाले कीड़ों का नष्ट करना इत्यादि भी होगा। दल की विशेष बैठकें भी होंगी, जिनमें खेल-कूद तथा अन्य मनोरंजन के कार्यक्रम रखे जायेंगे। इस मनोरंजन में स्कूल के बालकों के अतिरिक्त गाँव के अन्य बालक भी भाग ले सकेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना' के अन्तर्गत स्कूल सम्पूर्ण सामुदायिक जीवन के क्रिया-कलापों का केन्द्र होगा। किन्तु यह योजना बिना ग्रामीण लोगों के क्रियात्मक सहयोग व सच्ची सहानुभूति के सफल नहीं हो सकती।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वस्तुत: उन लोगों की सहानुभूति ही इसका प्राण होगी। ग्रामीण लोगों की क्रियात्मक सहानुभूति के अतिरिक्त इस शिक्षा की प्रमुख धुरी के रूप में होगा 'शिक्षक'। वस्तुत: उसी के मार्ग-दर्शन व संगठन-शक्ति पर योजना की सफलता या असफलता निर्भर है। वैसे तो शिक्षा की किसी भी योजना में शिक्षक का महान् महत्त्व होता है, किन्तु इस शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना में उसका विशेष महत्त्व है। अपने विद्यार्थियों को कृषि की व्यावहारिक शिक्षा देने के अतिरिक्त एक सामाजिक व पूर्ण जीवन के लिये उनके समक्ष आदर्श रखना तथा उस आदर्श की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा का संचार करना उसी शिक्षक का कार्य होगा अत: इसके लिए यह भी आवश्यक होगा कि शिक्षक को न केवल कृषि, हस्तकला, उद्यानकला व पशु-पालन में स्वयं दक्ष ही होना चाहिये, अपितु एक व्यावसायिक ज्ञान के अतिरिक्त उसे स्कूल के सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन को संचालित करके उसे योजना के आदर्शों के अनुरूप ढालने के लिये एक मार्ग-दर्शक व नेता का कार्य करना होगा। यह तब तक संभव नहीं हो सकेगा, जब तक कि शिक्षक इस कार्य को अपना एक पवित्र कर्त्तव्य व हेतु समझकर अपने आप को बिना शर्त समर्पण नहीं कर देता।

योजना की प्रगति :

जुलाई, १९५४ ई० में उत्तर प्रदेश सरकार ने इस योजना को सारे प्रदेश में लागू कर दिया है। ३,००० जूनियर स्कूलों तथा हायर सेकिंडरी स्कूलों में यह योजना लागू की जा चुकी है। इनमें से लगभग २,३०० स्कूलों को भूमि मिल चुकी है। इस भूमि को गाँव वालों की सहायता से जोता और बोया गया है। सरकार ने प्रारम्भिक आवश्यकता के कुछ औजार इन स्कूलों को दिये हैं। अभी तक सभी स्थानों में हल, बैल या कुँआ इत्यादि की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी है। प्रत्येक फार्म का क्षेत्र लगभग १० एकड़ रखा गया है। प्रारम्भिक कुछ महीनों के उपरान्त ही यह अनुभव किया जाने लगा है कि योजना क्रमश: न केवल स्वावलम्बी हो जायगी, अपितु कुछ लाभ भी प्रदान करने लगेगी। यहाँ तक कि फार्म पर कार्य करने वाले शिक्षक और विद्यार्थियों को कुछ पारिश्रमिक भी दे सकेंगी।

कुछ स्कूल जिनमें कृषि प्रारम्भ नहीं की जा सकती, उन्हें किसी न किसी स्थानीय हस्तकला में प्रशिक्षण देने के लिए चुन लिया गया है। यह हस्तकला ही यहाँ शिक्षा का केन्द्र होगी। इस योजना का प्रारम्भिक खर्चा चलाने के लिये मुख्य मंत्री के नाम से एक 'शिक्षा कोष' भी खोल दिया गया था। केन्द्रीय सरकार ने भी इस योजना का समर्थन किया है। साथ ही केन्द्र के आदेशों पर प्राथमिक शिक्षा के लिये अग्रिम-योजनायें

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(Pilot Projects) भी प्रारम्भ की जा रही हैं। इन योजनाओं का भी पुनर्व्यवस्था योजना से समन्वय स्थापित कर दिया जायगा।

योजना के विषय में सलाह देने व नीतियों को निर्धारित व कार्यान्वित करने के लिए राज्य में एक 'राज्य शिक्षा परिषद' की स्थापना की जा चुकी है। राज्य के मुख्य मन्त्री इसके अध्यक्ष तथा शिक्षा मन्त्री उपाध्यक्ष होंगे एवं अन्य सम्बन्धित मन्त्री अन्य सदस्यों के रूप में रहेंगे। जिला व ग्राम्य-स्तर पर भी इसी प्रकार की समितियाँ होंगी जो सलाहकार का कार्य करेंगी।

आलोचना :

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा पुनर्व्यवस्था की यह योजना उत्तर प्रदेश में अब एक जीवित सत्य व वास्तविकता के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारी शिक्षा पद्धति के बहुत से दोषों को दूर करने, बालक का सर्वाङ्गीण विकास करने, देश की बेकारी समस्या को दूर करने, बालक को समाज का एक उत्पादक अंग बनाने, बालकों को शारीरिक श्रम का गौरव पाठ पढ़ाने, जनतन्त्र व नेतृत्व का प्रशिक्षण देने, और स्कूल व ग्रामीण जनता को अधिक से अधिक प्रत्यक्ष सम्पर्क में लाने में इस योजना को पर्याप्त सफलता मिलेगी। अपने स्वाभाविक व परम्परागत वातावरण में बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण व समुचित विकास हो सकेगा। स्कूल में अपने हाथ से कार्य करता हुआ वह शारीरिक श्रम के महत्व को समझने के साथ ही साथ एक स्वस्थ व स्वावलम्बी नागरिक के रूप में विकसित होगा। बहुधा यह देखा जाता है कि अधिकांश ग्रामीण बालक जूनियर हाईस्कूल पास करने के उपरान्त खेती में लग जाते हैं। अब तक ऐसे बालकों को किसी भी प्रकार से कृषि का व्यावहारिक प्रशिक्षण न मिलने के कारण प्राय: वे भी जीवन में कृषि की पुरानी व परम्परागत विधियों का ही अनुसरण करते थे। किन्तु अब वे इन स्कूलों में नवीन कृषि-विधियों में प्रशिक्षित होकर निकलेंगे। इसके अतिरिक्त इस योजना से एक महान् लाभ यह भी हुआ है कि गाँव की प्राय: ऐसी भूमि को, जो बिल्कुल बेकार या बंजर पड़ी हुई थी, हमारे बालकों ने अपने शिक्षक के सहयोग से दिन-रात श्रम करके उपजाऊ बना लिया है; और भविष्य में आशा है कि वह और भी अधिक उपजाऊ करली जायगी। इस प्रकार बेकार भूमि को उत्पादक बनाकर राष्ट्रीय आय को और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस योजना का यह लाभ होगा कि हमारे नवयुवक प्रशिक्षण के उपरान्त गाँवों में कृषि की उन्नति करने में ही लग जाँयगे। साथ ही योजना से शिक्षकों व छात्रों को कुछ आय होने की भी सम्भावना है। इससे राज्य के ऊपर शिक्षा का भार हलका हो जायगा और बची हुई धनराशियों को सरकार शिक्षा-सुधार के अन्य कार्यों के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अपनाने में लगा सकेगी। नवीन शिक्षा योजना का एक लाभ यह भी होगा कि स्थानीय जनता इन विद्यालयों के समीप आ जायगी और ये संस्थायें वास्तविक अर्थों में सामुदायिक केन्द्र बन सकेंगी। हमारे स्कूल ऐसे केन्द्रों के रूप में विकसित हो जाँयगे जो ग्रामीण संस्कृति, सामाजिक जीवन तथा आर्थिक उत्थान के आधार होंगे।

दोष : यहाँ तक तो रही योजना के गुणों की बात। इन गुणों की अपेक्षाकृत इसे हम पूर्णतः निर्दोष भी नहीं कह सकते। इसके आलोचकों का कहना है कि इसके लागू होने से शिक्षा का सामान्य मानदण्ड गिर जायगा। लड़के अधिकांश में खेती करने में लगे रहेंगे। इससे उनके अन्य विषयों की पढ़ाई-लिखाई भली-भाँति न हो सकेगी। इसका परिणाम यह निकलेगा कि जब ये बालक नगरों में उच्च शिक्षा के लिये आवेंगे तो नगर के बालकों की अपेक्षा इनके सामान्य ज्ञान का स्तर बहुत नीचा होगा। इससे उच्च शिक्षा का मानदण्ड भी गिर जायगा। साथ ही स्वयं ये बालक भी उच्च पदों के लिये प्रतिस्पर्धा में नगर के बालकों की अपेक्षा बहुत पीछे रह जाँयगे। कुछ उग्रवादी तो यहाँ तक कहते हैं कि ग्रामीणों को सदा पिछड़ा हुआ देखने तथा उन्हें खेती करने तक ही सीमित रखने के लिये यह सरकारी चाल है। इतना तो हम नहीं कह सकते, किन्तु हाँ इतना अवश्य कह सकते हैं कि ग्रामीण बालकों के जूनियर स्तर पर अधिकांश में कृषि में ही लगे रहने पर उच्च शिक्षा का मानदण्ड अवश्य गिर जायगा। इतना ही नहीं समाज दो विभिन्न व स्पष्ट वर्गों बँट जायगा और ऐसी स्थिति में वर्ग-विहीन समाज स्थापित करने की हमारी सारी आशाओं पर तुषारापात हो जायगा।

दूसरे, गाँव वालों का कहना है कि यदि कृषि के लिये ही उन्हें अपने बालकों को स्कूल भेजना है तो यह कार्य तो वे अपने घरों पर ही करा लेंगे। फिर स्कूल भेजने से क्या लाभ ? वास्तव में यह तर्क बड़ा सारहीन है। देखा यह जाता है कि किसान स्वयं बड़ी ही प्राचीन व अवैज्ञानिक कृषि-विधियों को अपनाते हैं, जबकि इन स्कूलों में उन्नत व वैज्ञानिक विधि से कृषि करना सिखलाया जायगा। इसके अतिरिक्त भी कितने ऐसे बालक हैं जो स्कूलों में पढ़ते हुए भी खेत पर अपने माँ-बाप के कार्य में हाथ बँटाने में गौरव समझते हैं ? यहाँ तक देखा जाता है कि स्वयं माँ-बाप भी इस बात को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते हैं कि पढ़-लिख कर भी उनका पुत्र खेती करे। इसे केवल एक दूषित व अप्रगतिशील मनोवृत्ति ही कहना चाहिये।

इसके अतिरिक्त अन्य दोष यह बताये जा रहे हैं कि योजना में पूर्व-नियोजन का अभाव है। इसे भली-भाँति समझाया नहीं गया है। यहाँ तक कि बहुत से उत्तरदायी जिला शिक्षा अधिकारी भी अपने आपको भी अन्धकार में समझते हैं। यह बात सत्य है कि सरकार के प्रयत्न इस योजना को लोकप्रिय बनाने तथा इसका स्पष्ट चित्र उपस्थित करने

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में बड़े अधूरे व अपर्याप्त रहे हैं। योजना में पूर्व-नियोजन का अभाव इस बात से जाना जा सकता है कि गत जौलाई में जब इसे लागू किया गया, तो उसके बहुत दिनों बाद तक भी प्रसार-शिक्षकों को यह नहीं मालूम हो पाया कि उन्हें क्या करना है ? कहाँ से उन्हें बीज व औजार इत्यादि मिलेंगे ? सरकार ने न तो बैलों की कोई व्यवस्था की और न सिंचाई की। यह बात कहना व्यर्थ है कि भारत जैसे देश में सिंचाई व हल-बैलों की व्यवस्था न करके नये तरीकों में स्कूलों में कृषि का प्रशिक्षण देने की कल्पना करना हास्यास्पद है। इसके अतिरिक्त यह कहा जाता है कि शिक्षा अधिकारियों द्वारा 'शिक्षा कोष' के लिये बल-पूर्वक शिक्षकों तथा विद्यार्थियों से रुपया वसूल किया गया। इससे ग्रामीण जनता का एक बड़ा भाग योजना के विरुद्ध हो गया है। कुछ ग्रामीण इसलिये भी विरुद्ध हो गये हैं, कि जो भूमि स्कूलों को दे दी गई है, अब तक उनके पशुओं के चराने अथवा स्वयं उनके लिये धीरे-धीरे तोड़ करके कृषि योग्य बनाने के काम में आती थी। अब वह लाभ जाता रहा। इसके साथ कुछ ग्रामीण यह भी डर रहे हैं कि चकबन्दी की योजना में स्कूल का फार्म स्कूल के निकट ही रखने की चेष्टा की जायगी और ऐसी स्थिति में सम्भवत: उनकी अच्छी भूमि छिन कर उन्हें बंजर भूमि मिल जायगी। अन्त में यह भी देखा गया है कि प्रसार-अध्यापकों को भी अपने कार्य में अधिक रुचि नहीं है। अध्यापकों में ऐसे लोगों का चुनाव अधिक हो गया है जिन्होंने स्वयं कृषि का अध्ययन नहीं किया है। फिर वे कृषि का वैज्ञानिक प्रशिक्षण ३ माह की ट्रेनिंग पाकर ही किस प्रकार दे सकते हैं ? नगरों से भर्ती किये हुए शिक्षक गाँवों में अपने को अकेला पाते हैं। उन्हें अभी तक ग्रामीणों का सहयोग भी प्राप्त नहीं हो सका है।

उपर्युक्त सभी आलोचनाओं के निष्पक्ष अध्ययन से प्रतीत होता है कि जो दोष 'शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना' में बताये गये हैं वे इतने इस योजना के दोष नहीं हैं, जितने कि उसको कार्यान्वित करने की प्रणाली के हैं। यदि भली-भाँति नियोजन किया जाय तो सम्भवत: प्रशासन सम्बन्धी सभी दोषों का निवारण किया जा सकता है। जहाँ तक गाँव वालों की प्रतिक्रिया का सम्बन्ध है उसे कदापि प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। यदि भारत में जनतन्त्र को सफल होना है तो यहाँ के नागरिकों को उत्तरोत्तर इस बात के लिए सन्नद्ध होना पड़ेगा कि वे स्वार्थ के समक्ष लोक-हित को प्रथमता दें। इन सब बातों की अपेक्षाकृत भी इस महान् परीक्षण की प्रगति को शिक्षा-जगत् अभी कुछ समय तक बड़ी सूक्ष्म-दृष्टि से देखते हुए इसकी सफलता की प्रतीक्षा करेगा।

माध्यमिक शिक्षा :

माध्यमिक शिक्षा का विकास उत्तर प्रदेश में अंग्रेजी शासन काल में हुआ। इस शिक्षा का उद्देश्य मध्यम वर्ग के कुछ लोगों को प्रदेश के कतिपय सरकारी या वैयक्तिक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

स्कूलों में शिक्षा देना था; जिससे कि हाईस्कूल पास करने के उपरान्त वे लोग सरकारी कार्यालयों में क्लर्क इत्यादि का कार्य संभाल सकें। यथासंभव माध्यमिक शिक्षा का लाभ थोड़े व्यक्तियों को ही दिया जाता था, जिससे बेकारी इत्यादि न फैलने पावे। कुछ लोग उच्च शिक्षा के लिये विश्वविद्यालयों में भी जाते थे। सन् १९३७ में प्राथमिक स्कूलों की संख्या बढ़ने के कारण, माध्यमिक स्कूलों की भी संख्या बढ़ने लगी थी। शिक्षा-विशारदों का यह मत था कि उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा १२ वर्ष अध्ययन करने के उपरान्त भी विद्यार्थी को जीवन में अपने पैरों पर खड़ा होने के योग्य नहीं बना पाती। इसके उपरान्त विद्यार्थी के सम्मुख या तो कहीं पेट भरने के लिये क्लर्की इत्यादि का अवसर मिल जाता है अथवा वह विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये प्रवेश करा लेता है, अधिकांश विद्यार्थी तो उच्च-अध्ययन को भी नौकरी मिलने अथवा आर्थिक कठिनाइयों के कारण छोड़ बैठते हैं। अतः माध्यमिक शिक्षा की पूरी जाँच करने तथा उसका पुनर्संगठन करने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश सरकार ने १९३९ में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने सिफारिश यह की कि माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में विषयों की विभिन्नता होनी चाहिये जिससे जीवन के प्रत्येक पक्ष में विद्यार्थियों को प्रशिक्षण मिल सके।

युद्धकाल में माध्यमिक शिक्षा को प्रदेश में कोई विशेष प्रोत्साहन न मिल सका। इतना ही नहीं कुछ सीमा तक स्थिति गिर ही गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा के आकार में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। सन् १९४८ ई० में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना प्रदेश में लागू कर दी गई। इसके उपरान्त माध्यमिक शिक्षा का और भी अधिक प्रसार हुआ। नगरों की अपेक्षा गाँवों में इधर माध्यमिक शिक्षा का प्रसार अधिक हुआ है। आजकल ग्रामीण लोग हाईस्कूलों की स्थापना करा रहे हैं। जूनियर स्कूल उच्चतर माध्यमिक स्कूल बनते जा रहे हैं और इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा को उत्तर प्रदेश में पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता जा रहा है। सन् १९३७ से पूर्व हाईस्कूलों तथा इन्टर कालेजों का अनुपात प्रति जिले में ६ था जबकि १९५३ में यही अनुपात २३ हो गया; इसी प्रकार परीक्षार्थियों की संख्या में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। सन् १९३७ में परीक्षार्थियों की संख्या १९,०९१ थी जो १९४७ में ४८,५२१ हो गई। यही संख्या १९५३ में २,५९,४१९ और १९५७ में ३ लाख से भी अधिक होगई है।

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना के अनुसार सरकार का यह आदेश था कि या तो हाईस्कूल को १२वीं कक्षा तक कक्षायें खोलकर पूरा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हो जाना चाहिये, अथवा केवल जूनियर हाईस्कूल ही रहना चाहिए। इस आदेश का परिणाम यह निकला कि प्रत्येक पूर्व-स्थित हाईस्कूल ११ व १२वीं कक्षाओं के खोलने

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

का प्रयत्न करने लगा। बहुत से मिडिल स्कूलों ने भी सोचा कि या तो उन्हें उच्चतर माध्यमिक हो जाना है, अथवा वे केवल जूनियर हाईस्कूल ही बने रह जायेंगे। इसका परिणाम यह हुआ कि इन स्कूलों में उच्चस्तर के लिये सरकारी मान्यता प्राप्त करने की एक भगदड़ मच गई। इससे शिक्षा का स्तर पर्याप्तत: गिर गया है।

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना :

सन् १९४८ में उत्तर प्रदेश में एक नई माध्यमिक शिक्षा योजना को अपनाया गया। इसके अनुसार इसका ढाँचा इस प्रकार हो गया—(१) जूनियर हाईस्कूल, जिनमें ६, ७ व ८ कक्षायें हैं और (२) उच्चतर माध्यमिक स्कूल, जिनमें ९ से १२ तक कक्षायें हैं।

जूनियर हाई स्कूल स्तर : प्रदेश में पहिले दो प्रकार के जूनियर हाईस्कूल थे। (१) हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूल और (२) ऐंग्लो हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूल। सन् १९४८ में जब माध्यमिक शिक्षा की योजना कार्यान्वित की गई, तो उसमें हिन्दुस्तानी और ऐंग्लो हिन्दुस्तानी शिक्षा का भेद मिटा दिया गया। फलत: आज केवल एक ही प्रकार के जूनियर हाई स्कूल हैं और इनमें एक ही प्रकार के पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। पहिले हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूल से ऐंग्लो हिन्दुस्तानी स्कूल में जाने के लिए दो वर्ष का समय लगता था। किन्तु अब विद्यार्थियों के ये दो वर्ष नष्ट नहीं होते।

उच्चतर माध्यमिक स्तर : इस स्तर के अन्तर्गत ९, १०, ११ और १२ कक्षाएँ रखी गई हैं। इस योजना की प्रमुख विशेषता आचार्य नरेन्द्रदेव समिति (१९३९) की रिपोर्ट में निर्धारित विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना है। इस योजना के अनुसार पाठ्यक्रम के क, ख, ग, घ नाटक चार वर्ष कर दिये गये, जिनमें क्रमश: साहित्यिक, वैज्ञानिक, रचनात्मक और कलात्मक वर्ग सम्मिलित हैं। १०वीं कक्षा के अन्त में शिक्षा-विभाग की ओर से परीक्षा होती है। लड़कियों के लिए भी माध्यमिक शिक्षा लड़कों की सी ही रखी गई। केवल जूनियर स्तर पर लड़कियों के लिए गृह-हस्तकला के अनिवार्य कर दी गई; और उच्चतर स्तर पर गृह-हस्तकला के अतिरिक्त संगीत, चित्रकला व मातृत्व-शिक्षा भी सम्मिलित कर दी गई। उपर्युक्त पाठ्यक्रम के विभिन्न वर्गों में से 'क' व 'ख' में तो पाठ्यक्रम पूर्ववत् ही है। 'ग' वर्ग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है जिसमें टैक्नीकल व औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। इसमें कृषि, वाणिज्य, चर्म-कार्य, पुस्तकला, धातुकला तथा औद्योगिक रसायनशास्त्र प्रमुख हैं।

आलोचना :

गुण : उपर्युक्त योजना के कारण जूनियर व उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के स्तरों

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में एक तारतम्य स्थापित हो गया है। विभिन्न प्रकार की रुचि व प्रतिभायें रखने वाले छात्रों के लिए एक विस्तीर्ण व विविध प्रकार के पाठ्यक्रम की व्यवस्था होने से प्रत्येक छात्र अपनी रुचि व आवश्यकतानुसार उपयुक्त पाठ्यक्रम ले सकता है। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में चला आने वाला एक प्रमुख दोष पुस्तकीय अध्ययन की प्रमुखता था। वह पर्याप्तत: समाप्त हो सकेगा और इस प्रकार शिक्षा व्यावहारिक जीवन के अनुकूल बन जायगी। साथ ही अब विद्यार्थियों का उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करके विश्वविद्यालयों को भरना भी नहीं रहेगा। उच्चतर माध्यमिक स्तर अपने आप में एक पूर्ण-स्तर होगा जिसे उत्तीर्ण करने के उपरान्त विद्यार्थी समाज का एक उत्पादक व स्वावलम्बी अंग बन सकेगा।

किन्तु यह तो इसका सैद्धान्तिक स्वरूप रहा। वास्तव में जहाँ तक इसका व्यावहारिक पक्ष है, इसकी बड़ी कटु आलोचना हुई है और इसे प्रदेश में समर्थन नहीं मिल सका है। इसको कार्यान्वित करने में बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं। एक तो अधिकांश में विद्यार्थियों ने साहित्यिक वर्ग को ही अपने पाठ्यक्रम का विषय चुना। 'ग' वर्ग जिसे सम्पूर्ण योजना की कुञ्जी वतलाया गया है वास्तव में देखा जाय तो इस योजना की सबसे बड़ी कमजोरी है। वैज्ञानिक वर्ग में स्थिति यथावत् ही रही। इस वर्ग में प्रवेश बहुधा अधिक रहता है, प्रवेश न मिलने पर ही विद्यार्थी रचनात्मक वर्ग में जाता है अथवा कलात्मक वर्ग को चुनता है। वास्तव में इन विषयों में योग्य व प्रशिक्षित अध्यापक नहीं मिलते। विशेषत: गाँवों में इसकी कोई व्यवस्था नहीं है। दूसरी बात यह है कि विषयों के लिए जितनी सामग्री व सज्जा की आवश्यकता है वह अधिकांश में स्कूलों के पास नहीं है। और फिर दो वर्ष तक कोई भी हस्त-कला या ललितकला स्कूल में सीख कर कोई भी विद्यार्थी अपने ज्ञान को उसमें पूर्ण नहीं समझता और न उसकी समाप्ति पर उसे कहीं कोई धन्धा या नौकरी ही मिलती है। अत: अधिकांश विद्यार्थी इन विषयों को नहीं लेते।

इसके अतिरिक्त विषयों का विभाजन व उप-विभाजन 'प्रमुख' व 'सहायक' विषयों में कर दिया गया है। इससे विद्यार्थियों के मस्तिष्क में बड़ी अस्पष्टता व उलझन उत्पन्न होती है। इस विभाजन के कारण शिक्षकों, प्रबन्धकों और सरकार को भी कुछ शिक्षण व प्रशासन तथा वित्त सम्बन्धी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। वास्तव में जब प्रमुख व सहायक (Main and Subsidiary) विषयों का विभाजन किया गया था, तब सरकार का उद्देश्य यह था कि प्रमुख विषयों पर अधिक बल दिया जाय; और जिस विद्यार्थी ने किसी विषय को 'प्रमुख' करके लिया है, उसे उन विद्यार्थियों से भिन्न समझा जाय जिन्होंने उस विषय को 'सहायक' विषय के रूप में लिया है। किन्तु व्यवहार

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

में क्या हुआ ? क्या यह सम्भव हो सका कि किसी विषय को 'प्रमुख' करके लेने वाले विद्यार्थियों को उसका कोई विशेष शिक्षण दिया जा सका हो ? वास्तव में ऐसा नहीं हो सका; क्योंकि आर्थिक अभाव में स्कूलों के लिए यह बात सम्भव न हो सकी कि किसी विषय को 'प्रमुख' और 'सहायक' के रूप में विद्यार्थियों के विभिन्न समूहों को पृथक्-पृथक् पढ़ाने का प्रवन्ध कर सके। दोनों ही प्रकार के विद्यार्थियों की कक्षा एक ही साथ लगती है। इस प्रकार व्यवहार में तो यह भेद बिल्कुल ही निर्मूल रहा। वास्तव में यदि योजना का पहिले सरकारी स्कूलों अथवा आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ स्कूलों में परीक्षण करके देख लिया जाता तो अच्छा रहता। जाँच करने पर ज्ञात हुआ है कि सरकारी स्कूलों में भी स्थिति प्रायः ऐसी ही है।

संक्षेप में; आचार्य नरेन्द्रदेव समिति की जाँच के आधार पर हम कह सकते हैं कि—

(१) योजना को पर्याप्त परीक्षण करने के उपरान्त नहीं चालू किया गया था;

(२) इसे केवल आंशिक सफलता मिली है;

(३) इससे कार्य-प्रणाली तथा विद्यार्थियों को अपने प्रश्न-पत्र चुनने में बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो गई है;

(४) विषयों का अनिवार्य, प्रमुख तथा सहायक के नाम से उप-विभाजन होने के कारण शिक्षण पर बुरा प्रभाव पड़ा है;

(५) सामान्य ज्ञान (General Knowledge) जैसे विषय के अनिवार्य हो जाने का कोई लाभ नहीं हुआ है;

(६) हिन्दी को 'प्रारम्भिक हिन्दी' के नाम से अनिवार्य विषय तो बना दिया गया है, किन्तु अन्य विषयों के साथ इसके अंक नहीं जोड़े जाते। इससे इस योजना के अन्तर्गत हिन्दी को अधूरा समर्थन ही मिला है; तथा

(७) इस योजना के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि विद्यार्थियों को उनके विषयों के चुनने में मार्ग-दर्शन प्रदान किया जाय। किन्तु इसको कार्यान्वित करने के लिये किसी ऐसी ठोस योजना का निर्माण नहीं किया गया है, जिसके द्वारा सारे राज्य के स्कूलों में विद्यार्थियों की रुचियों के अनुसार मार्ग-दर्शन करके उन्हें सहायता दी जा सके।

उपर्युक्त सभी कारणों की वजह से उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना सफल नहीं हो पा रही है। इधर स्कूलों की संख्या इतनी तीव्रता से बढ़ी है कि उससे शिक्षा का मानदण्ड पर्याप्ततः गिर गया है। एक तो शिक्षा के विस्तार के कारण अधिक प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता हुई। सरकार ने इस अभाव की पूर्ति के लिये विभिन्न

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्राइवेट कालेजों में एल० टी० इत्यादि की कक्षायें खोल डालीं जहाँ से अर्ध-प्रशिक्षित शिक्षकों को बड़ी तेजी से निर्मित करके भेजा गया। ऐसे शिक्षकों के कारण शिक्षा का स्तर गिर गया। साथ ही ये स्कूल इतनी तेजी से बने कि उनकी आर्थिक स्थिति तथा अन्य साधन ठोस नहीं हो पाये। कहीं-कहीं पर निरक्षर लोगों के हाथों में प्रबन्ध के चले जाने से भी शिक्षा का स्तर पर्याप्ततः गिर गया है। इधर कक्षा ३, ४ व ५ के हाईस्कूलों में से हटाने के कारण बहुत से अभिभावकों की यह मनोवृत्ति हो गई है कि वे अपने बच्चों को सीधा कक्षा ६ में प्रविष्ट कराते हैं, और अब तक उसे बिल्कुल प्राइवेट बनाकर ही रखते हैं। प्राथमिक स्कूलों में मानदण्ड पहिले से ही बेसिक-शिक्षा के नाम पर गिरा हुआ है। ये स्कूल उन अभिभावकों को उनके बच्चों की समुचित प्राथमिक शिक्षा के लिये सन्तुष्ट नहीं कर पाते। अतः वे अपने बच्चों को सीधा छठवीं कक्षा में ही प्रवेश कराते हैं। नगरों में प्रायः ऐसा हो रहा है। इससे माध्यमिक शिक्षा के स्तर व मूल्य गिरते जा रहे हैं।

माध्यमिक शिक्षा पुनर्संगठन समिति (१९५३) :

नियुक्ति : सन् १९४८ से १९५२ तक प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा की नवीन योजना के चलने के उपरान्त यह अनुभव किया गया कि उस योजना की पुनः जाँच की जाय और देखा जाय कि उसे कहाँ तक सफलता मिली है तथा बदलती हुई परिस्थितियों में उस योजना में क्या-क्या परिवर्तन आदि किये जा सकते हैं। अतः १८ मार्च १९५२ को एक सरकारी आदेश के द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार ने इस समिति की नियुक्ति की। आचार्य नरेन्द्रदेव इसके अध्यक्ष बनाये गये। बहुधा इसे आचार्य नरेन्द्रदेव समिति भी कहा जाता है।

सिफारिशें :

समिति ने उपर्युक्त समस्याओं का अध्ययन करने के उपरान्त ८ मई, १९५३ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी।

(१) हिन्दी के साथ संस्कृत को अनिवार्य कर दिया जाय। सामान्य ज्ञान को हटा दिया जाय। गणित प्रथम दो वर्षों में अनिवार्य विषय बना दिया जाय। ९ व १० कक्षा में ६ विषय तथा ११ व १२ में ५ विषय पढ़ाये जायें। प्रमुख तथा सहायक (Main and Subsidiary) उप-विभाजन को समाप्त कर दिया जाय। माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का सुधार करने के लिये प्राथमिक, बेसिक तथा जूनियर हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में सुधार आवश्यक है।

(२) सामान्य व टैक्नीकल शिक्षा में पर्याप्त समन्वय हो। टैक्नीकल स्कूलों को

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शिक्षा विभाग के अन्तर्गत ही होना चाहिये। ऐसे स्कूलों की स्थापना करने के पूर्व उस स्थान की भौगोलिक उपयुक्तता का अध्ययन कर लेना चाहिये। यह शिक्षा निशुल्क दी जानी चाहिये। टैक्नीकल शिक्षा देने वाले शिक्षकों के लिये ट्रेनिंग कालेजों का पुनर्गठन होना चाहिये।

(३) विषयों के चुनने में विद्यार्थियों का उचित मार्ग-दर्शन होना चाहिये और इसके लिये प्रत्येक जिले में मनोवैज्ञानिक केन्द्र की स्थापना होनी चाहिये। प्रत्येक स्कूल में कम से कम एक शिक्षक को ऐसी ट्रेनिंग दी जाय कि वह बच्चों की मनोवैज्ञानिक जाँच ले सके। प्रदेश में एक 'मनोवैज्ञानिक शिक्षा अनुसन्धान परिषद्' की स्थापना भी कर देनी चाहिये।

(४) उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम में ९, १० व ११ कक्षायें सम्मिलित हों। १२वीं कक्षा को विश्वविद्यालय की डिग्री कक्षा में सम्मिलित करके उसका कोर्स भी तीन वर्ष कर दिया जाय। ११वीं कक्षा के उपरान्त ही एक परीक्षा हो। १६ वर्ष से कम आयु वाला विद्यार्थी इस परीक्षा में सम्मिलित नहीं होना चाहिये। जूनियर स्तर पर ऑबजेक्टिव-जाँच के अनुसार विद्यार्थियों की परीक्षा होनी चाहिये। परीक्षण के लिये लगभग १०० स्कूलों को चुनकर ऑबजैक्टिव-जाँच प्रणाली का हाईस्कूल परीक्षा में भी प्रयोग करना चाहिये।

(५) इलाहाबाद का सरकारी मनोवैज्ञानिक शिक्षा केन्द्र जारी रहना चाहिये। साथ ही उसका सुधार भी आवश्यक है।

(६) प्रत्येक स्कूल को वर्ष में २०० दिन अथवा ४०० बैठकों में पढ़ाना चाहिये। २३५ दिन से अधिक कोई स्कूल नहीं खुलना चाहिये। वर्ष में ३१ दिन की विभिन्न स्वीकृत छुट्टियों के अतिरिक्त शीत व ग्रीष्म काल में क्रमश: पहाड़ी व मैदानी क्षेत्रों में ६ या ७ सप्ताह का अवकाश मिलना चाहिए।

(७) नैतिक तथा मानव-शिक्षा हमारी शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग होना चाहिए। विद्यार्थियों को सभी धर्मों के मौलिक सिद्धान्तों की शिक्षा देनी चाहिये। स्कूल-कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व कम से कम १० मिनट तक ईश-प्रार्थना होनी चाहिये। समय-समय पर महापुरुषों के जीवन-चरित्र के विषय में स्कूल में वार्ता होनी चाहिये।

(८) अनुशासन सुधारों की दृष्टि से शिक्षक, विद्यार्थी तथा अभिभावकों में अधिक पारस्परिक सम्पर्क होना चाहिये। प्रधानाध्यापक को अनुशासन सुधारने के लिये सभी अधिकार दे देने चाहिये। साथ ही विद्यार्थियों के मनोरंजन व शारीरिक शिक्षा इत्यादि की सुविधाओं की व्यवस्था के द्वारा भी अनुसाशन में सुधार होना चाहिये। बुरे सिनेमा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

चित्रों का देखना १५ वर्ष से कम उम्र वाले बालक-बालिकाओं के लिये निषिद्ध होना चाहिये। प्रत्येक स्कूल में एक रेडियो अवश्य हो।

(६) प्रबन्ध-समितियों में सुधार करने के लिए समिति ने कहा कि जिन स्कूलों का प्रबन्ध खराब है, वहाँ प्रबन्ध-समिति को समाप्त करके सरकार को एक प्रशासक नियुक्त कर देना चाहिए। प्रत्येक सहायता प्राप्त स्कूल की प्रबन्ध समिति में प्रधानाध्यापक व शिक्षकों के एक प्रतिनिधि को सम्मिलित करना चाहिये। शिक्षकों को उनकी सीनियोरिटी व अनुभव के आधार पर क्रम के अनुसार (By Rotation) समिति में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। प्रबन्ध-समितियों के विधानों में उपयुक्त परिवर्तन हो जाना चाहिए। शिक्षकों की नियुक्ति के लिए ५ सदस्यों की एक उप-समिति होनी चाहिए, जिसमें प्राधानाध्यापक अवश्य हो। शिक्षक की नियुक्ति के उपरान्त तत्काल ही इसकी सूचना जिला शिक्षा-निरीक्षक के पास पहुँच जानी चाहिए और उसकी स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिये। जो प्रबन्धक ऐसा न करे उसे तत्काल हटा देना चाहिये। शिक्षा-संहिता में उचित संशोधन हो जाना चाहिये। शिक्षक की नियुक्ति के चार माह के भीतर ही उसे सम्विदा-पत्र (Agreement Form) भर देना चाहिये। जो प्रबन्ध समितियाँ धर्म व जातियों के आधार पर बनी हैं उनमें कम से कम ¾ सदस्य अन्य धर्म या जाति से होने चाहिये। पंच फैसला बोर्ड (Arbitration Board) का फैसला अन्तिम माना जायगा; तथा २ माह के अन्तर्गत ही उस पर कार्यवाही होना आवश्यक है। ऐसा न करने पर स्कूल की अनुदान-सहायता से शिक्षक को दी जाने वाली धन-राशि काट लेनी चाहिये। यदि बोर्ड के फैसले के विरुद्ध किसी शिक्षक को नौकरी पर वापिस नहीं लिया जा रहा है, तो शिक्षा-विभाग को चाहिये कि वह स्कूल को मिलने वाले अनुदान में से प्रतिमाह रुपया काट कर उस शिक्षक को वेतन देता रहे। साथ ही स्कूलों को मिलने वाले अनुदानों में भी सरकार को उचित व उदार परिवर्तन या वृद्धि कर देनी चाहिए। विद्यार्थियों से प्रवेश शुल्क नहीं लेना चाहिये। साथ ही समित ने शिक्षकों के वेतन व तबादिला सम्बन्धी बातों पर भी अपनी सिफारिशें करके उन्हें सुधारने के लिये सुझाव दिये हैं। तबादिला के लिये 'तबादिला बोर्ड' होना चाहिये।

(१०) अन्त में पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में भी समिति ने अपने सुझाव दिये हैं। उसका मत है कि पाठ्य-पुस्तकों के स्वीकार करने की वर्तमान-विधि को तत्काल समाप्त कर देना चाहिए। कक्षा ६ से १२ तक कोई भी विशेष पाठ्य-पुस्तक स्वीकार नहीं की जायगी। केवल विस्तृत पाठ्यक्रम निर्धारित किया जायगा। उसी के अनुसार प्रधानाध्यापक को विषय-शिक्षक की राय से कोई भी पुस्तक चुनने का पूर्ण अधिकार होगा। केवल शिक्षा-विभाग कुछ सर्वोत्तम पुस्तकों की सूची प्रकाशित कर देगा ताकि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पुस्तकों के चुनने में कुछ सहायता मिल सके। ये पुस्तकें पाठ्यक्रम के अनुसार ही लिखी हुई होनी चाहिए। समिति का मत है कि श्रेष्ठ पुस्तकों की रचना व प्रकाशन के लिये इङ्गलैंड व अमरीका की भाँति विशेष संस्थाओं की स्थापना होनी चाहिए। किसी भी पुस्तक को एक वार चुन लेने के बाद कम से कम ३ वर्ष तक नहीं बदलना चाहिये। यदि पाठ्यक्रम में परिवर्तन हो जाय तो बात दूसरी है। सरकार को चाहिये कि वह प्रसिद्ध व अनुभवी लेखकों की लिखी हुई श्रेष्ठतम पुस्तकें प्रत्येक विषय पर उपलब्ध करके बजार में पहुँचावे। इसके लिये विभिन्न विषयों पर अच्छे लेखकों से पुस्तकें जमा करने के लिए कहा जाय और उसमें से सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों को चुना जाय। पुस्तकों की छपाई व कागज इत्यादि की श्रेष्ठता पर भी उचित ध्यान दिया जाना चाहिए। श्रेष्ठ लेखकों को पारितोषक देकर प्रोत्साहित भी करना चाहिये। अन्त में समिति का मत है कि स्वयं सरकार को पुस्तकें नहीं छापनी चाहिये, "क्योंकि लेखकों को अच्छे प्रकाशक मिलना कठिन नहीं होगा।"

आलोचना :

गुण : इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा के विषय में उत्तर प्रदेश में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण देश में यह रिपोर्ट अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। वास्तव में शिक्षा की समस्यायें सभी प्रान्तों में प्रायः एक सी हैं। माध्यमिक शिक्षा के लगभग सभी पक्षों पर विचार करके समिति ने अपने व्यावहारिक सुझाव दिये हैं। पाठ्क्रम के पूर्व स्थित दोषों को दूर करने का प्रयास करके उसे विद्यार्थियों की रुचियों व आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया गया है। टैक्नीकल शिक्षा को वास्तविक रूप से उपयोगी बनाने के सुझाव भी बड़े ठोस हैं। यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को उनके विषयों के चुनने में पर्याप्त मार्ग-दर्शन हो तथा उनकी मनोवैज्ञानिक परीक्षा करके उनकी मानसिक क्षमताओं व रुचियों का पता लगाया जाय। वास्तव में यह सुधार अत्यन्त आवश्यक है। प्रबन्ध-समितियाँ उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा के मस्तिष्क पर लगे हुए कलंक हैं। उनका सुधार न केवल शिक्षकों के हित में ही, वरन् स्वयं शिक्षा के हित में अनिवार्य है। यह बात सर्वविदित है कि वैयक्तिक प्रबन्ध-समितियाँ प्रदेश में शिक्षा का स्तर गिराने तथा शिक्षकों के दुर्भाग्य के लिये अधिकांश में उत्तरदायी हैं। अतः आचार्य नरेन्द्रदेव समिति के सुझाव प्रबन्ध-समितियों के सुधार के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। अन्त में पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में फैले हुए भ्रष्टाचार की ओर समिति का ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक ही है। यह बात आज सभी जान गये हैं कि प्रकाशकों तथा शिक्षा-बोर्ड के सदस्यों ने मिलकर इस क्षेत्र में एक अत्यन्त ही गन्दा वातावरण उत्पन्न कर रखा है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आज स्कूलों में जो पाठ्य पुस्तकें देखने को मिलती

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हैं वे अत्यन्त निम्नकोटि की, अशुद्धियों से भरी हुई तथा गन्दी छपाई की हैं। प्रकाशकों के षड़यन्त्रों के द्वारा वे प्रतिवर्ष बदल दी जाती हैं। इस प्रकार प्रदेश के निर्धन विद्यार्थियों पर प्रति वर्ष और भी अधिक व्यय लाद दिया जाता है। समिति की सिफारिशें इस दृष्टि से अधिक क्रान्तिकारी न होते हुए भी उपयोगी हैं।

दोष : उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त समिति के सुझावों में कुछ दोष भी हैं। उदाहरण के लिये पाठ्यक्रम में कोई विशेष परिवर्तन देखने को नहीं मिलता। 'क' 'ख' 'ग' और 'घ' वर्गों के नाम से पाठ्यक्रम का जो वर्गीकरण सन् १९४८ में किया गया था वह यथावत् रखा गया है; जब कि स्वयं समिति की यह राय है कि उपर्युक्त वर्गीकरण में 'ग' व 'घ' अर्थात् रचनात्मक व कलात्मक वर्गों में पर्याप्त शिक्षण नहीं दिया जा रहा है।

प्रबन्ध में सुधार की दृष्टि से समिति ने कोई अधिक मौलिक सुझाव नहीं दिये हैं। वास्तव में ये सुझाव लगभग वही हैं जो 'रघुकुल तिलक समिति' ने पहले ही दे रखे हैं। किन्तु उनका प्रबन्धकों या सरकार ने पालन नहीं किया। ऐसी स्थिति में कैसे आशा की जा सकती है कि आचार्य नरेन्द्रदेव समिति के द्वारा करने पर उसी सिफारिश को सरकार कार्यान्वित करेगी ? जहाँ तक 'पंच-फैसला बोर्ड' का सम्बन्ध है, उत्तर प्रदेश में यह बोर्ड अब तक बिल्कुल निकम्मा सिद्ध हुआ है और शिक्षकों की रक्षा करने में पूर्णत: असफल रहा है। इसके निर्णयों को प्रबन्धक लोग सरलता से टाल देते हैं। समिति ने इसके निर्णयों को अनिवार्य बनाने के लिये जो सिफारिशें की हैं वे अपर्याप्त हैं।

साथ ही समिति ने शिक्षकों के वेतन सुधार के विषय में एक शब्द भी नहीं कहा। उसने यह मान लिया प्रतीत होता है कि संभवत: यह बात उसके जाँच-क्षेत्र से बाहर है। वस्तुत: यह सुधार सभी सुधारों का आधार शिला है। इसके अतिरिक्त सरकारी स्कूलों और प्राइवेट स्कूलों के शिक्षकों के वेतन क्रमों में एक ही प्रकार का कार्य करने पर भी अन्तर होना, न केवल अत्यन्त अनुचित ही है, अपितु भारत के संविधान की आत्मा के प्रतिकूल भी है। समिति ने इस पर कुछ भी नहीं कहा है। इतना ही नहीं, इधर तो समिति चाहती है कि हस्तकलाओं तथा टेक्नीकल शिक्षा का प्रसार व सुधार हो, उधर आर्ट व क्राफ्ट के शिक्षकों के निम्न वेतन-क्रमों की ओर उसका ध्यान भी नहीं गया है। जब उपर्युक्त विषय हाईस्कूल कक्षाओं में पढ़ाये जाते हैं और संगीत, संस्कृत तथा हिन्दी के शिक्षकों को ट्रेंड ग्रेजुएट का ग्रेड मिला हुआ है तो फिर आर्ट व क्राफ्ट के शिक्षकों को भी वही वेतन क्रम न देने से हम किस प्रकार हस्त-कलाओं की उन्नति की बात सोच सकते हैं ? वास्तव में यह हास्यास्पद है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

निरीक्षण व नियन्त्रण की दृष्टि से भी समिति ने निरीक्षण-विभाग में फैली हुई अक्षमता, सुस्ती और रिश्वतखोरी के विषय में भी कुछ भी नहीं कहा है। यह बात निर्भय होकर कही जा सकती है कि हमारे अधिकांश जिला-शिक्षा-निरीक्षक शिक्षकों के अधिकारों की रक्षा करने में असफल रहे हैं। उनमें से अधिकांश तो स्कूल-मैनेजरों के प्रति कृतज्ञ रहते हैं और उनके लिये निरीह शिक्षकों का आखेट करने में सम्भवत: कभी सुस्ती नहीं दिखाते। उधर प्रबन्धक लोग इतने सर्वशक्तिमान बने हुए हैं कि कभी-कभी तो वे निरीक्षकों के आदेशों की परवाह तक नहीं करते। ऐसी स्थिति में हम माध्यमिक शिक्षा के सुधार की कल्पना कैसे कर सकते हैं ?

अन्त में पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में जो सुझाव समिति ने दिये हैं वे भी मूलत: पूर्व-स्थित प्रणाली से कोई खास भिन्न नहीं हैं। पुस्तकों के विषय में प्रधानाध्यापक को सम्पूर्ण अधिकार देने से उसके दुरुपयोग की सम्भावना है। प्रकाशक लोग इस दृष्टि से प्रधानाध्यापकों को उचित व अनुचित रूप से प्रभावित करने में कोई भी कमी नहीं छोड़ेंगे। दूसरे, यह तर्क कि शिक्षा-विभाग को अच्छी पुस्तकें छापने का कार्य अपने ऊपर नहीं लेना चाहिये क्योंकि "लेखकों को अच्छे प्रकाशक मिलना कठिन नहीं है," वास्तव में वास्तविकता को ठुकरा देना है। शिक्षा जैसे आवश्यक व बुनियादी महत्त्व के विषय में पूँजीवाद को खुली छूट देने के बड़े भयंकर परिणाम हो सकते हैं। लेखकों को अच्छे प्रकाशक मिलना आज बड़ा कठिन हो रहा है, जबकि प्रत्येक पुस्तक-विक्रेता एक प्रकाशक बन बैठा है। पाठ्य-पुस्तकों के छापने का उत्तरदायित्व क्रमश: अवश्य ही सरकार तक सीमित रखा जाना चाहिये और इनका राष्ट्रीयकरण कर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त समिति ने उन तथाकथित पुस्तकों के विरोध में कुछ नहीं कहा है जो विभिन्न प्रकार के नोट्स, प्रश्न-उत्तर तथा अन्य इसी प्रकार के सस्ते व व्यर्थ साहित्य के रूप में शिक्षा के मानदण्ड को गिरा रही हैं।

इन सभी दोषों की अपेक्षाकृत भी समिति के सुझाव अत्यन्त मूल्यवान् व व्यावहारिक हैं। उत्तर प्रदेश सरकार को चाहिये कि शीघ्रातिशीघ्र उन्हें कार्यान्वित करे।

शिक्षकों की दशा में सुधार :

उत्तर प्रदेश में शिक्षकों की दशा को सुधारने का कुछ प्रयत्न किया गया है। प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षकों के वेतन-क्रम में सन् १९४७ ई० में परिवर्तन करके उन्हें सुधारने की चेष्टा की गई थी। माध्यमिक शिक्षालयों का वर्तमान वेतन-क्रम इस प्रकार है—

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

	गैर-सरकारी स्कूल	सरकारी स्कूल
१. एम. ए., एम. एस. सी. तथा एम. कौम. (इण्टर कक्षा के लिये)	१५०-१०-३०० रु०	२००-१५-४५० रु०
२. ट्रेन्ड ग्रेजुएट	१२०-६-१६८-८-२०० रु०	१२०-८-२००-३०० रु०
३. ट्रेन्ड अन्डर-ग्रेजुएट	७५-१२० रु०	७५-२०० रु०
४. मैट्रिक्युलेट	५०-८० रु०	

इनके अतिरिक्त भी कई अन्य श्रेणियाँ हैं जैसे जे० टी० सी० इत्यादि। हाई स्कूल उत्तीर्ण एक जे० टी० सी० को ६०) रु० से प्रारम्भ होता है। अदीक्षित ग्रेजुएट को ८०) रु० मिलते हैं।

यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है, वह है सरकारी तथा गैर-सरकारी शिक्षकों के वेतन-क्रम में भेद रखना। यह व्यवहार न्याय, सत्य तथा भारतीय संविधान के अनुसार भी अनुचित है। इसके अतिरिक्त, उत्तर प्रदेश में मँहगाई के प्रश्न को लेकर भी माध्यमिक शिक्षकों में बड़ा असन्तोष फैला हुआ है। उनका कहना है कि गैर-सरकारी हाईस्कूलों में मँहगाई के लिए कोई नियम नहीं है, और शिक्षक ३) रु० से १५) रु० तक विभिन्न स्कूलों में मँहगाई पाते हैं, किन्तु सरकारी स्कूलों के शिक्षकों को ३०) रु० से ३५) रु० इस रूप में दिये जाते हैं।

शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए इस प्रान्त में अच्छी व्यवस्था है, यद्यपि इसमें कई सुधारों की आवश्यकता है। ट्रेनिंग कालेजों की संख्या में इधर अच्छी प्रगति हुई है। प्रारम्भ में ग्रेजुएट अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये केवल दो कालेज थे। इलाहाबाद इनमें प्रमुख था। बनारस तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालयों में बी० टी० के कालेज भी थे। किन्तु भारत के स्वतन्त्र होने के उपरान्त सम्पूर्ण शिक्षा-विकास के साथ ही साथ उत्तर प्रदेश में शिक्षकों के लिये ट्रेनिंग की भी व्यवस्था करना आवश्यक हो गया। सन् १९४६-४७ ई० में दो सी० टी० ट्रेनिंग कालेज लड़कों के लिए तथा दो महिलाओं के लिये खुले। सन् १९४७-४८ ई० में कुछ डिग्री कालेजों में एल० टी० तथा बी० टी० कक्षायें खुल गईं। इनमें कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, फतेहपुर, मेरठ, दयालबाग आगरा (स्त्रियों के लिये) प्रमुख हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने एल० टी० के पाठ्यक्रम तथा ट्रेनिंग कालेजों की दशा में सुधार करने के उद्देश्य से एक समिति नियुक्त की थी। उसकी सिफारिशों के फलस्वरूप पाठ्यक्रम में बहुत से परिवर्तन करके उसके स्तर को उठा दिया गया है। प्रदेश में ट्रेनिंग कालेजों की संख्या आवश्यकता से अधिक बढ़ गई थी, अतः उनमें से लगभग ६ कालेज तोड़ भी दिये गये हैं। सन् १९४८ ई० में तीन

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सी० टी० कालेज तथा ४ एल० टी० कालेज और स्वीकृत हुए और मथुरा तथा खुर्जा में भी एल० टी० की व्यवस्था हो गई। इस प्रकार सन् १९५१-५२ ई० में ट्रेनिंग कालेजों की संख्या ३१ (२४ पुरुषों को और ७ महिलाओं को) थी; तथा ८० ट्रेनिंग स्कूल (५६ पुरुषों के लिये तथा २४ महिलाओं के लिये) और खुल गये। सन् १९५१ ई० में १५,६०० शिक्षक नार्मल तथा ११०० शिक्षक एल० टी० और सी० टी० की परीक्षा में बैठे। इसके उपरान्त लड़कों के लिये सी० टी० ट्रेनिंग तोड़ दी गई और उसके स्थान पर अनेक जे० टी० सी० के स्कूल खोले गये। इसके अतिरिक्त बी० टी० तथा बी० एड० की परीक्षाएँ भी विभिन्न विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत संचालित हो रही हैं। इलाहाबाद, लखनऊ तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालयों में एम० एड० की भी व्यवस्था है। इधर और भी कई कालेजों में प्रशिक्षण की व्यवस्था करदी गई है।

विशेष संस्थायें :

उत्तर प्रदेश में शिक्षा सम्बन्धी कुछ विशेष संस्थाओं की स्थापना भी की गई है। इनमें मनोवैज्ञानिक केन्द्र इलाहाबाद, शिक्षा विज्ञान केन्द्र इलाहाबाद रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय लखनऊ, शारीरिक शिक्षण महाविद्यालय लखनऊ तथा नर्सरी ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद प्रमुख हैं।

मनोवैज्ञानिक केन्द्र की स्थापना प्रथम आचार्य नरेन्द्रदेव समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों के आधार पर हुई थी। मार्च १९५२ में मेरठ, बनारस, लखनऊ, कानपुर और बरेली इन पाँचों स्थानों में इसके क्षेत्रीय-केन्द्रों की स्थापना कर दी गई। भविष्य में प्रत्येक जिले में ऐसे ही केन्द्र स्थापित करने की योजना है। इस केन्द्र में विभिन्न विधियों द्वारा विद्यार्थियों की बुद्धि तथा रुचियों की परीक्षा लेकर उन्हें शिक्षा, पाठ्य तथा व्यवसायों के चुनने में सहायता दी जाती है।

शिक्षा-विज्ञान केन्द्र इलाहाबाद (१९४८) में शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिये पाठ्यक्रम तैयार करना, शिक्षा-क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं की जाँच करना तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिये नये-नये प्रयोग करना इस संस्था का कर्त्तव्य है। इस संस्था ने विभिन्न विषयों पर प्रामाणिक पाठ्य-पुस्तकें भी तैयार की हैं।

यद्यपि राज्य में सरकार के अन्तर्गत एक भी उल्लेखनीय नर्सरी या मान्टेसरी स्कूल नहीं हैं। तथापि कुछ वैयक्तिक स्कूलो की स्थापना को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। ऐसे स्कूलों में काम करने के लिये प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता की पूर्ति करने के उद्देश्य से ही नर्सरी ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद (१९५१) खोला गया है। इसमें अंडर-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ग्रेजुएट छात्राएँ प्रवेश पाती हैं और दो वर्ष का पाठ्यक्रम समाप्त करने के उपरान्त उन्हें सी० टी० का प्रमाण-पत्र दिया जाता है।

इनके अतिरिक्त लखनऊ में रचनात्मक प्रशिक्षण कालेज तथा शारीरिक शिक्षा कालेज़ हैं। उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में रचनात्मक वर्ग के विषय में प्रशिक्षण देने के लिये १६४८ ई० में एक रचनात्मक प्रशिक्षण कालेज खोला गया था। शिक्षकों को विभिन्न हस्तकलाओं में प्रशिक्षण देने के अतिरिक्त इसमें एक उत्पादन केन्द्र भी है जिसका उद्देश्य व्यावसायिक है। शारीरिक प्रशिक्षण कालेज में ग्रेजुएट तथा अंडर ग्रेजुएट पुरुष व स्त्री शिक्षकों को शारीरिक शिक्षण के विषय में दीक्षित करने के उद्देश्य से शिक्षा विभाग की विकास योजनाओं के अन्तर्गत प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई है। यहाँ पर विभिन्न शारीरिक व्यायामों के साथ ही साथ लाठी प्रयोग, लोक-नृत्य तथा तैरने इत्यादि का प्रशिक्षण दिया जाता है।

शिक्षा की अन्य योजना में हम समाज-सेवा तथा सैनिक शिक्षा को भी सम्मिलित कर सकते हैं। अब ये दोनों योजनायें मिला दी गई हैं। समाज-सेवा १० जिलों में लागू की गई थी। प्रादेशिक सेना शिक्षा ११ जिलों में इण्टर कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये अनिवार्य थी। सैनिक शिक्षा पाने वाले छात्रों की संख्या इस समय राज्य में लगभग ३० हजार है। कक्षा ६ व ११ के विद्यार्थियों के लिए नेशनल कैडिट कोर (N.C.C.) के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था है। इसी प्रकार बालिकाओं के लिए शिक्षा व्यवस्था, शारीरिक दृष्टि से पीड़ितों के लिये शिक्षा व्यवस्था तथा सामाजिक शिक्षा व्यवस्था इत्यादि अन्य योजनायें हैं जिन्हें राज्य में कार्यान्वित किया जा रहा है। हिन्दी के प्रसार व प्रोत्साहन के लिए राज्य सरकार ने विशेष प्रबन्ध किये हैं। प्रति वर्ष हिन्दी की उत्तम पाठ्य-पुस्तकों पर सरकार लेखकों को पारितोषिक देकर प्रोत्साहित कर रही है। हिन्दी को सरकारी कार्यों के लिये राज्य-भाषा भी स्वीकार किया जा चुका है।

उच्च शिक्षा :

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश बहुत आगे बढ़ा हुआ है। यहाँ अन्य प्रान्तों की अपेक्षा सबसे अधिक विश्वविद्यालय हैं—इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस, अलीगढ़, आगरा तथा रुड़की। इनके अतिरिक्त गोरखपुर विश्वविद्यालय और बनारस में संस्कृत विश्वविद्यालय की भी स्थापना हो गई है। एक कृषि विश्वविद्यालय भी स्थापित किया जा रहा है जिसका निर्माण कार्य १६५८ में प्रारम्भ हो रहा है। प्रान्त में बहुत से कला, विज्ञान तथा वाणिज्य के कालेज़ हैं जो प्रमुखत: आगरा विश्वविद्यालय व गोरख-पुर विश्वविद्यालय से सम्बन्धित हैं। आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, लखावटी तथा शिकोहा-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

बांद में कृषि कालेज हैं। देहरादून में वन-विज्ञान शिक्षा-केन्द्र तथा कानपुर में हारकोर्ट वट्लर टैकनालाजिकल इन्सटीट्यूट है। ट्रेनिंग कालेजों का उल्लेख भी उच्च शिक्षा के अन्तर्गत आता है। इंजीनियरिंग में बनारस भी एक प्रमुख केन्द्र है। इसके अतिरिक्त कुछ गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाएँ—गुरुकुल कागड़ी, संस्कृत कालेज बनारस, काशी विद्यापीठ साहित्य सम्मेलन प्रयाग, महिला-विद्यापीठ प्रयाग, लखनऊ संगीत विद्यापीठ तथा दारुल उलूम आजमगढ़ इत्यादि भी प्रसिद्ध हैं। ज्ञानपुर (वनारस) तथा नैनीताल में राजकीय डिग्री कालेज भी हैं। प्रदेश के ८ विश्वविद्यालयों में से अलीगढ़ व बनारस दो विश्वविद्यालय केन्द्र के आधीन हैं। रुड़की का इंजीनियरी विश्वविद्यालय सीधा उत्तर प्रदेश सरकार के नियन्त्रण में है। शेष विश्वविद्यालय स्वायत्त सत्ता प्राप्त संस्थायें हैं। प्रायः ये विश्वविद्यालय उन सभी दोषों से पीड़ित हैं जिनसे दुर्भाग्यवश भारत के अधिकांश विश्वविद्यालय पीड़ित हैं। निम्नकोटि की दलवन्दी, जातीय या प्रान्तीय पक्षपात, अनुचित नियुक्तियाँ, रुपये का दुरुपयोग, गिरते हुए शिक्षा-स्तर, पाठ्य-पुस्तकों व परीक्षकों की नियुक्ति इत्यादि के सम्बन्ध में भ्रष्टाचार इत्यादि इन विश्वविद्यालयों की विशेषता हो गई थीं। अतः विवश होकर सरकार को इनके विधानों में संशोधन करने के लिये कदम उठाने पड़े हैं। १९५८ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में छात्रों की अनुशासनहीनता के नाम पर पुलिस द्वारा गोली चलाया जाना शिक्षा के लिये लज्जाजनक है।

आगरा विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में १९५३ में एक विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत किया गया था। इसके स्वीकृत हो जाने पर विश्वविद्यालय के अधिनियम में उचित संशोधन कर दिये गये हैं। इसके अनुसार अब विश्वविद्यालय का उपकुलपति चुना न जाकर नियुक्त किया जायगा। उसी प्रकार कार्य-कारिणी व सीनेट में चुनाव के सिद्धान्त को कम से कम कर दिया गया है। जहाँ चुनाव अनिवार्य है, वहाँ एक हस्तांतरणीय मत के द्वारा चुनाव हुआ करेंगे। परीक्षकों की कुल संख्या के आधे परीक्षक अन्य विश्वविद्यालयों से लिये जायेंगे। किसी व्यक्ति को विश्वविद्यालय से विभिन्न रूप में होने वाली आय का अधिकतम निश्चित कर दिया गया है। शिक्षकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में सुधार हुआ है। इनके अतिरिक्त नौकरी-पेशा वाले लोगों के लिए ३ वर्ष का डिग्री पाठ्यक्रम का आयोजन, सभी सम्बन्धित कालेजों में पारस्परिक सहिकारिता के द्वारा कार्य करने की पद्धति का प्रारम्भ करना तथा विश्वविद्यालय में धीरे-धीरे शिक्षण कक्षायें खोलना इत्यादि कुछ प्रमुख सुधार हैं जो कि इस विश्वविद्यालय में किये गये हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भी प्रायः इसी प्रकार की गन्दी राजनीति ने जन्म ले लिया था। अतः राज्य सरकार ने १७ दिसम्बर, १९५१ को जस्टिस मूथम की अध्यक्षता में

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

'इलाहाबाद विश्वविद्यालय जाँच समिति' की नियुक्ति की। समिति ने अपनी रिपोर्ट में विश्वविद्यालय के सभी आन्तरिक मामलों का अध्ययन करके अपने विस्तृत विचार प्रस्तुत किये हैं। इन्हीं सिफारिशों के आधार पर उत्तर प्रदेश सरकार ने विश्वविद्यालय के विधान में संशोधन कर दिये हैं। इन संशोधन के सम्बन्ध में भी प्रदेश में एक ऊँचे स्तर का बाद-विवाद उपस्थित हो गया था। विश्वविद्यालय की स्वायत्त-सत्ता के तर्क को लेकर पर्याप्त तर्क-वितर्क चलता रहा। इस संशोधन के अनुसार इलाहाबाद नगर में स्थित अन्य डिग्री कालेजों को 'एशोशिएट' कालेजों के नाम से विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिया गया। इससे पूर्व भी इलाहाबाद के तीनों कालेज: कायस्थ पाठशाला कालेज, ईविंग क्रिश्चियन कालेज तथा नैनी कृषि कालेज तो इससे सम्बन्धित थे ही, यद्यपि विधान में इनके सम्बन्ध की व्यवस्था नहीं थी। इधर विश्वविद्यालय के अधिकारियों को यह भय हो गया कि यदि सरकार ने नवीन संशोधन के आधार पर इन कालेजों को 'एसोशिएट' कालेज वना दिया तो भविष्य में नगर के वाहर के अन्य कालेज भी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिये जायेंगे और इसका प्रकार विश्वविद्यालय का शिक्षण स्तर गिर जायगा तथा उसका जो एक मात्र शिक्षण-संस्था का स्वरूप है वह भी भंग हो जायगा। किन्तु सरकार का ऐसा कोई इरादा नहीं था जिसके अनुसार इलाहाबाद से बाहर के कालेजों को विश्वविद्यालय से सम्बन्धित किया जाता। इसके अतिरिक्त उपकुलपति की नियुक्ति, कार्यकारिणी व सीनेट के अधिकारों की समीक्षा, शिक्षकों के कर्तव्यों का निर्देशन, शिक्षण व अनुसन्धान से स्तर को ऊँचा उठाने के लिये व्यवस्था तथा विश्वविद्यालय की वित्तीय समस्या को सुलझाने के लिये उपाय इत्यादि अन्य बातें हैं जिनको वर्तमान संशोधनों के द्वारा हल करने की चेष्टा की गई है। इसी प्रकार का एक विधान लखनऊ विश्वविद्यालय की समस्याओं को सुलझाने के लिए भी वनाया गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उच्च शिक्षा की दृष्टि से उत्तर प्रदेश पर्याप्तत: प्रगतिशील है। सरकार भी प्रतिवर्ष अधिक से अधिक रुपया उच्च शिक्षा के लिये देने का प्रयास कर रही है।

उपसंहार :

इस प्रकार उत्तर प्रदेश शिक्षा की दृष्टि से प्रगति तो कर रहा है किन्तु उचित व पर्याप्त नियोजन के अभाव तथा प्रशासन की अक्षमता व शिथिलता के कारण प्रगति अधिक हर्षप्रद नहीं है। ज्यों-ज्यों शिक्षा का आकार बढ़ रहा है, उसका स्तर गिरता जा रहा है। शिक्षा में विभिन्न स्तरों के समान विकास पर भी बल नहीं दिया जा रहा है। उदाहरण के लिये पूर्व-प्राथमिक व नर्सरी शिक्षा के लिये किये गये प्रयत्न अधिक श्लाघ्य नहीं हैं, जो कुछ भी फुटकर प्रयास वैयक्तिक स्तर पर हुए हैं वहाँ शिक्षा अत्यन्त

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मँहगी है। वहुत से स्थानों पर तो नियमित व्यापार चल रहा है। बेसिक शिक्षा के प्रारम्भ होने के उपरान्त प्राथमिक पाठशालाओं में स्तर गिरता जा रहा है। ये पाठशालायें अब बेसिक मान ली गई हैं। परिणामत: अब वे न तो साधारण ही रहीं और न पूर्णत: बेसिक ही हो पाई हैं। मानदन्ड गिरने की समस्या तो माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर भी है। वस्तुत: यह तो एक देशव्यापी समस्या है। किन्तु इस दिशा में उत्तर प्रदेश सराहनीय कार्य कर सकता है। उच्च शिक्षा की दृष्टि से उत्तर प्रदेश अवश्य अग्रसर है किन्तु बेसिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा, टैक्नीकल शिक्षा तथा सामाजिक शिक्षा व साक्षरता की दृष्टि से वह कुछ अन्य राज्यों की अपेक्षा पिछड़ा हुआ है। आशा है भविष्य में इन दोषों का निवारण करके यह प्रदेश शिक्षा प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१८

भारत में सामाजिक-शिक्षा

मूल सिद्धान्त :

प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ आधुनिक युग में बदलता जा रहा है। कुछ समय पूर्व प्रौढ़-शिक्षा से तात्पर्य 'साक्षरता' से ही था। किन्तु साक्षरता को हम शिक्षा नहीं कह सकते, यद्यपि यह शिक्षा तथा ज्ञान प्राप्त करने की कुञ्जी है। साक्षरता के द्वारा शिक्षा-द्वार उन्मुक्त हो जाता है जिसमें प्रवेश करके मनुष्य ज्ञान मन्दिर तक पहुँचता है। जब तक समाज में अशिक्षा व अज्ञान है, शोषण का उन्मूलन नहीं हो सकता। इस शोषण से निर्धनता और निर्धनता से पुन: अज्ञान और संकट की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार यह कुचक्र चलता ही रहता है और ऐसी अवस्था में सामाजिक न्याय तथा जनतन्त्र की सभी सद्भावनाओं का लोप हो जाता है। जनतन्त्र की सफलता मतदाताओं के एक ऐसे समाज पर निर्भर है जो कि बुद्धिमान हो तथा जनतन्त्र के उद्देश्यों को समझने में असमर्थ हो। इस प्रकार प्रौढ़-शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति करने के लिये वयस्कों को कुछ समय के लिये ही केवल पुस्तकीय ज्ञान देना पर्याप्त नहीं होगा। वास्तविक शिक्षा के लिये प्रौढ़ों को साधारण तथा विशेष अथवा औद्योगिक ज्ञान के प्राप्त करने के लिये निरन्तर सुअवसर मिलना चाहिये। इसके लिये प्रथमत: उनके समक्ष उन विषयों का अध्ययन रखना चाहिये जो कि उनके स्वयं से सम्बन्धित हों। इन विषयों के प्रस्तुत करने का आकर्षक ढंग उन्हें शिक्षा के मूलभूत लाभों की ओर आकर्षित कर सकता है। इसके उपरान्त ज्ञान क्षितिज विकसित होने पर वे स्वाभावत: अपने समीपवर्ती वातावरण को समझने का प्रयास करेंगे और इस प्रकार उनकी शिक्षा में एक स्वाभाविक प्रगति हो सकेगी। एक बात और आवश्यक है : वह यह है कि प्रौढ़-शिक्षा एक ऐसी निरन्तर पद्धति के रूप में विकसित होनी चाहिये जिससे जनसाधारण का सर्वाङ्गीण व स्थायी विकास हो। भारत में कुछ उत्साही तथाकथित सुधारकों के लिए प्रौढ़-शिक्षा की इतिश्री केवल इसी प्रयास में हो जाती है कि कुछ निरक्षर व्यक्ति, बिना वर्णमाला के समझे हुए ही, केवल कुछ घंटों में अपने हस्ताक्षर मात्र करलें। अनुभव यह बतलाता है

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कि प्रौढ़-शिक्षा के लिये किये गये ऐसे सभी आन्दोलन क्षणिक सिद्ध हुए हैं; और इस प्रकार शिक्षित किये गये वयस्क भी उस हस्ताक्षर-ज्ञान से किसी प्रकार भी लाभान्वित नहीं हो सके हैं। फलत: वे अन्त में पुन: निरक्षर बन गये हैं। अत: इस बात की आवश्यकता है कि प्रौढ़-शिक्षा की कोई भी योजना हो, उसमें कम प्रौढ़ के मानसिक-विकास तथा औद्योगिक-प्रशिक्षण की परिपक्वता को अवश्य दृष्टिगत रखना होगा। प्रौढ़-शिक्षा की योजनाओं को राजनैतिक सुअवसर शोषण के लिये लागू करना एक अत्यन्त ही भयानक बुराई है, किन्तु दुर्भाग्य से वर्तमान में हमारे देश में अब तक इसका उपयोग अधिकांश में इसी दिशा में किया जा रहा है। यह आश्चर्य की बात है कि प्रौढ़-शिक्षा का आन्दोलन भारत जैसे देश में, जहाँ इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है, बहुत देर से प्रारम्भ हुआ।

बीसवीं शताब्दि के प्रारम्भिक दो दशकों में प्रौढ़-शिक्षा के क्षेत्र में कोई भी उल्लेखनीय प्रयास नहीं किया गया। कुछ रात्रि पाठशालायें अवश्य कहीं-कहीं स्थापित थीं, किन्तु उनमें बालक भी पढ़ते थे। उनकी स्थापना केवल प्रौढ़-शिक्षा के लिये ही नहीं हुई थी। शिक्षालय प्रधानत: ऐसे बच्चों को अर्ध-सामयिक शिक्षा देने के प्रयास मात्र थे, जो कि आर्थिक कारणों से मजदूरी करने को विवश थे। साथ ही इन स्कूलों में वयस्कों को भी प्रविष्ट किया जाता था। मद्रास, बंगाल और बम्बई प्रान्तों में भी यह रात्रि पाठशाला-आन्दोलन चला। सन् १९०९ ई० में मद्रास में ७७५, बंगाल में १,०८२ तथा बम्बई में १०७ ऐसी पाठशालायें थीं। आगे चलकर यह संख्या घट गई। सन् १९२१ ई० में जनता को मताधिकार मिलने के उपरान्त इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि उसका सदुपयोग भी हो। भारत के जन-साधारण के अशिक्षित होने के कारण अब राजनीतिज्ञों, सुधारकों तथा सरकार का ध्यान प्रौढ़-शिक्षा के महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर आकर्षित हुआ, कुछ पुस्तकालयों की स्थापना भी हुई। सन् १९२८ तक तो प्रौढ़-शिक्षा में प्रगति हुई, किन्तु १९२९ में आर्थिक मन्दी प्रारम्भ हो जाने से प्रौढ़-शिक्षा के बहुत से केन्द्र बन्द हो गए। राजनैतिक विप्लव तथा साम्प्रदायिक घटनाओं ने भी शिक्षा पर अपना प्रभाव डाला। कुछ ईसाई धर्म-प्रचारकों के कार्य आवश्यक चलते रहे। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा इस काल में बम्बई में अवश्य प्रगति जारी रही है। इस वृद्धि का कारण यह था कि बम्बई सरकार ने प्रौढ़-शिक्षा में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया था। साथ ही अन्य संस्थायें, जैसे पूना की 'ग्रामीण पुनर्संगठन संघ' व 'प्रौढ़ शिक्षा लीग' तथा बम्बई में 'सेवा सदन' 'सोशल लीग' तथा 'बम्बई नगर साक्षरता संघ' इत्यादि भी प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार करने लगीं। बड़ौदा में पुस्तकालयों की स्थापना की गई। त्रिवांकुर ने भी इसी का अनुसरण किया। तथापि १९३७ तक प्रगति मन्द रही। सन् १९३७

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ई० के उपरान्त इस समस्या की ओर देश का ध्यान विशेष रूप से गया। अधिकतर प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रि-मण्डलों के बन जाने से प्रौढ़-शिक्षा को बहुत प्रोत्साहन मिला। इन नवनिर्मित मन्त्रिमण्डलों की सफलता के लिये यह आवश्यक था कि देश के नागरिक शिक्षित हों और वे सरकार की योजनाओं तथा अपने अधिकार और उत्तरदायित्व को समझें। अत: प्रान्तीय सरकारों ने प्रौढ़-शिक्षा के क्षेत्र में सामूहिक रूप से संगठित प्रयास प्रारम्भ कर दिये। जनता ने भी इन प्रयत्नों की सराहना की और उत्साहपूर्वक साक्षरता आन्दोलन में भाग लिया। इस प्रकार अब भारत के इतिहास में सर्वप्रथम प्रौढ़-शिक्षा को सरकार ने अपना कर्त्तव्य स्वीकार किया और तदनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। प्रौढ़-शिक्षा का जो नया पाठ्यक्रम तैयार किया गया वह केवल साक्षरता तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु उसमें कुछ सामाजिक शिक्षा भी सम्मिलित कर ली गई। शिक्षा देने के साधनों में पुस्तकों के अतिरिक्त इश्तहार, मैजिक लालटैन तथा सिनेमा का प्रयोग किया जाने लगा।

सन् १९३९-४० में पंजाब में साक्षरता का आन्दोलन बड़े उत्साह से प्रारम्भ किया गया और प्रान्तीय सरकार ने अपनी प्रथम पंचसाला योजना के लिए २८,८०० रु० का अनुदान स्वीकृत किया। पुराने प्रौढ़-शिक्षा केन्द्रों को सहायता दी गई तथा बहुत से नवीन स्कूल खुले। इनके अतिरिक्त स्वयंसेवकों ने गाँवों, तहसीलों तथा जिलों में लॉबाक-प्रणाली से भी प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार किया। आसाम प्रान्त में जन-साक्षरता अफसर के अन्तर्गत एक प्रौढ़-शिक्षा विभाग खोला गया। सन् १९४१ ई० में वहाँ साक्षरता प्राप्त प्रौढ़ों के लिये उत्तर-साक्षरता पाठ्यक्रम तैयार किया गया और आसाम घाटी में १२०० अध्ययन-केन्द्र स्थापित किये। यहाँ आवश्यक रीडरें, पुस्तकें तथा समाचार-पत्रों इत्यादि के शिक्षण व वितरण की व्यवस्था की गई। उड़ीसा में १९४०-४१ ई० में ४२५ प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र स्थापित किये गये, जिनमें ८,१४७ व्यक्तियों ने साक्षरता प्राप्त की। इससे अधिक वहाँ यह आन्दोलन सफल न हो सका, बम्बई में प्रथम कांग्रेस मंत्रिमण्डल ने प्रौढ़-शिक्षा क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया। १९३७ ई० में यहाँ सरकार ने प्रौढ़-शिक्षा का प्रान्तीय बोर्ड स्थापित किया। प्रौढ़-शिक्षा के लिए यहाँ सहायता-अनुदान-प्रथा को भी लागू किया गया और उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी गई। सन् १९४२-४३ ई० में ५० हजार रुपया गाँवों के लिए अलग व्यय किया गया। सन् १९४५ ई० में कुछ चुने हुए स्थानों में प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खोलने की व्यवस्था की गई और निश्चय किया गया कि प्रत्येक केन्द्र में प्रति वर्ष १,००० व्यक्ति साक्षर किये जायेंगे। इसके अतिरिक्त बम्बई नगर में भी इस दिशा में अच्छी प्रगति हुई। वहाँ एक 'प्रौढ़-शिक्षा समिति'

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

की स्थापना हुई। सन् १९४०-४१ ई० में इस समिति ने मराठी, गुजराती, हिन्दी, कनाड़ी, तैलगु तथा तामिल की १,१४० कक्षाएँ खोलीं जिनमें १६ हजार पुरुष और ५ हजार स्त्रियाँ शिक्षा पाती थीं। इसके अतिरिक्त कुछ मिल मजदूरों के क्षेत्रों में भी प्रौढ़-शिक्षा प्रसार का कार्य किया गया। विहार प्रान्त में सैयद महमूद के नेतृत्व में प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन ने अच्छी प्रगति की। वहाँ 'प्रान्तीय जन-शिक्षा समिति की स्थापना हुई। स्वयंसेवकों ने यहाँ 'अपना घर साक्षर बनाओ' का आन्दोलन भी चलाया और सन् १९४१-४२ ई० में २४,२८९ प्रौढ़ साक्षर किये। इसके अतिरिक्त १९४२-४३ ई० में १ लाख ११ हजार प्रौढ़ों ने उत्तर-साक्षरता कोर्स पास किया। बिहार के प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन की यह विशेषता रही कि युद्धकाल में भी यह जारी रहा और प्रति वर्ष २ लाख प्रौढ़ साक्षर बनते रहे। सन् १९४६ ई० में पुन: कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बनने पर इस कार्य को उत्साहपूर्वक उठाया गया। बंगाल प्रान्त में प्रौढ़-शिक्षा ग्राम्य-निर्माण विभाग को सोंप दी गई। इस दिशा में बंगाल में भी अच्छी प्रगति हुई। इस प्रान्त में कृषकों में प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार अधिक सफलतापूर्वक किया गया। यहाँ पाठ्यक्रम में कृषि, पशु-पालन, स्वास्थ्य-रक्षा तथा सहकारिता इत्यादि विषय सम्मिलित किये गए और प्रत्येक विषय के लिये विभिन्न अधिकारी नियुक्त किये गये। उत्तर-प्रदेश में प्रौढ़-शिक्षा के लिये सराहनीय कार्य हुआ। सन् १९३७ ई० में नये मन्त्रिमण्डल ने इस कार्य को बड़े उत्साह से प्रारम्भ किया। नये केन्द्र, पुस्तकालय तथा वाचनालय गाँवों में खोले गये। असंख्य रात्रि पाठशालाएँ खोली गईं तथा प्रति वर्ष साक्षरता सप्ताह मनाया जाने लगा। सन् १९३० ई० में इस प्रान्त में प्रौढ़-शिक्षा विभाग की स्थापना हो गई थी, जिसने आगामी वर्षों में सन्तोषजनक कार्य किया। इन प्रान्तों के अतिरिक्त सिन्ध प्रान्त तथा अन्य देशी रियासतों में भी शिक्षा के लिये कार्य हुआ। मैसूर में 'मैसूर राज्य साक्षरता परिषद्' ने अत्यन्त ही उत्साह से कार्य किया है। इसके अतिरिक्त मैसूर विश्वविद्यालय ने भी समाज-शिक्षा में अद्वितीय योग दिया। जम्मू तथा काश्मीर राज्य में सन् १९४२-४३ ई० में ४,०५० प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्र खोले गये तथा २८ हजार व्यक्तियों को साक्षर किया गया। उसी वर्ष वहाँ ४८० प्रौढ़ शिक्षा पुस्तकालय भी खोले गये जिनमें से ३०० पुस्तकालय गाँवों में स्थित थे। इन राज्यों के अतिरिक्त बड़ौदा तथा त्रिवांकुर अन्य राज्य हैं जहाँ साक्षरता का प्रतिशत ब्रिटिश-भारत के प्रान्तों से भी अधिक था। पहाड़ी क्षेत्रों, हरिजनों तथा आदिवासियों में भी साक्षरता-प्रसार की चेष्टा की गई।

इस प्रयत्न के अतिरिक्त कुछ व्यक्तिगत जनसेवी संस्थाओं जैसे 'तरुण ईसाई संघ' (Y. M. C. A.) 'सर्वेन्ट ऑव इन्डिया सोसाइटी' तथा 'बम्बई साक्षरता-संघ और 'साक्षरता प्रसार मंडल' एवं जामिया मिलिया, दिल्ली इत्यादि संस्थाओं ने भी प्रौढ़-शिक्षा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

आन्दोलन को प्रगति दी। सार्जेन्ट शिक्षा योजना के प्रकाशन ने युद्धोत्तर शिक्षा विकास योजना में प्रौढ़-शिक्षा के लिये एक अत्यन्त प्रभावोत्पादक योजना रखी, किन्तु वह नियोजित न हो सकी।

भारतीय साक्षरता आन्दोलन का कोई भी विवरण डा० फ्रेंक लॉबाक का उल्लेख किये बिना पूर्ण नहीं हो सकता। डा० लॉबाक अमेरिका निवासी एक परमार्थी सज्जन थे। फिलीपाइन द्वीपसमूह में प्रौढ़-शिक्षा क्षेत्र में इन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया था। सन् १९३५ ई० तथा पुन: १९३७ ई० में यह भारत आये। उन्होंने मराठी, हिन्दी, तामिल, तैलगु, बंगाली तथा गुजराती भाषाओं में सुविधाजनक चार्ट तैयार किये। डा० लॉबाक ने इन भाषाओं को प्रथमत: चार या पाँच स्वरों तथा १३ व्यञ्जनों में छाँट लिया। फिर ५ ऐसे मूल अक्षरों को ज्ञात किया जिनसे वर्णमाला के सभी अन्य अक्षर बन जाते थे। इस प्रकार इन्होंने अल्प समय में ही प्रौढ़ों को साक्षर बनाने की विधि ज्ञात कर ली। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ उपयोगी पुस्तकें तथा समाचार पत्र भी वयस्कों की शिक्षा के लिये निकाले। डा० लॉबाक की पद्धति का कई प्रान्तों में अनुकरण किया गया। इस प्रकार भारतीय प्रौढ़-शिक्षा के क्षेत्र में दूसरा युग समाप्त होता है।

स्वतन्त्रता के उपरान्त प्रौढ़-शिक्षा :

भारत के स्वाधीन होने पर जहाँ सम्पूर्ण शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति हुई वहाँ प्रौढ़-शिक्षा ने भी आशाजनक उन्नति की। प्रौढ़-शिक्षा को सामाजिक शिक्षा (Social Education) का रूप दे दिया गया। जिसका उद्देश्य प्रौढ़ नर-नारियों को योग्य नागरिक बनाना तथा उनके जीवन को हर प्रकार से पूर्ण बनाना है। प्रौढ़ों में नागरिकता के गुणों का विकास करने के लिये तथा उनमें शिक्षित मस्तिष्क उत्पन्न करने के लिये निम्नलिखित शिक्षा-विधि को अपनाने की सिफारिश की गई है—

(१) नागरिकता का अर्थ तथा जनतंत्र के संचालन की विधि; देश के इतिहास तथा भूगोल का ज्ञान तथा यहाँ की प्रचलित सामाजिक परिस्थितियों से परिचय।

(२) व्यक्तिगत स्वच्छता, जनता के स्वास्थ्य-सिद्धान्तों का ज्ञान तथा स्वच्छता और स्वास्थ्य के महत्त्व को बताना।

(३) प्रौढ़ के आर्थिक मानदण्ड को ऊँचा उठाने के लिये शिक्षा व सूचना प्रदान करना, जिससे उसकी शिक्षा उसके आर्थिक जीवन से सम्बन्धित हो सके।

(४) कला, साहित्य, संगीत, नृत्य तथा अन्य सृजनात्मक क्रियाओं द्वारा भावना तथा विचारों का उत्थान व परिष्करण।

(५) मानव-भ्रातृत्व तथा विश्व-नैतिकता (Universal Ethics) के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सिद्धान्तों का ज्ञान तथा जनतन्त्र के लिये एक दूसरे की विचार-विभिन्नता को सहन करने तथा समझने की आवश्यकता पर जोर देना।

उपर्युक्त कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिये माननीय केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री ने (१९४८) निम्नलिखित कार्यक्रम रखा है :—

(१) गाँव का स्कूल सम्पूर्ण गाँव के लिये शिक्षा, जनहितकारी कार्य (Welfare Work), खेल-कूद तथा मनोरंजन का एक केन्द्र होगा।

(२) बच्चों, किशोरों तथा वयस्कों के लिये अलग-अलग समय निश्चित कर दिये जायेंगे।

(३) सप्ताह में कुछ दिन केवल लड़कियों तथा स्त्रियों के लिये सुरक्षित कर दिये जायेंगे।

(४) पर्याप्त मात्रा में ऐसी मोटरों की व्यवस्था हो रही है जिसमें प्रोजेक्टर तथा लाउडस्पीकर लगे होंगे। चित्रपट तथा मैजिक लालटैन और ग्रामोफोन भी प्रयोग किये जायेंगे। साथ ही यह भी प्रस्तावित किया गया है कि प्रत्येक स्कूल का कम से कम सप्ताह में एक बार निरीक्षण अवश्य होना चाहिये।

(५) स्कूलों में रेडियो लगा दिये जायेंगे तथा स्कूल के बच्चों के लिये विशेष कार्यक्रमों को विस्तारित करने की व्यवस्था करदी जायगी। उपर्युक्त ढाँचे के अनुरूप ही किशोरों तथा वयस्कों को भी सामाजिक शिक्षा देने के लिये विशेष ब्राडकास्ट किये जायेंगे।

(६) स्कूलों में जनप्रिय अभिनय भी रंगमंच पर खेले जायेंगे तथा अच्छे लिखे नाटकों को पारितोषक दिया जायगा।

(७) राष्ट्रीय तथा देशी गीतों के गाने की व्यवस्था होगी।

(८) स्थानीय आवश्यकता के अनुसार किसी दस्तकारी तथा उद्योग में भी साधारण प्रशिक्षण दिया जायगा।

(९) स्वास्थ्य-विभाग, कृषि-विभाग और श्रम-विभाग के पारस्परिक सहयोग से गाँवों को सामाजिक स्वास्थ्य-रक्षा, कृषि-प्रणाली, कुटीर-उद्योग तथा सहकारिता के विषय में भाषणों का प्रबन्ध किया जायगा।

(१०) सूचना तथा ब्राडकास्टिंग विभाग की सहायता से समय-समय पर अच्छे सिनेमाओं के प्रदर्शन का भी आयोजन किया जायगा। राष्ट्रीय समस्याओं पर गाँव वालों के समक्ष भाषण देने के लिये विद्वानों को निमंत्रित किया जायगा। सामाजिक शिक्षा के कार्यक्रम को प्रभावशाली तथा वास्तविक बनाने के लिये ऐसी जन-संस्थाओं की सहायता भी ली जायगी जो कि रचनात्मक कार्य में विश्वास रखती हों।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(११) दलों के आधार पर खेल-कूद (Group Games) का प्रबन्ध किया जायगा; तथा

(१२) सामयिक प्रदर्शिनी तथा मेलों का भी संगठन किया जायगा।

भारत की स्वतन्त्रता के उपरान्त सरकार ने सामाजिक शिक्षा के प्रसार के लिये कुछ प्रयत्न किये हैं। सन् १९४८ ई० में ही केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड इस बात को स्वीकार कर चुकी थी कि भारत में स्वतंत्रता के उपरान्त प्रौढ़ों को शिक्षित करना एक अनिवार्य आवश्यकता है। अत: बोर्ड ने 'सक्सैना समिति' के नाम से एक समिति इस समस्या का अध्ययन करने तथा सुझाव देने के लिये नियुक्त करदी थी। इस समिति ने सिफारिश की कि आगामी पाँच वर्षों में देश में ५०% साक्षरता करदी जानी चाहिये। केन्द्रीय सरकार ने इस कार्य के लिये सहायता अनुदान देना भी स्वीकार कर लिया।

सन् १९४९ में मैसूर में भारत सरकार तथा यूनेस्को के संयुक्त प्रयत्न से 'दक्षिणी-पूर्वी ऐशियाई क्षेत्र की ग्रामीण प्रौढ़ शिक्षा के ऊपर एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी की सिफारिशों से प्रेरणा लेकर राज्य सरकारों ने सामाजिक शिक्षा प्रचार का कार्य तेजी से प्रारम्भ किया और केन्द्रीय सरकार ने दिल्ली में ग्राम्य प्रशिक्षण कालेज तथा दिल्ली के निकट अलीपुर में ग्रामीण नेताओं के प्रशिक्षण के लिये एक 'जनता कालेज' की स्थापना की।

सन् १९५१ ई० में दिल्ली राज्य सरकार ने सामाजिक शिक्षा के कार्य को गम्भीरतापूर्वक प्रारम्भ कर दिया। इसके लिये वहाँ 'शिक्षा काफिलाओं' का निर्माण किया गया। इन काफिलों में तीन या चार जीपों में सामाजिक-शिक्षा के लिये उपयुक्त उपकरणों व सजा जैसे एक सचल-स्टेज, पुस्तकालय, प्रदर्शिनी का सामान तथा प्रोजेक्टर इत्यादि रख कर गाँवों में टीमें भेजी जाती थीं। कुछ प्रारम्भिक उत्साह तथा जानकारी उत्पन्न करने के उपरान्त वहाँ २० या ३० शिक्षक शिक्षा-प्रचार के लिये छोड़ दिये जाते थे। वे साक्षरता, नागरिकता, स्वास्थ्य, मनोरंजन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम इत्यादि के सम्बन्ध में ग्रामीणों को शिक्षित करते थे। इन काफिलों का कार्य एक स्थान व क्षेत्र में समाप्त होने पर वहाँ स्थानीय शिक्षकों को उस कार्य को जारी रखने का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाता था। यह कार्य जितने उत्साह व चमक-दमक के साथ प्रारम्भ किया गया, आगे वैसा न चल सका, क्योंकि यह बहुत खर्चीला साधन था और यहाँ के विशाल जन-समूह की निरक्षरता को निवारण करने के लिये अपर्याप्त व साधनों से परे की वस्तु था।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रथम पंचवर्षीय आयोजन काल में किसी एक चुने हुए साधन क्षेत्र में ५ सामुदायिक केन्द्रों की स्थापना करने की योजना थी, जहाँ समस्या का परीक्षण गहन रूप से किया जा सके। इस परीक्षण में सफलता मिलने पर देश में ऐसे १६० आदर्श सामुदायिक केन्द्र प्रथम आयोजन काल में खोले गये। इसी प्रकार २६ जनता कालेजों की भी स्थापना की गई है। इनमें से २१ तो प्रथम आयोजन के अन्तर्गत ही स्थापित किये गये थे। परन्तु सरकार यह अनुभव करने लगी है कि ये जनता कालेज सफल नहीं हो रहे हैं।

देश में सामुदायिक विकास योजनाओं के लागू होने के उपरान्त सामाजिक शिक्षा का कार्य विकास खंड अधिकारी के अन्तर्गत कर दिया गया है और इस कार्य के लिये एत्येक विकास खंड में एक विशेष अफसर सामाजिक शिक्षा के लिए नियुक्त कर दिया गया है। इस अफसर का कार्य है कि उस क्षेत्र में सभी गाँवों में शिक्षा का प्रसार करे। अनुभव ने यह बतलाया है कि विकास खण्डों से सामाजिक शिक्षा का कार्य सन्तोषजनक रूप से नहीं चल रहा है। एक तो लोगों में घोर दरिद्रता तथा बेकारी होने के कारण उन्हें शिक्षा में कोई रुचि नहीं है। दिन भर घोर श्रम करने के उपरान्त दरिद्र किसान अथवा श्रमिक में इतनी शक्ति नहीं रहती कि रात को जाकर प्रौढ़ पाठशाला में वह पढ़ने बैठे। दूसरे, सामाजिक शिक्षा अधिकारी विकास के कृषि इत्यादि के कार्यों में इतना व्यस्त रहता है कि उसके पास सामाजिक शिक्षा के लिये पर्याप्त समय ही नहीं रहता। साथ ही दृश्य-श्रव्य सज्जा व पुस्तकों व अन्य शिक्षण-उपकरणों का अभाव है। अधिकारियों के आपस के कार्य में समन्वय (Coordination) का अभाव है। समन्वय की इस कठिनाई को दूर करने के लिये उपाय किये जा रहे हैं और इसके लिये राज्य के शिक्षा विभाग तथा सामुदायिक विकास योजना विभाग में सम्बन्ध स्थापित कर दिया जायगा; सामाजिक शिक्षा का कार्य जिला सामाजिक शिक्षा अधिकारी (District Social Education Organiser) के सुपुर्द कर दिया जायगा।

इसके अतिरिक्त सामाजिक शिक्षा को सफलता पूर्वक चलाने के लिये उच्च अधिकारियों व प्रशासकों के प्रशिक्षण की भी आवश्यकता थी। इसके लिये भारत सरकार ने यूनैस्को की सहायता से दिल्ली में राष्ट्रीय मौलिक शिक्षा केन्द्र (National Fundamental Education Centre) की स्थापना की है। इस केन्द्र का कार्य जिला सामाजिक अधिकारी जैसे उच्च प्रशासकों को प्रशिक्षण देना ही नहीं अपितु अनुसन्धान करना, उपयुक्त साहित्य की रचना कराना, सामाजिक शिक्षा के लिये उपयुक्त उपकरणों की खोज तथा उत्पादन करना एवं सामाजिक शिक्षा सम्बन्धी सभी सूचनाओं के लिये एक प्रचार-केन्द्र की भाँति कार्य करना भी है। अप्रैल १९५८ से इस केन्द्र

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ने प्रशिक्षण कार्य प्रारम्भ कर दिया है। जिला सामाजिक शिक्षा अधिकारियों के प्रशिक्षण के उपरान्त जनता कालेजों के प्रधानाध्यापक यहाँ प्रशिक्षण पायेंगे। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन की समाप्ति तक प्रत्येक जिले में एक सामाजिक शिक्षा अधिकारी नियुक्त किया जा सकेगा।

सामाजिक शिक्षा को केवल ग्रामीणों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये क्योंकि नगरों में भी निरक्षरता व अज्ञान का अभाव नहीं है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सन् १९५८-५९ में ऐसी समन्वयकारक-परिषदों (Coordinating councils) की स्थापना विश्वविद्यालयों तथा नगर-पालिकाओं की सहायता से राज्य सरकारों द्वारा प्रारम्भ में २० नगरों में प्रारम्भ की जा रही है जो वहाँ सामाजिक शिक्षा का संगठन करेंगी। ये परिषदें उन सभी विभिन्न संस्थाओं के कार्य का समन्वय करेंगी जो कि सामाजिक शिक्षा में लगी हुई हैं। इस कार्य के लिये २ लाख रुपये की व्यवस्था सन् १९५७-५८ में ही की जा चुकी थी। इसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्रों के लिये भी श्रमिकों में सामाजिक शिक्षा के प्रसार के लिये अग्रिम योजना तैयार की गई है। इन प्रयासों के अतिरिक्त 'सघन पुस्तकालयों' की स्थापना, जिला पुस्तकालयों की स्थापना, राष्ट्रीय पुस्तक-ट्रस्ट के द्वारा पाठ्य-पुस्तकों की रचना, साक्षरों को साक्षर बनाये रखने के लिए साहित्य की रचना इत्यादि अन्य कार्य हैं जोकि भारत सरकार देश में सामाजिक शिक्षा के प्रसार के लिये कर रही है। इसी प्रकार राज्य सरकारें, श्रमिक संगठन मिल व कारखानों के उद्योगपति तथा अन्य शिक्षा-प्रेमी व धार्मिक संस्थायें भी देश में सामाजिक शिक्षा के प्रचार के लिये प्रयत्नशील हैं। बम्बई में श्रमिकों के लिये विशेष आयोजन किया गया है। मध्यप्रदेश में प्रौढ़-शिक्षा शिविरों के द्वारा स्त्री व पुरुषों की शिक्षा-व्यवस्था की जाती है। मद्रास में नागरिकता शिक्षा-योजना का निर्माण किया गया है। इसके लिये स्कूल व कालेज ग्रामीण क्षेत्रों में खुलवाये जा रहे हैं जिनमें नागरिकता की शिक्षा प्रौढ़ों को प्रदान की जाती है। उत्तर प्रदेश सरकार भी उत्साह से कार्यशील है। यहाँ प्रौढ़ शिक्षा विभाग अलग खोल दिया गया है। इसी प्रकार के विभिन्न प्रयास बंगाल, राजस्थान जम्मू व काश्मीर तथा बिहार राज्यों में किये जा रहे हैं। अधिकांश कार्य इस क्षेत्र में सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत ही किया जा रहा है।

आधुनिक युग में सामाजिक शिक्षा का स्वरूप बदलता जा रहा है। अब यह केवल निरक्षरता को दूर करने का ही साधन न होकर व्यक्ति को एक पूर्ण नागरिकता के लिये तैयार करती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत में जनतन्त्र की स्थापना होने के साथ ही साथ सामाजिक शिक्षा का महत्त्व बढ़ गया है। वास्तव में ऐसे देश में

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जहाँ ८०% से भी अधिक जनता निरक्षर हो, हम कभी स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं सकते कि वहाँ नियोजित समाजवादी जनतन्त्र सफलतापूर्वक चल सकता है। ऐसी स्थिति में प्राय: यह अन्देशा बना रह सकता है कि देश के एक मुट्ठी भर शिक्षित लोग देश के करोड़ों मूक व अशिक्षित लोगों पर अपना शासन करते रहेंगे और विभिन्न प्रकार के आकर्षक कार्यक्रम बना कर उन्हें भ्रमित व शोषित करते रहेंगे। यह भय अब और भी बढ़ गया है क्योंकि अब भारतीय ग्रामीण जीवन को नियोजित किया जा रहा है। आर्थिक नियोजन के साथ ही साथ पंचायत राज की स्थापना हो चुकी है। साथ ही सामुदायिक विकास योजनाओं व सहकारिता आन्दोलन को सफल बनाना है। यदि देश के असंख्य नर-नारी अशिक्षित रहते हैं तो यह बात निश्चित है कि न केवल हम देश की विभिन्न विकास योजनाओं में असफल रहेंगे, अपितु उनसे उत्पन्न होने वाले लाभों को भी एक विशेष वर्ग-शिक्षितों व चालाक लोगों का वर्ग खा जायगा जैसा कि दुर्भाग्य से अब तक के नियोजन काल में हुआ है और निरन्तर होता जा रहा है। सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में किये प्रयत्न ही भावी भारत के चित्र का रूप उपस्थित कर सकेंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि जो कुछ भी प्रयत्न इस दिशा में हुए हैं वे अल्प होने के साथ ही साथ दोषपूर्ण भी हैं। आवश्यकता है ठोस व निरन्तर चलने वाले प्रयत्नों की, न कि कुछ आकर्षक शब्द-जाल से युक्त उच्च-भावनाओं से परिपूर्ण कागजी योजनायें समक्ष रखने की। लोक-सभा द्वारा नियुक्त अनुमान-समिति ने सन् १९५८ के अपने प्रतिवेदन में स्वीकार किया है कि 'जनता कालेज' की योजना असफल रही। इस समिति ने एक उप-समिति इसकी जाँच के लिये नियुक्त की और उस समिति ने एक और विशेषज्ञ-समिति नियुक्त करने की सिफारिश की जो कि एक जनता-कालेज के ऊपर अपना प्रतिवेदन दे। भारतीय जनता इस बात को समझती जा रही है कि ये समितियाँ, और ये विशेषज्ञ, और ये कमीशन केवल धोखा मात्र है और नियोजन की धन-राशि को खाने की सुन्दर व भ्रामक विधियाँ हैं। अत: अब समय आ गया है जब अधिक दुरूह जालों में न फँस कर सरकार सामाजिक शिक्षा के कार्य को एक जन-आन्दोलन के रूप में छेड़े और इस पर निरन्तर व घोर श्रम के उपरान्त देश से निरक्षरता के कलंक को मिटाने में सफलता प्राप्त करे। जब नियोजन के द्वारा विश्व के अन्य राष्ट्रों ने अति अल्प-काल में अपने करोड़ों निरक्षरों में सामाजिक-शिक्षा का प्रकाश विकीर्ण कर दिया तो कोई कारण नहीं कि भारत भी ऐसा करने में असफल रहे। सामाजिक शिक्षा के प्रसार में ही भारत में जन-तन्त्र के प्रसार के बीज निहित हैं। इसके लिये सम्पूर्ण दृष्टिकोण को बदलने की आवश्यकता होगी। शिक्षितों, विशेषकर विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिये सामाजिक शिक्षा प्रचार कार्य अनिवार्य बना देना चाहिये। अन्त में लैनिन के शब्दों में हम कह

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सकते हैं कि, "निरक्षरता का निवारण एक राजनैतिक समस्या नहीं है। यह वह अवस्था है जिसकी पूर्ति के बिना राजनीति की बात करना भी असम्भव है। एक अशिक्षित व्यक्ति राजनीति से बाहर की वस्तु है और उसे यदि किसी प्रकार राजनीति में लाना है तो इससे पूर्व उसे वर्णमाला सिखा देनी होगी। बिना इसके राजनीति का कोई अस्तित्व नहीं—उस समय तक राजनीति केवल गल्प, अफवाह, कहानी तथा अन्ध-विश्वास है।"

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१९

टैक्नीकल तथा व्यावसायिक शिक्षा

बहुधा आधुनिक भारतीय शिक्षा पर यह आरोप लगाया जाता है कि यह आरंम्भ से ही आवश्यकता से अधिक साहित्यिक है और इसमें व्यावसायिक, औद्योगिक तथा टैक्नीकल शिक्षा का अभाव है। इसका कारण भारत की राजनैतिक दासता तथा उससे उत्पन्न होने वाली विभिन्न अवस्थाओं में निहित है। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत औद्योगिक दृष्टि से विश्व के अन्य उन्नत राष्ट्रों की अपेक्षा पिछड़ गया और भारतीय युवकों में बेकारी का वह रोग प्रवेश कर गया जो कि आज भी अत्यन्त भयङ्कर बना हुआ है। तथापि औद्योगिक तथा टैक्नीकल शिक्षा के क्षेत्र में भी कुछ प्रयास हुआ है। इस शिक्षा को हम तीन युगों में बाँट सकते हैं:—

प्रथम युग (१८०० ई० से १८५७ ई०):

इस युग की शिक्षा-प्रणाली एक मात्र 'ईस्ट इन्डिया कम्पनी' की नीति से प्रभावित थी। कम्पनी को अपना कार्य भले रूप से संचालित करने के लिये विभिन्न विभागों में कुछ भारतीयों की आवश्यकता थी, सेना के लिये डाक्टर, अदालतों के लिये वकील, न्यायाधीश और जन-निर्माण-विभाग में सड़कें, नहरें तथा अन्य सरकारी भवनों का निर्माण करने के लिये इंजीनियर। अत: अधिकांश में तत्कालीन औद्योगिक शिक्षा में हम इन्हीं शाखाओं को प्रमुख पाते हैं।

१. **चिकित्सा :** चिकित्सा के क्षेत्र में भारत में आयुर्वेद तथा यूनानी प्रणालियाँ प्रचलित थीं। किन्तु अपनी सम्पूर्ण शिक्षा-नीति को दृष्टिगत रखते हुए अँग्रेज शासकों ने यहाँ योरुपीय चिकित्सा प्रणाली को प्रारम्भ किया, जिसको सीखने का माध्यम अँग्रेजी भाषा था। प्रारम्भ में भारतीय विद्यार्थियों की चीड़-फाड़ इत्यादि में अरुचि थी, किन्तु मधुसूदन गुप्ता नामक विद्यार्थी ने कलकत्ता में एक शव पर चीड़-फाड़ का कार्य करके इस दिशा में सूत्रपात कर दिया। सन् १८२२ ई० में कलकत्ता में एक 'देशी चिकित्सा-संस्था (Native Medical Institution) की स्थापना हुई थी। सन् १८२६ ई० में कलकत्ता संस्कृत कालेज तथा कलकत्ता मदरसा में चिकित्सा की

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कक्षाएँ जोड़ दी गईं। इन संस्थाओं में आयुर्वेद, यूनानी तथा योरुपीय ढंग की चिकित्सा की शिक्षा का प्रबन्ध था। किन्तु १८३५ ई० के उपरान्त आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा का शिक्षण समाप्त कर दिया गया और यह निश्चय हुआ कि केवल पाश्चात्य ढंग की चिकित्सा-शिक्षा प्रदान की जायगी। सन् १८४४ ई० में चार विद्यार्थी पाश्चात्य चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए विलायत भी भेजे गये। बम्बई में सन् १८४५ ई० में जनता ने 'ग्रान्ट मेडिकल कालेज' की स्थापना की। इससे पूर्व १८२६ ई० में बम्बई में एक 'नेटिव मेडिकल स्कूल' तथा १८३६ ई० में पूना कालेज में चिकित्सा कक्षाओं की स्थापना भी की जा चुकी थी। 'ग्रान्ट मेडिकल कालेज' को इङ्गलैंड के 'रायल कालेज ऑव सर्जन्स' ने भी १८५५ ई० में मान्यता प्रदान कर दी। मद्रास में १८३५ ई० में निम्न पदों के लिये 'अप्रैंटिस' शिक्षित करने के लिए एक मैडिकल स्कूल खोला गया। १८५१ ई० में यह कालेज बन गया और अन्त में मद्रास विश्वविद्यालय में मिला दिया गया।

२. कानून : कानून का अध्ययन करने के लिये अँग्रेजों ने भारत में कलकत्ता मदरसा तथा संस्कृत कालेज, बनारस की स्थापना की थी, जहाँ भारत की दो प्रमुख जातियों, हिन्दू और मुसलमानों के कानूनों का अध्ययन कराया जा सके तथा कम्पनी को अपनी अदालतों के लिये वकील व जज इत्यादि मिल सकें। कलकत्ता संस्कृत कालेज में कानून की शिक्षा दी जाती थी। १८४२ ई० में हिन्दू कालेज में कानून का एक प्रोफेसर नियुक्त किया गया।

३. इंजीनियरी : सन् १८४४ ई० में 'हिन्दू कालेज कलकत्ता' में सिविल-इंजीनियर के प्रोफेसर के लिये एक पद उत्पन्न किया गया, किन्तु यह बहुत दिनों तक रिक्त पड़ा रहा। केवल १८५६ ई० में जाकर ही कलकत्ता में एक इंजीनियरी कालेज खुल सका। सन् १८२४ ई० में 'बम्बई नेटिव शिक्षा सोसाइटी' ने इंजीनियरी की कक्षाएँ खोलीं, जहाँ मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम रक्खी गई। सन् १८४४ ई० में 'ऐलफिन्स्टन इन्स्टीटयूट' में तथा १८५४ ई० में पूना में भी इन्जीनियरी की कक्षाएँ खोली गईं। मद्रास में विश्वविद्यालय बनने तक इंजीनियरी की कोई नियमित कक्षा न खुल सकी। वहाँ तो १७९३ ई० से एक पैमाइश स्कूल चला आ रहा था जो कि १८५८ ई० में जाकर मद्रास विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिया गया। उत्तर प्रदेश में रुड़की में १८४७ ई० में इन्जीनियरी कालेज की स्थापना हुई, जो कि १८५४ ई० में टाम्सन कालेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ और आजकल देश का एक विख्यात इंजीनियरी का विश्वविद्यालय है।

४. अन्य : उपर्युक्त व्यवसायों के अतिरिक्त अध्यापकों का शिक्षण भी प्रमुख

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

था। इस क्षेत्र में कम्पनी के उदासीन होते हुए भी ईसाई धर्म-प्रचारकों ने कुछ कार्य किया। बम्बई प्रान्त में इस दिशा में अच्छा कार्य हुआ और बहुत से नार्मल स्कूल खुले। इसके अतिरिक्त कला (Art) का विषय भी अन्य व्यावसायिक शिक्षा में सम्मिलित था। मद्रास में १८५० ई० में 'ब्लैक टाउन' में डॉ० हंटर ने ललित-कलाओं तथा दस्त-कारियों के लिये एक स्कूल खोला। बम्बई में १८५३ ई० में जे० जे० स्कूल ऑव आर्ट की स्थापना की गई।

द्वितीय युग (१८५७ ई० से १६०२ ई०) :

इस युग में भी व्यावसायिक शिक्षा का उद्देश्य ऐसे अनुभवी तथा प्रशिक्षित भारतीय उत्पन्न करना था जोकि अंग्रेज अफसरों के नीचे विभिन्न राजकीय विभागों में प्रशासन तथा संगठन का कार्य सुचारु रूप से चला सकें।

१. कानून : सन् १८५४ ई० के शिक्षा घोषणा-पत्र के अनुसार विश्वविद्यालयों में कानून की शिक्षा-व्यवस्था कर दी गई। कानून की शिक्षा अब बहुत सर्वप्रिय होती जा रही थी, क्योंकि आधुनिक न्यायालयों की स्थापना होने से देश में कानून विशेषज्ञों की माँग हो रही थी। ये दोनों उद्यम सम्मान-जनक तथा आर्थिक दृष्टि से लाभदायक थे। अतः उच्च वर्ग के शिक्षित लोग इस ओर बहुत आकर्षित हुए। कानून के अध्ययन के लिये कानून-कालेज, कला तथा विज्ञान के कालेजों में कानून की कक्षाएँ तथा स्कूल ये तीन प्रमुख साधन थे। मद्रास में एक कानून का कालेज था। पंजाब में विश्वविद्यालय में कानून-कालेज था। केवल यही दो संस्थाएँ पूर्ण कालीन कानून कालेज के रूप में थीं; अन्यथा अधिकांश में कानून-कक्षाएँ आंशिक रूप से अन्य कालेजों में सन्ध्याकाल में लगती थीं। बम्बई में राजकीय कानून कालेज भी आंशिक रूप से शिक्षा देता था। बंगाल, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में कानून कालेज नहीं थे, किन्तु कला तथा विज्ञान के डिग्री कालेजों में ही कानून की कक्षाएँ खुली हुई थीं।

कानून की शिक्षा का नियन्त्रण भी क्रमशः विश्वविद्यालयों, शिक्षा-विभाग तथा उच्च न्यायालयों के अधीन था। विश्वविद्यालय ही पाठ्यक्रम तैयार करते थे; और वे ही परीक्षाओं के लिये उत्तरदायी थे। कानून के स्कूल तथा कालेजों का नियन्त्रण शिक्षा-विभाग के अन्तर्गत था तथा उच्च न्यायालय उन शर्तों को रखता था जिनकी पूर्ति होने पर ही कोई स्नातक कानून के व्यवसाय को अपना सकता था। उच्च न्यायालय इसके पूर्व अपनी निजी परीक्षा भी लेते थे। कुछ प्रान्तों में सरकार की ओर से 'प्लीडर' और 'मुख्तार की परीक्षाएँ भी केवल हाईस्कूल पास विद्यार्थियों के लिये थीं। एल-एल० बी० परीक्षा का पाठ्यक्रम अधिकांश में दो वर्ष का था। कहीं-कहीं ३ वर्ष भी था जो कि कला अथवा विज्ञान में ग्रेजुएट होने के उपरान्त पूरा किया जा सकता था।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२. चिकित्सा—(अ) मानव-चिकित्सा : चिकित्सा-विज्ञान में प्रशिक्षित विद्यार्थी अधिकांश में सरकारी तथा स्थानीय बोर्डों के अस्पतालों में नौकर हो जाते थे, अथवा अपना स्वतन्त्र व्यवसाय खोलते थे या किसी बड़े कारखाने या कम्पनी में रख लिये जाते थे।

सन् १८६० ई० में लाहौर में भी एक मेडिकल कालेज खुल गया। इस प्रकार सन् १९०२ ई० तक भारत में कलकत्ता, मद्रास, बम्बई तथा लाहौर में चार सरकारी कालेज हो गये। इन कालेजों के अतिरिक्त कुछ मैडिकल स्कूल भी थे। इनमें ११ राजकीय स्कूल, १ म्युनिसिपल स्कूल तथा १० प्रायवेट स्कूल थे। पुरुषों में तो चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन जन-प्रिय हो चला था, किन्तु स्त्रियों में अभी अन्धविश्वास और प्राचीन पक्षपात समाया हुआ था।

(ब) पशु-चिकित्सा : मनुष्यों की चिकित्सा के अतिरिक्त पशु-चिकित्सा की ओर भी सरकार का ध्यान गया। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में पशु-चिकित्सा अपना महत्त्व रखती है। सन् १८८२ ई० में लाहौर में, सन् १८८६ ई० में बम्बई तथा सन् १८९३ ई० में कलकत्ता में पशु-चिकित्सा विज्ञान के कालेज स्थापित हुए। एक स्कूल अजमेर में भी खोला गया, किन्तु कुछ समय उपरान्त वह लाहौर कालेज में मिला दिया गया।

३. इन्जिनियरी शिक्षा : इस युग में भारत में औद्योगिक विकास तथा रेलों, सड़कों और नहरों का निर्माण हो रहा था; नगरपालिकाओं तथा जिला बोर्डों की स्थापना हो रही थी; एवं जल मार्ग और जूट व सूती मिलें खोली जा रही थीं। ऐसी अवस्था में इन सभी कार्यों के लिये दक्ष इन्जिनियरों की आवश्यकता थी। आर्थिक दृष्टि से यह पेशा बड़ा लाभदायक था। अत: श्रेष्ठतम विद्यार्थियों को आकर्षित कर रहा था। सन् १८६५ ई० में बंगाल इन्जिनियरी कालेज को प्रेसीडेंसी कालेज में मिला दिया गया। सन् १८६४ ई० में सरकार द्वारा स्थापित किया हुआ 'इन्जिनियरी कक्षा तथा मैकेनिकल स्कूल', 'पूना इन्जिनियरिंग कालेज' के रूप में विकसित हुआ। यह कालेज बम्बई विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिया गया। इस प्रकार सन् १९०२ ई० में भारत में चार प्रमुख इन्जिनियरिंग कालेज थे—रुड़की, शिवपुर (बंगाल), पूना तथा मद्रास, जिनमें ८६५ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। मद्रास कालेज का विकास सन् १८५८ तथा १८६२ ई० के बीच में हुआ था। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य टैक्नीकल तथा औद्योगिक संस्थाओं की स्थापना भी इसी काल में हुई। सन् १८८७ ई० में बम्बई में 'विक्टोरिया जुबली टेक्नीकल इन्स्टीट्यूट' की स्थापना हुई। सन् १९०२ ई० में

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भारतवर्ष में ८० टैक्नीकल स्कूल थे जिनमें ४,८६४ विद्यार्थी शिक्षण पाते थे। लोगों में बढ़ते हुए असन्तोष को रोकने के लिये भी यह आवश्यक था कि सरकार औद्योगिक स्कूलों की की स्थापना करे। इस शिक्षा की माँग उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। इन सबके फलस्वरूप भारत में इन्जिनियरी तथा टैक्नीकल शिक्षा का अच्छा प्रसार हो चला।

४. कृषि-विज्ञान : भारत के कृषि-प्रधान देश होने की अपेक्षाकृत भी यहाँ कृषि-कालेजों की पर्याप्त उन्नति नहीं हुई है। सन् १८८० ई० में दुर्भिक्ष-कमीशन ने गाँवों में कृषि-शिक्षा के प्रचार पर जोर दिया। सन् १८६० ई० में डा० वॉइलकर ने कृषि-शिक्षा के विषय में बहुत सी महत्त्वपूर्ण सिफारिशें कीं। उसके उपरान्त भारत सरकार ने निम्नलिखित निर्णय किये—

(१) कृषि-विज्ञान की डिग्री, डिप्लोमा तथा प्रमाण-पत्रों को उसी श्रेणी में समझा जाय, जिसमें कि विज्ञान या कला इत्यादि के प्रमाण-पत्र।

(२) कुछ पदों, जैसे कृषि-विज्ञान शिक्षकों अथवा कृषि-विभाग-संचालक के सहायकों की नियुक्ति के लिये भी प्रमाण-पत्र अनिवार्य हों।

(३) कुछ पदों के लिये कृषि की व्यावहारिक शिक्षा दी जाय।

(४) कृषि-डिप्लोमा, डिग्री तथा प्रमाण-पत्र के लिये एक विशेष स्कूल खोला जाय; तथा

(५) स्कूल अध्यापकों को नियुक्ति से पूर्व या पश्चात् सरकारी फार्म पर व्यावहारिक-कृषि की शिक्षा देना भी महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार सन् १६०२ ई० में ब्रिटिश भारत में ५ संस्थाएँ ऐसी थीं जहाँ कृषि-शिक्षा की व्यवस्था थी : पूना, शिवपुर, सैयदपेट (मद्रास), कानपुर तथा नागपुर। इस प्रकार से संगठित हुई कृषि-शिक्षा पूर्णतः अपर्याप्त थी। अनुसन्धान और व्यावहारिक शिक्षा का इसमें पूर्ण अभाव था। अन्य विभागों की भाँति कृषि-शिक्षा का उद्देश्य भी इस काल में देश के उत्पादन की वृद्धि न होकर राजकीय कृषि-विभाग के लिये कर्मचारी तैयार करना ही था।

५. वाणिज्य शिक्षा : कृषि-शिक्षा की भाँति वाणिज्य-शिक्षा ने भी इस युग में कोई सराहनीय उन्नति नहीं की। पंजाब को छोड़कर किसी विश्वविद्यालय ने इसे स्वीकार नहीं किया था। बम्बई में भी एक संस्था थी, किन्तु उसका उद्देश्य प्रधानतः इंगलैंड के वाणिज्य के विषय में शिक्षा देना था। सन् १६०२ ई० में भारत में १५ वाणिज्य-स्कूल थे, जिनमें १,१२३ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे।

६. अन्य : उपर्युक्त व्यवसायों के अतिरिक्त अध्यापन, वन-विज्ञान, तथा कला सम्बन्धी स्कूलों की भी स्थापना हुई। अध्यापकों के लिये नये ट्रेनिंग व नार्मल

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

स्कूल खोले गये। सन् १८८१-८२ ई० में यहाँ १०६ नार्मल स्कूल थे तथा १९०१-०२ ई० में इनकी संख्या १३३ पुरुषों के लिये तथा ४६ स्त्रियों के लिए थी, जिनमें क्रमश: ४,४१० और १,२९२ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। माध्यमिक शिक्षा के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये सन् १९०२ ई० में ६ कालेज थे। इनमें लाहौर ट्रेनिंग कालेज, मद्रास, नागपुर, राजमहेन्द्री तथा इलाहाबाद ट्रेनिंग कालेज अधिक प्रसिद्ध थे। इसके अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए ५० ट्रेनिंग स्कूल भी थे।

वन-विज्ञान के लिये सन् १८७८ ई० में देहरादून 'फॉरेस्ट-स्कूल' की स्थापना हुई, तथा 'पूना इन्जीनियरिंग कालेज' में वन-विभाग की शाखा खोली गई। कला की शिक्षा के लिये सन् १९०२ ई० में भारत में चार प्रमुख राजकीय कालेज थे—जे० जे० स्कूल ऑव आर्ट, बम्बई; मेयो स्कूल ऑव आर्ट, लाहौर; स्कूल ऑव आर्ट, कलकत्ता तथा स्कूल ऑव आर्ट तथा इण्डस्ट्री, मद्रास। सन् १८९३ ई० में भारत मन्त्री ने सुझाव रखा कि इन आर्ट स्कूलों से कोई विशेष लाभ नहीं है। अत: इन्हें टेक्नीकल स्कूलों के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय; किन्तु फिर कुछ निर्णय न हो सका।

तृतीय युग (सन् १९०२ ई० से १९५८ ई०):

भारतीय व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में यह युग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। व्यावसायिक, औद्योगिक तथा टेक्नीकल शिक्षा की इस युग में बहुत उन्नति हुई। इससे पूर्व इस प्रकार की शिक्षा का उपयोग अधिकांशत: सरकारी नौकरियों के लिये किया जाता था, किन्तु अब प्रशिक्षित युवक आधुनिक समाज की औद्योगिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रशिक्षण लेने लगे। इस उन्नति के कई कारण हैं। एक तो यह युग भारत में बढ़ती हुई राजनैतिक चेतना का युग था जिसमें देश की शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की माँग बढ़ी, और अन्त में भारत के स्वाधीन होने पर एक नवीन व स्वतन्त्र राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिये तथा विज्ञान की उन्नति में अन्य उन्नत राष्ट्रों के समकक्ष आने के लिए अनेक प्रयोगशालायें खोली गईं। कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में नये वैज्ञानिक तथा टेक्नीकल विषयों के विभाग खोले गये। दूसरे, लॉर्ड कर्जन के समय से ही सरकार का ध्यान भी इस ओर गया और सरकारी मशीन कुछ तेजी से काम करने लगी। तीसरे, व्यक्तिगत-प्रयास भी एक बड़े पैमाने पर इस क्षेत्र में उतर आया। धनी लोगों ने बड़े-बड़े दान दिये तथा औद्योगिक संस्थाओं की स्थापना कराई। चौथे, विद्यार्थियों को विदेशों, जैसे इङ्गलैण्ड, अमेरिका, जर्मनी तथा जापान इत्यादि देशों में भेजने की व्यवस्था भी की गई, जहाँ उन्होंने आधुनिक विज्ञानों, उद्योगों तथा कला-कौशलों का उच्च अध्ययन करके भारत में आकर इनकी उन्नति की।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१. कानून : कानूनी शिक्षा के उत्तरोत्तर जन-प्रिय होने का परिणाम यह हुआ कि देश में कानून के स्नातकों की बाढ़ सी आ गई। वकीलों की संख्या आवश्यकता से अधिक बढ़ गई। अधिकांश में ये वकील आर्थिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर कानून का व्यवसाय करते हैं। जिसके कारण आज हमारे समाज में बहुत से भ्रष्टाचार प्रवेश कर गये हैं। किन्तु साथ ही उच्चकोटि के वकील भी उत्पन्न हुए हैं। वस्तुत: भारत का राष्ट्रीय संघर्ष अधिकतर हमारे वकीलों का ही इतिहास है। अस्तु सन् १९०२ से १९२७ ई० तक कानून का अध्ययन बड़ा लाभदायक रहा। किन्तु इसके उपरान्त देश पर आर्थिक संकट आने से कानून पढ़ने वालों की संख्या पर्याप्त रूप से गिर गई और यह अवस्था लगभग १९४० ई० तक चली। उसके उपरान्त किसानों की आर्थिक अवस्था में सुधार होने पर वकीलों ने इस सुअवसर से लाभ उठाया और पुन: ग्रामीणों का शोषण प्रारम्भ कर दिया। इससे कानून के अध्ययन को और भी प्रगति मिली। आज कानून का बाजार इन व्यवसाइयों से भरा पड़ा है।

जहाँ तक कानून के पाठ्यक्रम का सम्बन्ध है, यह दो वर्ष का है (कलकत्ता और दिल्ली में ३ वर्ष)। कानून का अध्ययन ग्रेजुएट होने के उपरान्त ही प्रारम्भ होता है (बम्बई इन्टरमीजियेट के उपरान्त)। कानून के अध्यापक अधिकांश में अर्धसामयिक (Part Time) आधार पर नियुक्त किये जाते हैं। प्राय: ये लोग कुछ नये जूनियर वकीलों में से रख लिये जाते हैं। कक्षायें या तो प्रात:काल या संध्याकाल में लगती हैं। कानून के अध्ययन के विषयों में विद्यार्थी बिलकुल भी गंभीर नहीं होते। प्राय: परीक्षा के दिनों में कुछ वर्ष के प्रश्न-पत्रों के उत्तरों को रट कर ही उत्तीर्ण हो जाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में कानून के क्षेत्र में अनुसन्धान या उच्च-अध्ययन का पूर्णत: अभाव है। अत: 'यह स्पष्ट है कि अब हमें अपने कानून के कालेजों का पुन:-संगठन करना है। राधाकृष्णन् कमीशन ने इसके लिये निम्नलिखित सुझाव रखे हैं :— (१) अध्यापक-मंडल भी कला तथा विज्ञान विभाग के शिक्षकों की भाँति विश्वविद्यालयों द्वारा रखा तथा नियंत्रित किया जाय। (२) एक वर्ष का पूर्व-कानूनी (Pre-Legal) डिग्री-पाठ्यक्रम तथा सामान्य अध्ययन कानून कक्षा में प्रवेश से पूर्व रखा जाना चाहिए। (३) कानून के विशेष विषयों में ३ वर्ष का डिग्री-पाठ्यक्रम रहना चाहिये; अन्तिम वर्ष को कानून की व्यावहारिक शिक्षा में लगाना चाहिये। (४) शिक्षक पूर्ण-कालीन तथा अंश-कालीन दोनों प्रकार के हो सकते हैं। (५) कानून-कक्षायें नियमित समय के अन्दर लगनी चाहिए। (६) कानून का अध्ययन करने के साथ अन्य विषयों का अध्ययन बन्द कर देना चाहिए। (७) उच्च अध्ययन तथा अनुसन्धान की सुविधायें होनी चाहिए; तथा (८) परीक्षा-विधि में सुधार होना चाहिये।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२. चिकित्सा : मानव-चिकित्सा : साधारण-शिक्षा की वृद्धि होने के साथ ही साथ भारतीयों को अनुभव होने लगा कि चिकित्सा के लिए देश में असीम क्षेत्र विद्यमान है। सन् १९४६-४७ ई० में यहाँ २६ मैडीकल कालेज तथा १५ मैडीकल स्कूल थे। १९३२ ई० में 'रॉकफेलर फाँउडेशन' के द्वारा कलकत्ता में 'अखिल भारतीय स्वास्थ्य-रक्षा तथा जन-स्वास्थ्य संस्था' (All-India Institute of Hygiene and Public Health) की स्थापना हुई। सन् १९३३ ई० में 'मैडीकल कांउसिल कानून' पास हुआ और 'भारतीय मैडीकल कांउसिल' की स्थापना हुई। इसकी स्थापना से चिकित्सा-विज्ञान को देश में बड़ी प्रगति मिली। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के लिए दिल्ली में १९१६ ई० में 'लेडी हार्डिञ्ज मैडिकल कालेज' की स्थापना हुई। १९२२ ई० में कलकत्ता में भी एक 'स्कूल ऑव ट्रौपिकल मैडीशन' स्थापित हुआ। इसके अतिरिक्त 'देहरादून एक्स-रे इंस्टीट्यूट' तथा कसौली में केन्द्रीय-अनुसन्धानशाला (Central Research Institute) की भी स्थापना हुई। आयुर्वेद, होमयो-पैथी तथा यूनानी के कालेज भी खुले हैं।

इस प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में दिन-प्रति-दिन उन्नति होती जा रही है। पंच-वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत इस शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। जहाँ भारतीय विद्यार्थी पहले चीड़-फाड़ से घृणा करते थे अब वह सिद्धहस्त हैं और कुछ लोग अन्तर्राष्ट्रीय-स्तर पर ख्याति भी प्राप्त कर चुके हैं। किन्तु इतना होते हुए भी देश की जन-संख्या, निर्धनता, रोगों तथा अज्ञानता के आकार को देखते हुए यह प्रगति अपर्याप्त है। दूसरे ग्रामीण क्षेत्रों की पूर्णत: उपेक्षा की गई है। चिकित्सा-विज्ञान के शिक्षण की उन्नति के लिए विश्वविद्यालय कमीशन ने निम्नलिखित सुझाव रखे हैं :—

(१) मैडीकल कालेज में अधिक से अधिक १०० विद्यार्थियों को प्रविष्ट करना चाहिए। (२) अध्ययन के वह सभी विभाग, जिन्हें साथ में अस्पताल की भी आवश्यकता है, एक ही सीमा के अन्तर्गत स्थिति कर दिये जाँय। (३) प्रत्येक प्रवेश पाने वाले विद्यार्थी के पीछे १० पलंगों की सुविधा होनी चाहिए। (४) 'अंडर ग्रेजुएट' तथा 'ग्रेजुएट' दोनों स्तरों का प्रशिक्षण ग्रामीण-केन्द्रों में भी होना चाहिए। (५) 'उत्तर-ग्रेजुएट' (Post Graduate) प्रशिक्षण की व्यवस्था ऐसे कालेजों में होनी चाहिए जहाँ पर्याप्त-स्टाफ और सज्जा हो। (६) 'जन-स्वास्थ्य इंजिनियरिंग (Public Health Engineering) तथा 'नर्सिंग' को अधिक महत्त्व देना चाहिये। (७) देशी चिकित्सा-पद्धति की उन्नति होनी चाहिए; तथा (८) चिकित्सा विज्ञान के प्रथम पाठ्यक्रम में चिकित्सा-इतिहास, विशेषकर भारत का, पढ़ाना चाहिए।

(ब) पशु-चिकित्सा : कृषि-विभाग की उन्नति होने से पशु-चिकित्सा विभाग

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

की भी उन्नति हुई। सन् १६०२-०७ के बीच में पशु-चिकित्सा स्कूलों को भंग करके कालेजों की स्थापना की गई। फलत: सन् १६०५ ई० में मद्रास में तथा १६३० ई० में पटना में ऐसे कालेज स्थापित हुए। उत्तर प्रदेश में गढ़मुक्तेश्वर में 'इम्पीरियल पशु-चिकित्सा अनुसंधानशाला' की स्थापना हुई। सन् १६४८ ई० में जबलपुर में भी पशु-चिकित्सा कालेज खोला गया है। आइजटनगर तथा बँगलौर में भी पशु-चिकित्सा संबंधी अनुसन्धानशालायें हैं। मथुरा में एक पशु-चिकित्सा कालेज की स्थापना उत्तर प्रदेशीय सरकार ने की है।

३. इंजिनियरी तथा टेक्नीकल शिक्षा : सन् १६०२ ई० के उपरान्त इस शिक्षा ने एक नया रूप धारण किया। देश की बढ़ती हुई औद्योगिक उन्नति के लिये यह आवश्यक भी था कि अब इंजिनियरी तथा टेक्नोलॉजी का अध्ययन न केवल सरकारी नौकरियों के लिये अपितु देश तथा समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी किया जाय। फलत: इस शिक्षा की बड़ी उन्नति हुई है।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में बंगाल में जादवपुर नामक स्थान में एक 'कालेज ऑव इंजिनियरिंग तथा टेक्नोलॉजी' स्थापित किया गया था। सन् १६१७ ई० में हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में भी इंजीनियरी की कक्षायें खुलीं, इसके अतिरिक्त पटना, लाहौर तथा करांची में इंजिनियरी कालेज खुले। इस प्रकार सन् १६३७ ई० तक भारत में ८ इन्जिनियरी कालेज हो गये। इनमें से करांची तथा लाहौर १६४७ ई० में पाकिस्तान में चले गये। सन् १६४७ ई० में इनकी संख्या भारत में १७ हो गई। स्वतन्त्रता के उपरान्त टेक्नीकल शिक्षा के महत्व को और भी अधिक समझा गया। १६४७ के उपरान्त टैक्नीकल शिक्षा की सुविधायें इस प्रकार से बढ़ने लगीं कि जहाँ १६४७ में टेक्नीकल शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या ६,६०० थी, तो १६५६ में यह संख्या १५,१०० हो गई। यहाँ से पढ़कर निकलने वाले स्नातकों और डिप्लोमा पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या भी इसी काल में २,७५० से बढ़कर १६५६ में ८२०० हो गई। द्वितीय योजनाकाल में सभी योजनाओं के पूर्ण होने पर भारत में १६६०-६१ में प्रति वर्ष १० हजार स्नातक तथा २१ हजार डिप्लोमा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी टैक्नीकल शिक्षा पा सकेंगे। केन्द्रीय सरकार ने 'विज्ञान उद्योग अनुसन्धान परिषद' तथा 'अखिल भारतीय टेक्नीकल शिक्षा परिषद' की सहायता से दो दिशाओं में एक साथ काम करना प्रारम्भ कर दिया है। 'विज्ञान-उद्योग अनुसन्धान परिषद' अनेक विषयों पर अनुसन्धान करने के उद्देश्य से १४ राष्ट्रीय प्रयोगशालायें तथा केन्द्रीय संस्थायें स्थापित करने जा रही है। इनमें से निम्नलिखित की स्थापना अब तक हो चुकी है :—(१) राष्ट्रीय भौतिक अनुसन्धानशाला, नई दिल्ली; (२) राष्ट्रीय

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

रासायनिक अनुसन्धानशाला, पूना; (३) राष्ट्रीय धात्विक अनुसन्धानशाला, जमशेदपुर; (४) ईंधन अनुसन्धान संस्था, जीलगोरा; (५) केन्द्रीय खाद्य टेक्नोलॉजीकल, अनुसन्धान-शाला, मैसूर; (६) केन्द्रीय ड्रग अनुसन्धानशाला, लखनऊ; (७) केन्द्रीय तथा सीरामिक्स अनुसन्धानशाला, कलकत्ता; (८) केन्द्रीय सड़क अनुसन्धानशाला, दिल्ली; (९) केन्द्रीय भवन-निर्माण अनुसन्धानशाला, रुड़की; (१०) केन्द्रीय चर्म अनुसन्धानशाला, मद्रास; (११) केन्द्रीय विद्युत-रासायनिक अनुसन्धानशाला, कराईकुड्डी; तथा (१२) केन्द्रीय लवण अनुसन्धानशाला, भावनगर।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त पंचवर्षीय आयोजनों के अन्तर्गत अन्य अनुसन्धान-शालाओं की भी स्थापना करने की योजना सरकार ने बनाई है। कुछ उद्योगपति वैयक्तिक रूप से भी अहमदाबाद, बम्बई, कोयम्बटूर तथा कानपुर में अनुसन्धानशालाएँ चला रहे हैं।

'अखिल भारतीय टेक्नीकल शिक्षा परिषद' की सिफारिशों पर केन्द्रीय सरकार ने कुछ चुनी हुई संस्थाओं की उन्नति व विकास के लिये एक योजना स्वीकार की है।

अखिल भारतीय परिषद् ने यह भी सिफारिश की थी कि उत्तर, दक्षिण, पूरब और पच्छिम इन चार दिशाओं में देश में क्षेत्रीय समितियों की स्थापना की जाय जो कि अपने-अपने क्षेत्रों में टेक्नीकल शिक्षा के विकास का ध्यान रखें। सन् १९५१-५२ ई० में पूरब और पश्चिम तथा सन् १९५२ ई० में उत्तर व दक्षिण के लिये ऐसी समितियों की स्थापना की जा चुकी है। इस प्रकार अब देश में टेक्नीकल व औद्योगिक शिक्षा के क्षेत्र में समन्वय स्थापित करने में बड़ी सहायता मिल रही है। परिषद् और अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड की एक सम्मिलित समिति ने विश्वविद्यालयों में डिग्री-स्तर पर टेक्नीकल शिक्षा तथा ट्रेनिंग के लिये एक व्यवस्थित योजना तैयार की है। इंजीनियरी, टेक्नोलॉजी, तथा औद्योगिक शिक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न पाठ्यक्रमों को तैयार करके शिक्षण दिया जा रहा है।

देश में टेक्नीकल 'शिक्षा प्राप्त हुए कितने लोगों की आवश्यकता है, इस बात के जानने के लिये 'अखिल भारतीय टेक्नीकल शिक्षा परिषद्' ने एक 'टेक्नीकल जन-शक्ति समिति' (Technical Man-Power Committee) की स्थापना की। इसके अतिरिक्त दो समितियों की स्थापना और हुई है। एक तो 'वैज्ञानिक जन-शक्ति समिति' (Scientific Man-Power Committee) तथा दूसरी 'विदेश छात्रवृत्ति समिति'। 'विदेश छात्रवृत्ति समिति' ने सिफारिश की है कि विदेशों में विद्यार्थियों को उन्हीं विषयों में प्रशिक्षण के लिए भेजा जाय जिनकी कि देश में सुविधा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

न हो, साथ ही देश में वर्तमान संस्थाओं की दशा में सुधार किया जाय तथा अन्य नवीन संस्थायें खोली जाँय, जिससे विद्यार्थियों को भविष्य में शिक्षा के लिये विदेशों में न जाना पड़े। इन सिफारिशों के अनुसार कार्य हो रहा है। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भी टेक्नीकल शिक्षा का प्रसार-कार्य हो रहा है। सन् १६१५ ई० में कलकत्ता के पास खड़गपुर में 'भारतीय टेक्नालॉजी संस्था' (Indian Institute of Techonology) की स्थापना की गई थी। इस संस्था की स्थापना संसार की सर्व प्रसिद्ध मैसेच्यूसेट्स (अमरीका) की एक संस्था के आधार पर की गई है। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बँगलौर की 'भारतीय विज्ञान-संस्था' के प्रसार-कार्य को भी सम्मिलित किया गया है। टेक्नोलॉजी में प्रशिक्षण व अनुसन्धान के अतिरिक्त यहाँ शक्ति इंजीनियरी, वैमानिकी (Aeronautics), धातु-विज्ञान, विद्युत संचार तथा रासायनिक-इंजीनियरी की उच्च शिक्षा का भी प्रबन्ध है। इसी प्रकार दिल्ली पोलीटैकनिक भी केन्द्रीय सरकार के अधीन एक संस्था है। इसमें बहुत से विषयों में प्रशिक्षण की सुविधा है। 'अखिल भारतीय टेक्नीकल शिक्षा परिषद्' वैज्ञानिक तथा टैक्नीकल शिक्षा के विकास के लिये क्रियात्मक रूप से सहायता दे रही है। देश में अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण की सुविधायें उपलब्ध कराने के लिये इंजीनियरी तथा टेक्नोलॉजी की शिक्षण संस्थाओं को अनुदान दिये जा रहे हैं। देश में विभिन्न उद्योगों के सहयोग से कर्मचारियों व श्रमिकों के लिये अंश-कालीन शिक्षण की सुविधायें भी दी जा रही हैं। कुछ विशेष क्षेत्रों, जैसे छपाई, कृषि, नगर तथा क्षेत्रीय-नियोजन, रेशम-शिल्प, ऊनी-शिल्प, औद्योगिक-प्रशासन तथा व्यापार-प्रबन्ध इत्यादि में पर्याप्त सुविधायें प्रदान की जा रही हैं। इस उद्देश्य के लिये कलकत्ता की 'अखिल भारतीय सामाजिक हितकारी तथा व्यापार प्रबन्ध-संस्था' को केन्द्रीय सरकार ने पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अनुदान दिया है। छपाई में प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से परिषद् ने कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई में तीन क्षेत्रीय-स्कूलों की स्थापना करदी है। एक चौथा स्कूल खोलने की योजना भी विचाराधीन है। इस प्रकार देश में औद्योगिक व टेक्नीकल शिक्षा देने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजन काल में टैक्नीकल शिक्षा के सम्बन्ध में जितनी भी योजनायें चालू की गईं थीं उन्हें द्वितीय आयोजन काल में भी जारी रखा जा रहा है। द्वितीय आयोजन के अन्तर्गत ८ इंजीनियरी तथा ३१ पोलीटैकनिक विद्यालय खोले जा रहे हैं। इसी प्रकार द्वितीय आयोजन काल में टैक्नीकल शिक्षा के लिये पश्चिम में बम्बई, दक्षिण में मद्रास तथा उत्तर में कानपुर में टैक्नीकल शिक्षा संस्थायें स्थापित की जा रही हैं। बम्बई में यह संस्था १९५८ में बन कर तैयार हो गई है। साथ ही

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सरकार की नीति यह है कि नये स्कूल व कालेज खोलने के स्थान पर मौजूदा संस्थाओं के आकार का ही विकास करना चाहिये ताकि अधिक से अधिक लोग प्रशिक्षण पाकर देश का औद्योगिक व टैक्नीकल विकास कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वर्तमान १९ इंजिनियरी के कालेजों ,तथा ५० पोलीटेकनीकों में लगभग २५७० विद्यार्थियों के लिये डिग्री स्तर की तथा ४८९० विद्यार्थियों के लिये डिप्लोमा स्तर की ट्रेनिंग की सुविधा प्रदान करने के लिये एक योजना पर विचार किया जा रहा है। इस योजना पर १३ करोड़ रुपया व्यय किया जा रहा हैं।

विज्ञानों तथा टेक्नोलॉजी में अनुसन्धान को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से ६०० छात्रवृत्तियों तथा ३० राष्ट्रीय अनुसन्धान फैलौशिप की व्यवस्था की गई है। द्वितीय आयोजन के अन्त तक ये संख्यायें क्रमश: ८०० व ८० हो जाँयगी। केन्द्रीय सरकार की ओर से विभिन्न शिक्षा व प्रशिक्षण की योजनाओं को आवर्तक व स्थायी अनुदान दिये जा रहे हैं। केन्द्रीय तथा राज्य-योजनाओं में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से तथा टैक्नीकल शिक्षा के पाठ्यक्रम, परीक्षा पद्धति, स्तर, अनुसन्धान इत्यादि में साम्य लाने के उद्देश्य से उद्योगों तथा वाणिज्य के प्रतिनिधियों तथा अन्य सम्वन्धित लोगों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देकर राज्य टैक्नीकल शिक्षा वोर्डों की स्थापना की जानी चाहिये। अखिल भारतीय टैक्नीकल शिक्षा परिषद् ने इस आशय की योजना का मसौदा तैयार करके विभिन्न राज्यों को भेज दिया है। असम, द० बंगाल, विहार, उड़ीसा, आन्ध्र, मद्रास, बम्बई, केरल, मैसूर, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा पंजाव में ऐसे बोर्ड स्थापित किये जा चुके हैं और उत्तर प्रदेश में इसकी स्थापना विचाराधीन है। इस प्रकार गत दशाब्दि में टैक्नीकी तथा इंजिनियरी शिक्षा में देश में चौगुनी से भी अधिक उन्नति हो गई है।

४. कृषि शिक्षा : बीसवीं शताब्दि के प्रारम्भ में कृषि-शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान जाने लगा। सन् १९०१ ई० में भारत सरकार ने 'इन्सपैक्टर जनरल ऑव एग्रीकल्चर' का पद स्थापित किया और कृषि विभाग का विस्तार किया। सन् १९०५ ई० से प्रति वर्ष २० लाख रुपया कृषि में प्रयोग तथा अनुसन्धान करने के लिए सुरक्षित कर दिया गया। कृषि शिक्षा की अधिक सुविधायें उपलब्ध करने के लिये भी केन्द्रीय सरकार ने योजना बनाई। तदनुसार सन् १९०८ ई० में केन्द्रीय अनुसन्धानशाला, पूसा (बिहार) की स्थापना की गई जो सन् १९३४ ई० में भूचाल के उपरान्त दिल्ली में आगई। इसके अतिरिक्त कानपुर (१९०६), कोइम्बटूर (१९०९), सेवर (१९०९) तथा लायलपुर में १९१० ई० में कृषि-कालेजों की स्थापना हुई। पूना कृषि-स्कूल को कालेज बना दिया गया। नैनी, कानपुर और नागपुर में कालेज खुले। सैयदपेट तथा शिवपुर कालेज भंग कर दिये गये। इसके अतिरिक्त १९२८ ई० में कृषि कमीशन की नियुक्ति हुई,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जिसकी सिफारिशों के फलस्वरूप १९२९ ई० में 'इम्पीरियल कांउसिल ऑव एग्रीकलचर रिसर्च' की स्थापना की गई। माध्यमिक तथा प्राथमिक शिक्षा में भी कृषि विषय को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया। गत वर्षों से कृषि शिक्षा का बहुत विकास किया जा रहा है। कालेजों की संख्या में वृद्धि की जारही है तथा अनुसन्धान के लिये अधिक से अधिक सुविधायें प्रदान की जा रही हैं। अमेरिका तथा इङ्गलैंड के लिये बहुत से विद्यार्थियों को उच्च अध्ययन के लिये भेजा रहा है। इस समय देश में २१ प्रमुख कृषि कालेज हैं। उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में कृषि-शिक्षा लगभग ३००० स्कूलों में दी जारही है। भारत की खाद्य आवश्यकताओं को देखते हुए कृषि-विज्ञान में अधिक अनुसंधान तथा व्यावहारिक-कार्य की आवश्यकता है।

५. वाणिज्य : इस काल में वाणिज्य-शिक्षा ने बहुत संतोषजनक उन्नति की। सन् १९०१-०२ ई० में जबकि वाणिज्य का एक भी कालेज नहीं था, १९३६ ई० में इनकी संख्या ब्रिटिश भारत में ८ हो गई। बम्बई में प्रथम वाणिज्य कालेज की स्थापना हुई। उसके उपरान्त कलकत्ता, ढाका, इलाहाबाद, दिल्ली तथा लखनऊ विश्वविद्यालयों में वाणिज्य-विभाग खोले गये। सन् १९४६-४७ ई० में वाणिज्य कालेजों की संख्या १४ तथा स्कूलों की संख्या २९६ हो गई। गत ३० वर्षों में लगभग सभी विश्वविद्यालयों में वाणिज्य विभाग खुल गये हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से डिग्री कालेजों में भी कला व विज्ञान की भाँति वाणिज्य-विभाग खुल गये हैं। यह विषय मिडिल, हाईस्कूल तथा इण्टर कक्षाओं में भी पढ़ाया जाता है। आँध्र तथा दिल्ली विश्वविद्यालयों में ३ वर्ष का ऑनर्स पाठ्यक्रम भी है। बम्बई, इलाहाबाद, लखनऊ तथा आगरा इत्यादि विश्वविद्यालयों में एम० कॉम कक्षायें हैं। वाणिज्य में अनुसन्धान भी हो रहे हैं। १९४७ के उपरान्त वाणिज्य शिक्षा-संस्थाओं की संख्या में बहुत वृद्धि हुई है।

शिक्षकों का प्रशिक्षण :

शिक्षक किसी भी शिक्षा योजना की धुरी है। जनतन्त्र में शिक्षक का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। अत: उसकी कार्य क्षमता में वृद्धि करने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि उसे अपने में पर्याप्त प्रशिक्षण के सुअवसर प्रदान किये जायँ। प्राथमिक शिक्षा के एक निश्चित अवधि तक अनिवार्य हो जाने के परिणामस्वरूप अब प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षकों के लिये पर्याप्त प्रशिक्षण सुविधायें प्रदान करना और भी अधिक आवश्यक हो गया है। सन् १९४७ में ५ लाख ६१ हजार प्राथमिक शिक्षकों में से केवल ५८·२% प्रशिक्षित थे। इस दृष्टि से यद्यपि आज भी स्थिति संतोषजनक नहीं है तथापि गत ११ वर्षों में इस दिशा में पर्याप्त प्रगति की गई है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विभिन्न राज्यों में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये नार्मल स्कूल, एल० टी०, बी० टी, बी० एड० तथा एम० एड० इत्यादि के अध्ययन की व्यवस्था है। नार्मल स्कूलों में प्राथमिक स्कूलों तथा शेष में माध्यमिक स्कूलों के लिये शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। सामान्य प्राथमिक पाठशालाओं के वेसिक पाठशालाओं में बदल देने के कारण बेसिक शिक्षकों के लिये बेसिक ट्रेनिंग स्कूल व कालेज भी विभिन्न राज्यों में खोले गये हैं। नौकरी में रहने वाले शिक्षकों को रिफ्रैशर कोर्स प्रदान किये जाते हैं। बिहार इत्यादि राज्यों में सर्वोदय महाविद्यालय बेसिक शिक्षकों के प्रशिक्षण को आदर्श सुविधायें प्रदान करते हैं। शान्ति निकेतन में 'विनय भवन' प्रशिक्षण संस्था का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। प्रशिक्षण-सुविधाओं की उत्तमता की दृष्टि से विद्या भवन उदयपुर, नई तालीमी संघ, सेवाग्राम, श्री रामकृष्णन् मिशन विद्यालय कोइम्बटूर, तथा जामिया मिलिया नई दिल्ली बेसिक शिक्षकों के सर्वमान्य प्रशिक्षण केन्द्र हैं। सन् १९४७ में ट्रेनिंग स्कूलों में प्रशिक्षण विद्यार्थियों की संख्या ३८,८९५ थी जो कि १९५६ में ८९,८७० हो गई। इसी प्रकार ट्रेनिंग कालेजों में यही संख्या ३,२६२ से बढ़कर १४,१८१ होगई। अर्थात् दोनों में दस वर्ष के अन्तर्गत क्रमशः १२८% व ३४०% की वृद्धि हुई। इसी प्रकार ट्रेनिंग संस्थाओं के व्यय में भी स्कूलों तथा कालेजों में क्रमशः १०१% व २४८ की वृद्धि हुई है। इस प्रकार अपर्याप्त होते हुए भी शिक्षकों की प्रशिक्षण व्यवस्था प्रगति पथ पर है।

उपसंहार :

इस प्रकार संक्षेप में हमने भारत में व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा की प्रगति का वर्णन किया है। विश्व आज लौकिक वैभव के पथ पर अग्रसर हो रहा है। अतीत का समृद्ध भारत वीच में एक दरिद्र राष्ट्र बन गया था, किन्तु आज पुनः उसने अंगड़ाई ली है और अपने स्वर्णिम-भविष्य की ओर वह जिज्ञासा तथा आशा भरी दृष्टि से देख रहा है। उसका यह स्वप्न तभी पूर्ण हो सकता है जबकि वह अपने औद्योगिक विकास के लिए पर्याप्त औद्योगिक, टेक्नीकल तथा व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था करे। हर्ष की बात है कि वह इस पथ पर अडिग कदमों द्वारा अग्रसर होता जा रहा है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२०

भारतीय शिक्षा की कुछ समस्याऐं

भूमिका :

शिक्षा के विकास के साथ ही साथ अनेक प्रकार की शिक्षा समस्याओं का जन्म लेना एकदम स्वाभाविक है। हमारे देश में कुछ समस्याऐं तो अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भ से लेकर आज तक विद्यमान हैं और निरन्तर दुरूह से दुरूहतर होती चली जा रही हैं। उदाहरण के लिये, पाठ्यक्रम, पाठ्यविधि, परीक्षा-प्रणाली, शिक्षकों की दशा, शिक्षा का नियन्त्रण, लोकव्यापी सामाजिक शिक्षा, वित्त समस्या, निशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा तथा अनुशासन की समस्या इत्यादि कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण समस्याऐं हैं जो भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में लगभग डेढ़ सौ वर्ष से चली आ रही हैं, और आज भी न्यूनाधिक मात्रा में शिक्षा विशारदों के लिये विवाद का विषय बनी हुई हैं। भारतीय शिक्षा के निर्बाध विकास के लिये यह आवश्यक है कि इन समस्याओं का उपयुक्त हल निकाल कर उनका अविलम्ब निराकरण किया जाय। यद्यपि समय-समय पर विभिन्न आयोगों व विशेषज्ञ-समितियों ने इन समस्याओं के सुलझाने के लिये सुझाव दिये हैं, तथापि हम निश्चय रूप से नहीं कह सकते कि उन सुझावों के आधार पर कितना सुधार भारतीय शिक्षा-प्रणाली में अब तक हुआ। शिक्षा-सुधार की बात करते हुए आज बहुत से लोगों को पाया जाता है; कुछ विशेषज्ञ उसके आमूल परिवर्तन की बात करते हैं तो कुछ शिक्षा को भारतीय पृष्ठभूमि के आधार पर नवनिर्मित करना चाहते हैं। परन्तु इन सभी आलोचनाओं की अपेक्षाकृत आज भी इन समस्याओं का समाधान सफलतापूर्वक नहीं हो सका है। सबसे बड़ी आलोचना जो इस देश में शिक्षा-पद्धति की की जाती है वह यह है कि यह पद्धति अंग्रेजों ने अपनी सहायता के लिये कुछ क्लर्क व प्रशासक उत्पन्न करने के लिए चलाई थी और इसका उद्देश्य विदेशी शासन को अक्षुण्ण बनाये रखना था, अथवा यह पद्धति नवयुवक को जीवन के लिये तैयार नहीं करती; इत्यादि, इत्यादि। किन्तु बावजूद इसके कि अब भारत को स्वतन्त्र हुए १० वर्ष हो गये हैं और देश के भावी निर्माण के लिए शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन होना चाहिये, बुनियादी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

रूप से अभी परिवर्तन नहीं हुआ है। केवल पूर्वस्थित ढाँचे को ही विस्तार प्रदान किया जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो देश में शिक्षा के नियोजकों तथा विचारकों एवं सङ्गठन-कर्त्ताओं का अभाव है। देश के राजनैतिक, सामाजिक तथा शैक्षिक नेतागण मानो लाचारी सी प्रकट करते हुए देखे जाते हैं। वे उसी तटस्थता तथा अकर्मण्यता से शिक्षा-समस्याओं की आलोचना करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, जिस प्रकार वे स्वतन्त्रता से पूर्व थे, जब कि देश की शिक्षा पर विदेशी शासकों का नियन्त्रण था। वास्तविक बात तो यह है कि देश की शिक्षा को उसकी आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुकूल ढालने के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षा-समस्याओं पर भारतीय अवस्थाओं की पृष्ठभूमि के आधार पर विचार किया जाय और ऐसी पद्धति को जन्म दिया जाय जो नवोदित भारत की महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति कर सके। हाँ, इतना अवश्य सच है कि देश की शिक्षा के विकास के साथ ही साथ कुछ समस्याओं ने अभी हाल में ही नया जन्म लिया है, जबकि कुछ प्रश्न पहले से ही बिना हल किये पड़े हैं। जैसे शिक्षा के प्रसार के कारण वित्त की समस्या जटिलतर हो गई है। विद्यार्थियों की संख्या स्कूलों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में इस प्रकार बढ़ती जा रही है कि शिक्षकों व विद्यार्थियों के अनुपात में पहले से बहुत वृद्धि हो गई है, स्थान का अभाव हो गया है तथा शिक्षकों का विद्यार्थियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क समाप्त प्राय हो गया है। इस समस्या ने स्वयं एक अन्य अनुशासनहीनता की समस्या को भी एक प्रकार से जन्म दिया है। देश में पंचवर्षीय विकास आयोजनों के लागू हो जाने से अब अधिक से अधिक ऐसे नवयुवकों की आवश्यकता बढ़ गई है जो कि किसी विशेष उद्यम व टेक्निकल कार्य में प्रशिक्षित हों। अतः ऐसे लोगों को उत्पन्न करने के लिये असंख्य टेक्नीकल व व्यावसायिक शिक्षालय खोलने की समस्या उत्पन्न हो गई है। जीवन-यापन के व्यय में अभिवृद्धि के कारण शिक्षकों की दशा दिन पर दिन गिरती जा रही है। अन्त में यह भी कहा जा सकता है कि देश में जनतन्त्र स्थापित होने तथा उसके समाजवाद की ओर बढ़ने के उद्देश्य ने भारतीय जन-समूह के विचारों में एक संक्रमण उत्पन्न कर दिया है। अतः यह और भी अधिक आवश्यक हो गया है कि उस समाजवादी जनतन्त्र की स्थापना एवं विकास के लिये देश की शिक्षा को भी उसी के अनुरूप मोड़ दिया जाय।

भारतीय शिक्षा की समस्याओं पर प्रसङ्गवश इस पुस्तक में अन्यत्र विभिन्न अध्यायों में विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है, तथापि यह अधिक वांछनीय व उपयोगी समझा जा रहा है कि यहाँ एक स्वतन्त्र अध्याय में पुनः उनका कुछ सैद्धान्तिक विवेचन किया जाय। अतः नीचे हम देश की कुछ प्रमुख समस्याओं पर संक्षेप में विचार करेंगे।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(१) शिक्षा का उद्देश्य :

शिक्षा का उद्देश्य वैयक्तिक व सामाजिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। वैयक्तिक उद्देश्य के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक व नैतिक विकास तथा उसके व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक हो सके। शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य वह है जिसमें व्यक्ति को एक सुखी, सम्पन्न व कल्याणकारी समाज की रचना के लिये तैयार किया जाता है; अर्थात् जो शिक्षा व्यक्ति-केन्द्रित न होकर समाज-केन्द्रित होती है; किन्तु अन्ततोगत्वा व्यक्ति ही समाज का अङ्ग होता है। अत: शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के निर्माण के द्वारा ही समाज का निर्माण करना है। "पूर्व तथा पाश्चात्य सभी देशों के विद्वान् अब इससे सहमत हैं कि सम्पूर्ण प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य विश्व-ज्ञान का एक सम्वद्ध चित्र प्रदान करना तथा जीवन की एक व्यवस्थित विधि प्रस्तुत करना है।"[1] शिक्षा के द्वारा हमें ज्ञान के विभिन्न अंगों में एक समन्वय स्थापित करना है। प्राचीन भारत में भी शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में ज्ञान के व्यवस्थित विकास के साथ बुद्धिमत्ता का विकास करना था, जैसा कि गीता में कहा गया है, "ज्ञानं विज्ञान सहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्"[2], अर्थात् संसार के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए बुद्धि सहित ज्ञानार्जन करना ही शिक्षा का आदर्श है।

इस प्रकार शिक्षा मनुष्य का एकांगी विकास न करके 'सम्पूर्ण मानव' का विकास करती है। कार्ल मार्क्स के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य 'पूर्ण विकसित मानव' उत्पन्न करना है।[3] महात्मा गांधी का विचार है कि, 'शिक्षा का उद्देश्य मानव की उन सभी शक्तियों—शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक—का विकास करना है जो उसके भीतर नैसर्गिक रूप से निहित हैं।" संसार में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई समाज-कल्याण व समाजवाद की विचारधारा ने शिक्षा के उद्देश्य में भी परिवर्तन कर दिया है और अब व्यक्ति के विकास के द्वारा समाजहित की स्थापना ही शिक्षा का उद्देश्य होता जा रहा है।

ऐसी स्थिति में वर्तमान भारतीय शिक्षा के उद्देश्य की अस्थिरता का निवारण

---

1. *Report of the University Education Commission, p. 34.*
2. Bhagavadgita, ix. I.
3. "The education of the future will in the case of every child over a certain age, combine productive labour with education and athletics not merely as one of the methods of raising social production but as the only method of producing fully developed human beings."

The Capital, 8th. ed, (1928) I, 424.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

करने के लिये आवश्यक है कि देश की बदलती हुई राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा में परिवर्तन किये जाँय। स्वतन्त्र भारत की शिक्षा का उद्देश्य कदापि वह नहीं हो सकता जोकि एक विदेशी शासन काल में साम्राज्यवाद की जड़ें दृढ़ करने के लिये रहा था। इसके लिये हमें शिक्षा में संरचनात्मक परिवर्तन[1] करना होगा। पूर्वस्थिति का प्रसार व विकास किसी भी भाँति शिक्षा सुधार नहीं माना जा सकता। यह आवश्यक है कि हमारी शिक्षा का एक निश्चित लक्ष्य हो और उसकी एक दिशा हो।[2] दुर्भाग्य से आज भी देश के असंख्य नवयुवक स्कूलों तथा कालेजों में निरुद्देश्य शिक्षा पा रहे हैं। उनका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं, उनकी कोई दिशा नहीं। वे नहीं जानते कि उनके भावी जीवन की योजना क्या है और यह शिक्षा उन्हें उसके लिये तैयार भी कर रही है अथवा नहीं। कोई नौकरी पा जाना अथवा नौकरी न मिले तो ट्रेनिंग करके अध्यापक बन जाना या फिर जीवन भर इधर-उधर ठोकरें खाते फिरना—यही शिक्षा का उद्देश्य गत शताब्दी से चला आ रहा है और आज भी विद्यमान है। दुर्भाग्य से विदेशी शासन काल में देश के आर्थिक विकास की गति बड़ी मन्द रही। उधर जनसंख्या तथा पढ़े लिखे लोगों की संख्या में निरन्तर अभिवृद्धि होती रही। सेवाओं के पद व अवसर लगभग निश्चित रहने तथा प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का उद्देश्य किसी ऐसे ही स्थान को पा जाने का होने के कारण उनमें बेकारी फैलना प्रारम्भ हो गई जो आज भी भीषण रूप धारण किये हुए हैं।

इसके अतिरिक्त वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने व्यक्ति का सर्वांगीण विकास नहीं किया। इसने पुस्तकों के रटने पर बल दिया। परीक्षा-प्रणाली ने इस रटने को और भी अधिक प्रोत्साहन दिया। इससे ज्ञान व बुद्धि व चिन्तन-शक्ति का स्थायी विकास न होकर केवल मस्तिष्क का एकांगी विकास हुआ। शारीरिक श्रम के सुअवसरों के अभाव में हमारे नवयुवकों का शारीरिक विकास अवरुद्ध हो गया। वे दुर्बल, पीले तथा साहसहीन होने लगे। इस शारीरिक ह्रास ने उनके जीवन से उल्लास, महत्त्वाकांक्षा तथा साहसिक कार्यों की भावना का ही अपहरण कर दिया जिसका उनके नैतिक

---

1. Structural change.
2. "Our educational system must find its guiding principle in the aims of the social order for which it prepares, in the nature of the civilisation it hopes to build. Unless we know whither we are tending, we cannot decide what we should do and how we should do. Societies like men need a clear purpose to keep them stable in a world of bewildering change."

Report of the University Education Commission, p. 35.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

व आध्यात्मिक विकास पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। प्राथमिक पाठशालाओं में तो इन प्रवृत्तियों का प्रभाव इतना स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता जितना कि माध्यमिक व शिक्षालयों तथा कालेजों व विश्वविद्यालयों में। माध्यमिक व उच्च शिक्षा काल ही वह समय होता है जब कि भावी नागरिकों का निर्माण होता है। किसी भी देश में कृशकाय व हतवीर्य तरुण निराशा व अस्थिरता के थपेड़े खाते हुए न जीवन की आकांक्षाओं से स्पन्दित हो सकते हैं और न वे आत्मकल्याण के साथ ही साथ समाज व देश का कल्याण ही कर सकते हैं। दुर्भाग्य से हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली अधिकांश में ऐसे नवयुवकों को ही जन्म दे रही है। वे इसलिये पढ़ते हैं कि परीक्षा पास करलें और परीक्षा इसलिये पास करते हैं कि उसके उपरान्त कोई नौकरी मिल जाय। ऐसी स्थिति में हम कदापि उन्नत राष्ट्रों की दौड़ में आगे नहीं बढ़ सकते, यहाँ तक उनसे कदम से कदम मिला कर भी नहीं चल सकते। यह बात नहीं कि हमारे नवयुवकों पर ही इस प्रणाली का घातक प्रभाव पड़ता हो, वरन् शिक्षकों पर भी कुप्रभाव दृष्टिगोचर होता है। शिक्षा के निरुद्देश्य होने से शिक्षण कार्य भी निरुद्देश्य व प्रभावहीन हो जाता है। शिक्षक अपने को समाज का एक अंग न समझ कर समाज से परे अथवा पृथक् एक अन्य लोक का प्राणी समझने लगता है। जीवन के प्रवाह से उसका सम्बन्ध एक प्रकार से टूट ही जाता है। वह पुस्तकीय दुनियाँ में रहने वाला एक स्वप्नदृष्टा हो जाता है।[1] उसकी जीवन की प्रेरणायें कुण्ठित व महत्त्वाकांक्षायें लुप्त हो जाती हैं और कभी-कभी वह अपनी उच्च नैतिक मान्यताओं को खो बैठता है।

किसी भी राष्ट्र में शिक्षा के उद्देश्य को निर्धारित करना बड़ा सरल है। हमें यह देखना होगा कि उस देश के बहुसंख्यक लोगों के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक विचार क्या हैं और वह राष्ट्र किस प्रकार के समाज की रचना के लिये प्रतिश्रुत है। भारत में अब तक अंग्रेजों ने ऐसी शिक्षा-पद्धति का ही पोषण किया जो उनके साम्राज्यवादी विचारों की पोषक थी। आज हम देश में एक वर्गहीन, जातिहीन व समाजवादी जनतंत्रीय समाज की स्थापना करने में जुटे हैं जोकि समानता, न्याय, स्वतन्त्रता तथा जनतंत्र के मौलिक-स्तम्भों पर आधारित हो। भारतीय गणतन्त्र के

1. *Cf.* "A university teacher cannot be in the running stream of life in which youthful spirits bathe, he stands on the shore; and he becomes an introvert, an 'academic person' with funny ideas or a teacher politician. The process is one of continuous severance prolonged alienation and consequent dehumanisation, whereas the destiny of human beings is to be engaged, involved in living." Prof. D. P. Mukerjee in his broadcast published in *The Future of Education in India*, p. 52, (1954).

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

संविधान का लक्ष्य भी ऐसे ही समाज की स्थापना करना है। अतः यह स्पष्ट है कि हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली को भी इसी पथ-प्रदर्शक आदर्शों के अनुरूप ढालना होगा; हमें सर्वाङ्गीण विकसित मानव को जन्म देना होगा जो लोक कल्याणकारी समाज को जन्म देकर उसकी रक्षा तथा पोषण कर सके। देश ने सैकड़ों वर्षों की परतन्त्रता के उपरान्त अभी हाल में ही स्वतन्त्रता पाई है। उस स्वाधीनता की रक्षा करना तथा देश का आर्थिक व औद्योगिक विकास करना भी देश के नागरिकों का कर्त्तव्य है। अतः सर्वप्रथम हमें ऐसे नागरिकों का निर्माण करना होगा जो नवीन भारत का निर्माण कर सकें। आज भारत आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। यह बात नहीं कि अपनी स्वाधीनता की इस दशाब्दि में उसने उन्नति नहीं की। किन्तु वास्तविक सत्य तो यह है कि जो कुछ भी उन्नति विभिन्न क्षेत्रों में हुई वह इतनी अपर्याप्त व मन्द हुई है कि हम उस दौड़ में अन्य देशों से और भी अधिक पिछड़ गये। तुलनात्मक दृष्टि से हमारी प्रगति कम रही। यद्यपि देश में प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता है, तथापि भारत एक अत्यन्त निर्धन देश है जहाँ असंख्यों व्यक्ति पशुओं से भी बुरा जीवन बिता रहे हैं। अतः देश की वर्तमान महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है आवश्यक जीवन-यापन की सामग्री के उत्पादन में अभिवृद्धि करना, उत्पादन क्षमता बढ़ना तथा देश के करोड़ों लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठाना। यह कार्य तभी सम्पादित हो सकता है जब हम शिक्षा को उसी के अनुरूप ढालें। जब हम कोरे पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा का विकास करें। साथ ही यह भी आवश्यक है कि हम शिक्षा में इस प्रकार के परिवर्तन करें जिससे रुचियों तथा नैसर्गिक मूल-प्रवृत्तियों के आधार पर हम अपने नागरिकों का सांस्कृतिक व नैतिक उत्थान कर सकें। संक्षेप में भारतीय शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य नागरिकों को व्यावसायिक कार्य-क्षमता में विकास, उनके व्यक्तित्व का विकास, नेतृत्व के लिये शिक्षा प्रदान करना तथा जनतन्त्रीय नागरिकता की भावनाओं का विकास करके शोषण विहीन सुखी व समृद्ध समाज की रचना करना है।

(२) पाठ्य-क्रम की समस्या :

अब तक भारतीय शिक्षा का एक भारी दोष यह रहा है कि उसका जीवन की वास्तविकताओं से सम्बन्ध नहीं रहा है। प्रारम्भ से ही विद्यार्थी को एक ऐसे पाठ्य-क्रम को पढ़ना होता है जो केवल पुस्तकीय ज्ञान अर्जित करने पर ही बल देता है। इससे बालक की जीवन-दर्शन की झाँकी लेने की क्षमता तथा बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। जिस जगत में वह रहता है उससे उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। इस कोरे सैद्धान्तिक ज्ञान को लेकर शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त वह यकायक समाज के सम्मुख

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

आ खड़ा होता है। उस समय उसके समक्ष सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न होता है भविष्य का। किस प्रकार वह अपना भावी जीवन-यापन करे ? विद्यार्थी जीवन में उसने जीवन के किसी विशेष रूप की तैयारी नहीं की थी। उसने सामान्य शिक्षा पाई थी। विशेषज्ञता के अभाव में उसके सम्मुख केवल यही मार्ग रह जाता है कि वह कहीं क्लर्की करले, अध्यापक हो जाय, ट्यूशन करने लगे अथवा किसी व्यापारिक कम्पनी अथवा दुकान पर काम करने लगे। उच्च पदों तथा सरकारी सेवाओं के लिये नवयुवकों को इतनी दुरूह प्रतियोगिता करनी पड़ती है कि उसमें सभी का चुना जाना असम्भव होता है। बहुत से तरुण जिन्होंने कला-कौशल, उद्योग-धन्धों तथा इसी प्रकार के उत्पादक कार्यों में प्रशिक्षण नहीं पाया था, वे बेकारी की अवस्था में अनेक दुःख झेलने के लिये लाचार हो जाते हैं। यह दोष हमारे स्कूलों तथा कालेजों में पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम तथा एक परम्परागत चली आने वाली शिक्षण-प्रणाली का है। यह पाठ्यक्रम उन्हें जीवन के किसी विशेष उद्यम में प्रशिक्षण नहीं देता, वह एकांगी व पुस्तकीय होता है, वह अन्य प्रौढ़ों द्वारा तैयार की गई पुस्तकों में से केवल सूचना देता तथा लिखना व पढ़ना सिखाता है, यह बालक की अभिरुचियों, प्रवृत्तियों तथा उसके मानसिक संवेगों का ध्यान नहीं रखता, यह उनके शरीर व स्नायुओं के विकास तथा नैतिक व सांस्कृतिक उत्थान की अवहेलना करता है तथा अन्त में वर्तमान पाठ्यक्रम समाज सेवा एवं नेतृत्व के लिये तैयार नहीं करता। इन सभी त्रुटियों के अतिरिक्त अब तक हमारी शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व रहा है। पहिले तो माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में पढ़ाये जाने वाले सभी विषयों का माध्यम अंग्रेजी था। इसका परिणाम यह होता था कि विद्यार्थियों की अधिकांश प्रतिभा भाषा की दुरूहताओं में ही उलझ जाती थी और वह विषय को भली-भाँति न तो समझ ही पाता था और न उसकी सराहना ही कर सकता था। अब माध्यम के लिये क्षेत्रीय भाषाओं तथा राष्ट्र-भाषा को प्रमुखता दी जाने लगी है। तथापि उच्चस्तर पर विशेषतः विज्ञानों के अध्ययन के लिये शिक्षण के माध्यम का प्रश्न विवादास्पद बना हुआ।

माध्यमिक शिक्षा कमीशन ने पाठ्यक्रम के दोषों को संक्षेप में इस प्रकार सूचीबद्ध किया है :

(१) वर्तमान पाठ्यक्रम का दृष्टिकोण संकीर्ण है;

(२) यह पुस्तकीय व सैद्धान्तिक (Theoretical) है;

(३) इसमें आवश्यकता से अधिक विषय हैं, जिनमें बहुत से निरर्थक व अनावश्यक हैं;

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(४) बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिये प्रैक्टीकल विषय तथा अन्य प्रकार की क्रियाओं से सीखने के लिये व्यवस्था अपर्याप्त है;

(५) किशोरों की विभिन्न आवश्यकताओं तथा अभिरुचियों की पूर्ति नहीं करता;

(६) परीक्षाओं का प्रभुत्व है; तथा

(७) पाठ्यक्रम में ऐसे टैक्नीकल व व्यावसायिक विषयों का अभाव है जो कि विद्यार्थी को देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास में भाग लेने के लिये नितान्त आवश्यक है।[1]

उपर्युक्त सभी तर्क न्याय-संगत व स्वयंसिद्ध हैं। जो बुनियादी दोष माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में हैं, प्राय: वे ही उच्च-शिक्षा में भी हैं। हमारे देश की विश्वविद्यालय शिक्षा भी अधिकांश में साहित्यिक व सैद्धान्तिक है। अब तक हिन्दी, अँग्रेजी, इतिहास, दर्शन, राजनीतिक तथा संस्कृत इत्यादि कला-विषयों पर अधिक बल दिया जा रहा है अपेक्षाकृत भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, गणित, जीव-विज्ञान, इंजीनियरी, कृषि तथा अन्य कला-कौशल एवं विज्ञान सम्बन्धी विषयों के। भारत की स्वतन्त्रता के उपरान्त शिक्षा-शास्त्रियों के दृष्टिकोण में तीव्रता से परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया है। अब यह अनुभव किया जा रहा है कि हमारी शिक्षा की विषय सामग्री अधिकाधिक जीवन तथा उसकी पार्थिव आवश्यकताओं पर आधारित होनी चाहिये। उसके लिये कोरे साहित्यिक विषयों के स्थान पर अधिक से अधिक मात्रा में टैक्नीकल व व्यावसायिक विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिये। यही कारण है कि देश की प्राथमिक व जूनियर माध्यमिक-शिक्षा को क्रमश: बेसिक शिक्षा का रूप दिया जा रहा है। यह शिक्षा कला-कौशल को ही माध्यम बना कर दी जाती है। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यक्रम में गत दशाब्दि में बहुत परिवर्तन किया जा चुका है। माध्यमिक शिक्षा कमीशन तथा उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन समिति की रिपोर्ट के आधार पर अब हाई स्कूल तक की शिक्षा को स्वयंपूर्ण बनाया जा रहा है। देश के अधिकांश बालकों के लिये हाईस्कूल परीक्षा ही अन्तिम होती है और इसके उपरान्त ही वे जीवन में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसी स्थिति में यह नितान्त आवश्यक है कि इस स्तर तक शिक्षा को एक अन्तिमता का रूप के दिया जाय अर्थात् माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त विद्यार्थी किसी न किसी ऐसे उद्यम के योग्य हो जाय जो कि उसे जीवन-यापन में मदद दे। इसी की पूर्ति के लिये देश भर में अब बहुउद्देशीय उच्चतर माध्यमिक स्कूल खोले जा रहे हैं। इन स्कूलों के पाठ्यक्रम में साहित्यिक विषयों के साथ ही साथ विभिन्न कला-कौशल, उद्योग एवं

1. Report of the Secondary Education Commission. (1953) p. 79

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

व्यवसायों में प्रशिक्षण भी सम्मिलित किया गया है। देश के औद्योगिक व आर्थिक विकास की असंख्य योजनायें जो कि इस समय पंचवर्षीय आयोजनों के अन्तर्गत प्रारम्भ की गई हैं उनको पूरा करने के लिये असंख्यों ही प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है। अत: सामान्य माध्यमिक स्कूलों का बहुउद्देशीय स्कूलों में परिवर्तित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त देश में प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों की संख्या में भारी वृद्धि हो गई है। अत: माध्यमिक शिक्षा का भी प्रसार हो गया है। यदि माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में टैक्नीकल विषयों का समावेश नहीं किया जाता तो देश में बेकारी की समस्या भीषण से भीषणतर हो जायगी। भारत कृषि-प्रधान देश है। अब तक ऐसी परम्परा रही है कि भारतीय-कृषकों के लड़के आधुनिक शिक्षा पाकर नगरों में बस जाते हैं। उनकी शिक्षा से कृषि को कोई लाभ नहीं होता, अत: यह भी आवश्यक है कि माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में कृषि विषय को सम्मिलित किया जाय। इसके लिये या तो सामान्य ग्रामीण स्कूलों में कृषि में प्रशिक्षण दिया जाय अथवा फिर ग्रामीण वातावरण में स्वतन्त्र कृषि विद्यालय खोले जायें। उत्तर-प्रदेश में नवीन पुनर्संगठन योजना ने इस दिशा में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। वर्तमान भारत में देश की विभिन्न विकास-योजनाओं की पूर्ति के लिये ऐसे कुशल कारीगर, टैक्नीशियन तथा विशेषज्ञ चाहिये जिन्होंने प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा की पृष्ठभूमि के उपरान्त किसी विशेष उद्यम में प्रशिक्षण पाया हो। इस प्रकार शिक्षकों, सामुदायिक विकास क्षेत्रों तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवाओं में काम करने वाले कुशल कारीगरों, सहकारिता आन्दोलन के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति अधिकांश में १४-१७ वर्ष के आयु समूह के हाई स्कूल पास तरुणों में से करनी होगी। अत: देश के शिक्षा-शास्त्री इस बात पर एकमत है कि माध्यमिक शिक्षा के पाठ्क्रम में विविधता[1] उत्पन्न की जाय जिससे विद्यार्थी अपनी रुचियों, आवश्यकताओं तथा क्षमताओं के अनुसार कोई भी विषय अध्ययन के लिये चुन लें। "इसके लिये पाठ्क्रम में विभिन्न हस्तकलाओं (क्राफ्टों) का समावेश, बहुमुखी पाठ्य-सामग्री का सूत्रपात, विज्ञान-शिक्षण के लिये अधिक सुविधायें, बहुउद्देशीय स्कूलों तथा जूनियर टैक्नीकल स्कूलों की स्थापना तथा माध्यमिक स्कूलों को उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तित करने की आवश्यकता है।"[2]

इसी प्रकार विश्वविद्यालय शिक्षा की पाठ्य-समग्री में हमें काल व आवश्यकता के अनुसार आवश्यक परिवर्तन करने होंगे। भारत की उच्च शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य देश के विभिन्न विभागों में प्रशासकों की पूर्ति करना ही रहा है। वस्तुत: विश्वविद्यालय

---

1. Diversification.
2. Second Five Year Plan, p. 50).

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वे स्थान हैं जहाँ से देश या जाति प्रेरणा व जीवन पाते हैं। वे किसी भी राष्ट्र के भावी निर्माण व उत्थान के उपयुक्त मानव-सामग्री[1] प्रदान करने के पूर्ति केन्द्र हैं। इन्हीं केन्द्रों से हमें प्रशासक, शिक्षक, चिकित्सक, अभियन्ता[2], अर्थशास्त्री व वैज्ञानिक मिलते हैं, जो कि राष्ट्र के निर्माणक होते हैं। दुर्भाग्य से भारतीय विश्वविद्यालय ऐसे लोगों के उत्पन्न करने की केवल आंशिक पूर्ति ही करने में असफल हो सके हैं। इसका प्रमुख कारण यह रहा है कि उच्च किक्षा की पाठ्य-सामग्री ही एकांगी रही है। उसने शासन संचालन के पुर्जों का उत्पादन वैज्ञानिकों, अभियन्ताओं तथा कुशल विशेषज्ञों की अपेक्षा अधिक किया है। यही कारण है कि भारत में शिक्षितों में हम भारी बेकारी पाते हैं। माध्यमिक शिक्षा की भाँति उच्च शिक्षा भी विद्यार्थी को जीवन के लिये तैयार करने में असफल रही है। इसकी पाठ्-सामग्री जीवन के लिये इतनी अनुपयुक्त रही है कि शिक्षा की सामग्री पर उच्चशिक्षा प्राप्त स्नातक अपने को समाज में रहने तथा उनकी विभिन्न समस्याओं में क्रियात्मक सहयोग देने के लिये अपने को अयोग्य पाता है। उसके शरीर तथा मस्तिष्क का विकास नहीं हो पाता है। वास्तव में समय-समय पर नियुक्त किये जाने वाले शिक्षा-आयोगों ने इस समस्या का विस्तारपूर्वक अध्ययन करके समस्या के सुलझाने के लिये व्यावहारिक हल प्रस्तुत किये हैं, जिनका कि संक्षिप्त विवेचन इस पुस्तक में यथास्थान किया जा चुका है। यहाँ हम राधाकृष्ण कमीशन के द्वारा दिये गये पाठ्क्रम सम्बन्धी विचारों को पर्याप्ततः उपयुक्त समझकर संक्षेप में वर्णित करते हैं।[3] इस कमीशन के मतानुसार उच्च शिक्षा के पाठ्क्रम में सामान्य शिक्षा[4], उदार शिक्षा[5] तथा व्यावसायिक शिक्षा[6] सम्मिलित होनी चाहिये।

विद्यार्थियों के सामान्य ज्ञान वर्धन के लिये सामान्य शिक्षा प्रदान करना आवश्यक है। जीवन तथा जीवन सम्बन्धी विविध सूचनाओं के ज्ञान के अभाव में हमारे विद्यार्थियों में संकीर्णता कूपमंडूकता तथा अतिविशेषज्ञता[7] आ जाती है। उच्च-शिक्षा के उपरान्त भी वे पाते हैं कि वे केवल उतना ही जानते हैं जितना कि उन्होंने पुस्तकों में सैद्धान्तिक रूप से पढ़ा है। केवल अपने विषय का ही एक दीर्घकाल तक अध्ययन करने के कारण उन्हें संसार की अन्य आवश्यक बातों का ज्ञान नहीं हो पाता। यही कारण

---

1. Human Material.
2. Engineers.
3. For a detailed study consult the *Report of the University Education Commission*, Vol. I, Ch. V, p., 117.
4. General Education.
5. Liberal Education.
6. Occupational Education.
7. Over Specialisation.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

है कि उनके निर्णय व क्रियाकलाप संकीर्ण एवं बहुधा दोषपूर्ण होते हैं। "अतः सामान्य शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को तथ्यों तथा सिद्धान्तों के विषय में बुद्धिमत्तापूर्ण चुनी हुई सूचना प्रदान करना तथा उस शिक्षा पर अधिकार प्राप्त करने के लिये प्रेरित करना है, जिससे उसे अपने विचार, निर्णय व कार्यों को आधारित करने के लिये सच्ची सूचना प्राप्त हो सके और वह अपने लाभ तथा अपने लिये महत्त्वपूर्ण बातों से अवगत हो सके।"[1] आधुनिक युग में ज्ञान व विज्ञान का आकार इतना विशाल होता जा रहा है कि कोई भी व्यक्ति प्रत्येक क्षेत्र में से अपने लिये पर्याप्त आवश्यक सामग्री का चयन नहीं कर सकता। अतः सामान्य शिक्षा के अन्तर्गत सभी आवश्यक व जीवनोपयोगी ज्ञान का निचोड़ सम्मिलित किया जाता है और ज्ञान की विविधि शाखाओं में से सैद्धान्तिक व व्यावहारिक सामग्री का संकलन करके इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि विद्यार्थी को न्यूनतम व बुनियादी ज्ञान अधिक से अधिक विषयों का प्राप्त हो सके। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी का व्यक्तित्व अधिक पूर्ण होगा। अपने प्रमुख विषय में वह विशेषज्ञता प्राप्त करने के साथ ही साथ अन्य विषयों से भी परिचित हो सकेगा। भारत में उच्च शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों में प्रायः देखा जाता है कि सार्वजनिक सेवाओं में प्रविष्ट करने वाली परीक्षाओं में अपने सामान्य ज्ञान के विषय में बड़ी ही हास्यास्पद किन्तु दयनीय स्थिति का परिचय देते हैं। यहाँ तक कि अपने विषय पर अधिकार होने की अपेक्षाकृत भी वे अपने देश सम्बन्धी उन साधारण व प्रारम्भिक बातों को भी नहीं जानते जिनका जानना उनके लिये नितान्त आवश्यक है। अतः उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में अविलम्ब सामान्य शिक्षा का समावेश कर लेना चाहिये। राधाकृष्णन् कमीशन की सिफारिशों के आधार पर उच्च शिक्षा में सामान्य शिक्षा का शिक्षण प्रारम्भ करने की दशाओं का अध्ययन करने एवं अन्य देशों की स्थिति के प्रकाश में सुझाव देने के उद्देश्य से भारत सरकार ने सन् १९५६-५७ ने आठ शास्त्रियों का एक शिष्टमण्डल अमरीका तथा यूरोप के अन्य देशों में भेजा था। इस शिष्टमण्डल ने अपनी रिपोर्ट में भी इस बात का सुझाव दिया है कि सामान्य शिक्षा अण्डर-ग्रेजुएट कक्षाओं में ही प्रारम्भ कर देनी चाहिये और और भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का यह एक अनिवार्य अंग होना चाहिये।

उदार शिक्षा के पाठ्यक्रम से विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन का अभिप्राय उस शिक्षा से है जो कि व्यक्ति में स्वतंत्र चिन्तन, आलोचनात्मक विवेचना तथा रचनात्मक

1. University Education Commission, pp. 117.118.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विचारधारा को जाग्रत कर सके ।[1] इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत दर्शन-शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, कानून तथा इसी प्रकार के अन्य मानवशास्त्रों का अध्ययन सम्मिलित किया जा सकता है। इनके शिक्षण के अतिरिक्त इन विषयों में रिसर्च, सेमीनार व गोष्ठियाँ तथा सम्मेलनों इत्यादि का आयोजन इत्यादि भी विद्यार्थियों में स्वतन्त्र चिन्तन एवं दार्शनिक व आलोचनात्मक विवेचना की भावनाओं को जाग्रत करने के लिये आवश्यक है।

उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम का तृतीय स्वरूप व्यावसायिक शिक्षा अर्थात् वह शिक्षा जोकि विद्यार्थी को जीवन-यापन के लिये किसी विशेष कार्य तथा उद्यम के लिये तैयार करती है।[2] इस शिक्षा का आधार केवल टैक्नीकल ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है, अपितु सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करना, सामाजिक व मानवीय मान्यताओं की सराहना तथा वास्तविकताओं को द्वेष-विहीन एवं विवेकपूर्ण तरीके से देखने की अनुशासित क्षमता प्राप्त करना भी है। जबकि व्यावसायिक शिक्षा राष्ट्र-निर्माण की संरचना (structure) प्रदान करती है, उस संरचना का स्वरूप अधिकांश में इस बात पर भी निर्भर है कि ऐसे व्यक्तियों का पहिले से मानसिक व नैतिक स्तर अथवा उनके व्यावसायिक प्रशिक्षण का मानदण्ड का क्या है। अत: आवश्यक है कि जनतन्त्रीय समाजवादी भारत के निर्माण के लिये व्यावसायिक शिक्षा के मौलिक उद्देश्य केवल व्यक्ति को उद्यम प्रदान करना ही न होकर देश की आवश्यकताओं एवं द्रुतगति से बदलने वाली परिस्थितियों के अनुरूप उनमें सामाजिक कर्त्तव्यों व उत्तरदायित्वों का विकास करना भी है। यह शिक्षा एक उद्यम का प्रशिक्षण मात्र न होकर विद्यार्थी के पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का साधन होगी। भारत के लिये व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम में कृषि, वाणिज्य, शिक्षा शास्त्र, इञ्जीनियरी व टैक्नोलॉजी, कानून तथा चिकित्सा शास्त्र इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।

इस प्रकार भारत में शिक्षा की पाठ्य-सामग्री की समस्या का हल उपर्युक्त

---

1. *Cf.* "The second objective of courses of study, *Liberal Education*, is preparation of the student for independent thinking for critical inquiry and appraisal, and for creative and constructive thought and action" Report of the University Education Commission. Vol. I, p. 118.

2. *Cf.* "Professional education is the process by which men and women prepare for exacting, responsible service in the professional spirit. The term may be restricted to preparation for fields requiring well-informed and disciplined insight and skill of a high order. Less exacting preparation may be designated as vocational or technical education." University Education Commission, Vol. I, p. 174.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विवेचन के आधार पर किया जा सकता है। जब हम पाठ्यक्रम के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करते हैं तो उसका अभिप्राय यह नहीं होता कि प्रत्येक स्वरूप एक स्वतन्त्र व पृथक्[1] इकाई है। वास्तव में ज्ञान एक अजस्र धारा है। विद्यार्थी के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिये विभिन्न शाखाओं में समन्वय स्थापित होना आवश्यक है। अतः प्राथमिक, माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षा के सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम का विकास इस प्रकार होना चाहिये कि विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विकास के साथ ही साथ वह समाज व राष्ट्र की एक उपयोगी इकाई के रूप में विकसित हो सके। हर्ष का विषय है कि अब भारतीय शिक्षा शास्त्री पाठ्यक्रम में अधिक रुचि दिखाने लगे हैं। वास्तव में देखा जाय तो अब हम भारतीय शिक्षा-प्रणाली की आलोचना करते हैं तो दो दोष हमें सबसे अधिक भीषण जान पड़ते हैं—पाठ्यक्रम की अनुपयुक्तता तथा उसके पढ़ाने की परम्परागत विधि। यदि हम यह निर्णय कर लेते हैं कि हमें अपने विद्यार्थियों को 'क्या' पढ़ाना है, वह 'कैसे' पढ़ाना है, और 'क्यों' पढ़ाना है तो इस 'क्या' व 'कैसे' एवं 'क्यों' के हल से ही हमारी शिक्षा का ढाँचा बदल जायगा और वह देश व काल के अधिक उपयुक्त हो सकेगी। इधर स्वतन्त्रता के उपरान्त तथा पंचवर्षीय योजनाओं के लागू होने से पाठ्यक्रम तेजी से बदल रहा है। किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि वह परिवर्तन स्वयं योजना-विहीन है। बिना किसी पूर्व-नियोजित एवं पूर्णतः निर्णीत आयोजन के यत्र-तत्र होने होने वाले पाठ्यक्रम सम्बन्धी परिवर्तनों से तो शिक्षा क्षेत्र में अराजकता व उद्देश्यहीनता ही बढ़ेगी। अतः यह आवश्यक है कि इस समस्या का हल एक राष्ट्रव्यापी स्तर पर पूर्ण योजना के आधार पर ही होना चाहिये। उपयुक्त विवेचन के अतिरिक्त पाठ्य-सामग्री में सुधार करने के लिये यह भी आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को समाज सेवा तथा सामाजिक कार्यों में प्रशिक्षण देने के लिये उन्हें किसानों के साथ खेतों में कार्य करने, खानों तथा कारखानों में श्रमिकों के साथ रह कर कार्य करने अथवा सड़क कूटने, नालियाँ साफ करने, नल लगाने, गंदी बस्तियों को साफ करने एवं सामाजिक शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों में श्रमदान करने का कार्य अनिवार्य कर दिया जाय। दुर्भाग्य से भारत में जातिवाद व वर्गवाद भीषण रूप में समाज की जड़ों में प्रवेश कर गया है जो राष्ट्रीय जीवन की जड़ें खोखली कर रहा है। यहाँ का उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति किसी उच्च पद पर पहुँचने के उपरान्त एक विचित्र प्राणी बन जाता है। वह अपने को एक विशेष व्यक्ति समझने लगता है। जन-समूहों के प्रति उसके हृदय में आदर व सेवा की भावना नहीं होती। ऐसी अभिमानी व दम्भपूर्ण नौकरशाही को जन्म देने में जहाँ हमारे विदेशी शासकों का हाथ रहा था वहाँ शिक्षा का भी हाथ रहा है। उच्च शिक्षा के पाठ्य-

1. Isolated.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

क्रम में हाथ से काम करने की व्यवस्था न होने के कारण हमारे विद्यार्थी समाज की दशा तथा आवश्यकताओं से अवगत नहीं हो पाते। अतः समाज की जीवित व वास्तविक समस्याओं के प्रति एक उदासीन दृष्टिकोण रखते हैं। आज भी यह प्रवृत्ति बहुत सीमा तक विद्यमान है। हमारा समाजवादी समाज स्थापित करने तथा विभिन्न विकास योजनाओं की सफलता का विचार केवल एक स्वप्न रह जायगा यदि यह अतिवांछनीय सुधार तत्काल ही नहीं किया गया। इसके लिये विश्वविद्यालयों से विद्यार्थी एक वर्ष के लिये गाँवों, खानों तथा कारखानों में भेजे जायें। विना इस कार्य के उन्हें डिग्री या प्रमाण-पत्र नहीं मिलना चाहिये। वे वहाँ सिखाने नहीं अपितु विनयपूर्वक किसानों तथा श्रमिकों से जीवन दर्शन य कला को सीखने जाँय। इससे जहाँ हमारा समाज अधिक से अधिक वर्गविहीन होगा वहाँ विद्यार्थियों की शिक्षा में भी वास्तविकता आ जायगी।

दूसरी बात है शिक्षा के द्वारा रूढ़ियों व रूढ़िगत मान्यताओं में समय की माँग के अनुसार परिवर्तन लाना। भारतीय समाज एक डिब्बे के समान है। अतीत में उसके कुछ भी गुण रहे हों या न रहे हों, यह निर्विवाद सत्य है कि आज इस बात की आवश्यकता है कि समाज की गला घोटने वाली सामाजिक परम्पराओं का अन्त किया जाय और मानव-व्यवहार व मानव के सामाजिक सम्बन्धों में अधिक उदारता का समावेश किया जाय। इसका सूत्रपात करने के लिये हमें स्कूलों तथा कालेजों के पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक शिक्षा जैसे संगीत, नृत्य, अभिनय, ललित-कलाओं युवक व युवतियों की सम्मिलित सामाजिक व सांस्कृतिक गोष्ठियाँ तथा पर्याप्त खेलकूद तैरना, नौका-विहार, परिभ्रमण व देशाटन इत्यादि का समावेश करना होगा। सांस्कृतिक कार्यक्रम के अभाव में हमारे युवक-युवतियों का व्यक्तित्व विकृत हो जाता है। उनकी जीवन-सम्बन्धी मान्यतायें भी विकृत व संकीर्ण हो जाती हैं जो अन्ततोगत्वा उनके व्यक्तित्व से उन्मुक्त विकास में बाधक होती है। अतः जीवन को एक गति देने, भावनाओं तथा मूल प्रवृत्तियों का प्ररिशोधन करने तथा व्यक्तित्व को अधिकं सम्पन्न व पूर्ण बनाने के लिये पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक कार्यों को रूस की शिक्षा प्रणाली की भाँति एक अनिवार्य आधार बनाया जा सकता है। यह संस्कृति पूर्व व पाश्चात्य सभ्यता का एक सामान्य स्थापित करेगी।

(३) परीक्षा-प्रणाली :

भारतीय शिक्षा-क्षेत्र में वर्तमान परीक्षा-प्रणाली भी उतनी ही कड़ी उग्र समस्या मानी जाती है जितनी कि पाठ्क्रम तथा शिक्षण-पद्धति की समस्या। प्रत्येक स्तर पर हमारी शिक्षा का उद्देश्य कोई विशेष परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना ही हो गया है। वर्ष भर विद्यार्थी किसी पाठ्क्रम को पढ़ता है, केवल इसीलिये कि उसकी वार्षिक परीक्षा में वह

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सफल हो जाय। परीक्षा में उत्तीर्ण होकर कागजी प्रमाणपत्र पा लेना ही उसके अध्ययन का उद्देश्य होता है। वास्तविक रूप से ठोस ज्ञान का संकलन व संचय करना वह अपना उद्देश्य नहीं समझता। इसका परिणाम यह होता है कि वह वर्ष के कुछ भाग में ही—प्राय: परीक्षा के दिनों में—थोड़े बहुत चुने हुए प्रश्नों के उत्तर रट डालता है। इससे उसके ज्ञान का आधार दृढ़ व विस्तीर्ण नहीं हो पाता। अपने इस उथले ज्ञान को परीक्षा-भवन में उँड़ेल आने के उपरान्त वह राहत का अनुभव करता है और उस खाली मस्तिष्क को लेकर समाज में प्रवेश करता है। इस प्रकार हमारी शिक्षा प्रणाली ज्ञान-प्रधान न होकर परीक्षा-प्रधान हो गई है।[1]

हमारी परीक्षा प्रणाली का एक भारी दोष यह भी है कि विद्यार्थी जिसने वर्ष भर किसी निश्चित पाठ्यक्रम का अध्ययन किया है, उसकी वास्तविक योग्यता को नापने के लिये यह प्रणाली अपर्याप्त है। वर्ष के अन्त में केवल एक परीक्षा होती है जिसमें कुछ थोड़े प्रश्नों के उत्तर देखने से ही विद्यार्थी की योग्यता का अनुमान लगाया जाता है। दूसरे, परीक्षकों की संख्या इतनी विशाल होती है कि उनके निर्णयों में कोई समन्वय स्थापित नहीं किया जा सकता। अङ्क देना बहुधा शिक्षकों की मनोदशा, व्यक्तिगत योग्यता व विषय ज्ञान एवं उनके वातावरण इत्यादि पर भी निर्भर रहता है। अत: विभिन्न परीक्षकों के निर्णय में विभिन्नता होती है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव परीक्षार्थियों पर पड़ता है। वस्तुत: इस परीक्षा प्रणाली ने भारतीय शिक्षा के सम्पूर्ण कलेवर को ही कलुषित कर रखा है। शिक्षा-सुधार के लिये नियुक्त होने वाली प्राय: सभी कमेटियाँ व कमीशनों ने इसके दोषों की व्याख्या की है व सुधार के सुझाव प्रस्तुत किये हैं। वास्तव में २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही परीक्षा-प्रणाली की आलोचना हो रही हैं, किन्तु आज तक उसके दोषों का उन्मूलन नहीं हुआ है। इधर उन दोषों की उग्रता असाध्य हो उठी है। विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन के मतानुसार भी "जब कि इस समस्या की गंभीरता व दुरूहता भयानक गति से बढ़ती जा रही है, इसके सुधार के लिये

---

1. *Cf.* "......here suffice it to say that they (examinations) are known to be capricious, invalid, unreliable and inadequate; that they dominate instruction to its detriment by making the syllabus narrow, killing initiative in the teacher and encouraging cramming in the student; that they result in excessive strain and anxiety to students near the examination time and in neglect of work during the school year; and that they tend to have an adverse effect on discipline." Report of the Secondary Education Reorganisation Committee, U. P., (1953), p. 40.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कुछ भी रचनात्मक कार्यवाही नहीं की गई है।"[1] प्रतिवर्ष इन परीक्षाओं में वैठने वाले परीक्षार्थियों की संख्या में अपार वृद्धि हो रहीं है जबकि परीक्षा का स्वरूप वैसा ही बना हुआ है जैसा कि ५० वर्ष पूर्व था। सन् १९०२ में विश्वविद्यालय कमीशन तथा सन् १९१७-१८ में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने परीक्षार्थियों की बढ़ती हुई संख्या तथा परीक्षा-प्रणाली के ढाँचे की ओर ध्यान आकर्षित किया था और इधर स्वतन्त्रता की प्राप्ति के उपरान्त राधाकृष्णन् कमीशन तथा मुदलियार कमीशन एवं राज्य-स्तर पर बनने वाली विभिन्न शिक्षा-समितियों ने इस प्रणाली की आलोचना की है और इसके स्थान पर अधिक मूर्त्त-परीक्षाओं[2] एवं परीक्षकों में वाह्य-परीक्षकों[3] के स्थान पर आन्तरिक परीक्षकों[4] के नियुक्त करने के सुझाव दिये हैं। पर इस दृष्टि से कोई भी सैद्धान्तिक अथवा रचनात्मक परिवर्तन इस प्रणाली में नहीं हुआ है। सन् १९५३ में आचार्य नरेन्द्रदेव समिति ने अपनी रिपोर्ट में इस समस्या का हल करने के लिये निम्न-लिखित सुझाव दिये हैं[5] :—

(१) वाह्य-परीक्षकों के स्थान पर स्वयं शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों की योग्यता की जाँच कराई जाय।

(२) विद्यार्थी की योग्यता के विषय में दिया जाने वाला अन्तिम निर्णय उन कई निर्णयों पर आधारित हो जो वर्ष में किये गये हों। अर्थात् मासिक, त्रैमासिक अथवा अर्धवार्षिक परीक्षाओं को उतना ही महत्त्व दिया जाय जितना कि वार्षिक परीक्षा को दिया जाता है और उन परीक्षाओं के अङ्क भी वार्षिक परीक्षा के अङ्कों में जोड़े जाँय।

(३) किसी एक विषय में एक स्कूल के शिक्षक द्वारा दिये गये अङ्कों का सन्तोष-जनक समन्वय उसी विषय में किसी अन्य स्कूल के शिक्षक के द्वारा दिये गये अङ्कों से स्थापित कर दिया जाय।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि निबन्धात्मक परीक्षाओं के स्थान पर ऐसी स्पष्ट, विश्वस्त, पर्याप्त रूप से वैज्ञानिक व मूर्त्त (objective) तथा

1. Report of the University Education Commission, (1949), p. 327.
2. Objective tests.
3. External Examiners.
4. Internal Exminers.
5. For detailed analysis consult Report of the *Secondary Education Reorganisation Committee*. U. P. (1953), pp. 40-45; *University Edu. Commission*, Vol. I., ch. x., and *Secondary Education Commission*, ch. xi.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सुनिश्चित प्रणाली को जन्म दिया जाय जिसमें परीक्षक की वैयक्तिक विद्वेषात्मक भावना प्रवेश कर सके। वह विद्यार्थी की योग्यता की नाप, जो कि परीक्षा का वास्तविक उद्देश्य है, भली भाँति कर सके। इसका उद्देश्य स्पष्ट हो। पाश्चात्य देशों में परीक्षा-प्रणाली को अधिक से अधिक वैज्ञानिक प्रसाधनों व विधियों पर आधारित किया जा रहा है, विशेषत: अमरीका में। उन्हीं विधियों के आधार पर हम भी ऐसे साधनों का विकास कर सकते हैं जो कि विद्यार्थी की बुद्धि, अभिरुचि, सफलता तथा व्यक्तित्व की जाँच मूर्त्त-विधि से कर सकें। मानसिक क्षमताओं को नापने के लिये यन्त्रों तथा संख्या शास्त्र का उत्तरोत्तर उपयोग अमेरिका में किया जा रहा है। अमरीकी शिक्षा परिषद् के तत्वावधान में नियुक्त की गई नाप तथा मार्ग-दर्शन समिति[1] ने इस क्षेत्र में विचारधारा को बड़ा स्पष्ट रूप से प्रभावित किया है। इस समिति के प्रमुख कार्य अमरीकी परिषद् की मनोवैज्ञानिक-परीक्षा विधि[2], सहकारी परीक्षा-सेवा[3] तथा अभिरुचि की नाप[4] एवं प्राथमिक मानसिक क्षमताओं[5] के सम्बन्ध में किया गया अन्वेषण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। माध्यमिक विद्यालयों तथा कालेजों में मूर्त्त-परीक्षाओं के सफल परीक्षण अमरीका के आयोवा, ओहायो, मिनेसोटा तथा विस्कौंसिन इत्यादि राज्यों में किये जा रहे हैं। इन्हीं परीक्षणों में भारतीय अवस्थाओं तथा आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन करके यहाँ की परीक्षा-प्रणाली के दोषों का निवारण किया जा सकता है।

भारत में ऐसे विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही है जो हाईस्कूल पास करके उच्च शिक्षा के लिये विश्वविद्यालयों में जाते हैं। इस स्तर पर वे प्राय: यह नहीं जानते कि उन्हें भावी अध्ययन के लिये किन विषयों को चुनना है अथवा उनके शिक्षक भी यह नहीं जानते कि इस समय विद्यार्थी का वास्तविक ज्ञान स्तर कितना है और भविष्य में उसके शिक्षण के लिये किस विधि को अपनाना है। इसका परिणाम यह होता है कि शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों ही निरुद्देश्य अन्धकार में बढ़ते जाते हैं। इसके लिये बुद्धि अर्थात् मनोवैज्ञानिक परीक्षा[6] एवं ज्ञान-परीक्षा[7] के साधनों का उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। बुद्धि परीक्षा से विद्यार्थी की नैसर्गिक बुद्धि-लब्धि का पता लग सकेगा तथा ज्ञान परीक्षा से अब तक के प्राप्त किये हुए ज्ञान स्तर का पता चल सकेगा, जिस पर विद्यार्थी इस समय खड़ा है। इन परीक्षाओं के उपरान्त उचित

---

1. Committee on Measurement and Guidance.
2. American Council's Psychological Examination.
3. The Co operative Test Service.
4. Aptitude Measurements.
5. Primary Mental Abilities.
6. Intelligence or Psycholcgical Test.
7. Achievement Test.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दिशा में विद्यार्थी का मार्ग-निर्देशन हो सकेगा। सौभाग्य से बहुत से व्यापारिक तथा औद्योगिक विभागों में इस देश में उपर्युक्त परीक्षा विधियों का प्रयोग किया जाने लगा है। सरकारी सेवाओं विशेषकर सार्वजनिक सेवा कमीशन एवं पुलिस व सेना इत्यादि की सेवाओं में इनका पर्याप्त प्रयोग किया जा रहा है। किन्तु अभी सर्वव्यापी स्तर पर स्कूलों तथा कालेजों में इनका प्रयोग नगण्य है। वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के भयंकर दोषों को दूर करने के लिये तत्काल ही केन्द्रीय तथा राज्यों में शिक्षा मंत्रालयों को वैज्ञानिक अध्ययन तथा अन्वेषण प्रारम्भ करा देना चाहियें जिससे भारतीय शिक्षा-विधि में परीक्षा की वैज्ञानिक विधियों का सूत्रपात किया जा सके। इसकी खोज के लिये विशेषज्ञों की नियुक्ति करनी चाहिये। विश्वविद्यालयों में एक परीक्षक-बोर्ड की रचना करनी चाहिये जिसमें निपुण व अनुभवी शिक्षक लिये जाने चाहिये। इस बोर्ड का कर्त्तव्य होगा कि परीक्षाओं में वैज्ञानिक विधियों का आश्रय लेने के साधनों का विकास करे। बुद्धि परीक्षा एवं ज्ञान परीक्षा माध्यमिक शिक्षा के पूर्व तथा १२ वर्ष के माध्यमिक अध्ययन के उपरान्त विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने के पूर्व अनिवार्य करदी जाय ताकि विद्यार्थी का उसकी रुचि तथा क्षमता के अनुसार उचित दिशा में मार्ग-निर्देशन किया जा सके। कक्षा-कार्य की जाँच तथा विद्यार्थी की क्रमिक प्रगति का एक निश्चित रिकार्ड रखा जाना चाहिये।

जब तक देश में वैज्ञानिक विधियों पर आधारित मूर्त्त-परीक्षाओं का पर्याप्त विकास नहीं होता, तब तक के लिये यह भी आवश्यक है कि अन्तरिम काल के लिये प्रचलित प्रणाली के दोषों का ही निवारण किया जाय। इन दोषों के निवारण के उपायों पर पीछे आवश्यक प्रकाश डाला जा चुका है।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि हमारी वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में सुधार वह प्रमुख प्रकार का कदम होगा जो कि शिक्षा के क्षेत्र में अन्य सुधारों के पूर्व उठाया जाना चाहिये। बिना इस सुधार के हम शिक्षा के उद्देश्य, उसकी विषय सामग्री एवं शिक्षण-विधि में पर्याप्त सुधार नहीं कर सकेंगे। आज विद्यार्थियों में फैली हुई निराशा तथा अनुशासनहीनता एवं शिक्षकों में फैली हुई अकर्मण्यता व उदासीनता के लिये वर्तमान परीक्षा-प्रणाली एक बड़ी सीमा तक उत्तरदायी है। शिक्षक वर्ग कुछ न पढ़ाकर कुछ चुने हुए प्रश्नों को रटा कर अथवा उन प्रश्नों के हल एवं अन्य सस्ती पुस्तकों का सुझाव देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेता है और विद्यार्थी शिक्षक का अनुकरण करके केवल परीक्षा के दिनों में उन हलों एवं सस्ती पुस्तकों को पढ़कर परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है। वर्ष भर घोर श्रम करने वाला विद्यार्थी परीक्षा के चुने हुए प्रश्नों को सफलता पूर्वक हल न कर सकने पर असफल हो जाता

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हैं जब कि कुछ दिन पढ़ने वाला विद्यार्थी दैवयोग से उन प्रश्नों को अच्छी प्रकार हल करने पर उत्तीर्ण हो जाता है। इस अनिश्चितता व अन्याय का उत्तरदायित्व हमारी दोषपूर्ण परीक्षा विधि पर ही है। अत: आवश्यक है कि हम शीघ्र ही इसका सुधार कर डालें। परीक्षा सदा आवश्यक रहेगी, उसकी विधि चाहे कैसी ही हो। हम उसके समूल उन्मूलन की सिफारिश नहीं कर सकते, केवल उसके सुधार के सुझाव ही रख संकते हैं। समय रहते हुए इन सुधारों का लागू होना अनिवार्य है।

(४) शिक्षा का नियन्त्रण व प्रबन्ध :

भारत में शिक्षा के नियंत्रण व प्रबन्ध की समस्या भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ प्राथमिक तथा जूनियर हाईस्कूल अथवा मिडिल स्कूल अधिकांश में स्थानीय जिला-बोर्डों तथा नगरपालिकाओं के अन्तर्गत हैं। कुछ स्कूल सीधे राज्य सरकार के अन्तर्गत तथा कुछ वैयक्तिक संस्थाओं व धर्म-प्रचारक संस्थाओं के प्रबन्ध के अन्तर्गत हैं। इसी प्रकार माध्यमिक स्कूल भी स्थानीय बोर्डों, वैयक्तिक संस्थाओं तथा धर्म-प्रचारक मंडलों के आधीन हैं। प्रारम्भ में लगभग प्रत्येक जिले में एक हाईस्कूल प्रान्तीय सरकारों ने एक आदर्श संस्था के रूप में सरकारी शिक्षा विभाग के प्रत्यक्ष नियंत्रण में भी स्थापित किया था। अधिकांश माध्यमिक शिक्षा संस्थायें तो वैयक्तिक प्रबन्ध समितियों के अन्तर्गत ही हैं। इनके अतिरिक्त रेल व यातायात, श्रम, वाणिज्य, सुरक्षा तथा उद्योग मंत्रालयों ने भी अपने कर्मचारियों के बालकों की शिक्षा अथवा किसी विशेष उद्योग में टैक्नीकल शिक्षा प्रदान करने के लिये भी क्रमश: अपने-अपने नियन्त्रण में स्कूल खोल रखे हैं। प्रत्येक राज्य में एक शिक्षा मंत्रालय होता है और शिक्षा मंत्री की सहायता के लिये एक सैक्रेटरी होता है जो कि विभिन्न शिक्षा समस्याओं पर मन्त्री को सलाह देता है। इसके अतिरिक्त राज्य स्तर पर एक शिक्षा संचालक व उसकी सहायता के लिये विभिन्न क्षेत्रों में उप-शिक्षा संचालक होते हैं। शिक्षा संचालक का कार्य सरकार की शिक्षा नीतियों को कार्यरूप में परिणत करना तथा शिक्षा का प्रशासन सम्भालना है। प्रत्येक राज्य में एक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड भी होता है जिसका उत्तरदायित्व माध्यमिक शिक्षा सम्बन्धी पाठ्यक्रम नियत करना, पाठ्य पुस्तकों को चुनना तथा परीक्षा लेना है। माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी विभिन्न राज्यों की योजनाओं में समन्वय स्थापित करने तथा उसके अखिल-भारतीय महत्त्व के प्रश्नों पर सलाह देने के लिये केन्द्र में माध्यमिक शिक्षा सलाहकार परिषद् की स्थापना की गई है।

विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में भारत के चार विश्वविद्यालों को छोड़कर जो कि केन्द्र से सम्बन्ध रखते हैं, शेष सभी राज्य सरकारों के अन्तर्गत हैं। केन्द्रीय विश्व-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विद्यालयों का विजिटर राष्ट्रपति होता है और उसी के समानान्तर राज्यों में स्थित विश्व-विद्यालयों का चांसलर वहाँ का गवर्नर होता है। प्रत्येक विश्वविद्यालय का प्रशासन चलाने के लिये वाइस-चांसलर होता है जो विभिन्न संस्थाओं जैसे सीनेट, एक्जीक्यूटिव काउंसिल व एकैडेमिक काउंसिल फैकल्टी तथा बोर्ड-आव-स्टडीज इत्यादि की सहायता से आन्तरिक प्रबन्ध का उत्तरदायी होता है। विश्वविद्यालय स्वायत्त शासन (Autonomy) प्राप्त संस्थायें होती हैं जिनमें सरकार अधिक प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं कर कर सकती। उच्च शिक्षा में वित्त की समस्या को हल करने के लिये राधाकृष्णन् कमीशन ने अखिल भारतीय स्तर पर विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन स्थापित करने की सिफारिश सन् १९४९ में की थी जिसकी स्थापना कालान्तर में करदी गई। यह कमीशन प्रत्येक विश्वविद्यालय की वित्तीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए न्यायपूर्वक अनुदान व आवश्यक आर्थिक सहायता देता है।

उपर्युक्त नियंत्रण भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में एक दीर्घकाल से चला आ रहा है। किन्तु आज इसमें कुछ ऐसे भयंकर दोष उत्पन्न हो गये हैं कि जिनका तात्कालिक निवारण शिक्षा की प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा जो अधिकांश में जिला बोर्डों व नगरपालिकाओं के नियन्त्रण में है, आज बड़ी दयनीय स्थिति में है। प्राय: इन बोर्डों की आर्थिक स्थिति शोचनीय होती है, उनमें आन्तरिक निम्नकोटि की दलबन्दी होती है, उनके सदस्य अधिकांश में अशिक्षित स्थानीय राजनैतिक कार्यकर्ता होते हैं जो प्राथमिक शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझ पाते तथा शिक्षा-कार्य-क्रमों का भली-भाँति पालन नहीं किया जाता। इन सबका परिणाम यह होता है कि कहीं-कहीं ६-६ माह तक शिक्षकों को वेतन नहीं मिलता। स्थानीय दलबन्दी के आधार पर उनके तबादिले एक स्थान से दूसरे स्थान को कर दिये जाते हैं। शिक्षक स्थानीय नेताओं से भयभीत रहता है तथा उस निर्धनता व भय के वातावरण में वह अपना कर्त्तव्य पालन भली-भाँति नहीं कर पाता। दुर्भाग्य से हमारी वर्तमान सरकार केवल सैद्धान्तिक व मौखिक रूप से ही देश के लिये प्राथमिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार करती है, वस्तुत: उसके नियंत्रण में संरचनात्मक सुधार करके शिक्षा तथा शिक्षकों की दशा के सुधार में इस क्षेत्र में भी कुछ सराहनीय कार्य नहीं किया गया। अत: यह आवश्यक है कि गाँवों की प्राथमिक शिक्षा को तत्काल ही जिला बोर्डों के अधिकार से निकाल कर राज्य के शिक्षा विभाग के अन्तर्गत कर देना चाहिये और नगरों में नगरपालिकाओं को इस बात के लिए विवश किया जाय कि वे शिक्षा की दुर्दशाओं में सुधार करें। जब तक बेसिक शिक्षा जिला बोर्डों के हाथ में रहेगी उसमें कोई सुधार की आशा नहीं की जा सकती।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

नियन्त्रण व प्रबन्ध की समस्या ने जितना भीषण स्वरूप माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में धारण किया है, वह अन्य क्षेत्रों में नहीं। जो स्कूल सरकार के नियन्त्रण में प्रत्यक्ष रूप से चल रहे हैं, वहाँ तो स्थिति कुछ सन्तोषजनक है अन्यथा, प्राइवेट हाई-स्कूलों व इण्टर कालेजों में स्थिति बड़ी दयनीय है। इन संस्थाओं में शिक्षकों व प्रधानाध्यापक की नियुक्ति, पुष्टिकरण अथवा पृथक्करण सभी कुछ प्रबन्ध समितियों के सदस्यों की सनक व पक्षपातपूर्ण भावनाओं पर निर्भर रहता है। अधिकांश माध्यमिक शिक्षकों की आज जो दुर्दशा है उसका उत्तरदायित्व इन्हीं प्रबन्ध समितियों पर है जो जातीय पक्षपात, व्यक्तिगत वैमनस्य व ईर्ष्या, आर्थिक भ्रष्टाचार तथा शिक्षकों के ऊपर शासन करने की दुर्भावना से अभिप्रेरित होती रहती हैं। ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं कि कमेटी का मैनेजर स्कूल को अपनी वैयक्तिक जायदाद समझता है और उससे अनुचित तरीके से आर्थिक लाभ उठा रहा है। शिक्षा विभाग अथवा जिले का शिक्षा निरीक्षक अधिकांश में इतना दुर्बल व्यक्ति होता है कि ऐसी समस्या का बलपूर्वक समाधान नहीं कर पाता। हो सकता है कि प्रबन्ध-समितियों अथवा शिक्षा निरीक्षकों में कुछ अच्छे अपवाद हों, किन्तु आज की स्थिति में वे केवल अपवाद मात्र ही कहे जा सकते हैं। सरकार ने इन दोषों को दूर करने के लिए प्रबन्ध समितियों की रचना व विधान में आवश्यक परिवर्तन करने के लिये समय-समय पर प्रयास किये पर अभी स्थिति अक्षुण्ण बनी हुई है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने श्री जे० सी० पावल-प्राइस की अध्यक्षता में सन् १९३७ में ही एक समिति स्थापित की थी। परन्तु उसकी सिफारिशों को युद्ध के कारण कार्यान्वित न किया जा सका। इसके उपरान्त सन् १९४६ में दूसरी समिति नियुक्त की गई जिसने अक्टूबर १९४७ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से सिफारिश की गई थी कि प्रत्येक प्रबन्ध समिति में तीन सरकारी नामजद व्यक्ति तथा एक प्रधानाध्यापक व एक शिक्षकों का प्रतिनिधि अन्य जनता के प्रतिनिधियों के साथ अवश्य रखे जाँय। शिक्षकों की नियुक्ति, क्षेत्रीय पंचायत बोर्ड[1] व क्षेत्रीय स्थानान्तरण बोर्ड की स्थापना, छुट्टी के नियम तथा अन्य इसी प्रकार की सिफारिशें की थीं। पर अधिकांश सिफारिशें कार्यान्वित न हो सकीं। प्रबन्ध समितियों ने प्रबन्ध सुधार तथा सरकारी नामजद सदस्यों व शिक्षक प्रतिनिधियों को प्रबन्ध में सम्मिलित करने का घोर विरोध किया। परिणामस्वरूप सरकार झुक गई और यह वांछनीय सुधार न हो सका। प्रबन्धकों ने समझा कि सरकार को इतने आदमी नामजद करने को मिल ही नहीं सकते और न सरकार इस स्थिति में ही है कि प्रबन्धकों की धमकियों का उत्तर शिक्षा को अपने प्रत्यक्ष नियन्त्रण में लेकर करे। अतएव सन्

1. Regional Arbitration Board.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१९५३ में नरेन्द्रदेव समिति ने पुनः प्रबन्ध के प्रश्न को लिया और सिफारिश की कि ३ सरकारी नामजद सदस्यों की बात छोड़ दी जाय। केवल प्रधानाध्यापक तथा सीनियोरिटी के आधार पर एक वर्ष के लिये एक शिक्षक प्रतिनिधि को प्रबन्ध-समिति में सम्मिलित कर लिया जाय। विभिन्न जातियों, धार्मिक संस्थाओं अथवा ट्रस्टों के द्वारा संचालित स्कूलों के प्रबन्ध के सम्बन्ध में कमेटी ने सिफारिश की कि अन्य जातियों व धर्म के व्यक्तियों की तथा प्रधानाध्यापक व एक शिक्षक-प्रतिनिधि को इन समितियों में सदस्यता का अधिकार दिया जाना चाहिये। प्रत्येक समिति में १२ से अधिक सदस्य न हों। चुनाव तीन वर्ष से पूर्व न हो। शिक्षकों की नियुक्ति ५ विशेषज्ञों की समिति द्वारा प्रधानाध्यापक की सिफारिश के आधार पर होनी चाहिये। शिक्षकों की सेवा-दशाओं में सुधार करने के लिए भी नरेन्द्रदेव समिति ने सुझाव दिये हैं। इसी प्रकार मुदलियार कमीशन ने भी वैयक्तिक प्रबन्ध के सुधार के लिए व्यावहारिक सुझाव दिये हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इन सिफारिशों के होते हुए भी इस स्थिति में सराहनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। यहाँ यह बात स्पष्टतः कह देनी होगी कि यदि माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रबन्ध व नियन्त्रण की समस्या को अविलम्ब सुलझाकर सुधार नहीं किया गया, तो शिक्षक की दशा और भी अधिक बिगड़ जायगी और उसके बिगड़ने के साथ ही साथ शिक्षा का स्तर जो देश में तेजी से गिर रहा है, और भी अधिक गिर जायगा। शिक्षक विद्यार्थी तथा उसकी शिक्षा, उसके चरित्र-निर्माण एवं उसके अनुशासन के विषय में और भी अधिक उदासीन एवं समस्याओं को सुलझाने के लिये अयोग्य होता जायगा। न तो वह तथाकथित राष्ट्र-निर्माणक रहेगा और न समाज का मानसिक नेता; और फिर न उसमें समाज के नेता उत्पन्न करने की क्षमता ही रहेगी। हमारे देश में माध्यमिक शिक्षकों में घोर असन्तोष है। वे शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की माँग तेजी से कर रहे हैं। केरल राज्य में तो साम्यवादी सरकार ने प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा का राष्ट्रीयकरण करने के लिये एक विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत भी कर दिया है। इस राष्ट्रीयकरण से जहाँ वैयक्तिक प्रबन्ध सम्बन्धी दोषों का उन्मूलन होगा और शिक्षकों की दशा में आशातीत सुधार होगा, वहाँ एक बड़ी हानि यह होगी कि इससे शिक्षा में राज्य का हस्तक्षेप बढ़ जायगा और यह स्थिति भी आ सकती है कि रूस व चीन की भाँति सरकार शिक्षा संस्थाओं को अपने राजनैतिक दर्शन के प्रचार के लिये केन्द्र बनाले। इससे भारत के नवोदित जनतन्त्र को बहुत आघात पहुँच सकता है। समाज के विचारों के नियन्त्रण करने के लिये भी इस सुधार का प्रयोग होने का डर है। यदि हम चाहते हैं कि भारत में जनतंत्र के लिये शिक्षा दी जाय तो शिक्षा के नियंत्रण व प्रबन्ध में भी हमें जनतंत्रीय भावनाओं का समावेश करके उनमें संरचनात्मक परिवर्तन करने

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

होंगे। विभिन्न प्रकार की प्रबन्ध-संस्थाओं में समन्वय स्थापित करना भी एक बड़ा सुधार होगा।

विश्वविद्यालय के प्रबन्ध व नियन्त्रण की समस्या भी इतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि माध्यमिक शिक्षा की। इस क्षेत्र में तो विश्वविद्यालयों की स्वायत्तसत्ता के प्रश्न को लेकर देश में बड़ा विवाद खड़ा हो गया है। कुछ लोगों की धारणा है कि विश्वविद्यालय अपने प्रबन्ध, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण के विषय मे पूर्णत: स्वतन्त्र होने चाहिये और उन पर कोई वाह्य दबाव नहीं होना चाहिये। दूसरा मत इस सम्बन्ध में यह है कि विश्वविद्यालयों का अस्तित्व समाजहित के लिये है। जनता के धन से सरकार उन्हें वित्तीय सहायता देती है। अत: नियोजन के इस युग में कुछ सीमा तक कर-दाताओं के प्रति उत्तरदायी सरकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह यह भी देखे कि शिक्षा अनुदान का उपयोग किस प्रकार किया जा रहा है तथा विश्वविद्यालय के विभिन्न कार्य अधिक से अधिक सामाजिक हित में, उचित दिशा में एवं न्यायपूर्वक हो रहे हैं अथवा नहीं। ऐसी स्थिति में राजकीय हस्तक्षेप अनिवार्य हो जाता है। यहाँ हम इतना कहना ही आवश्यक समझेंगे कि विश्वविद्यालयों को दलगत् राजनीति से दूर रखने तथा उन्हें ज्ञान की खोज करने के लिये उपयुक्त बनाने के लिये उन्हें अधिकाधिक स्वायत्तता प्रदान की जाय। जिस बात को हम राजकीय हस्तक्षेप कहने लगे हैं वह 'हस्तक्षेप' न होकर 'सहयोग' होना चाहिये। आज के युग में देश के सुनियोजित विकास के लिये राजकीय सहयोग आवश्यक है। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं होना चाहिये कि कुछ षड्यंत्रकारी राजनीतिज्ञ विश्वविद्यालयों में प्रवेश करके उनकी नीतियों का निर्धारण करने लगें और उन्हें कलुषित करदें। यदि विश्वविद्यालयों को विभिन्न राजनैतिक दलों का अखाड़ा बना दिया गया तो उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण हो जायगा और वे उच्च शिक्षा के स्थान पर भ्रष्टाचार के केन्द्र बन जायेंगे। वाह्य नियंत्रण के द्वारा हम विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार नहीं कर सकते।[1] सर्वोत्तम विधि तो यह

---

1. *Cf.* "But we do not believe that more control from outside is the way to achieve reform. On the contrary a grest many of the present evils arise from the fact that most of our universities have no real autonomy whatever, and have proved incapable of resisting pressure from outside. University *should* be sensitive to enlightened public opinion; they should *never* themselves be bullied or bribed into actions that they know to be educationally unsound or, worse still, motivated by nepotism, faction and corruption."—*Report of the University Education Commission, p. 405.*

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

है कि विश्वविद्यालय का एक श्रेष्ठ विधान बना दिया जाय, जिसमें बुद्धिमत्तापूर्वक चुने हुए वाह्य-सदस्यों को भी प्रबन्ध में सम्मिलित करने की व्यवस्था करा जाय और इसके उपरान्त विश्वविद्यालयों को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय। वित्त की समस्या का हल अनुदान कमीशन पर छोड़ दिया जाय जिसमें अखिल भारतीय प्रसिद्धि के विद्वान व निष्पक्ष लोगों को रखा जाय जो वित्त तथा शिक्षा समस्याओं के विशेषज्ञ हों।

उच्च-शिक्षा के क्षेत्र में नियन्त्रण व प्रबन्ध की समस्या की दुरुहता का अनुभव इतना स्थानीय शिक्षण-विश्वविद्यालयों में नहीं होता जितना कि उनसे सम्बन्धित डिग्री या पोस्ट-डिग्री कालेजों में होता है। ये कालेज माध्यमिक शिक्षालयों की भाँति बहुधा वैयक्तिक अथवा धार्मिक प्रबन्ध संस्थाओं के अन्तर्गत चलते हैं और प्राय: इनमें वे ही सब दोष विद्यमान हैं जो माध्यमिक शिक्षा क्षेत्र में हैं। इनमें से कुछ कालेज तो पहिले हाईस्कूल अथवा इंटर कालेज ही थे और अब डिग्री कालेज हो गये हैं। उनका प्रबन्ध सम्बन्धी विधान प्राय: पूर्ववत् ही है। इन कालेजों के प्रबन्धकों में कुछ के उद्देश्य केवल लोकोपकार की भावना व शिक्षा प्रसार है, जैसा कि बहुत से ईसाई कालेजों, रामकृष्ण मिशन तथा दक्षिण एजूकेशन सोसायटी द्वारा संचालित कालेजों में है। किन्तु ऐसे प्रबन्धक भी हैं जिनका उद्देश्य फीस के द्वारा अपनी निजी आय करना है। ये प्रबन्धक शिक्षकों को अल्प वेतन देते हैं, पुस्तकालय, परीक्षण-शाला तथा आवश्यक सज्जा की कोई भी व्यवस्था न करके रुपया लाभ में कमा लेते हैं। ऐसे कालेजों के प्रबन्ध सुधार के लिये विश्वविद्यालयों को कड़े नियम बनाने चाहिये।

इन वैयक्तिक कालेजों के अतिरिक्त कुछ गवर्नमेंएट कालेज भी हैं जहाँ सरकारी नियन्त्रण के कारण कार्य-दशायें अच्छी हैं। परंतु इन सरकारी कालेजों की पृथक् कोई आवश्यकता नहीं रह गई है। जैसे उत्तर प्रदेश में सरकार ने नैनीताल व बनारस के पास ज्ञानपुर में दो कालेज शिक्षा विभाग के अन्तर्गत स्थापित किये हैं। इन कालेजों में कोई ऐसी विशेष शिक्षा नहीं दी जाती जो कि अन्य डिग्री कालेजों अथवा विश्वविद्यालयों में उपलब्ध न हो। जो सरकार विश्वविद्यालयों को आर्थिक अनुदान देकर चलाती है वही इन कालेजों पर भी धन व्यय करती है। अतीत में तो ये कालेज विदेशी शासन के के प्रमुख अंग थे और विश्वविद्यालयों से प्रतिस्पर्धा रखते थे। पर आज के स्वतन्त्र भारत में इनकी कोई आवश्यकता नहीं। अत: इन कालेजों को किसी विश्वविद्यालय का अंग बनाकर उन्हें उसके प्रशासन के अन्तर्गत ले लेना चाहिये। इतना होने पर ही देश में उच्च शिक्षा के नियन्त्रण व प्रबन्ध की समस्या का निराकरण हो सकेगा।

(५) अनुशासन की समस्या :

भारतीय विद्यार्थियों के ऊपर आज एक बड़ा अभियोग लगाया जा रहा है कि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उनमें अनुशासनहीनता बढ़ती जा रही है और वे अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर ऐसे कार्यों में हस्तक्षेप करके लगते हैं जिनसे उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं। विद्यार्थियों के समाज में कोई भी हलचल होने पर चारों दिशाओं से यही आवाजें आने लगती हैं कि विद्यार्थी अनुशासनहीन हो उठे। न केवल शिक्षक व शिक्षा-शास्त्री ही यह अभियोग लगाते हैं, अपितु राष्ट्रीय नेताओं एवं उच्च सरकारी अधिकारियों को भी यह शिकायत करते हुए सुना जाता है।

प्राथमिक बालकों में अनुशासन की कोई भी समस्या नहीं है। माध्यमिक विद्यालयों तक आते-आते बालक किशोर हो जाते हैं। किशोरावस्था अत्यन्त ही नाजुक समय होता है, जब किशोरों में अतिरिक्त स्फूर्ति, साहसिक कार्यों के लिये उत्कण्ठा एवं नियमों के प्रति विद्रोह की भावना होती है। ऐसे किशोर साधारण सी प्रतिकूल अवस्थाओं के प्रस्तुत होने पर अथवा कुछ लोगों के भड़काने पर ही क्षुब्ध हो उठते हैं। विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी अधिक समझदार होते हैं और उन पर वातावरण में होने वाले आर्थिक व राजनैनिक परिवर्तनों की तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है। वे कुछ सीमा तक इस योग्य भी हो जाते हैं कि विभिन्न प्रश्नों पर विद्यार्थी समाज को संगठित कर सकें और सामूहिक रूप से अपनी आन्तरिक भावनाओं का प्रकटीकरण कर सकें। अधिकांश उनकी यह शक्ति किसी अन्य रचनात्मक कार्यक्रम के अभाव में विध्वंसात्मक कार्यों में प्रकट हो उठती है।

माध्यमिक शिक्षा कमीशन ने अनुशासनहीनता के दो स्वरूप बतलाये हैं :— वैयक्तिक तथा सामूहिक। वैयक्तिक स्तर पर सामान्यतः भारतीय विद्यार्थी अनुशासनहीन नहीं होता। वह अपने बड़ों तथा गुरु वर्ग के प्रति भक्ति तथा श्रद्धा रखता है। नियमों व विनय में उसका विश्वास होता है। इस दृष्टि से वह आज भी प्राचीन भारत की मर्यादाओं का अधिकांश में पालन करता है। केवल समूह में आकर ही उसकी मौलिक विनय प्रवृत्ति क्षुब्ध हो उठती है और समूह सागर की तरङ्गों पर वह असहाय होकर उतरने लगता है। कुछ अंशों में यह भी कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता होने का प्रचार वास्तविकता से अधिक किया गया है। बहुत से तथाकथित अनुशासनहीन कार्य करने का वह प्रयास नहीं करता, यदि उसके मनोविज्ञान अथवा उसकी समस्याओं को दूरदर्शिता तथा सहानुभूतिपूर्वक हल करने की चेष्टा की गई होती। अनुशासनहीनता भी व्यक्तित्व का एक स्वरूप है यद्यपि कुछ सीमा तक वह एक अस्वाभाविक व विकृत स्वरूप है।

भारत में अनुशासन की समस्या का एक संक्षिप्त इतिहास है। विभिन्न राजनैतिक कारणों से अतीत में विद्यार्थियों का उपयोग स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये किया गया। इङ्-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ताल व तोड़फोड़ की विध्वंसात्मक भावना का बीजारोपण गत ५० वर्षों से किया जा रहा था। आज यद्यपि समय तथा देश की अन्य समस्याओं का रूप बदल गया है, किन्तु जो अस्त्र विद्यार्थी को उस समय मिला, आज उसने अधिक बलपूर्वक उसे अपनी भुजाओं में ग्रहण कर लिया है और इसका प्रयोग सर्वप्रथम वह उन्हीं पर करता है जिन्होंने उसे इस अस्त्र का प्रयोग किसी समय सिखाया था। यदि वास्तविकता की पृष्ठभूमि के आधार पर देखा जाय तो प्रतीत होगा कि अन्य देशों में भी यह समस्या उग्रतर होती जा रही है। समाज में क्षोभ आज विश्वव्यापी है। प्राचीन आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक ढाँचे में विश्व में तेजी के साथ परिवर्तन हो रहे हैं। उन बदलती हुई स्थितियों ने नवयुवक समाज में असन्तोष की भावना को जाग्रत कर दिया है। वह इन परिवर्तनों के अनुरूप अपने को शीघ्र नहीं ढाल पाता। फलतः वही असन्तोष और असमर्थता किसी संगठित क्षोभ के रूप में फूट पड़ती है। ये विघटन की प्रवृत्तियाँ रचनात्मक सृजन न करके देश व समाज में एक अराजकता व विप्लव को जन्म देती हैं। कुछ अराजकतावादी राजनीतिज्ञ विद्यार्थियों की इन दुर्बलताओं से लाभ उठाते हैं और उन्हें संगठित अनुशासनहीनता के लिये प्रोत्साहित करते हैं। कुछ लोग तो छोटे-छोटे बालकों को चुनावों तक में प्रयोग करने में नहीं चूकते। विभिन्न राष्ट्रीय व स्थानीय चुनावों के अवसर पर इस प्रवृत्ति का नग्न रूप देखने को मिलता है।

इसके अतिरिक्त कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या के आकार में वृद्धि, शिक्षकों से व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव, भारी व अनावश्यक पाठ्यक्रम, परीक्षा-प्रणाली, शिक्षा की उद्देश्यहीनता, खेल-कूद तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अभाव और अन्त में शिक्षकों में अन्यमनस्कता व कर्त्तव्य पालन की भावना का उत्तरोत्तर ह्रास इत्यादि वे प्रमुख कारण हैं जिनकी वजह से भारतीय विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता बढ़ती जा रही है। जब वे देखते हैं कि उनके आस-पास के समाज में पक्षपात, अन्याय व भ्रष्टाचार फैला है और उनसे कहा जाता है कि वे चरित्रवान् बनें तो उनका कोमल मन विद्रोह कर उठता है। वे अपनी बुद्धि के अनुसार जिस कार्य को अन्यायपूर्ण समझते हैं उसी का विरोध करने के लिये कटिबद्ध हो जाते हैं। जब वे देखते हैं कि योग्यता तथा नैतिकता में उनसे भी गिरा हुआ व्यक्ति राजनीति की सीढ़ी पर चढ़कर अधिकार व सुख-विलासों का उन्मुक्त भोग कर रहा है तो उनकी भी जिज्ञासा राजनीति में आने को हो उठती है। अपनी इस क्षुब्ध, अपरिपक्व तथा अस्थिर मनोदशा में वे विभिन्न राजनैतिक धूर्तों का शिकार हो जाते हैं, जो उन्हें अनुशासनहीनता के लिए उभाड़ते हैं। यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सभी विषमताओं की अपेक्षाकृत यदि शिक्षक सच्चे हृदय से चाहे और उसके लिए पर्याप्त प्रयास करे तो वह विद्यार्थियों को अनुशासनहीनता से बचा सकता है। इसके

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लिये शिक्षक के आर्थिक व सामाजिक स्तर में सुधार करना होगा। असन्तुष्ट व क्षुब्ध शिक्षक अपने असन्तोष व क्षोभ को भावी पीढ़ियों में चुपचाप हस्तान्तरित कर सकता है। अत: देश के नवयुवकों के मस्तिष्कों से विद्रोह व अनुशासनहीनता का उन्मूलन करने से पूर्व शिक्षक के मस्तिष्क से उन्हें मिटाना होगा। इसके अरिक्त शिक्षकों में भी अब राजनीतिज्ञों की संख्या बढ़ती जाती है। ये शिक्षक अपने राजनैतिक विचारों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संचरित करते रहते हैं जिससे विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता की भावना का पोषण होता है। कुछ शिक्षक अपने अनैतिक व अन्यायपूर्ण व्यवहार से भी अनुशासनहीनता की वृद्धि करते हैं।

उपर्युक्त कारणों के निवारण करने से अनुशासन की समस्या का हल स्वयमेव हो जायगा। इतना अवश्य है कि हम निन्दा व दण्ड के द्वारा नहीं, वरन् सराहना व सहानुभूति के द्वारा इस समस्या का अधिक स्थायी हल निकाल सकते हैं। यदि किसी अवसर पर विद्यार्थी संगठित हड़ताल करते हैं अथवा किसी अन्य प्रकार से अपना असन्तोष प्रकट करते हैं तो यह आवश्यक है कि अधिकारीगण धमकियों, दण्ड अथवा हठ के काम न लेकर विद्यार्थियों की माँग के औचित्य को जानने की चेष्टा करें; और यदि उनकी माँगें उचित प्रतीत होती हैं तो उन्हें पूरा करें अथवा पूरा न कर सकने की अपनी वास्तविक कठिनाई को तर्क-पूर्वक उन्हें समझावें। मुसीबत तो वहाँ पैदा होती है जहाँ हड़ताल करना अथवा उसे तुड़वा देना क्रमश: विद्यार्थियों व अधिकारियों की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता है। भारतीय विद्यार्थी में ऐसा कोई मौलिक नैतिक दोष नहीं है कि सहानुभूतिपूर्वक व सच्चे हृदय से समझाने बुझाने पर भी वह अनुशासनहीनता का प्रदर्शन करें। अत: जब तक हम विद्यार्थियों में से अनुशासनहीनता सम्बन्धी विचारों का उन्मूलन व परिष्कार नहीं कर देते, तब तक न तो कोई भी शिक्षा सुधार ही सम्भव है और न नये भारत का ही निर्माण किया जा सकता है।

(६) शिक्षा के माध्यम की समस्या :

भारत में शिक्षा का माध्यम १९वीं शताब्दि के प्रारम्भ से ही शिक्षा-शास्त्रियों के विवाद का कारण बना हुआ है। शताब्दि के प्रारम्भ में ही अँग्रेजी शासकों के मस्तिष्क में यह प्रश्न उठा था कि शिक्षा का माध्यम अरबी व संस्कृत प्राच्य भाषाएँ रहें, या देश की प्रान्तीय भाषाएँ अथवा अंग्रेजी। इस विवाद का विस्तृत विवरण इस पुस्तक में अन्यत्र दिया जा चुका है। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि सन् १८३५ में लार्ड मैकाले व विलियम बैंटिङ्क ने अँग्रेजी भाषा को माध्यम स्वीकार करके लगभग १०० वर्ष तक के लिये इस विवाद को शान्त कर दिया था। इस बीच में माध्यमिक व उच्च शिक्षा के लिये अँग्रेजी ही अनिवार्य माध्यम हो गई और देश के अधिकांश

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शिक्षित वर्ग उसमें अपनी योग्यता व पाण्डित्य का प्रमाण देने लगे। २०वीं शताब्दी में प्रथम युद्ध की समाप्ति पर देश में राष्ट्रीयता की लहर बड़े वेग से उठी। उस समय यह अनुभव किया जाने लगा कि हमें अपनी शिक्षा पद्धति को भी राष्ट्रीय स्वरूप देना होगा। उसके बाद की घटनाओं ने देश में हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं के महत्व को स्वीकार करने के लिये लोगों को प्रोत्साहित किया। इस शताब्दि के तीसरे दशक में यह विवाद पुनः जोर पकड़ गया कि राष्ट्रभाषा क्या हो, उसकी लिपि क्या हो और देश में शिक्षा का माध्यम क्या रखा जाय। देश की स्वतन्त्रता के उपरान्त इस ओर क्रियात्मक कदम उठाये गये। विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन तथा माध्यमिक शिक्षा कमीशन एवं केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति ने इस प्रश्न का वैज्ञानिक अध्ययन किया और आवश्यक सुझाव प्रस्तुत किये गये। सन् १९५६ में राज्य-सीमा निर्धारण कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसके अनुसार भारत में विभिन्न राज्यों की सीमा का निर्धारण किया गया। इस सम्बन्ध में देश में बड़े मतभेदों ने जन्म लिया, प्रमुखतः बम्बई-गुजरात विवाद, बङ्गाल-बिहार विवाद तथा दक्षिण में तामिलनाद व अन्य निकटवर्ती क्षेत्रों में सीमा-सम्बन्धी मतभेद पर्याप्त उग्र रहे। इस सम्पूर्ण पृष्ठभूमि के आधार पर भारत सरकार ने यह आवश्यक समझा कि वह अखिल भारतीय स्तर का एक भाषा-कमीशन भी नियुक्त करे। निदान इसकी नियुक्ति करदी गई। इस कमीशन ने शिक्षा के माध्यम के विषय में व्यावहारिक व वैज्ञानिक सुझाव प्रस्तुत किये और अगस्त् १९५७ में अपनी रिपोर्ट में तत्सम्बन्धी सुझावों को देश के समक्ष रखा।

अब माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में तो अँग्रेजी का स्थान क्षेत्रीय भाषाओं ने ले लिया है। उच्च शिक्षा क्षेत्र में अंग्रेजी के स्थान पर क्रमशः इन क्षेत्रीय भाषाओं तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास हो रहा है। इस विषय में राधाकृष्णन् कमीशन ने सिफारिश की है कि शिक्षा का माध्यम संस्कृत को छोड़कर किसी भारतीय भाषा को ही बनाना चाहिये। माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर विद्यार्थी को तीन भाषाओं से परिचित होना चाहिए, क्षेत्रीय भाषा, राष्ट्रभाषा तथा अँग्रेजी। उच्च शिक्षा क्षेत्रीय भाषाओं तथा देवनागरी लिपि में राष्ट्रभाषा के माध्यम से ही प्रदान करनी चाहिये। इस कमीशन के विचार से हाई स्कूल तथा विश्वविद्यालय में अँग्रेजी का अध्ययन इसलिए किया जाना चाहिए जिससे कि विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली ज्ञान-वृद्धि से हमारा सम्पर्क बना रहे। राष्ट्रभाषा तथा क्षेत्रीय भाषाओं के शीघ्र विकास के लिए सिफारिश की कि वैज्ञानिकों तथा विशेषज्ञों का एक 'बोर्ड' बनाया जाय, जोकि सम्पूर्ण देश के लिये वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करे तथा अखिल भारतीय महत्त्व का साहित्य व पाठ्य-पुस्तकें तैयार करे। अन्य राज्यों को सरकारों को चाहिये कि माध्यमिक तथा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उच्च शिक्षा संस्थाओं में हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य कर दें। कमीशन की भाषा सम्बन्धी सभी सिफारिशों को केन्द्रीय सलाहकार परिषद् ने स्वीकार कर लिया और १९५० में भारतीय संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को भारतीय भाषाएँ मान लिया गया। संविधान में यह व्यवस्था रखी गई कि १५ वर्ष में अर्थात् सन् १९६५ तक सभी सरकारी कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी में होने लगेगा और शिक्षा का माध्यम हिन्दी बना दिया जायगा।

अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् ने जिसकी स्थापना सितम्बर १९५५ में की गई थी अपनी द्वितीय वार्षिक बैठक में जनवरी १९५६ में यह निर्णय किया था कि माध्यमिक स्कूलों के छात्रों को मातृभाषा पढ़ने का अवसर या तो पृथक् रूप से अथवा प्रारम्भिक भाषा के साथ में मिलना चाहिये। इसके साथ अँग्रेजी व हिन्दी भी पढ़ाई जायगी। इस प्रकार ३ भाषाओं की शिक्षा दी जायगी। वास्तव में माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में मुदलियार कमीशन ने तो दो भाषाओं के सीखने की शिफारिश की थी; एक मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा और दूसरी हिन्दी (उन विद्यालयों के लिये जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है) अथवा अँग्रेजी; अथवा हिन्दी के अतिरिक्त कोई अन्य आधुनिक भाषा; अथवा अँग्रेजी के अतिरिक्त कोई अन्य आधुनिक विदेशी भाषा अथवा कोई प्राचीन भाषा। इस सिफारिश का परिणाम यह होता कि अहिन्दी भाषा वाले क्षेत्रों के विद्यार्थी यदि हिन्दी को छोड़ते तो केवल अँग्रेजी ही पढ़ पाते अथवा अँग्रेजी को छोड़ते तो हिन्दी ही पढ़ पाते। केवल हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में विद्यार्थी दोनों भाषाओं के पढ़ने का अवसर पाते।

माध्यमिक परिषद् ने मुदलियार कमीशन की इन सिफारिशों को दोषपूर्ण समझ कर सिफारिश की कि अँग्रेजी तथा हिन्दी दोनों को ही प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। अँग्रेजी को इसलिए कि उसमें वर्तमान विश्व-साहित्य व दर्शन के अध्ययन की क्षमता है और हिन्दी को इसलिए कि वह भारत की राष्ट्रभाषा घोषित की गई है। हिन्दी भाषी प्रान्तों के विद्यार्थियों को अँग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य कोई आधुनिक भाषा; और अहिन्दी भाषी प्रान्तों में मातृभाषा के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य करना होगा। इस प्रकार भारत के सभी भागों में माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को ३ भाषायें पढ़नी होंगी।

सरकारी भाषा कमीशन : जून १९५५ में श्री बी० जी० खेर की अध्यक्षता में भारत सरकार ने देश की भाषा सम्बन्धी समस्या का अध्ययन करने के लिये एक भाषा कमीशन की नियुक्ति की थी। इसमें २१ स्थायी सदस्य तथा २० ऐसे अन्य सदस्य

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

थे जो भारतीय संविधान की ८वीं सारिणी में वर्णित भारत की अन्य सभी भाषाओं का प्रतिनिधित्व करते थे। कमीशन ने लगभग १ वर्ष तक जाँच करने के उपरान्त २७० पृष्ठों में ६ अगस्त १९५६ को राष्ट्रपति के सम्मुख अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जोकि १२ अगस्त १९५७ को संसद के समक्ष रखी गई।

शिक्षा क्षेत्र में भाषा की समस्या के सम्बन्ध में इस कमीशन ने सिफारिश की है कि माध्यमिक स्कूलों में अंग्रेजी भाषा को प्रमुखत: एक "बोध भाषा"[1] के रूप में पढ़ाया जाना चाहिये न कि "साहित्यिक भाषा"[2] के रूप में। सामान्यत: हिन्दी को प्राथमिक स्तर के उपरान्त प्रारम्भ करके हाईस्कूल के अन्त तक पढ़ाया जा सकता है। सम्पूर्ण देश के उन भागों में, जहाँ हिन्दी मातृभाषा नहीं है, वहाँ इसका अध्ययन माध्यमिक स्कूलों में अनिवार्य किया जा सकता है। यह अनिवार्यता कब प्रारम्भ की जाय इसका निर्णय राज्य सरकारों पर छोड़ देना चाहिये। हिन्दी भाषी प्रान्तों में भारत की अन्य भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहन अवश्य मिलना चाहिये; किन्तु कमीशन का मत इस सम्बन्ध में यह है कि इन क्षेत्रों में हिन्दी के अतिरिक्त कोई भाषा या दक्षिणी भारत की भाषा को इस उद्देश्य से अनिवार्य नहीं करना है क्योंकि अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी अनिवार्य कर दी गई है।

इसी प्रकार विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में कमीशन ने सिफारिश की है कि सभी विश्वविद्यालयों को चाहिये कि वे परीक्षायें हिन्दी के माध्यम में लें। जो सम्बन्धक विश्वविद्यालय हैं[3] उन्हे चाहिये कि अपने अन्तर्गत सभी सम्बन्धित विद्यालयों में हिन्दी का माध्यम अनिवार्य कर दें।

वैज्ञानिक तथा टेक्नीकल शिक्षा के विषय में, जहाँ देश के विभिन्न भागों से विभिन्न भाषायें बोलने वाले छात्र आते हैं, हिन्दी का ही सर्वमान्य माध्यम स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु जहाँ सभी विद्यार्थी पूर्णत: किसी एक भाषा के क्षेत्र से ही आये हों, वहाँ उस क्षेत्र की स्थानीय भाषा शिक्षा का माध्यम होगी।

सार्वजनिक प्रतियोगी परीक्षाओं[4] के सम्बन्ध में पर्याप्त पूर्व सूचना के उपरान्त हिन्दी को एक वैकल्पिक माध्यम के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। कमीशन के मतानुसार क्षेत्रीय भाषायें भी जब आवश्यक हो तो परीक्षा का माध्यम बनाई जा सकती हैं, यदि हिन्दी के समान वे भी विश्वविद्यालय में शिक्षण का माध्यम बन चुकी हों।

1. Language of Comprehension.
2. Literary Language.
3. Affiliating Universities.
4. Competitive Examinations.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जब तक आवश्यक समझा जाय इन परीक्षाओं के लिये अंग्रेजी भी एक वैयक्तिक माध्यम के रूप में जारी रह सकती है।

अखिल भारतीय महत्त्व की सेवाओं के लिये परीक्षार्थियों की जाँच करने के लिये अंग्रेजी भाषा के सम्बन्ध में एक विशेष प्रश्न-पत्र दिया जा सकता है चाहे परीक्षा का माध्यम भले ही कोई भारतीय भाषा हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस सरकारी भाषा कमीशन ने भाषा तथा शिक्षा के माध्यम की समस्या का बड़ा विषद् है वास्तविक अध्ययन करके अत्यन्त व्यावहारिक सुझाव दिये हैं। अब तक नियुक्त की जाने वाली सभी समितियों अथवा कमीशनों की सिफारिशों की तुलना में भाषा कमीशन के सुझाव अधिक प्रगतिशील व उपयोगी हैं। इन सुझावों ने माध्यम की समस्या को हल कर दिया है। परन्तु सच्चा हल तो तभी होगा जबकि इन सिफारिशों को कार्यान्वित किया जायगा।

(७) अशक्तों[1] की शिक्षा :

दुर्भाग्य से प्रत्येक देश में ऐसे बालक होते हैं जो शारीरिक, मानसिक अथवा सामाजिक दृष्टि से अशक्त, विकलांग अथवा पिछड़े हुए होते हैं जैसे मूक, बधिर, अन्धे अंगभंग, दुर्बल-मस्तिष्क तथा अन्य संवेगात्मक रोगों से पीड़ित इत्यादि। भारत में भी ऐसे अशक्त बालक व प्रौढ़ भारी संख्या में हैं। पाश्चात्य देशों में ऐसे बालकों की विशेष शिक्षा के लिये ऐसे विद्यालय खोले गये हैं जहाँ वे अपनी अशक्तता के अनुकूल शिक्षा पाते हैं। भारत में भी ऐसे अभागे लोगों की शिक्षा की व्यवस्था होना आवश्यक है।

मानसिक दृष्टि से अशक्त बालक वे होते हैं जिनकी बुद्धि लब्धि[2] ५५ से भी नीची हो। भारत में स्कूल जाने वाले बालकों में से लगभग ३३% बालक मानसिक दृष्टि से अशक्त होते हैं। इस अशक्तता के प्रमुख कारण नैसर्गिक व मानसिक दौर्बल्य, निर्धनता, गलत शिक्षा तथा असंतुलित आहार इत्यादि होते हैं। इनके अतिरिक्त चिन्ता, दु:ख, मानसिक संघर्ष, शारीरिक दौर्बल्य, सदा बीमार रहना अथवा कोई प्रमुख शारीरिक दोष, घर का अनुपयुक्त वातावरण एवं माँ-बाप का क्रूर व असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार भी बालक की कोमल मानसिक शक्तियों पर बुरा प्रभाव डालते हैं, जिससे वह मानसिक दृष्टि से पिछड़ जाता है। इसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से अशक्त बालक वे होते हैं जिनकी कोई विशेष इन्द्रिय आंशिक रूप से अथवा पूरी तरह बेकार हो गई हो, जैसे अन्धे, गूंगे, बहरे अथवा किसी विशेष रोग जैसे क्षय अथवा हृदय रोग से

1. Education of the handicapped.
2. Intelligence Quotient (I. Q.).

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पीड़ित हों अथवा अन्य प्रकार से विकलांग हों। सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए बालक वे होते हैं जो निर्धनता, भूख, बुरी संगत, शिक्षा के अवसरों के अभाव तथा अन्य सामाजिक बुराई के कारण बाल-अपराधी[1] हो गये हों।

हमारे देश में ऐसे बालकों की शिक्षा अथवा चिकित्सा के अवसरों की कमी के कारण वे जीवन भर एक करुणाजनक तथा पशुवत् जीवन व्यतीत करते हैं और इस प्रकार जनसंख्या का एक पर्याप्त भाग जोकि अन्यथा देश व समाज का एक स्वस्थ व उत्पादक अंग हो सकता था, न केवल स्वयं ही दुखी व निराद्रित जीवन व्यतीत करता है, अपितु वह समाज के ऊपर एक अनुत्पादक भार के रूप में जीवित रहता है।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति से पूर्व देश में अशक्तों की शिक्षा की व्यवस्था नागण्य थी। अंधों के लिए कलकत्ते में दो स्कूल, बिहार में दो, बम्बई में चार, गंगापुर में एक, मद्रास में नौ, पंजाब में दो तथा उत्तर प्रदेश में छः थे। इन स्कूलों में अंधे बालकों को लिखना, पढ़ना तथा संगीत एवं कताई-बुनाई व टोकरी बनाना, सुतली बटना इत्यादि कुछ कार्य सिखाये जाते थे। मूक-बधिरों के लिये आसाम राज्य में एक स्कूल था जहाँ होठों से पढ़ना व लिखना एवं दर्जीगीरी सिखाई जाती थी। बंगाल में ऐसे कई स्कूल विभिन्न नगरों में ईसाई धर्मप्रचारकों एवं अन्य धार्मिक समाज-सुधारक संस्थाओं अथवा नगर-पालिकाओं ने खोल रखे थे, जिनमें ८ या १० वर्ष तक के पाठ्यक्रम में होठों से पढ़ना, सिलाई, गणित, इतिहास, छपाई, बाँस का कार्य तथा बुनाई इत्यादि विषय सम्मिलित थे। कलकत्ता में मूक-बधिरों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये एक विभाग अलग था। इनके अतिरिक्त रांची, पटना, बम्बई, नागपुर, कोइम्बटूर, काराईकुडी, कटक, इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर एवं दिल्ली इत्यादि नगरों में मूक-बधिरों के लिये कुछ स्कूल स्थापित थे, जहाँ सीमित संख्या में बालकों की चिकित्सा तथा शिक्षण की व्यवस्था थी।

इसी प्रकार दो चार स्कूल क्षय-पीड़ित एवं कोढ़ी बालकों के लिये तथा मानसिक दौर्बल्य से पीड़ित व बाल-अपराधी बालकों के लिये देश में स्थित थे। बाल-अपराधियों के सुधार के लिये तथा उन्हें जीवन में किसी उद्यम के योग्य बनाने के लिये मद्रास, बंगाल, पंजाब, बिहार तथा बम्बई प्रान्तों में लगभग १३ स्कूल थे।

सन् १९४१ में अंधों की शिक्षा के लिये एक 'ब्रैल संहिता' तैयार की गई थी जिसके अनुसार भारत की सभी प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं में ब्रैल लिपि तैयार करने की व्यवस्था की गई।

भारत की स्वतन्त्रता के उपरान्त केन्द्रीय तथा राज्य शिक्षा मंत्रालयों का ध्यान

1. **Juvenile delinquent.**

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इस भीषण समस्या की ओर गया और अशक्त बालकों की शिक्षा के लिये अधिकाधिक व्यवस्था करने पर विचार किया गया। सन् १९४९ में ब्रेल लिपि को देश में अंधे-बालकों के सभी स्कूलों में ग्रहण कर लिया गया। देहरादून में भारत सरकार ने सभी प्रकार के अंधों को शिक्षा के लिये एक विशेष स्कूल खोला। आगामी वर्षों में इस स्कूल का पर्याप्त विकास किया गया। नई दिल्ली में जो लेडी नोयस स्कूल मूक-बधिरों के लिये था सरकार ने उसे अपने अन्तर्गत लेकर इसका पर्याप्त विकास किया। सन् १९५१ में यूनेस्को के तत्वावधान में 'भारती ब्रैल' नामक लिपि का विकास किया गया। इसके लिये भारत सरकार ने केन्द्रीय ब्रैल प्रिंटिंग प्रेस भी स्थापित कर दिया है।

मानसिक रूप से पिछड़े बालकों के लिये पश्चिमी बंगाल में स्थित बोधना (झारग्राम) स्कूल तथा बाल-भवन, कुरस्योंग विशेषत उल्लेखनीय हैं। भारत में कुछ ऐसे शिक्षा केन्द्रों की भी आवश्यकता है जहाँ बालक की मनोवैज्ञानिक स्थिति का अध्ययन मूर्त्त व वैज्ञानिक विधि से किया जा सके। उत्तर प्रदेश में ब्यूरो ऑव साइकॉलॉजी, इलाहाबाद, जिसकी राज्य में ५ अन्य शाखाएँ हैं, सन्तोषजनक कार्य कर रहा है।

जो बालक मानसिक अशक्तता से पीड़ित हैं, उनके लिये विशेष स्कूल स्थापित करने चाहिये। कुशाग्र बुद्धि बालकों के साथ उन्हें नहीं पढ़ाना चाहिये। इसी प्रकार मूक-बधिर बालकों को भी शिक्षा-व्यवस्था पृथक् होनी चाहिए। जो बालक विकलांग हैं, उन्हें खुली वायु में रखा जाय, तथा उनकी कुशल चिकित्सकों से चिकित्सा कराने के साथ ही साथ उनके लिए अनुकूल पाठ्यक्रम भी निर्धारित किया जाना चाहिये।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजन के कार्यक्रम के अनुसार भारत सरकार ने अशक्त बालकों की शिक्षा में बहुत रुचि दिखलाई है। इसके लिये प्रतिवर्ष बजट में धन की व्यवस्था की जाती है, छात्रों को वजीफे दिये जाते हैं तथा विशेषज्ञों की सेमिनारें आयोजित की जाती हैं, जहाँ समस्या का विशेष अध्ययन किया जा सके।

१९५५-५६ में अंध प्रौढ़ों के लिये एक शिक्षण केन्द्र खोलने की व्यवस्था की गई थी। इस केन्द्र में देश के सभी भागों के १५० प्रौढ़ प्रवेश पाते हैं। इन्हें किसी उद्यम में प्रशिक्षित करके नौकरी के उपयुक्त बनाया जाता है। इन लोगों को काम दिलाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने इससे सम्बन्धित एक आश्रमी कारखाना भी खोल रखा है।

सन् १९५५ में सरकार ने देहरादून में स्थित केन्द्रीय ब्रैल छापेखाने के विकास के लिये ७० हजार रुपये की व्यवस्था की थी। यह छापाखाना देश में पहिली प्रकार का है। इसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं में अंधों के लिये साहित्य व पाठ्य-पुस्तकों का

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रकाशन होता है। सन् १९५६ में इसमें हिन्दी के अतिरिक्त गुजराती, मराठी और तेलुगु भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित की गई थीं। उसी वर्ष इसी छापेखाने से सम्बन्धित एक ऐसा छोटा कारखाना खोला गया है जहाँ अंधों के लिये विशेष रूप से प्रयोग होने वाले अन्य उपकरण तैयार किये जाते हैं। इस कारखाने में आजकल उभरे अक्षरों वाली स्लेटें तैयार की जाती हैं, जो अंधों तथा उनकी संस्थाओं को बेची जाती हैं। इस छापेखाने तथा कारखाने के भावी विकास के लिए सरकार ने लगभग १½ लाख रुपये का आयोजन किया है।

अंधों को उच्च-व्यावसायिक शिक्षा देने के उद्देश्य से वजीफों की व्यवस्था की गई है जो सभी राज्यों के विद्यार्थियों को दिये जाते हैं। सन् १९५६ में ३३ हजार रुपये वजीफे में दिये गये थे। 'दीपावली' नामक पत्रिका भी ब्रैल लिपि में अंधों के लिये प्रकाशित की जाती है।

'भारती ब्रैल' में पुस्तकों के अनुलेखन के लिये सरकार अनुदान देती है। इस योजना का ध्येय है अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में बसे अंधों के स्कूलों के लिये सहायता देने के लिये प्रादेशिक भाषाओं में पुस्तकों का अनुलेखन। सन् १९५६ में अमरीका की अन्धी लेखिका व अध्यापिका कुमारी डा० हैलेन केलर ने अन्धे बच्चों की शिक्षा सेमीनार का उद्घाटन किया था जिसमें ब्रह्मा, लंका, इण्डोनेशिया, मलाया तथा पाकिस्तान इत्यादि देशों ने भी अपने पर्यवेक्षक भेजे थे।

बहरे बालकों की शिक्षा के लिये भी सरकार व्यवस्था कर रही है उन्हें विशेष रूप से टेक्नीकल शिक्षा देने की योजना है। इसके लिये वजीफे दिये जाते हैं। बहरों के लाभ के लिये 'भारत में बहरे' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का भी प्रकाशन किया जाता है।

बुद्धि-अशक्त बालकों की स्थिति तथा शिक्षा-आवश्यकताओं का अध्ययन करने के लिये सन् १९५६ में एक क्रम-रहित नमूना सर्वेक्षण[1] किया गया था, जिसका उद्देश्य यह जानना था कि कितने ऐसे बुद्धि-अशक्त बालक हैं जिन्हें विशेष स्कूलों में शिक्षा देने की आवश्यकता है।

विकलांग बच्चों की शिक्षा में सुविधायें प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार उन्हें वजीफे देती है। इससे निर्धन माँ-बाप अपने विकलांग बच्चों को स्कूलों में भेजने के लिये प्रोत्साहित हों।

उपर्युक्त सभी कार्यों के अतिरिक्त बाल-भवनों की स्थापना, अशक्त बच्चों की

1. Random Sample Survey.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

संस्थाओं के लिये उपकरण जैसे सामूहिक श्रवण-सहायक यंत्र इत्यादि की खरीद की व्यवस्था, सामाजिक कार्यों में प्रशिक्षण और अनुसंधान करने वाली संस्थाओं को सहायता-अनुदान देना, अन्धे बच्चों के लिये आदर्श भवनों का निर्माण, प्रौढ़ अन्धी महिलाओं की शिक्षा की व्यवस्था, अन्धे बच्चों के लिये किंडरगार्टन, प्राथमिक व माध्यमिक स्कूल खोलना, अशक्तों के लिये आश्रम खोलना तथा बाल अपराधियों के लिये कारागृहों में नैतिक व व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था इत्यादि अन्य प्रमुख कार्य हैं जो भारत के विभिन्न राज्यों में किये जाने प्रारम्भ हो गये हैं।

उपर्युक्त सभी कार्यक्रमों का केवल प्रारम्भ मात्र किया गया है। अभी भारत में अशक्तों की संख्या तथा उनकी समस्या की गम्भीरता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ये सभी प्रयत्न अत्यन्त अल्प व अपर्याप्त हैं। आशा है शीघ्र ही देश इस दृष्टि से प्रगति करेगा।

(८) स्त्री-शिक्षा :

भारत में स्त्री-शिक्षा की समस्या बड़ी गम्भीर है। भारतीय समाज की रूढ़िगत मान्यताओं के कारण यहाँ स्त्री का स्थान सदा से हेय माना जाता है। प्राचीन आर्यों ने स्त्रियों के लिये विद्याध्ययन का निषेध करके जनसंख्या के लगभग आधे अंग को सदा के लिये मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया था। समय की गति से स्त्रियों में पर्दा प्रथा के प्रचलन से उनकी दशा और भी अधिक गिर गई। स्त्री पुरुष की दासी समझी जाने लगी। परिवार में पुरुष के आर्थिक महत्त्व तथा स्त्री की पुरुष पर निर्भरता ने भी स्त्रियों के महत्त्व पर कुठाराघात किया। यही स्थिति देश में एक दीर्घकाल से चली आ रही है, और आज के युग में, जब कि स्त्रियों के महत्त्व को पुरुषों के समकक्ष ही स्वीकार कर लिया गया है, देश की अधिकांश स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त ही करुणाजनक है। निरक्षरता तथा अज्ञानता पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक है। ग्रामीण क्षेत्रों में तथा नगरों के निम्न वर्ग अथवा पिछड़ी हुई जातियों में स्त्रियों में आज भी अखण्ड निरक्षरता व अज्ञान व्याप्त है। यह बात आज निर्विवाद रूप से स्वीकार की जाने लगी है कि राष्ट्र के भावी नागरिकों के चरित्र-निर्माण एवं देश के आर्थिक निर्माण तथा समाज सुधार के क्षेत्र में स्त्रियों का बहुत उच्च स्थान है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि शिक्षा के द्वारा उन्हें इस योग्य बना दिया जाय कि वे अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिये भली-भाँति समर्थ हो सकें। अतः स्त्री-शिक्षा हमारी सम्पूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा का एक अनिवार्य व महत्त्वपूर्ण अंग है।

आज देश की बदलती हुई परिस्थितियों में स्त्री शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। उनकी शिक्षा के लिये देश के विभिन्न भागों में प्राथमिक, माध्य-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मिक तथा उच्च शिक्षा के केन्द्र उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या में खोले जा रहे हैं। प्राय: नगरों में ही हमें लड़कियों के स्कूल व कालेज मिलते हैं। कुछ विद्यालय लड़कियों की शिक्षा के लिये पृथक् हैं तो कुछ में सहशिक्षा प्रचलित हैं। भारत के सभी विश्वविद्यालयों में सहशिक्षा है। वम्वई में केवल लड़कियों के लिये ही एक विश्वविद्यालय पृथक् है। अब तो देश में सहस्रों की संख्या में लड़कियों के लिये पृथक् शिक्षा संस्थाएँ हैं जिनमें लाखों की संख्या में लड़कियाँ विद्याध्ययन करती हैं।

भारत में स्त्री-शिक्षा के विकास का यदि ऐतिहासिक विवेचन किया जाय तो हम कह सकते हैं कि देश में अँग्रेजी शिक्षा के सूत्रपात के साथ ही अधिकारियों व शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान इस समस्या की ओर गया। १९वीं शताब्दी से पूर्व भारत में स्त्री शिक्षा का पूर्ण अभाव था। उनके लिये कोई भी संगठित प्रयास विशेष रूप से इस दिशा में नहीं किया गया था। स्वयं एडमस्मिथ ने वंगाल में ५ लाख की जन-संख्या में केवल ४ स्त्रियों को साक्षर पाया। थोड़ी बहुत जो कुछ भी शिक्षा बालिकाओं को उस समय दी जाती थी, वह घरों पर ही उनके माता-पिता, भाई अथवा किसी वृद्ध गुरु द्वारा दी जाती थी। वम्वई व मद्रास में उस समय जो शिक्षा सम्बन्धी सर्वेक्षण हुए थे उनके आधार पर वहाँ स्थिति कुछ अच्छी थी। मुसलमानों में भयंकर पर्दा प्रथा तथा हिन्दुओं में बाल विवाह के प्रचलित होने के कारण उस समय स्त्री-शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई स्थिति में थी। स्त्री-शिक्षा को लोग अनैतिक प्रथा समझते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने स्त्री शिक्षा के लिये कोई भी प्रयास नहीं किया। लार्ड विलियम वैंटिङ्क व डलहौजी ने उस समय कुछ प्रयास अवश्य किये। भारत में उस समय शिक्षा के क्षेत्र में ईसाई धर्म प्रचारकों के अधीन बहुत सी शिक्षा संस्थाएँ खुलती जा रही थीं। उन्होंने स्त्री-शिक्षा को आधुनिक शिक्षा का रूप दिया। सन् १८५४ में शिक्षा-घोषणापत्र में कुछ व्यवस्था लड़कियों की शिक्षा के लिए की गई। उसके अनुसार लड़कियों के लिये स्कूल खोले गये और उन्हें उदारतापूर्वक सहायता अनुदान दिये गये। सरकार ने स्त्री-शिक्षा का भार प्रत्यक्ष रूप से अपने ऊपर ले लिया। सन् १८८२ ई० तक देश में १ लाख २७ हजार लड़कियाँ शिक्षा पाने लगीं। उनके विद्यालयों की संख्या भी लगभग २½ हजार हो गई।

२०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लार्ड कर्जन ने भी स्त्री-शिक्षा में रुचि दिखाई। उसने योग्य अध्यापिकाओं की नियुक्ति, आदर्श नारी-विद्यालयों की स्थापना तथा उनके लिये अधिक आर्थिक सहायता की व्यवस्था की। उसके उपरान्त कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन ने सिफारिश की कि कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्त्री शिक्षा के लिये एक 'स्पेशल बोर्ड' की स्थापना की जाय। कमीशन ने लड़कियों के लिए विशेष पाठ्यक्रम

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रारम्भ करने की भी सिफारिश की। सन् १९०५-२१ के दौरान में लड़कियों की शिक्षा ने पर्याप्त प्रगति की। उस समय स्त्री-शिक्षा के लिये जो आदर्श स्थापित किये गये वे थे—लड़कियों की शिक्षा व्यावहारिक व लड़कों की शिक्षा से पृथक् हो। उनकी स्वास्थ्य-रक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय। स्त्री-शिक्षा के निरीक्षण तथा शिक्षण के लिये शिक्षित नारियों को अधिक से अधिक अवसर दिया जाय। वास्तव में उस समय अध्यापिकाओं का मिलना एक बड़ी कठिनाई थी जो स्त्री-शिक्षा के प्रसार में वाधक थी। स्त्रियों के मार्ग में आने वाली सामाजिक रूढ़ियों के लिये भी लोगों के विचार परिवर्तन होने लगा था।

सन् १९२१ के उपरान्त तो देश में महान् राजनैतिक व सामाजिक चेतना उत्पन्न हो गई थी। उनका सामाजिक स्तर ऊँचा उठने लगा था तथा देश के राजनैतिक जीवन में भी उनके महत्त्व को स्वीकार किया जाने लगा था। देश की बहुत सी नारियाँ समाजसेवा व राजनैतिक क्षेत्र में आगे बढ़कर काम करने लगी थीं। इन कार्यों में नारी-शिक्षा को वड़ा प्रोत्साहन मिला। कालेजों व विश्वविद्यालयों में उनकी संख्या में बहुत वृद्धि हो गई। सन् १९२६ में अखिल भारतीय स्त्री सम्मेलन की स्थापना हो गई थी जिसने अपना प्रथम शिक्षा सम्मेलन १९२७ में बुलाया। इस युग में महात्मा गान्धी ने भी स्त्री-शिक्षा के प्रसार व सुधार की आवाज उठाई। उन्होंने कहा कि "समाज में पुरुष व नारी का समान स्थान है।" उन्होंने पर्दा प्रथा, विधवा प्रथा, देवदासी प्रथा, वेश्यावृत्ति आदि का विरोध करते हुए इस बात का प्रचार किया कि जब तक स्त्री को सामाजिक दासता से मुक्त नहीं किया जायगा, उसकी मुक्ति सम्भव नहीं। इसके लिए उन्होंने स्त्री-शिक्षा के प्रसार पर बहुत बल दिया। इससे भी भारत की नारियों को शिक्षा प्राप्त करके समाज में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली। फलत: १९३७ तक विभिन्न शिक्षा संस्थाओं में लड़कियों की संख्या बहुत बढ़ गई। यह प्रगति वास्तव में बड़ी सन्तोष-जनक थी।

इसके उपरान्त देश तथा विभिन्न प्रान्तों में नियुक्त होने वाले लगभग सभी शिक्षा कमीशनों व समितियों ने स्त्री-शिक्षा पर अपने विचार प्रकट किये और सुधार के उपाय बतलाये। सन् १९३७ के उपरान्त भी यह प्रगति जारी रही। इस काल में उच्च शिक्षा का बहुत विकास हुआ। स्त्रियों के लिये अस्पतालों, स्कूलों व दफ्तरों में बहुत सी जगहें मिलने लगीं। अब तक चली आने वाली स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध जो लोगों की उपेक्षा की भावना थी, वह बहुत कुछ दूर हो गई। सन् १९४७ तक देश में सभी प्रकार के स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी विशेष स्कूलों की संख्या १७,४८५ हो गई। इनके अतिरिक्त कुछ

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कालेज व विश्वविद्यालयों में सहशिक्षा प्रचलित थी जहाँ लड़कियाँ लड़कों के साथ भी शिक्षा पाती थीं।

भारत की स्वतन्त्रता के उपरान्त तो इस क्षेत्र में आशातीत उन्नति हुई है। राधाकृष्णन् कमीशन, माध्यमिक शिक्षा कमीशन तथा पंचवर्षीय आयोजनों के आधार पर भारत में स्त्री-शिक्षा की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि की जा रही है। इन सभी प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ है कि देश में स्त्री-शिक्षा का आकार पर्याप्त बढ़ गया है।

किन्तु इतना होते हुए भी हम यह नहीं कह सकते कि भारत में स्त्री-शिक्षा का विकास अपने चरम को पहुँच गया है। वास्तव में अभी विकास के लिए बहुत गुञ्जायश है। वर्तमान स्त्री-शिक्षा की समस्यायें ये हैं कि एक तो प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का अभाव है। दूसरे उनके पाठ्यक्रम उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं हैं। आँख मीच कर लड़कों के पाठ्यक्रम की नकल लड़कियों के लिए भी की जा रही है। तीसरे, अभी सामाजिक चेतना देश में इतनी नहीं बढ़ी है कि स्त्रियाँ स्वेच्छापूर्वक पुरुषों से मिल सकें अथवा समाज में जाते हुए अपने आपको पूर्णतः सुरक्षित समझें। इनके अतिरिक्त माँ-बाप की निर्धनता व निरक्षरता भी उनकी शिक्षा के मार्ग में बाधक हैं। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री-शिक्षा की स्थिति बड़ी दयनीय और लगभग पूर्ववत् ही है। कुछ बड़े गाँवों में उनकी प्राथमिक शिक्षा के लिये पाठशालायें खुल गई हैं जिनका प्रबन्ध, शिक्षण व निरीक्षण बहुधा असन्तोषजनक है। अन्यथा वहाँ माध्यमिक व उच्च शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा की कोई भी व्यवस्था नहीं है। ग्रामीण लड़के तो नगरों में उच्च शिक्षा के लिये आ सकते हैं परन्तु लड़कियों के लिये यह सम्भव नहीं। भारतीय जनसमूह की दुर्दमनीय निर्धनता भी इस मार्ग में बहुत बाधक है। जब उनके लड़के ही अशिक्षित रह जाते हैं तो फिर लड़कियों की शिक्षा की वे कल्पना तक नहीं कर पाते।

अतः यह आवश्यक है कि स्त्री-शिक्षा की प्रगति के मार्ग के इन सभी रोड़ों को हटाया जाय। इसके लिये पर्याप्त संख्या में अध्यापिकाओं को प्रशिक्षण देकर उन्हें विभिन्न स्कूलों में भेजा जाय। ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों की माध्यमिक व उच्च शिक्षा के लिये शिक्षालय खोले जायें। वहाँ उनकी अध्यापिकाओं के सुख तथा सम्मानपूर्वक रहने की व्यवस्था की जाय। बालिकाओं को आगे पढ़ने के लिये अधिक छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जाय। उच्चशिक्षा प्राप्त लड़कियों को सरकारी पदों पर नियुक्त होने की पुरुषों के समान ही सुविधा दी जाय। लड़कियों के स्कूलों के प्रबन्ध तथा निरीक्षण में सुधार करके उनकी कार्यक्षमता बढ़ाई जाय तथा उन्हें सरकार की ओर से अधिक उदारतापूर्वक अनुदान दिया जाय। अन्त में सबसे महत्त्वपूर्ण सुधार हैं लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

तथा उन सामाजिक रूढ़ियों का उन्मूलन जो हमने भारतीय नारी के मार्ग में उत्पन्न कर रखी हैं और जिनके कारण युग-युग से उनका सामाजिक व मानसिक पतन होता आया है। इन सभी सुधारों के होने पर हम विश्वास कर सकते हैं कि देश में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भारी सफलता मिलेगी।

उपसंहार :

इस प्रकार संक्षेप में भारतीय शिक्षा की कुछ प्रमुख समस्याओं का विवेचन यहाँ किया गया है। इनके अतिरिक्त कुछ और समस्यायें भी हैं, जैसे नर्सरी स्कूल, वित्त की समस्या, शिक्षकों का दशा, शिक्षा में नियोजन की समस्या, औद्योगिक व व्यावसायिक शिक्षा तथा सामाजिक शिक्षा इत्यादि। इन समस्याओं की पुस्तक में विस्तारपूर्वक आलोचना की गई है। नियोजन, औद्योगिक शिक्षा तथा सामाजिक शिक्षा पर तो स्वतन्त्र अध्यायों में विचार किया गया है। अत: इनका वहाँ विशेष रूप से विवरण देना केवल पुनरावृत्ति मात्र होगा। वैसे अन्य समस्याओं की व्याख्या करते समय प्रसंगवश उन पर भी थोड़ा बहुत प्रकाश यहाँ डाला गया है। देश की शिक्षा में निरन्तर गुण तथा आकार में वृद्धि होती जा रही है और भविष्य के लिए अच्छी योजनायें तैयार हो रही हैं, किन्तु शिक्षा के प्रसार के साथ ही साथ हमें उन समस्याओं को भी हल करना होगा जोकि प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध हो रही हैं। यद्यपि हमें देश में करोड़ों की जनसंख्या को शिक्षित करना व उनके जीवन को किसी आर्थिक व लाभकारी उद्यम के लिए तैयार करना है, तथापि आकार व प्रसार के साथ ही साथ हमें शिक्षा की क्वालिटी में भी सुधार करना होगा। बिना इसके शिक्षा-प्राप्ति का मूल उद्देश्य ही नष्ट हो जायगा। भारतीय शिक्षा पद्धति में हमें देश की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं के अनुरूप एक मोड़ देना होगा जिससे भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि के आधार पर पाश्चात्य व पूर्वीय दोनों प्रकार की विचारधाराओं का समावेश हमारी शिक्षा पद्धति में हो जाय। समस्याओं का अध्ययन सूक्ष्म वैज्ञानिक व व्यावहारिक दृष्टि से करके हमें उनके लिए उपयुक्त हल निकालने हैं। तभी हमारी शिक्षा पद्धति में व्याप्त दोषी का निवारण होकर निर्वाध प्रगति हो सकेगी। भारत में इन दिशाओं में चिन्तन व विचार-विनमय प्रारम्भ कर दिये गये हैं, जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय शिक्षा का भविष्य अवश्य ही उज्ज्वल है। केवल समय की बात है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भारतीय शिक्षा पर कुछ प्रश्न

[प्रत्येक प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी ठीक ठीक समझ सकें,
इसके लिए पुस्तक से सम्बन्धित पृष्ठों की
संख्या प्रश्नों के साथ ही
दे दी गई है]

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्राचीन-शिक्षा

१. "प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य महान् था"—विवेचन करिए । (पृष्ठ १—३)

२. वेद कालीन शिक्षा का वर्णन करिए । (पृष्ठ ३—६)

३. उत्तर वैदिक काल की शिक्षा व्यवस्था पर प्रकाश डालिए । (पृष्ठ १०—१७)

४. वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में स्त्री-शिक्षा की परम्परा पर प्रकाश डालिए । (पृष्ठ १७—१६)

५. उत्तर वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा । (पृष्ठ १६—२२)

६. ब्राह्मणीय भारत में आयुर्वेद अथवा चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा पर एक निबन्ध लिखिये । (पृष्ठ २२—२४)

७. ब्राह्मणीय काल में सैनिक शिक्षा कैसे दी जाती थी ? संक्षेप में वर्णन कीजिये । (पृष्ठ २४—२५)

८. ब्राह्मणीय काल में ललित कला और हस्त-कलाओं के विकास पर टिप्पणी लिखिए । (पृष्ठ २५—२७)

९. ब्राह्मणीय भारतीय शिक्षा की विशेषतायें बताइये तथा उसकी सफलता और असफलताओं पर प्रकाश डालिए । (पृष्ठ २८—३६)

१०. बौद्ध शिक्षा प्रणाली पर प्रकाश डालिये । यह ब्राह्मणीय शिक्षा से किन बातों में भिन्न है ? (पृष्ठ ३७—४५)

११. प्राचीन काल में शिक्षा केन्द्रों की क्या व्यवस्था थी ? कुछ प्रमुख शिक्षा केन्द्रों की प्रगति का वर्णन करिए । (पृष्ठ ४६—५३)

मध्यकालीन शिक्षा

१२. भारत में इस्लामी शिक्षा के क्या विभिन्न उद्देश्य थे ? इसके प्रचार के लिए मुसलमान शासकों ने जो प्रयत्न किये, उन पर प्रकाश डालिये । (पृष्ठ ५४—५६)

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१३. भारत में इस्लामी शिक्षा के संगठन, पाठ्यक्रम और शिक्षा पद्धति का वर्णन करिये । (पृष्ठ ५६—६६)

१४. मध्यकालीन भारत में स्त्री शिक्षा, ललित कला व हस्त कला, सैनिक शिक्षा एवं साहित्य के उत्कर्ष पर प्रकाश डालिये । (पृष्ठ ६६—६९)

१५. इस्लामी शिक्षा पद्धति की विशेषताओं को संक्षेप में बताइये व उसके दोषों पर भी प्रकाश डालिये । (पृष्ठ ६९—७२)

१६. मध्यकालीन भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए । (पृष्ठ ७२—७४)

१७. "मध्य युग में जब कि भारत में इस्लाम की दुन्दुभि बज रही थी, भारतीय संस्कृति को पैरों तले रौंद कर उसके स्थान पर विदेशी संस्कृति का आरोपण किया जा रहा था, उस समय भी भारतीय हिन्दू शिक्षा चुपचाप अपनी प्रगति करती रही थी ।" इस कथन का विवेचन करिये । (पृष्ठ ७४—७५)

आधुनिक-शिक्षा

१८. भारत में योरुपीय जातियों के आगमन के समय देशी शिक्षा की क्या दशा थी ? तत्कालीन देशी शिक्षा व्यवस्था के अवनति के कारण लिखिये । (पृष्ठ ७६—८१)

१९. भारत में शिक्षा प्रचार के लिए किये गये प्रारम्भिक योरुपीय प्रयत्नों का संक्षेप में वर्णन करिये । (पृष्ठ ८१—८९)

२०. सन् १८१३ के आज्ञा-पत्र के पश्चात् भारत में शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध में क्या प्रश्न विवाद ग्रस्त थे ? उन पर संक्षेप में प्रकाश डालिये । (पृष्ठ ९०—९१)

२१. १८१३-३३ युग के शिक्षा प्रसार के राजकीय, मिशनरी, गैर-मिशनरी प्रयत्नों पर प्रकाश डालिए । (पृष्ठ ९२—१०४)

२२. "सन् १८३५ भारतीय शिक्षा इतिहास में एक मोड़ (Turning Point) सिद्ध हुआ" स्पष्ट कीजिए । इसके बाद शिक्षा में जो परिवर्तन हुए उनका वर्णन कीजिये । (पृष्ठ १०५—११२)

२३. लार्ड मैकाले के विवरण पत्र Minutes) पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये । (पृष्ठ १०६—११०)

२४ .लार्ड आकलैंड की शिक्षा नीति पर प्रकाश डालिए । (पृष्ठ ११२—११४)

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२५. उन परिस्थितियों को बताइये जिनमें शिक्षा छनाई का सिद्धान्त बना और भारत सरकार ने अपनाया। भारत में इस सिद्धान्त के अपनाने से क्या प्रभाव हुए ? (पृष्ठ ११४—११६)

२६. लार्ड मैकाले के विवरण-पत्र के पश्चात् भारत में वुड के शिक्षा घोषणा-पत्र तक की शिक्षा प्रगति का वर्णन कीजिये। (पृष्ठ ११६—१२३)

२७. वुड के शिक्षा घोषणा-पत्र में क्या महत्वपूर्ण सिफारिशें की गई थीं ? इसके गुण-दोष लिखिये। (पृष्ठ १२४—१२६)

२८. सन् १८५४ के उपरान्त भारतीय शिक्षा कमीशन की नियुक्ति तक भारत में शिक्षा की जो प्रगति हुई, उसका आलोचनात्मक वर्णन कीजिए। (पृष्ठ १३०—१३६)

२९. सन् १८८२ के हन्टर कमीशन की प्रमुख सिफारिशों को संक्षेप में लिखिए। उनका तत्पश्चातिक शिक्षा प्रगति पर क्या प्रभाव हुआ ? (पृष्ठ १३७—१४३)

३०. भारतीय शिक्षा कमीशन की सिफारिशों के उपरान्त लार्ड कर्जन तक शिक्षा की जो प्रगति हुई उसका वर्णन कीजियें। (पृष्ठ १४३—१५७)

३१. स्वदेशी आन्दोलन का भारतीय शिक्षा की प्रगति पर क्या प्रभाव पड़ा ? (पृष्ठ १५८—१६३)

३२. सैडलर कमीशन की सिफारिशों पर प्रकाश डालिये। इसका क्या महत्व है ? (पृष्ठ १६३—१६६)

३३. स्वदेशी आन्दोलन के उपरान्त १९२० तक भारतीय शिक्षा की प्रगति का वर्णन कीजये। (पृष्ठ १६६—१७०)

३४. हर्टाग समिति की किन परिस्थितियों में नियुक्ति हुई और उसने शिक्षा के विकास के लिए क्या सिफारिशें कीं ? आलोचना करिए। (पृष्ठ १७१—१७८)

३५. केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड १९३५ ने क्या महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये ? (पृष्ठ १७८—१७९)

३६. वुड-ऐबट रिपोर्ट में सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षा के विषय में क्या नीति अपनाई गई ? (पृष्ठ १७९—१८१)

३७. द्वैध-शासन के पश्चात् भारत में शिक्षा की क्या प्रगति हुई ? संक्षेप में वर्णन कीजिये। (पृष्ठ १८१—१९०)

३८. प्रान्तीय स्वायत्त शासन के उपरान्त देश में हुई शिक्षा प्रगति की संक्षिप्त रूप-रेखा दीजिए। (पृष्ठ १९१—१९५)

३९. वर्धा योजना क्या है ? इसकी विशेषताओं, पाठ्यक्रम, एवं शिक्षण विधि पर प्रकाश डालिए। (पृष्ठ १९५—२१६)

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

४० सार्जेन्ट शिक्षा योजना की मुख्य बातों पर प्रकाश डालिए। इसमें राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की क्या रूपरेखा बताई गई है ? (पृष्ठ २१६—२२१)

४१. माध्यमिक शिक्षा कमीशन १९५३ (मुदलियर कमीशन, १९५२) की सिफारिशों पर प्रकाश डालिए और उनकी आलोचना कीजिए। (पृष्ठ २२१—२२६)

४२. "आज भारतीय माध्यमिक शिक्षा संस्थान (Weak spot) है, बिना इसके सुधार के राष्ट्र की उन्नति असम्भव है"—माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं का विवेचन करते हुए उक्त कथन को स्पष्ट कीजिए। समस्याओं को हल करने के लिए आपके सुझाव क्या हैं ? (पृष्ठ २२७—२३३)

४३. प्रान्तीय स्वायत्त शासन से वर्तमान तक भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा की प्रगति का वर्णन करिये ! (पृष्ठ २३३—२३९)

४४. विश्वविद्यालय शिक्षा कमीशन १९४९ (राधाकृष्णन् कमीशन) की प्रमुख सिफारिशें क्या थीं ? संक्षेप में बताइये और उनकी आलोचना कीजिए। (पृष्ठ २३९—२४६)

४५. विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन पर संक्षिप्त नोट लिखो। (पृष्ठ २४६—२४७)

४६. भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना अपने शिक्षा लक्ष्य में कहाँ तक सफल हुई ? योजना के शिक्षा कार्यक्रम क्या थे। आलोचना कीजिए। (पृष्ट २४८—२५४)

४७. द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के सम्बन्ध में क्या-क्या आयोजन किये गये हैं। संक्षेप में बताइये। (पृष्ठ २५४—२६५)

४८. द्वितीय पंचवर्षीय योजना की विशेषता उसकी आयोजनहीनता ही कही जा सकती है"—आलोचना कीजिए। (पृष्ठ २६५—२६७)

४९. उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति का वर्णन कीजिए ? (पृष्ठ २७१—२७३)

५०. जूनियर हाईस्कूलों में उत्तर प्रदेश सरकार ने पुनर्व्यवस्था योजना की क्या योजना बनाई है ? आलोचना कीजिये। (पृष्ठ २७३—२७९)

५१. उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा की क्या प्रगति हुई है ? संक्षेप में बताइये। (पृष्ठ २७९—२८०)

५२. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना की विशेषतायें बताइये। इसके क्या गुण दोष हैं ? (पृष्ठ २८१—२८४)

५३. माध्यमिक शिक्षा पुनर्संगठन समिति की सिफारिशें क्या थीं ? आलोचना करिए। (पृष्ठ २८४—२८९)

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

५४. शिक्षकों की दशा में सुधार करने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने क्या प्रयत्न किये ? (पृष्ठ २८६—२६१)

५५. उत्तर प्रदेश में शिक्षा सम्बन्धी विशेष संस्थायें कौन-कौनसी हैं ? उनका वर्णन कीजिये। (पृष्ठ २६१—२६२)

५६. उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा की स्थिति पर प्रकाश डालिए। (पृष्ठ २६२—२६४)

५७. प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में भारत के क्या-क्या आयोजन हुए हैं ? इनके मार्ग में क्या बाधायें अनुभव हुईं और उनका हल क्या है ? (पृष्ठ २६६—३००)

५८. भारत में स्वतन्त्रता के बाद प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रगति हुई—उसका उल्लेख कीजिए। (पृष्ठ ३००—३०६)

५९. भारत में औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा प्रगति पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। (पृष्ठ ३०७—३२०)

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,